प्रबन्ध-सागर

उच्चकोटि के साहित्यिक, कलात्मक, धार्मिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक तथा विविध विषयों पर विद्वत्तापूर्ण लिखे गये १२१ निबन्धों से युक्त बी० ए०, हिन्दी प्रभाकर, मध्यमा तथा अन्य विशेष योग्यता की परीक्षाओं के लिये अत्यन्त उपयोगी निबन्ध पुस्तक

लेखक

प्रो० कृष्णानन्दन पंत, एम.ए., एम. ओ. एल., साहित्याचार्य

प्रधानाध्यक्ष हिन्दी-विभाग, मेरठ कालेज, मेरठ

पं० यज्ञदत्त शर्मा, एम. ए., साहित्यरत्न

हिन्दी का संक्षिप्त साहित्य, हिन्दी साहित्य का सांकेतिक इतिहास, हिन्दी साहित्य आपके युगमें, दो पहलू, ललिता, विचित्र-त्याग, इन्सान आदि पुस्तकों के रचयिता

आत्माराम एण्ड सन्स

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड सन्स,
काश्मीरी गेट, दिल्ली

प्रथम संस्करण
१९५१
मूल्य—चार रुपए आठ आने
४॥)

मुद्रक
मदनलाल गुजराल
एलबियन प्रेस,
काश्मीरी गेट, दिल्ली

भूमिका

'प्रबन्ध-सागर' की रचना हिन्दी-साहित्य, भारतीय काव्य परम्परा, भारत की धार्मिक क्रांतिया और उनकी प्रतिध्वनिया, भारतीय समाज और सभ्यता, भारतीय इतिहास ओर राजनीति, फुटकर विचार ओर समस्याये तथा परिचयात्मक विषयो की आधारशिला पर की गई है। भारत का साहित्यिक, धार्मिक, राजनीतिक और सास्कृतिक विकास एक क्रम के साथ इस ग्रथ मे पृथक पृथक विषयो के आधार पर सगठित रूपमे मुखरित हुआ है। हिन्दी साहित्य के अतर्गत साहित्य के क्रमिक विकास मे पैदा होने वाली मूल प्रवृत्तियो और प्रधान वादो तथा साहित्यिक धाराओं का स्पष्टी-करण किया गया है। हिन्दी साहित्य के सब प्रधान वाद, शैलियो, मूल ग्रथो और कवियो पर विकसित रूप से प्रकाश डाला गया है। हिन्दी-साहित्य की विविध शाखाओ को विषय बनाकर उनके विकास और भविष्य पर तार्किक दृष्टिकोण से लिखा गया है। साथ ही हिन्दी साहित्य पर देशीय और विदेशीय प्रभावो का भी आधुनिक प्रगति वाद मे मूल्याकन किया है।

साहित्यिक निबन्धो के पश्चात् काव्य-कला सम्बन्धी निबध दिये गये है जिन मे काव्य-कला के विविध रूपो का भी हमने शास्त्रीय विवेचन किया है। कविता, उपन्यास, नाटक, कहानी, निबन्ध और जीवनी विषयो का स्पष्टीकरण किया गया है। साहित्य-कला के पश्चात् धार्मिक निबन्धो दिये है जिन मे भारत के प्राचीनतम धर्म से लेकर उसमे होने वाली विविध प्रति-क्रियाओ को भी लिया गया है। भारत के सभी धर्म ग्रथो और उनके राष्ट्र पर पडने वाले प्रभावो का स्पष्टीकरण किया गया है। भारतीय जनता की धार्मिक प्रवृत्तिया, धर्म ग्रथ और उनके साहित्य तथा समाज पर पडने वाले प्रभावो का विवेचन किया गया है। धर्म के गुण, अवगुण और इसके व्यापक क्षेत्र पर कई विषयो मे प्रकाश डाला है। धार्मिक निबन्धो के

पश्चात् सामाजिक निबन्ध आते है, जिनमे भारत की प्राचीन समस्याओं से लेकर आज तक की समस्याओं को लिया गया है। सामाजिक निबन्धो में वर्णाश्रम धर्म, नारी विषयक समस्याओं तथा विवाह सम्बन्धी अन्य विषयों का स्पष्टीकरण है। सामाजिक निबन्धों के पश्चात् ऐतिहासिक और राजनैतिक निबन्ध लिखे गये हैं जिन मे भारत की आदि युग से आज तक की सभी राजनैतिक समस्याये ली गई है। इन निबन्धों को पढ कर पाठक को भारतीय इतिहास और वर्तमान राजनीति का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। राजनैतिक-निबन्धों के अतर्गत भारत की क्रातियो के अतिरिक्त विश्व की क्रातियों तथा वर्तमान वादो और उनकी भारतीय राजनीति पर होने वाली प्रतिक्रियाओं का भी स्पष्टीकरण किया गया है। एकतन्त्रवाद, साम्राज्यवाद, साम्यवाद, समाजवाद, डिक्टेटरशिप, गाधीवाद इत्यादि की तुलनात्मक विवेचना की गई है। अत मे फुटकर और परिचयात्मक निबन्ध लिखे गये हैं जिन मे स्वास्थ्य, व्यायाम इत्यादि के अतिरिक्त ससार की प्रमुख शासन प्रणालियों और भारतीय इतिहास की प्रधान विभूतियो का परिचय दिया गया है।

निबन्धों के अतिरिक्त साहित्यिक, कलात्मक, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक निबन्धों के पश्चात कुछ विषयो की रूप रेखाये देकर उन पर निबन्ध रचना की पूर्ण सामग्री भी प्रस्तुत की गई है। 'प्रबन्ध-सागर' के भूमिका भाग मे हिन्दी गद्य के उत्थान, हिन्दी निबन्धो के इतिहास, निबन्ध की आवश्यकता, निबन्ध के क्षेत्र, निबन्ध के ढाचे, निबन्ध-लेखन-ज्ञान, निबन्ध के प्रमुख अग, निबन्धो के प्रकार, शैली और सहायक अगो पर विस्तार के साथ प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार 'प्रबन्ध-सागर' मे बी० ए० प्रभाकर और विशेष योग्यताओं क परीक्षा मे भाग लेने वाले विद्यार्थियों के लिय सम्पूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है। हम दृढ विश्वास के साथ कह सकते हैं कि 'प्रबन्ध-सागर' के निबन्धो पर एक दृष्टि डालने के पश्चात् विद्यार्थी का उक्त विषयो का ज्ञान अपूर्ण नहीं रह सकता।

लेखक

विषय-सूची

भूमिका क

१. हिन्दी गद्य का उत्थान १

[भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग, नवीन-युग, गद्य की विवेचना, निबन्धों की रचना।]

२. निबन्ध किसे कहते हैं ? ५

निबन्ध की परिभाषा, निबन्ध का क्षेत्र, प्रारम्भिक-निबन्ध, निबन्ध का नामकरण, निबन्ध का ढाँचा निबन्ध का ज्ञान, निबन्ध के प्रमुख अङ्ग, निबन्ध की प्रस्तावना, निबन्ध का प्रसार, निबन्ध का परिणाम (Conclusion)]

३. निबन्धों के प्रकार ... १४

[वर्णनात्मक-निबन्ध, कथात्मक-निबन्ध, विचारात्मक निबन्ध निबन्ध लेखन की शैलियां।]

४. शैली के सहायक अंग १६

[अलंकार, ध्वनि, चमत्कार, वाक्य-सौंदर्य]

५. शैली के गुण और दोष २१

[ओज, प्रसाद, माधुर्य, सरलता, स्वच्छता, प्रभावोत्पादन, दोष]

शैलियों के प्रकार २३
[भाषा-प्रधान शैलियाँ, सरल-भाषा शैली, गुम्फित शैली, मुहावरे-प्रधान शैली, अलंकार प्रधान शैली, उक्ति-प्रधान शैली, विचार-प्रधान-शैलियाँ, व्यक्ति-प्रधान शैली, विषय-प्रधान शैली, आलोचनात्मक शैली,]

६ हिन्दी में निबन्धों का विकास २७
प्रथम-युग
[भारतेन्दु जी, प० बालकृष्ण, प० प्रतापनारायण मिश्र अम्बिका प्रसाद व्यास]
द्वितीय-युग
[महावीर प्रसाद द्विवेदी, गोविंद नारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, प० माधव-प्रसाद, मु० प्रेमचन्द]
तृतीय-युग
[आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प० पद्मसिंह, सरदार पूर्ण सिंह, श्यामसुन्दर दास, जयशंकर प्रसाद, वियोगी हरी, गुलाबराय, रामकृष्ण दास, महादेवी वर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, जैनेन्द्र कुमार ।]
निबन्ध साहित्य का भविष्य ३२

साहित्यिक-निबन्ध

७—वीरगाथा साहित्य पर एक दृष्टि ३३
८—हिन्दी में निर्गुण-धारा ३७
९—हिन्दी में सूफी प्रेम-धारा ४०
१०—हिन्दी साहित्य में राम भक्ति ४३
११—हिन्दी साहित्य में कृष्ण-भक्ति-धारा ४७

१२—हिन्दी साहित्य में रीति-काल ५१
१३—खड़ी बोली और गद्य का विकास ५५
१४—हिन्दी कविता का नवीन-युग ५६
१५—हिन्दी मे नाटकों का विकास ६३
१६—हिन्दी गल्प और उपन्यास ६६
१७—हिन्दी मे समालोचना-साहित्य ७०
१८—पृथ्वीराज रासो पर एक दृष्टि ७३
१९—पद्मावत पर एक दृष्टि ७६
२०—रामचरितमानस पर एक दृष्टि ७९
२१—विनयपत्रिका पर एक दृष्टि ८४
२२—सूरसागर पर एक दृष्टि ८७
२३—विहारी सतसई पर एक दृष्टि ९१
२४—साकेत पर एक दृष्टि ९५
२५—कामायनी पर एक दृष्टि ९९
२६—सेवासदन पर एक दृष्टि १०४
२७—प्रेमाश्रम समालोचना-क्षेत्र में १०९
२८—रंगभूमि पर एक दृष्टि ११६
२९—हिन्दी साहित्य मे रहस्यवाद १२१
३०—हिन्दी मे छायावाद १२७
३१—हिन्दी में प्रतिवाद १३१
३२—हिन्दी साहित्य में प्रकृति-चित्रण १३५
३३—तुलसी के साहित्य मे सर्वाङ्गीणता १४१
३४—सूरदास और उनका साहित्य १४४
३५—भारतेन्दु और उनके नाटक १४९
३६—जयशंकर प्रसाद और उनके नाटक १५३
३७—प्रेमचन्द की नवीन उपन्यास धारा १५७

३८—मु० प्रेमचन्द की कहानियाँ — १६०
३९—मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य — १६६
४०—कवि 'निराला' का दार्शनिक प्रकृतिवाद — १६९
४१—महादेवी वर्मा का दर्शन और साहित्य — १७३
४२—हिन्दी कविता मे राष्ट्रीयता — १७८
४३—राष्ट्र भाषा हिन्दी उर्दू या हिन्दुस्तानी — १८२
४४—हिन्दी को मुसलमानों की देन — १८५
४५—हिन्दी साहित्य पर विदेशी प्रभाव — १८९
४६—हिन्दी का पुराना और नया साहित्य — १९३

कुछ साहित्यक निबन्धों की रूप रेखाये

४७—हिन्दी में नाटक और रगमँच — १९७
४८—हिन्दी मे पत्र पत्रिकाओं का क्रमिक विकास — १९७
४९—भारत राष्ट्र की राष्ट्र-भाषा — १९८
५०—देवनागरी लिपि की महानता — १९९
५१—हिन्दी में जीवनी साहित्य का विकास — २००
५२—हिन्दी में भ्रमरगीत साहित्य का प्रसार — २०१
५३—मीरा की काव्य-साधना — २०१
५४—हिन्दी में गीत-काव्य की परम्परा — २०२
५५—हिन्दी साहित्य की विशेषए — २०३
५६—गोदान पर एक दृष्टि — २०३
५७—केशव का पाडित्य — २०४
५८—जयशङ्कर प्रसाद की सर्वाङ्गीणता — २०५
५९—हिन्दी साहित्य मे महावीर प्रसाद द्विवेदी का स्थान — २०७
६०—हिन्दी साहित्य की सेवा में स्त्रियों का स्थान — २०८
६१—हिन्दी साहित्य मे प्रबन्ध-काव्य — २०९

६२—आधुनिक साहित्य मे मनोविज्ञान ... २०६
६३—हिन्दी साहित्य मे विद्यापति . २१०
६४—देव का आचार्यत्व .. २११
६५—सेनापति का प्रकृति-चित्रण .. २१२
६६—यशोधरा पर एक दृष्टि .. २१३
६७—रामकुमार वर्मा के एकॉकी नाटक २१५

काव्य-कला सम्बन्धी निबन्ध

६८—ललित कला और काव्य २१७
६९—काव्य क्या है ? .. २२२
७०—साहित्य-कला की उपयोगिता . २२७
७१—साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है २३२
७२—कविता क्या है ? .. २३६
७३—रूपक (नाटक) की रूपरेखा २४३
६४—उपन्यास क्या है ? . २५२
७५—कहानी की रूपरेखा .. २५८
७६—समालोचना और साहित्य .. २६३
७७—काव्य मे रस और अलकार . २६६
७८—काव्य की कसौटी . २७१

कुछ काव्य-कला सम्बन्धी निबन्धों की रूप रेखायें

७९—आधुनिक साहित्य मे रस का स्थान २७५
८०—काव्य मे करुण रस का स्थान २७६
८१—काव्य में कल्पना का स्थान २७८
८२—काव्य मे शैली की विशेषता .. २८०
८३—साहित्य किस लिये ? — २८१
८४—साहित्य-क्षेत्र मे गद्य और पद्य . २८३

८५—काव्य के प्रमुख अंग २८४

धार्मिक और दार्शनिक निबन्ध

८६—हिन्दू धर्म और उसके धर्म-ग्रन्थ २८६
८७—हिन्दू धर्म और विज्ञान , २६०
८८—हिन्दू धर्म और राजनीति ... २६३
८९—हिन्दू धर्म के गुण और अवगुण . २६६
९०—मध्य-युग के भक्ति-आँदोलन ३०१
९१—हिन्दू धर्म और पुराण ३०४
९२—जैन धर्म और बुद्ध धर्म ... ३०८

कुछ धार्मिक निबन्धों की रूप रेखायें

९३—शङ्कराचार्य और उनका दर्शन . ३१२
९४—स्वामी दयानन्द और उनके सिद्धान्त . ३१३
९५—हमारे ज्ञान प्राप्ति के साधन ३१५
९६—समाज और राजनीतिक में धर्म .. ३१७

सामाजिक निबन्ध

९७—भारतीय समाज की समस्या , ... ३२०
९८—भारतीय समाज और हिन्दी साहित्य ३२४
९९—हिन्दू समाज में वर्णाश्रम धर्म .. ३२६
१००—हिन्दू समाज और नारी . ३३४
१०१—बहु विवाह बाल विवाह और विधवा विवाह, ३३८

कुछ सामाजिक निबधों की रूप रेखायें

१०२—समाज और नाटक ३४२
१०३—हिन्द समाज में विवाह बधन ३४३

इतिहास सम्बन्धी निबन्ध

१०४—मुसलमान-युग और भारत ... ३४७
१०५—अगरेजी शासन-काल की भारत को देन ... ३५१
१०६—आज भारत राष्ट्र की आवश्यकता ... ३५६
१०७—हिन्दू-मुसलिम एकता की आवश्यकता ... ३६१
१०८—एकतत्र और प्रजातत्र-शासन, ... ३६४
१०९—गाधी वाद और साम्यवाद, ... ३६८
११०—भारत की वर्तमान शासन व्यवस्था ... ३७४
१११—कॉग्रेस का इतिहास और उसका भविष्य ... ३७८
११२—भारत की रियासते ... ३८६
११३—जमीदारी देश का अभिषाप है, ... ३९१
११४—भारत और पाकिस्तान ... ३९५

कुछ राजनीतिक निबन्धों की रूप-रेखाये

११५—मार्शल योजना ... ४००
११६—मुद्राप्रसार और महगाई ... ४०२
११७—स्वतत्र भारत का सविधान। ... ४०३
११८—सयुक्त राष्ट्रसघ की आवश्यकता ... ४०७
११९—एटलॉटिक सॅधि ... ३०९
१२०—काश्मीर की समस्या ... ४१०
१२१—हिन्दू कोडबिल ... ४११

फुटकर निबन्ध

१२२—भारत में क्राति के कारण और शाति के उपाय ... ४१४
१२३—विज्ञान से सॅसार किधर को ? ... ४२१
१२४—पश्चिमी और पूर्वी सभ्यता ... ४२५

प्रसाद द्विवेदी तथा माधव प्रसाद मिश्र इस काल के प्रमुख लेखको हैं।

नवीन-युग—(वर्तमान-काल)—वर्तमान काल में भाषा में से व्याकरण और भाषा सम्बन्धी दोष सभी दूर हो जाते हैं। भाषा में शक्ति आजाती है उसमे किसी भी प्रकार के विचारों को पूर्ण स्वतन्त्रता साथ स्पष्ट रूप से खोल कर लिखा जा सकता है। इस काल भाषा की विभिन्न शैलियों का विकास हुआ। यों तो इन शैलियों की रूप-रेखा प्राचीन काल से ही अपने बिगड़े-सुधरे रूप मे चलती चली आ रही थी परन्तु इस काल मे आकर उन शैलियो ने अपना अपना स्पष्ट रूप धारण कर लिया। इस काल में अंग्रेजी साहित्य का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा बहुत से विषय अंगरेजी से हिन्दी लिये गये और उन पर अनेको ग्रन्थों की रचनाएं हुईं, अनुवाद तथा मौलिक दोनों ही रूप में। बगाली साहित्य का भी प्रभाव हिन्दी पर कम नहीं हुआ। द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों को हिंदी मे अनुवाद करने के पश्चात् अपना करके अपनाया है बकिम, शरत् और टैगोर बाबू की हर रचना को हिन्दी में प्रस्तुत किया गया और बड़े चाव से पढ़ा भी गया।

पं० पद्मसिंह जी शर्मा, बाबू श्याम सुन्दर दास, जयशंकर प्रसाद, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मुन्शी प्रेमचन्द, गुलाबराय एम० ए० जैनेन्द्र कुमार, रामनाथ 'सुमन' प्रभाकर माचवे, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राम-कृष्ण दास, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० रसाल, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, श्री सुदर्शन, नलिनी मोहन सन्याल, भगवती चरण वर्मा, उग्र, डा० पीताम्बर दत्त, डा० रामविलास, शाँतिप्रिय द्विवेदी, अमृत-लाल नागर, नरोत्तम प्रसाद नागर, भगवती प्रसाद बाजपेयी, डा० रामरतन भटनागर 'रमरत' इत्यादि लेखकों का इस काल के गद्य लेखन मे प्रधान हाथ है। आप लोगों की रचनाएं अपने परिमार्जित रूप में

सामने आई है और उनमे वर्तमान काल के विविध विषयो पर प्रकाश डाला गयाहै ।

गद्य की विवेचना—आज का हिन्दीगद्य इसमे सन्देह नहीं कि पीछे की अपेक्षा काफी निखरे रूप में, विशाल रूप मे और गाम्भीर्य के साथ उन्नति के पथ पर अग्रसर है, परन्तु फिर भी उसमे अभी अनेकों विषयों को अपने अन्दर खपा लेने की क्षमता अधूरी दिखाई देती है। हिन्दी गद्य का जो विकास हुआ उसमें प्रधान क्षेत्र कहानी, उपन्यास, और नाटक, बस इन्ही तीन धाराओ मे मिलता है। कुछ और आगे चलें तो 'गद्य काव्य, कुछ इतिहास, कुछ निबन्ध तथा कुछ यात्राएं लिखी हुई आपको मिल जायेंगी इनके अतिरिक्त अन्य विषयों पर न लेखको ने लिखने का प्रश्न ही किया और न पाठको प्रकाशकों को ही किसी प्रकार की उत्तेजना दी। अन्य विषयो को हिन्दी गद्य अपने हाथो मे न सभाल सका। इसका एक दूसरा कारण यह भी रहा कि अभी तक हिन्दी राज-भाषा नही थी और स्कूल कालिजों मे पढाई जाने वाली अन्य विषयों की सब पुस्तकें अंगरेजी मे ही पढ़ाई जाती थीं। हिन्दी के सामने यह कठिनाई आज स्वाधीन राज्य स्थापित हो जाने पर भी उतने ही प्रखर रूप मे है। क्योंकि दुर्भाग्यवश राष्ट्र के प्रधान कर्णधार अंगरेजी सस्कृति मे ही पले हैं और वह उनके दिलों में इतनी बुरी तरह जम गई है कि उन्हे भारतीयता मे आते हुये भय मालूम देता है।

ऊपर कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी-गद्य का विकास प्रधानतया ललित कलाओ के ही रूप में हुआ और लेखको ने भी प्रधानतया अपनी शक्ति को उसी दिशा में लगाया । इस काल मे यदि और विषयो पर भी कुछ लिखा गया है तो उसमे भी ललित कला की ही पुट मिलती है। निबन्ध, लेख, इतिहास, जीवनिया कोई भी उस प्रभाव से वचित नहीं रह पाया है।

निबन्धों की रचना—निबन्ध गद्य का एक विशेष अंग है जो न भावनाओं में बहकर लिखा जाता है और न जिसमें कल्पना के ही घोड़े दौड़ाये जाते हैं। निबन्ध लेखक का भाषा, शब्दावलि और विचारों पर समान अधिकार होना आवश्यक है। अच्छे निबन्ध में न व्यर्थ के शब्दो का मायाजाल होना चाहिए और न कल्पनाओं का चमत्कार ही। वहाँ तो वास्तविक सत्य को उचित शब्दों मे गूथ कर नपे-तुले विचारों का सामजस्य करना होता है।

हिन्दी का निबन्ध-साहित्य सस्कृत साहित्य की देन न होकर पूर्णतया अगरेजी की देन है यह स्वीकार करने मे भारतीयता-प्रेमियों को सकोच नहीं होना चाहिए। सस्कृत-साहित्य मे इस प्रकार के निबन्धों का कहीं पर भी साहित्य मे खोज नहीं मिलता। निबन्ध शब्द का अर्थ प्राचीन साहित्य में जोड़ने या बाधने से था। वर्तमान कालीन पडितों ने इस शब्द का प्रयोग (essays) मे कर लिया। यह समय की प्रगति है और कालान्तर मे इस प्रकार के शब्दो के प्रयोग मे अन्तर हो ही जाया करता है। अब 'निबंध' का अर्थ केवल परिभाषा मे यही समझ लिया गया है कि यह वह साहित्य का अग है जो विचारों, भावों और उनके स्पष्टीकरण को एक सूत्र मे बाध ले। लेख, प्रबन्ध और निबन्ध यह तीनों शब्द अर्थों मे कुछ-कुछ समानता रखते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि निबन्ध से प्रबन्ध शब्द अधिक व्यापक है और प्रबन्ध की अपेक्षा लेख।

'रचना' शब्द अपने अन्दर वही अर्थ रखता है जो अँगरेज़ी शब्द कम्पोज़ीशन (Composition) का है। शब्दों का वाक्य मे वह गठन जिसका अर्थ स्पष्ट हो और सुगमता से समझ म आसके 'रचना' कहलाता है। इसी लिये यह शब्द ऊपर दिये गये सभी शब्दों के साथ प्रयुक्त हो सकता है जैसे —प्रबन्ध-रचना, कविता-रचना इत्यादि।

निबन्ध किसे कहते हैं ?

निबंध की परिभाषा—वर्तमान निबन्ध की परिभाषा प्राचीन परिभाषा से पूर्णतया भिन्न है। प्राचीन निबन्धों मे हमें लेखक की किसी विषय अथवा विषयांश पर अपूर्ण विचारावलि मिलती है। न उनमें सुगठन है और न किसी प्रकार का परिमार्जन है। एक प्रकार के छिछलेपन के साथ-साथ भावनाओं का बहाव मिलता है। परन्तु आज के लेखक के विचार सन्तुलित होकर चलते हैं। न उनमें व्यर्थ का बहाव ही है और न विषय का एकांगी विवेचन ही। आज का लेखक विषय पर पूर्ण गठन के साथ नयी-तुली विचारावलि से नपे तुले शब्दों में निबन्ध की रचना करता है। न वह विषय से बाहर निकल कर दृष्टांतों की ओर भागता फिरता है और न शब्दो के जाल जंजाल में व्यर्थ का चक्कर लगाने का ही उसके पास समय है। वह तो थोड़े शब्दो मे केवल अपनी बात भर कह जाना चाहता है, अपने सम्पूर्ण ज्ञान को एकत्रित करके। डाक्टर जान्सन (अंगरेजी साहित्य के प्रसिद्ध निबन्धकार) के शब्दों मे निबन्ध की परिभाषा इस प्रकार है —

"मानसिक विश्व का 'निबन्ध' वह थका हुआ बुद्धि-विलास है जिसमे न कोई क्रम है और न कोई नियम। यह विचारों की अधूरी और अव्यवस्थित रचना मात्र है।"

परन्तु आज के जगत में डाक्टर जान्सन की ऊपर दी गई परिभाषा केवल अधूरी ही नही सर्वथा निरर्थक सिद्ध हो चुकी है। आज की निबन्ध परिभाषा इसके पूर्णतया विपरीत है। निबन्ध उसी को कहते हैं जिसमे किसी भी विषय पर विचारों का परिमार्जित स्पष्टीकरण लेखक ने किया हो। निबन्धों मे प्रधानतया व्यक्तिगत विशेषता रहती है परन्तु बनावटी वतावरण उपस्थित करके नही, पूर्ण स्वाभाविकता के साथ, बस यही लेखक की शैली का गुण माना जायेगा। निबंध

में विचारों की शुष्कता और दुरूहता भी इतनी अधिक नहीं होनी चाहिए कि वह पाठको के हृदय को अपनी ओर खीच ही न सके। हरीनाथ जी टंडन एम० ए० निबन्ध के विषय में लिखते हैं —

"निबंध लिखना अभ्यास से ही आता है। निबंध लेखक के ज्ञान की कसौटी है। उथला या पांडित्य-प्रदर्शन के भाव से लिखा गया अथवा उलझे हुए भावों से बोझिल निबंध व्यर्थ होता है। निबंध शब्द का अर्थ है 'बँधा हुआ'। अत थोडे से, अत्यन्त चुने हुए शब्दो में किसी विषय पर अपने विचार प्रकट करने के प्रयत्न को ही निबंध कह सकते हैं। निबंध के विषयों की कोई सीमा नही है। आकाश-कुसुम से लेकर चींटी तक निबंध का विषय हो सकता है।

"निबंध के लिए यह आवश्यक है कि पूरे निबंध का रूप एक हो। प्रत्येक निबंध के आदि, मध्य और अन्त का विभाजन ठीक-ठीक होना चाहिए। निबंध का आरम्भ ऐसे सुन्दर ढंग से होना चाहिए कि उसे पढ़ते ही पढ़नेवालों की उत्सुकता बढ़े और वह आपसे आप उसे पूरा पढ़ डालने के मोह को संवरण न कर सके। इसके अतिरिक्त लेखक को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि पाठक ज्यों-ज्यों उसके निबंध को पढ़ता चला जाय, लेख के आरम्भ में ही उसे ऐसी सामग्री मिल जाय, जिससे उसकी यह धारणा हो जाय कि उसे इस लेख में मौलिक ढंग से लिखी हुई कुछ मनोरंजक और विचार-पूर्ण बातें पढ़ने को मिलेंगी। निबंध का मध्य निबन्ध का सबसे अधिक विस्तृत भाग होता है। आदि से इसका संबंध होना चाहिए और इसके सभी सिद्धान्त वाक्य एक-एक करके निश्चित परिणाम की ओर झुके होने चाहिए। निबंध के मध्य में ही लेखक पाठक को अपने तर्क समझाने का प्रयत्न करता है। निबंध के अंतिम अंग के संबंध में लेखक को यह ध्यान रखना चाहिए कि निबंध अनायास न समाप्त हो जाय। यदि ऐसा हुआ तो वह पाठक को रुचिकर न होगा और उसकी शैली को दूषित

प्रमाणित होगा। निबंध की समाप्ति ऐसी होनी चाहिए कि उसे समाप्त कर देने पर भी उसकी विचार-धारा के मूल भाव पाठक के मन में बार-बार आते रहे, और वह निबंध तो अत्यन्त ही सफल माना जायगा जिसका अन्त ऐसा हो कि पाठक का ध्यान एक बार फिर लेखक के तर्क-पूर्ण सगत भावो की ओर आकर्षित हो जाय और वह गुण और दोष दोनों के संबध मे एक निश्चित मत दे सके।

निबध के आदि, मध्य, अ त तीनो को पदो में शीर्षको के अनुसार विभाजित करना चाहिए। पद चाहे बड़े हो या छोटे सबका सबध एक दूसरे से होना चाहिए। पदों मे छोटे और बडे दोनों प्रकार का प्रयोग आवश्यकतानुसार होना चाहिए। जहाँ बात समझानी हो या विषय कठिन हो, वहाँ वाक्य का लम्बा हो जाना कोई दोष नहीं है। केवल छोटे-छोटे वाक्यों के प्रयोग से निबध मे अस्पष्टता आजाने की सम्भावना बनी रहती है। समय और स्थान के अनुसार दोनों प्रकार के वाक्यों का प्रयोग करना उचित होगा।"

निबन्ध की आवश्यकता—किसी भी विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिये यदि पाठक उस विषय के एक दो निबन्ध पढ़ लेता है तो उसे इच्छित ज्ञान प्राप्त हो जाता है। पाठक के विचार से निबन्ध की आवश्यकता केवल यही पर समाप्त हो जाती है। एक विषय पर एक पुस्तक भी लिखी जासकती है और एक निबन्ध भी। एक अनुभवी लेखक एक छोटे से निबन्ध में एक मोटी पुस्तक की सभी बातो को संक्षेप मे इस प्रकार लिख देता है कि योग्य पाठक उसे पढ़कर अपना सब मतलब हल कर सके, और उस विषय का उसको ज्ञान कम समय में पूर्ण होजाये। इस प्रकार निबन्ध एक लेखक और पाठक के बीच का वह माध्यम है जिसके द्वारा किसी विषय पर एक के विचार पूर्ण जानकारी के साथ दूसरा जानकार लाभ उठा सकता है। निबन्ध की यही आवश्यकता है और निबन्ध लेखन का यही आशय है। केवल

जानकारी के अतिरिक्त लेखक पाठक के हृदय में एक खोज करने और देखने भालने की जिज्ञासा भी उत्पन्न कर देता है। मानलो एक पाठक ने एक निबन्ध पढ़ा जो कि लेखक आगरे के ताजमहल पर लिखा है। यह लेख पाठक को बहुत पसंद आया और उसके हृदय में ताजमहल को जाकर देखने की जिज्ञासा उत्पन्न हो गई। इस प्रकार निबंध मानव के ज्ञान की वृद्धि में एक विशेष साधन भी है और सहायक भी।

निबंध से हम सीखते हैं कि किस प्रकार हम अपनी मानसिक शक्तियों को सीमित करके उनका विकास करें? एक व्यक्ति यदि चाहे कि वह सभी चीजों को अपनी ही आँखों से देख सके तो यह उसके लिए असम्भव है। निबन्धों के द्वारा व्यक्ति को दूसरे के अनुभवों से भी वही लाभ होता है जो वह अपने अनुभव से प्राप्त कर सकता है। उसका समय कम लगता है और थोड़े से ही समय में वह निबन्धों की सहायता से बहुत बड़ा ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

निबन्ध का क्षेत्र—निबन्ध के विषय पर विचार करते समय हमें यह पूर्ण रूप से समझ लेना चाहिए कि इसकी कोई सीमा नहीं निर्धारित की जा सकती। निबन्ध अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र है। यह हर विषय पर लिखा जा सकता है। कहानी हर विषय पर नहीं लिखी जा सकती, कविता हर विषय पर नहीं की जा सकती, उपन्यास हर विषय पर नहीं लिखा जा सकता परन्तु एक निबन्ध है कि उसके लिए किसी भी दिशा में कोई रुकावट नहीं। यह अपने नपे-तुले शब्दों में एक तार्किक तथा वास्तविक दृष्टिकोण से हर विषय पर लिखा जा सकता है। पृथ्वी से लगाकर आकाश तक जितनी भी वस्तु हैं, चाहे वह आँख से दिखाई देती हों या न देती हों, चाहे वह साक्षात् कुछ वस्तु हों या केवल मानव की विचार धारा मात्र ही, सभी पर निबन्ध लिखा जा सकता है। निबंध का क्षेत्र बहुत व्यापक है। यदि यह कह दिया जाय कि इसके क्षेत्र में और ईश्वर के क्षेत्र में कोई अन्तर नहीं तो कुछ

अनुचित न होगा। कोई भी छोटे से छोटा विषय निबंधकार को आकर्षित कर सकता है और उस छोटे से छोटे विषय पर सुन्दर से सुन्दर निबन्ध लिखा जा सकता है।

प्रारम्भिक निबंध—किसी भी निबन्ध के विद्यार्थी को पहिले चाहिए कि वह ऐसे विषयों पर निबन्ध लिखना प्रारम्भ करे कि जिन विषयों से उसका निकटतम सम्बन्ध हो। जिन विषयों का उसे आद्योपाँत ज्ञान हो और जिनका विश्लेषण वह बहुत सुगमता पूर्वक कर सके। यदि उस विषय पर लेखक का ज्ञान अपूर्ण है तो उसका निबन्ध भी कभी पूर्ण नहीं हो सकता और पाठक पर भी उसके कहने का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। निबन्ध के विद्यार्थी को चाहिए कि वह उन विषयों को छाँटे कि जिनका सम्बन्ध उसके नित्य के जीवन से रहता है। उन विषयों का उसके जीवन पर क्यों प्रभाव पड़ता है और किस प्रकार वह विषय उसके जीवन में घटित होकर एक हो गये हैं। जब कुछ ऐसे निबन्ध लेखनी से निकल जायें तब चाहिये कि वह कुछ गूढ़ विषयों को ले, और लिखने से पूर्व उन विषयों पर अन्य प्राचीन लेखकों के लिखे गये लेख अथवा निबन्धों को पढ़े। उन्हें पढ़ने के उपरान्त यह विचार करे कि उन लेखकों ने उन विषयों के साथ कितना न्याय और कितना अन्याय किया है? फिर कुछ विचारशील व्यक्ति के नाते न्याय और अन्याय को काट छाँट करके अपनी रचना लिखनी आरम्भ करे। जो लेख इस प्रकार लिखा जायेगा वह सर्वश्रेष्ट लेखों की कोटि में गिना जायेगा। योंही कलम लेकर किसी भी विषय पर कुछ घसीट डालना, लेख लिखना अथवा निबन्ध लिखना नहीं कहलाता, यह है केवल धोखा अपने लिये और अपने पाठकों के लिए।

निबन्ध का नामकरण—निबन्ध के विषय में यह समस्या उतनी जटिल नहीं जितनी नाटक, कविता, उपन्यास अथवा कहानी के विषय में होती है। कारण स्पष्ट ही है कि निबन्ध का पहिले विषय

चुना जाता है और फिर निबंध लिखा जाता है। सौ में निन्यानवें प्रतिशत यही होता है और कविता, कहानी इत्यादि में पहिले रचना हो जाती है और बाद में नाम की खोज करनी होती है। इसलिये नामकरण का प्रश्न निबन्ध के क्षेत्र में बहुत सुगम है, अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। नाम में निबन्ध का पूर्ण अर्थ निहित रहता है।

निबन्ध का ढाँचा—निबन्ध का रूप एक वृक्ष के समान यदि मान लिया जाए तो कुछ अनुचित न होगा। जिस प्रकार वृक्ष के सधारणतया सभी अंग प्रत्यंग आवश्यक होते हैं उसी प्रकार निबन्ध की दशा है। यदि लेखक ने किसी विषय पर निबन्ध लिखते समय किसी प्रधान अंग को छोड़ दिया तो निबन्ध अधूरा रह जायगा। जिस प्रकार पेड़ के जड़ होती है, तना होता है टहने होते हैं, शाखायें होती हैं और फिर पत्ते तथा फल-फूल इत्यादि होते हैं उसी प्रकार निबन्ध के भी भाग और उपभाग होते हैं। उनमें से किसी के साथ भी यदि लेखक ने न्याय नहीं किया तो लेख की उपयोगिता और उसका सौंदर्य दोनों ही जाते रहेंगे। इसलिए निबन्ध लेखक को चाहिए कि वह निबन्ध-रचना करने से पूर्व विषय का पूर्ण रूप से विश्लेषण करले, और फिर क्रम से विषय के अंग प्रत्यंगों पर विचार करे। व्यर्थ के लिए किसी छोटे अंग पर अपनी अधिक जानकारी होने के कारण तूल न दे और इसी प्रकार जानकारी के अभाव में किसी प्रधान अंग को यों ही सटकता हुआ न छोड़ दे। लेखक को चाहिये कि वह विषय के अंग प्रत्यंगों की विशेषताओं को पूरी तरह समझे और फिर उस पर विचार पूर्वक आवश्यकतानुसार प्रकाश डाले।

निबन्ध लिखने का ज्ञान—निबन्ध लिखने का ज्ञान प्राप्त करने के लेखक के पास कई साधन होते हैं। सबसे पहिला साधन जो उसके पास हर समय रहता है वह है उसकी पुस्तकें। पुस्तकों के द्वारा लेखक प्राचीन काल तक का ज्ञान हो जाता है। प्राचीन का ज्ञान

प्राप्त करने के लिये पुस्तकों से अच्छा लेखक के पास और कोई साधन नहीं होता।

लेखक के पास दूसरा साधन ज्ञान प्राप्ति का है देश देशातरों का भ्रमण, प्राचीन इमारतों को देखना, प्राचीन शहरों की सैर करना, दूर के नगरों मे जाना, वहा की भाषा रहन-सहन और व्यवहार का पता चलाना और उनमें घुल मिल कर उनका अनुभव प्राप्त करना। यह दूसरा साधन पहिले से छोटा अवश्य है परन्तु यह अधिक वास्तविक है और ज्ञान-वृद्धि के लिए प्रत्यक्ष वस्तु लाकर लेखक के सामने प्रस्तुत करता है। इसके द्वारा लेखक को निजी अनुभव प्राप्त होता है, जो सर्वदा सुनी और पढ़ी बातों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण माना गया है और माना जायेगा।

तीसरा साधन है लेखक की पैनी दृष्टि और उसकी कल्पना, जिस के आधार पर वह बहुत सी वस्तुओं को देखकर अपने अनुभवो द्वारा कुछ ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लेता है जो साधारण जगत के व्यक्ति नहीं कर सकते। सत्सग भी ज्ञान प्राप्ति का एक साधन है परन्तु यह ऊपर दिये गए दूसरे साधन के अन्तर्गत आजाता है क्योंकि भ्रमण में व्यक्ति सत्सग भी करेगा और कुसग भी और उसे दोनो ही प्रकार का अनुभव भी होगा।

निबन्ध के प्रमुख अंग—निबन्ध के प्रधानतया तीन प्रमुख अग माने गये है, या यो भी कह सकते हैं कि एक अच्छे निबन्ध का यदि विच्छेदन किया जाये तो उसे तीन प्रधान अ गों मे बाटा जा सकता है। (१) प्रस्तावना (२) प्रसार और (३) परिणाम।

प्रस्तावना (Introduction) प्रस्तावना में एक पटु लेखक लेख की ऐसी भूमिका प्रस्तुत करता है कि पाठक उसकी ओर आकर्षित हो और लेख के प्रधान तत्वों की सुनहरी झाकी प्राप्त कर सके। प्रस्तावना मात्र को ही पढ कर लेखक की योग्यता का अनुमान किया

जा सकता है। प्रस्तावना को सासारिक शब्दावलि मे लेख अथवा निबन्ध की बानगी कहना चाहिये। इस बानगी से ही लेख का रहस्य खुल जाता है। आज के काल में सिनेमा का बहुत बोलबाला है। इसलिये सिनेमा की शब्दावलि मे ट्रेलर का जो महत्व है बस समझ लीजिये निबन्ध मे प्रस्तावना का उससे किसी दशा में कम महत्त्व नहीं है। प्रस्तावना बहुत सतुलित शब्दावलि मे, सुबोध वाक्यों मे, एक साधारण प्रवाह के साथ बहती हुई प्रसाद गुण वाली होनी चाहिये। उसमे आकर्षण होना चाहिये और साथ २ वह अधिक लम्बी भी नही होनी चाहिए। वह इतनी लम्बी न हो कि पाठक उस मे ऊब कर निबन्ध को ही पढ़ने का साहस न कर सके। इसमें आकर्षण और सुरूचि की विशेष आवश्यकता है।

प्रसार—यह लेख का प्रधान अ ग है। इसी के आधार पर प्रस्तावना और परिणाम अपना अस्तित्व रखते है। यदि यह न हो तो लेख ही समाप्त हो जाये। जिस प्रकार किसी मनुष्य के सिर और पैरो को सभालने के लिये उसके धड़ का होना अनिवार्य है उसी प्रकार प्रस्तावना और परिणाम को मिलाने के लिये बीच के उस प्रसार की आवश्यकता है। निबन्ध की सफलता और असफलता प्रधानतया इसी पर अवलम्बित है। विषय का विश्लेषण निबन्ध के इसी भाग के अन्तर्गत होता है। लेखक की योग्यता और प्रतिभा का प्रतीक भी यही अ ग है, दूसरे अ गों में तो केवल झाकी मात्र ही मिल पाती है पूर्ण पता नही चलता। निबन्ध के इस भाग पर लेखनी उठाने से पूर्व लेखक को चाहिये कि पहिले वह विषय की पूरी जानकारी प्राप्त कर ले और विषय का पूर्ण विभाजन करके सकेतो को किसी स्थान पर अकित करले। यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो उसका लेख इधर-उधर अस्त-व्यस्त धाराओ मे बहने लगेगा और फिर इन सभी धाराओं का परिमार्जन करना उसकी शक्तिसीमा से दूर की बात बन

जायेगा। उससे फिर लेख के सभी तत्वों को एकत्रित करने में कठिनाई होगी और लेख बेडौल होकर भद्दा दिखने लगेगा। इसलिए लेखक को चाहिए कि वह पहिले लेख की रूप-रेखा निश्चित करे। इस रूप-रेखा को खूब विचार कर निश्चित करना चाहिये और निश्चित करने के पश्चात् भी संकेतों पर एक बार फिर दृष्टि डाल लेनी चाहिये। इस बीच मे यदि कोई फिर नई बात याद आजाये तो उसे भी लिख लेना चाहिये। रूप-रेखा के सभी संकेत क्रमबद्ध होने चाहियें—उनका सिलसिला टूट जाने पर निबन्ध का सौंदर्य नष्ट होने की संभावना रहती है। प्रधान विचार और गौण विचार एक नियम के साथ आपस में सम्बन्धित रहने चाहियें। हर विचार को पृथक् पृथक् स्थान देना चाहिये न कि सब को एक ही अनुच्छेद में ठूस कर भर दिया जाये।

प्रधान विचारों का स्पष्टीकरण भी अधिक बलशाली होना आवश्यक है। उनके सिद्ध करने के लिए प्राचीन लेखकों के उदाहरण देना और लोकोक्तियों तथा मुहावरों की सहायता लेना उपयुक्त रहता है। जिस मत का भी निबन्धकार प्रतिपादन करना चाहता है उसे अच्छे प्रकार विचार कर करना चाहिये। बिना विचारे लिखने से लेखक अपनी प्रतिष्ठा खो बैठता है। निबन्ध मे उतार-चढाव आना आवश्यक है परन्तु वह उतार-चढाव बिलकुल ऊबड़-खाबड़ भूमि की भाँति न बन जाना चाहिये कि जिस पर चल कर पाठक मार्ग ही भूल जाये और चलते चलते अपनी टाँगें भी तुड़ा बैठे और फिर भी किसी निश्चित स्थान पर न पहुँच सके। इस संकेत के पश्चात् राही को उसका लक्षित स्थान दृष्टिगत होना चाहिये।

परिणाम (Conclusion)—यह निबन्ध का अंतिम भाग है और इसका महत्व निबन्ध के प्रारम्भिक भाग से किसी प्रकार कम नहीं होता। जिस प्रकार प्रस्तावना को पढ कर लेखक के हृदय में

निबन्ध पढ़ने की जिज्ञासा बलवती होती है उसी प्रकार इस भाग को पढ़कर लेखक को यह अनुभव होना चाहिये कि उस विषय का जितना भी ज्ञान है वह पाठक प्राप्त कर चुका है और अब उस विषय पर कोई भी बात जाननी उसके लिये शेष नहीं रही। यदि यह भाग पढ़ने के उपरान्त भी पाठक के मन को शांति न मिल सकी और उसकी जिज्ञासा बराबर बनी रही और उसने यह अनुभव किया कि अभी भी उसका ज्ञान उस विषय पर अपूर्ण ही है तो यह निबन्ध की कमजोरी मानी जायेगी। इस भाग मे लेखक अपने समस्त लेख का निचोड़ लाकर रखता है। यदि यह कह दिया जाय कि यह उसका संक्षिप्त निबन्ध ही होता है तो भी बात ठीक ही कही जाती है और यही परिणाम लिखने का सब से सुगम ढग भी है। कुछ लेखक निबन्ध के अंत मे उपदेशात्मक प्रवृत्ति ग्रहण कर लेते हैं। यह प्रवृत्ति भी एक ठोस लेखक के लिये अधिक उपयुक्त नहीं मालूम पडती और इस प्रकार के लेखों को पढ़कर समझदार पाठकों मे भी एक चिढन सी पैदा हो जाती है। धार्मिक निबन्धों में महात्माओं द्वारा लिखे जाने पर यह प्रवृत्ति कभी कभी रुचिकर भी होती है और भक्त लोग उन अंशों को पढ़कर बडे प्रेम से गर्दन हिला हिला कर प्रशंसा करते हैं। बहुत से लेखक परिणाम का भार पाठकों पर भी छोड़ देते हैं। वह केवल विषय का प्रतिपादन मात्र करना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। यह ढग भी एक सुन्दर ढग है जिसमे पाठकों को स्वयं विचार करने के लिये स्वतन्त्रता मिल जाती है और इस प्रकार उनके मस्तिष्क का भी कुछ व्यायाम हो जाता है।

निबन्धों के प्रकार

ऊपर हमने यह विचार किया कि निबन्ध की क्या परिभाषा है? निबन्ध की क्या आवश्यकता है? निबन्ध का कौनसा क्षेत्र है? निबन्ध

लिखना किस प्रकार प्रारम्भ करना चाहिये ? निबन्ध का नाम किस प्रकार रखा जाना चाहिये ? निबन्ध का ढाँचा किस प्रकार तैयार करना चाहिये ? निबन्ध की सामग्री जुटाने के लिये लेखक को किन-किन साधनों को प्रयोग मे लाना चाहिये ? और निबन्ध के क्या क्या प्रमुख अग होते हैं ? अब हमे विचार करना है कि निबध कितने प्रकार के लिखे जा सकते हैं या दूसरे रूप में यह समझिये कि आज तक लिखे गये निबधों को यदि हम विभाजित करे तो कितने प्रकार बन सकते हैं, अथवा उनके कितने भेद बनाये जा सकते हैं ? निबध को हम पीछे कह चुके हैं कि यह निस्सीम है । साहित्य का यह अ ग अपना विस्तार किसी भी दिशा में स्वच्छदता से कर सकता है । इस लिये ऐसी निस्सीम वस्तु को सीमा में बाधना कोई सरल कार्य नहीं परन्तु फिर भी विद्वानों ने उसके प्रकार बनाने का प्रयत्न किया है और बहुत हद तक वह उसमें सफल भी हुए हैं । यह प्रकार निम्नलिखित हैं —

(१) वर्णनात्मक निबन्ध ।

(२) कथात्मक निबन्ध ।

(३) विचारात्मक निबन्ध ।

वर्णनात्मक निबन्ध—वर्णनात्मक निबन्ध वह कहलाते हैं जिन में किसी वस्तु विशेष, प्रकृति विशेष, नदी विशेष, पशु विशेष इत्यादि का सजीव वर्णन किया जाये । इन निबन्धों में वह विचार अथवा भाव लिखे जाते है जिन की प्राप्ति लेखक को अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होती है । रेल, जहाज तार, मोटर, बम, तोप, बन्दूक, नगर, ग्राम, किला, मन्दिर, मस्जिद, कुतुबमीनार, ताजमहल, मकबरे अर्थात् मनुष्य की बनाई तथा प्रकृति की बनाई सभी वस्तुओं का वर्णन इस प्रकार के निबन्धों के अ तर्गत आता है । इस प्रकार के निबन्धों मे वस्तुओं तथा घटनाओं का वर्णन एक रोचक ढग से किया जाता है ।

नोट—निबन्ध लिखने का ढंग हम ऊपर दे चुके हैं। विद्यार्थियों को चाहिये कि इस प्रकार के निबन्धों को लिखने में भी ऊपर दिये गये साधनों को प्रयोग में लायें।

कथात्मक निबन्ध—कथात्मक निबन्ध वह कहलाते हैं जिनमें प्राचीन अथवा अर्वाचीन, सत्य अथवा काल्पनिक कथाओं का वर्णन किया गया हो। इनमें ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, सम्मेलन, जीवनियाँ, यात्रायें, इत्यादि कथाओं के वर्णन होते हैं। कथात्मक और वर्णनात्मक निबन्ध में एक सबसे बड़ा अन्तर यह है कि वर्णनात्मक निबन्ध में अधिकतर सत्य ही की मात्रा अधिक रहती है। जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही लिखा जायेगा। उदाहरण के लिये यदि एक कुत्ते का वर्णन किया जा रहा है तो उसके विषय में यह नहीं लिखा जा सकता है कि उस कुत्ते के पाँच टाँगें थीं, तीन कान थे और दो मुँह थे। परन्तु जब कथात्मक लेख लिखा जा रहा है, तो उसमें लिखा जा सकता है कि वह देवताओं का कुत्ता था और जब वह दौड़ता था तो हवा में उड़ने लगता था और जब वह अपने शिकार पर झपटता था तो ऐसा प्रतीत होता था कि वह अपने शिकार को चार मुँह से चीर-फाड़ रहा है, इत्यादि इत्यादि। कथात्मक निबन्ध में कार्य और कारण का सम्बन्ध मिला कर एक घटना के बाद दूसरी घटना का क्रम से वर्णन करना चाहिये। कथात्मक निबन्ध की कथा को लिखते समय कथा के हर भाग को स्पष्ट करके लिखना चाहिये और कथा का तारतम्य कहीं पर भी टूटना नहीं चाहिये। आगे बढ़ने पर पिछली कथा को बार बार संक्षिप्त रूप में सामने रखकर पाठक के मस्तिष्क में उसे ताजा करते रहना चाहिये जिससे पाठक को आने वाली कथा समझने में कठिनाई न हो।

विचारात्मक निबन्धः—विचारात्मक निबन्ध वह कहलाते हैं जिनमें किसी आकार विहीन समस्या पर विचार किया जाये। उदा-

हरण के लिये जैसे क्रोध, लोभ, मोह, चिंता, दया, अहिंसा, जागृति, दीनता, दुर्बलता, बल, सौंदर्य, कुरूपता, जिज्ञासा, अहंकार, नारी-शिक्षा, ममता, प्रलोभन, बेरोज़गारी, पूँजीवाद, साम्यवाद, समाजवाद, साम्राज्वाद, कविता, कला, निबन्ध, लेखनकला, चित्रकारी, नाटक, नर्तन, परोपकार, देशप्रेम, देश-द्रोहिता, व्यापार, आलोचनाएं इत्यादि विषय विचारात्मक निबन्धों के ही क्षेत्र मे आते हैं। इन विषयों का सम्बन्ध बुद्धि से है। इन निबन्धों को लिखते समय विषय का बहुत ही वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया जाता है और विवेचन द्वारा प्राकृतिक नियमों को खोज कर कुछ सिद्धान्त निश्चित करने होते हैं। फिर उन्हीं सिद्धांतो के आधार पर लेखक अपने निबन्ध का मार्ग निर्धारित करता है। इस प्रकार के निबन्ध लिखने मे उसे कोई भी किसी प्रकार का स्थूल आश्रय नही मिलता, केवल बुद्धि के बल पर ही उसे अपना कार्य करना होता है। लेख लिखने से पूर्व लेखक को चाहिये कि वह विषय के मूल-तत्वों की खोज कर ले, यदि वह ऐसा करने मे असमर्थ रहा तो वह कुछ भी नहीं लिख पायेगा और विषय ज्यो का त्यों रह जायेगा। वर्णनात्मक और कथात्मक निबन्धों में लेखक कुछ न कुछ बिना जानकारी के भी लिख सकता है परन्तु विचारात्मक निबन्धो मे यह असम्भव है।

कुछ निबन्ध-कला के विद्वान् निबन्धों का एक चौथा प्रकार भी मानते हैं और वह है तार्किक-प्रकार। परतु यह विचारात्मक के ही अतर्गत आ जाता है क्योंकि तर्क विचार का एक अंग है और बिना विचार के तर्क हो ही नहीं सकता। इस लिये इस प्रकार के लेखो को जो तर्क-प्रधान हों उन्हे भी विचारात्मक निबन्धो की ही कोटि में गिनना चाहिये।

निबन्ध लेखन की शैलियाँ

शैली क्या है—जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं निबन्ध-रचना लेखक इस लिये करता है कि वह अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचा सके। इन विचारों को दूसरों के पास पहुँचाने के लिये लेखक को भाषा का आश्रय लेना होता है। बिना भाषा के निबन्ध नहीं लिखा जा सकता और जब निबन्ध ही नहीं लिखा जा सकता—तो एक के विचार दूसरे के पास तक नहीं पहुंच सकते। इससे यह निश्चय हुआ कि निबन्ध के लिये पहिली आवश्यक वस्तु हुई भाषा।

निबन्ध के लिखने के लिये दूसरी आवश्यक वस्तु है वह विषय जिस पर कि उसे प्रकाश डालना है। इस विषय के बिना भाषा भी व्यर्थ ही सिद्ध होती है क्यों कि जब लेखक के पास कुछ लिखने के लिए विषय ही नहीं है तो फिर बेचारी अकेली भाषा ही भला क्या कर सकेगी ?

इस प्रकार लेखक भाषा और विषय दोनों के समन्वय से निबध तैयार करता है और अपने विचारों को पाठकों तक पहुंचाता है।

अब इस निबन्ध के बनाने में तीसरी वस्तु आती है लेखक की विषय छांटने की रुचि और भाषा लिखने का ढंग। इन्हीं दो बातों के आधार पर लेख अथवा निबन्ध की शैली का निर्माण होता है। या यों भी कह सकते हैं कि लेख अथवा निबन्ध की शैली के विचार से निबन्ध के विषय अथवा उसकी भाषा के आधार पर ही बाटा जा सकता है।

साहित्यिकों ने शैली का गूढ़ अर्थ भी लिया है। ऊपर जो हमने लिखा है वह हिन्दी के साधारण विद्यार्थियों के शैली शब्द का परिचय और उसका साधारण अर्थ समझाने के लिये लिखा है। शैली का अर्थ

१. प्रणाली अथवा ढंग (जिस प्रकार कोई रचना लिखी गई है।)

साहित्यिक शैली विचारों के उस स्पष्टीकरण को कहते हैं जिस अभि-व्यक्ति मे विषय के अन्दर रोचकता, रमणीयता और आकर्षण पैदा हो जाये। रीति, ध्वनि, अलंकार, शब्द-शक्ति इत्यादि यह सब शैली के ही सहायक अंग है और इन्हीं के बल पर शैली अपना निखरा हुआ रूप पाठकों के सामने रख पाती है।

शैली के सहायक अंग

१ अलकार—शैली के सौंदर्य को बढाने मे बहुत सी बातें अपना महत्व रखती हैं। अलकार भी उनमे से एक है। यों यदि कोई लेखक अपने लेख मे केवल अलकारों की ही भरमार करके यह विचार करने लगे कि बस वह एक सफल लेखक हो गया और उसने अपनी एक सुन्दर शैली बना ली तो यह उसका भ्रम मात्र ही होगा। किसी भी वस्तु का सतुलन के साथ आना ही सर्वदा सौंदर्य को बढ़ाता है और अधिक हो जाने पर सौंदर्य नष्ट होने लगता है। इसलिये एक सफल शैलीकार सर्वदा उचित अलकारों का प्रयोग अपने निबन्ध की भाषा मे करता है और इस प्रकार उसकी शैली मँज भी जाती है और रोचक भी बन जाती है। "जिस प्रकार आभूषण शरीर की शोभा बढा देते हैं, उसी प्रकार अलंकार भी भाषा के सौंदर्य की वृद्धि करते, उसके उत्कर्ष को बढाते और रस, भाव और आनन्द को उत्तेजित करते हैं।" (बाबू श्याम-सुन्दर दास

२ ध्वनि चमत्कार—एक अच्छा लेखक हमेशा जिन शब्दों का प्रयोग करता है उन्हे वह पहिले देखता है कि उनके लिखने पर कहीं कोई ध्वनि दोष उत्पन्न होकर वह भाषा कटु तो नहीं लगने लगेगी। संगीत का मानव के जीवन में एक विशेष स्थान है। सगीत विहीन जीवन नीरस और शुष्क माना जाता है। न उसमें किसी प्रकार की लोच ही रहती है और न सहृदयता ही। इसका ध्वनि से विशेष

सम्बन्ध है। इसलिये एक अच्छे लेख में अच्छी ध्वनि वाले शब्द प्रयुक्त होकर उस लेख की शैली को चार चाँद लगा देते हैं और उस लेख का सौंदर्य बढ़ जाता है।

३. अर्थ चमत्कार—बहुत से लेखक अपनी भाषा में ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं कि जिनके कई कई अर्थ निकलते हैं। एक एक शब्द पर वह श्लेष रखते हैं और हर शब्द का अर्थ इतना महत्त्व-पूर्ण बना देते हैं कि विद्वान् पाठक उस लेख को पढ़कर नाचने लगता है, उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है और उसका मन लेखक के प्रति श्रद्धा से झुक जाता है। इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करना साधारण लेखक के बूते की बात नहीं होती। यह वही कर सकता है जिसे भाषा पर पूर्ण अधिकार हो और शब्दों के अनेक अर्थों को इस प्रकार प्रयोग कर सकता हो जिस प्रकार साधारण लेखक साधारण शब्दों का प्रयोग किया करते हैं। महाकवि केशवदास और कविवर बिहारी अपने इसी गुण के कारण आज हिन्दी की प्रसिद्ध विभूतियों में ऊँचा स्थान पाये हुए हैं।

४. वाक्य सौंदर्य—लेख की वाक्य योजना सुन्दर और गठी हुई होनी चाहिये। उसका हर वाक्य ऐसा होना चाहिये कि पाठक के नेत्रों के सम्मुख अपने कहे गये आशय का चित्र खड़ा करता चला जावे। एक वाक्य में अनेकों विचारों का प्रभाव नहीं पैदा करना चाहिये बल्कि एक ही विचार पर प्रकाश डालना चाहिये। यदि एक-एक वाक्य में कई-कई विचारों को ठूंसने का प्रयास किया जायेगा तो माधुर्य तो नष्ट हो ही जायेगा साथ ही अर्थ का भी अनर्थ हो जायेगा और पाठक यह समझने में भी असमर्थ रहेगा कि वास्तव में लेखक का वास्तविक अभिप्राय क्या था? वाक्य छोटे और स्पष्ट होने से निबन्ध का सौंदर्य सदा बढ़ेगा।

शैली के गुण और दोष

गुण—शैली के सौंदर्य को बढाने वाले जितने भी साधन ऊपर दिये गये है वह सभी शैली के गुणो से सम्बन्ध रखते है, परन्तु उन सबका सीधा सम्बन्ध शैली के ऊपरी भाग से है भीतरी भाग से नहीं। अब हम शैली की आत्मा को देखते हैं और उस विचार से भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर शैली के तीन प्रधान गुण माने जाते हैं। वह तीनो निम्नलिखित है —

१ ओज—जो रचना तेजस्वी हो, जिसे सुनकर अथवा पढ़ कर भुजदड फडक उठे और शरीर मे कँपकपी आने लगे वह ओज प्रधान रचना कहलाती है। इस शैली में उग्रता की प्रधानता रहती है और इससे वीर, वीभत्सा और रौद्र रस का सचार होता है।

२ प्रसाद—यह शैली का दूसरा गुण है। इस गुण मे सरलता प्रधान रूप से पाई जाती है और सभी रसों की रचनाओ मे इस शैली का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लक्षण हैं सरलता, सरसता और सुगमता।

३ माधुर्य—यह शैली का तीसरा गुण है। इस प्रकार की शैली से श्रृंगार, शात और करुण रस की रचनायें लिखी जाती हैं। यह माधुर्य प्रधान शैली होती है और कटुता का आभास भी इसमे नहीं मिलता। यह वह शैली है जिसे पढकर पाठक आनद से खिल उठता है।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी कुछ-कुछ इसी प्रकार शैली के गुणो का विभाजन किया है। उनका विभाजन निम्नलिखित है —

१. सरलता—जब लेख को व्यापक बनाने के लिये लेखक सरल भाषा, सरल शब्द और सरल विचारो का प्रयोग करता है तो वह इस प्रथम गुण से युक्त शैली में लेख लिखता है। वह न पाठक को कठिन शब्दो के जाल में फँसाने का प्रयत्न करता है और

न वाक्यों को ही ऐसा घुमाफिरा कर जाल बना देता है कि पाठक उनमें उलझकर यह तो कह उठे कि लेखक कोई पंडित है परन्तु उसके हाथ पल्ले कुछ न पड़ सके।

२. स्वच्छता—इस शैली के आधार पर लेखक गूढ़ से गूढ़ अपनी विचारावलियों को इतनी स्पष्टता से खोल कर पाठक के सामने रखता है कि वह नित्य की जीवन में आने वाली साधारण घटनाओं की भाँति उन्हें समझ लेता है और उसे समझने मे कोई कठिनाई भी नहीं होती।

३. स्पष्टता—शैली का यह वह तीसरा गुण है जिससे आश्चर्य से लेखक पाठक के हृदय में घर कर लेता है, अपनी बात को उसकी बात बता कर उसके हृदय मे उतारता है। स्वच्छता के साथ स्पष्टता मिला. कर लेखक पाठक के बिलकुल निकट पहुँच जाता है।

४ प्रभावोत्पादन—यह गुण शैली मे उस समय पैदा होता है जब किसी लेखक की रचना इतनी महत्वपूर्ण बन सके कि पाठक उसे अपने जीवन-पथ के लिये प्रभावित होकर मार्ग द्रष्टा के रूप मे अंगीकार कर सके।

दोष—शैली के सौंदर्य को कम करने वाले जितने भी साधन होते है वह दोष कहलाते हैं। साहित्य के विद्वानो ने निम्नलिखित दोष छांटे हैं —

(१) कठिन भाषा और कठिन शब्दों का प्रयोग करना।

(२) निरर्थक लम्बे-लम्बे वाक्य लिखकर पांडित्य छांटना।

(३) वाक्यों या शब्दों से उचित अर्थों का स्पष्ट न होना।

(४) कई कई बार एक शब्द का प्रयोग करना।

(५) ग्रामीण शब्दों का प्रयोग करना।

(६) व्याकरण सम्बन्धी गलतियों का होना।

(७) वाक्यों का आपसी सम्बन्ध ठीक न जुड़ना।

(८) अनुच्छेद में तो कई-कई भावो का आ जाना और किसी में एक भी भाव का स्पष्ट न होना।

(६) कठोर शब्दों का बार-बार प्रयोग करना।

(१०) स्थानोपयुक्त भाषा का प्रयोग न करना।

(११) लेख का तारतम्य ठीक न बाँधना।

(१२) विचारो का ठीक प्रकार से सम्बन्ध स्थापित न करना।

शैलियों के प्रकार

जैसा कि हम ऊपर 'शैली क्या है' शीर्षक के अतर्गत कह आये हैं शैली का विभाजन दो प्रकार से किया जाता है, एक विषय या विचार प्रधान शैलियाँ और दूसरी भाषा प्रधान शैलिया। इसका एक तीसरा विभाजन भी यहा कर देना उचित होगा और वह है व्यक्ति प्रधान शैलियाँ। कुछ शैलियाँ ऐसी मिलती हैं कि जिनमे व्यक्ति विशेष की छाप दिखलाई पडती है। इस प्रकार की रचनायें कोई व्यक्ति विशेष ही लिख सकता है। जहा भाषा के एक दो वाक्य पढे और पता चला कि यह पक्तियाँ तो हो न हो आचार्य रामचद्र शुक्ल जी की लेखनी द्वारा लिखी हुई मालूम पडती हैं। यह विशेषता बहुत कम लेखकों मे पाई जाती है और बहुत कम लेखक ही इस प्रकार अपनी शैली पर अपनी छाप डाल सकते हैं। अब पहिले हम भाषा प्रधान शैली को ही लेते हैं।

भाषा प्रधान शैलियाँ—भाषा-प्रधान शैली वह कहलाती है कि जिसका अन्य शैलियों से पार्थक्य केवल उसकी भाषा के स्वरूप के ही कारण हुआ हो। भाषा का ज्ञान हर व्यक्ति का पृथक्-पृथक् होता है और हर लेखक का भाषा प्रयोग करने का ढग भी दूसरे से भिन्न ही होता

है। केवल इसी तत्व के आधार पर यह भेद स्थापित किया गया ०। भाषा-प्रधान शैली को भी पंडितों ने कई उपभेदों में विभाजित किया है। वह सब निम्न प्रकार हैं —

१ सरल-भाषा शैली—थोड़े में बहुत कुछ कह जाने वाली इस शैली में कठिन शब्दों का प्रयोग न करके सरल शब्दों का प्रयोग किया जाता है। पांडित्य प्रदर्शन बिल्कुल नहीं होता और स्पष्ट भावों को स्वच्छता के साथ लिखा जाता है। घुमाव-फिराव के लिये इस शैली में कोई स्थान नहीं और ना ही किसी साधारण सी बात को बढ़ा-चढ़ा कर शब्द जाल मे फाँस कर इतना महत्व पूर्ण ही बना दिया जाता है कि पाठक उमे चमत्कार समझने लगे। छोटे-छोटे शब्दो से छोटे २ वाक्यों का निर्माण किया जाता है और छोटे छोटे वाक्यों के छोटे छोटे अनुच्छेद बनाए जाते हैं। एक एक भाव को एक-एक अनुच्छेद में इस प्रकार पिरोया जाता है कि जिस प्रकार माली किसी धागे में फूलों को पिरो कर माला तैयार करता है।

गुम्फित-शैली—इस शैली मे लम्बे-लम्बे और उलझे हुए वाक्यों का प्रयोग होता है। साधारण बात को भी घुमा-फिरा कर शब्द जाल में ऐमा बना दिया जाता है कि पाठक पर लेखक के पांडित्य की छाप लगे और फिर लगे। इस शैली का प्रयोग साधारण विद्वान् नहीं कर सकता। ऐसे लेखक का भाषा पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए और यदि ऐसा न हुआ तो उसका लेख केवल हास्य की सामग्री मात्र ही रह जाएगा।

३. मुहावरे-प्रधान शैली—इस प्रकार की शैली में निबन्धों की भाषा सरल होती है, परन्तु उसमें स्थान स्थान पर मुहावरों, उदाहरणों और सूक्तियों का प्रयोग किया जाता है। पाठक को इस शैली के निबन्ध समझने में अधिक कठिनाई नहीं होती। साधारण सी बात मुहावरों और सूक्तियों का आश्रय पाकर चमत्कृत हो उठती

है। हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द जी की शैली यही थी, इसी लिये उनकी रचनाओ को पाठक बड़े चाव से पढ़ते है। इससे लेखक को केवल इतना ही ध्यान रखना आवश्यक है कि वह मुहावरों इत्यादि का ठीक ठीक उपयोग करे और उनकी इतनी भरमार न कर डाले कि उनकी छाया मे समस्त निबन्ध और विषय ही छुप जाये।

४. अलकार-प्रधान शैली—यह उस प्रकार की शैली होती है जिस प्रकार की भाषा मे केवल अलंकारों की ही प्रधानता रहती है। इसके तीन भेद भी किये जा सकते हैं एक शब्दालकार-प्रधान दूसरी अर्थालकार-प्रधान और तीसरी वह कि जिसमे दोनों प्रकार के अलकारों का प्रयोग किया गया हो। इस विषय पर हम ऊपर शैली के सहायक अ ग शीर्षक के अ तर्गत प्रकाश डाल चुके हैं इसलिए यहाँ पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं।

५ उक्ति-प्रधान शैली—यह शैली ऊपर दी गई सभी शैलियों से गूढ होती है इसी लिये इसे कुछ विद्वान् केवल गूढ शैली के नाम से भी पुकारते हैं। इस प्रकार की शैली में लेखक शब्दो की लक्षणा तथा व्यजना शक्ति का प्रयोग करता है। जिस बात को भी वह कहना चाहता है सीधा न कहकर किसी पर ढालते हुए ही कहता है।

ऊपर शैली के जिन प्रधान प्रकारो पर विचार किया है वह केवल भाषा के ही आधार पर हैं। शैली के इस रूप-विभाजन मे केवल भाषा सम्बन्धी विशेषताओं पर ही आश्रित होना पड़ा है। अब हम पाठको के सम्मुख विषय अथवा विचार सम्बन्धी आधार पर शैली का विभाजन करेगे। शैली के अन्य प्रकार निम्न लिखित हैं —

१. विचार-प्रधान शैलियाँ—इस प्रकार की शैली मे भाषा का गौण स्थान होता है और विचार तथा भावों का प्रधान। विचार-प्रधान शैली मे या तो व्यक्तिगत विचार होते है या उस विषय से

सम्बन्ध रखने वाले विचार कि जिस पर निबन्ध लिखा जा रहा है। इसीलिये इन दोनों प्रकार की शैलियो के नाम भी व्यक्ति-प्रधान और विषय-प्रधान शैलिया रखा गया।

२ व्यक्ति-प्रधान शैली—व्यक्ति प्रधान शैली वह है जिसमे किसी व्यक्ति विशेष के भावों का, उसकी क्रियाओं का और उसकी मनोवृत्तियों का जीता-जागता-चित्रण पाठक को मिल सके। इस प्रकार के लेखों मे जीवन की वह छाप मिलती है कि पाठक के सामने उसका चित्र आकर खड़ा हो जाता है।

इस शैली मे लेखक अपनी मनोवृत्तियो को प्रथम पुरुष के रूप मे पाठकों के सामने रखता है। इस शैली का यह रूप हमे कहानी, उपन्यास, नाटक इत्यादि मे देखने को मिलता है।

३ विषय-प्रधान शैली—विषय-प्रधान शैली मे व्यक्ति की विशेषता नहीं रहती। जब लेखक अपने व्यक्ति से ऊपर उठकर विषय में इतना तल्लीन हो जाता है कि उसे अपनी सुधि ही नहीं रहती तो उस लेख मे से व्यक्ति-प्रधानता समाप्त हो जाती है और विषय-प्रधानता आ जाती है। लेखक उस समय अपने को विषय मे खो बैठता है और उसकी हर विचार शक्ति केवल विषय मे ही तल्लीन हो जाती है। विज्ञान और आलोचना सम्बन्धी विषयों मे हमें यह शैली प्राय देखने को मिलती है। इस शैली मे व्यक्ति छुपा रहता है और केवल विषय की प्रधानता रहती है।

४ आलोचनात्मक-शैली—आलोचनात्मक शैली के अतर्गत केवल आलोचना ही आती है, वह चाहे व्यक्ति की हो, चाहे विषय की हो, चाहे इतिहास की हो अर्थात वह हर विषय की हो सकती है। इस शैली के क्षेत्र में कोई भी संसार की ऐसी वस्तु नहीं है जो न आ सके और आलोचना के क्षेत्र से उसे बाहर किया जा सके।

संक्षिप्त—इस प्रकार हमने ऊपर शैली का साधारण विवेचन किया है। यदि पाठक इस विवेचना पर ध्यान देंगे तो उन्हे किसी भी निबन्ध को पढने पर यह निश्चय कर लेने मे अधिक समय नही लगेगा कि यह निबन्ध किस शैली के अन्तर्गत रखा जा सकता है। अब शैली का प्रकरण समाप्त करते हैं।

हिन्दी में निबन्धों का विकास

हिन्दी मे निबन्धों का बाल-युग उसी समय प्रारम्भ होता है जब हिंदी गद्य का उत्थान प्रारम्भ होता है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के युग से ही छोटे २ लेखो का लिखना प्रारम्भ हुआ। यहा यह कहना असत्य न होगा कि हिंदी का विकास अंग्रेजी के सपर्क मे हुआ। जब इस काल के अंग्रेजी भाषा के विद्वानो का ध्यान अपनी मातृ-भाषा की तरफ गया तो उन्हें ध्यान आया कि इसका समुन्नत करना भी उनका कर्त्तव्य है। पाश्चात्य देश के विद्वानों ने भी इस कार्य मे सहयोग दिया और खोज करके प्राचीन ग्रंथो का पता लगाया। इसी काल मे मुद्रण-कलों का भी युग प्रारम्भ हुआ और अन्य भाषाओं की भांति हिंदी मे पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन कुछ विद्वानो ने किया। इन पत्र-पत्रिकाओ मे लेख छपने शुरु हुए और यही से हिंदी निबन्ध-कला का भी जन्म हुआ।

हिंदी साहित्य के लिये निबन्ध एक बिलकुल नई वस्तु थी। संस्कृत साहित्य मे कहीं पर भी वर्तमान निबन्ध के प्रकार की रचना नही मिलती। कविता, कहानी, उपन्यास तथा नाटकों से हिंदी परिचित थी परन्तु निबन्ध से नही। यही कारण था कि निबन्ध के विकास मे कला के ऊपर लिये गये अन्य भेदों की अपेक्षाकृत अधिक समय लगा और उनमे वह सौन्दर्य और परिपक्वता भी न आ पाई जो नाटक

तथा कविता इत्यादि में आई । भाषा क्योंकि शिथिल थी इस लिये निबन्ध लिखने में और भी कठिनाई हुई ।

भाषा के परिमार्जन की ओर विद्वानों का पूरा २ ध्यान था परन्तु फिर भी भाषा के दोषों का एक दम दूर हो जाना कोई साधारण कार्य नहीं था । धीरे २ साहित्य की प्रगति के साथ २ भाषा की भी प्रगति चलती रही । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने ही सब से पहले हिन्दी गद्य में निबन्ध रचना की । इस युग के अन्य प्रसिद्ध निबन्धकार राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द, राजा लक्ष्मणसिंह, प० बालकृष्ण भट्ट, प० प्रतापनारायण मिश्र, प० बद्रीनारायण, प० अम्बिकादत्त व्यास इत्यादि हैं । इस काल में राजनैतिक, सामाजिक तथा कुछ अन्य विषयों के निबन्ध लिखे गये । साहित्यिक निबन्ध बहुत कम लिखे गये हैं । इस काल के प्रत्येक लेखक के लेखों में शैली के विचार से उसके व्यक्तित्व की छाप है । भाषा भावपूर्ण और अलंकृत दोनों ही प्रकार की है ।

१. भारतेन्दु जी—आपके निबन्ध शिष्ट तथा नागरिक ढंग के हैं । आपने भाषा तथा भाव दोनों को परिमार्जित किया ।

२. प बालकृष्ण—इनकी भाषा में उर्दू फारसी तथा अंग्रेजी तीनों भाषाओं के शब्दों की भरमार है । आँख, नाक, कान, तथा कल्पना, आत्म निर्भरता इत्यादि इनके निबन्धों के विषय हैं । लेख चमत्कार प्रधान है । आपने मिश्रजी की अपेक्षा अधिक लिखा है । चन्द्रोदय इनका प्रसिद्ध निबन्ध है ।

३ प० प्रताप नारायण मिश्र—इनकी शैली विनोद पूर्ण है । मुहावरों का प्रयोग अधिक मिलता है । गाम्भीर्य कम है । "मरे को मारें, इन्हें रोना समझो चाहे गाना, शाह मदार" इत्यादि इनके निबन्धों के विषय हैं । शिवमूर्ति, धरती माता, खुशामद इत्यादि सुधारात्मक निबन्ध भी आपने लिखे हैं ।

४. अम्बिका प्रसाद व्यास—इनके निबन्ध विचार-प्रधान हैं। धर्म, क्षमा, ग्रामवास इनके निबन्ध के विषय हैं।

द्वितीय युग—इस काल तक भाषा परिमार्जित हो चुकी थी और लेखकों ने काफी गम्भीर विषयों पर लेखनी उठानी प्रारम्भ कर दी थी। इस युग के प्रवर्त्तक श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी जी थे। भाषा की व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियो को द्विवेदी जी ने अपनी प्रखर लेखनी द्वारा काट छाँट कर निबन्धोपयुक्त बना दिया और साथ ही साथ अन्य-लेखकों को भी इस दिशा मे प्रोत्साहित किया। इस काल के प्रधान लेखक श्री पं० गोविन्द नारायण मिश्र और श्री बाल मुकुन्द गुप्त तथा प० माधव प्रसाद जी थे।

१. महावीर प्रसाद द्विवेदी—आपने भाषा की अपगता, स्थूलता और शिथिलता को नष्ट किया। आपकी लेखन प्रणाली सरल, सुबोध और प्राञ्जल थी। इस मे कल्पनाओं की उड़ान थी और थी अनुभूतियो की सरलता। आपने सैंकड़ों मौलिक निबन्ध लिखे हैं और अनुवाद भी किये हैं।

२ गोविन्द नारायण मिश्र—आप के निबन्ध विचार-प्रधान हैं। कठिन शब्दो का प्रयोग आपकी भाषा में मिलता है।

३ बाल मुकुन्द गुप्त—आरम्भ मे उर्दू लेखक होने के कारण आपके निबन्धो मे उर्दू की छाप वर्तमान है। 'शिव शम्भु का चिट्ठा' आपके निबन्धों का सग्रह है।

४. प० माधव प्रसाद—आप के निबन्ध भाव-प्रधान है। आप की शैली सरल है और उसमे प्रवाह बहुत अच्छा है।

५ मुं० प्रेम चन्द—आपके निबन्ध बहुत कम लिखे हैं। परन्तु इनकी शैली अपनी विशेषता रखती है और जो कुछ भी उन्होने लिखा है वह समय, भाषा, और शैली के विचार से विशेष उल्लेखनीय है।

तृतीय-युग—इस युग को निबन्धो का प्रधान युग कहना अनुपयुक्त नहीं होगा। यह वह युग है जब भाषा प्रौढ हो चुकी थी और इसके परिमार्जन में किसी प्रकार की भी कोई व्याकरण सम्बन्धी अथवा अन्य किसी प्रकार की कोई कमी नहीं रह गई थी। यह काल सन् १६२१ के पश्चात आता है। इस काल में कला-पक्ष तथा भावना पक्ष दोनो ही प्रकार के लेख लिखे गये। लेखकों ने प्राय सभी शैलियों और असंख्यों विषयों पर अपनी लेखनी उठाई और सफलता पूर्वक हिंदी साहित्य मे निबन्धकोष की पूर्ति की। इस काल को नवीन-काल कहा जाता है। सरदार पूर्ण सिंह, प० पद्म सिंह, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, श्याम सुन्दर दास बी० ए०, जयशंकर प्रसाद, वियोगी हरी, गुलाबराय एम० ए०, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रायकृष्ण दास, रामनाथ सुमन, महा देवी वर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, जैनेन्द्र कुमार इत्यादि इस काल के प्रमुख निबन्धकार हैं।

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—ऊपर दिये गये निबन्धकारों मे सब से अधिक प्रधानता आप को ही प्राप्त हुई है। इनके निबन्धों पर इनकी स्पष्ट छाप है। मानसिक विश्लेषण आप से अच्छा अन्य कोई लेखक नहीं कर पाया। आप के निबन्ध तर्क और चिंतन-प्रधान हैं। सूर तुलसी तथा जायसी की आपने विशद आलोचना की है और वह अपना पृथक् स्थान रखती है। आपके निबन्धों से गाम्भीर्य और पांडित्य टपकता है। 'चिंतामणि' इनके निबन्धों का संग्रह है।

२ प० पद्म सिंह—आप के निबन्धो में विचारों की मार्मिक व्यंजना है और भाषा सजीव है। आप के लेखो में संवेदना का प्राधान्य होता है।

३ सरदार पूर्ण सिंह—आप के निबन्ध भावात्मक हैं। भाषा सजी हुई है और मुहावरों का प्रयोग पर्याप्त है। भाषा मे लाक्षणिक प्रयोग बहुत हैं।

४ श्याम सुन्दर दास—आप की शैली मे प्रवाह की कमी है। भाषा कहीं कहीं कठिन और कही बहुत सरल भी है। इनकी शैली यत्न पूर्वक बनी हुई है। उसमें स्वाभाविकता का अभाव है, प्रवाह नहीं है।

५. जयशंकर प्रसाद—भाषा सस्कृत गर्भित है परन्तु शैली में प्रवाह है और जीवन भी। उनके विचार और भाषा दोनो मे चमत्कार है। साधारण पाठक इनके निबन्धो को पढ़ कर आनन्द लाभ नहीं कर सकता।

६ वियोगी हरि—आपके निबन्ध सरल हैं और भाषा प्राजल है।

७ गुलाबराय—आपके निबन्ध कला-पूर्ण है और उनकी भाषा में गाम्भीर्य है। निबन्धों में चितन के लिए भी स्थल होते हैं। आपके लेखो मे स्वाभाविकता का अभाव है परन्तु फिर भी कहीं कही पर उनमे सहृदयता भी मिलती हैं। आपके निबधों मे पाण्डित्य प्रदर्शन अधिक मिलता है और कहीं कहीं पर तो भावों को गम्भीर बनाने के लिए ही क्लिष्ट भाषा का प्रयोग कर दिया जाता है। आपके निबन्ध विचारात्मक तथा आलोचनात्मक होते हैं।

८ रायकृष्ण दास—आपकी भाषा बहुत सुन्दर होती है और कठिन शब्दावली प्रयोग करने का प्रयत्न कम दिखलाई देता है। निबन्ध हृदय-प्रधान होते हैं।

९ महादेवी वर्मा—भाषा में प्रवाह है, सरलता है। निबन्धों में अनुभूति है। तत्सम शब्दों का ही अधिक प्रयोग आपकी भाषा मे मिलता है इसलिए साधारण पाठकों के लिए वह नहीं होते।

१० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी—इनके निबन्ध गम्भीर होते हे और उनमे अध्ययन के लिए सामग्री अधिक होती है। साहित्य, इतिहास और दर्शन इनके निबन्धों के विषय हैं।

११. जैनेन्द्र कुमार—भाषा स्वाभाविकता लिए हुए है। गम्भीर विषयों का भी सरलता पूर्वक प्रतिपादन किया गया है।

नोट—ऊपर दिये गये निबन्धकारों के अतिरिक्त रामदास गौड़, सियारामशरण गुप्त, सम्पूर्णानन्द, रघुवीरसिंह, हरिभाऊ उपाध्याय, किशोरीलाल मश्रुवाला, काका कालेलकर इत्यादि ने भी विशेष दिशाओं में निबन्ध लिखे हैं।

निबन्ध-साहित्य का भविष्य.—ऊपर हिन्दी-साहित्य में निबन्धों के उत्थान और प्रसार पर एकदृष्टि डाली गई है। जितने थोड़े समय में जितनी शीघ्रता के साथ निबन्ध-साहित्य ने प्रगति की है उससे यह स्पष्ट ही है कि आगामी युग में निबन्ध-साहित्य का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है। मनन-शील विद्वानों की संख्या हिन्दी साहित्य में बढ़ रही है और साथ ही हिन्दी राष्ट्र भाषा होने के कारण हिन्दी का प्रचार भी सभी दिशाओं में होता जा रहा है। इसलिये भविष्य में निबन्ध भी केवल कुछ सीमित ही विषयों पर न होकर बहुमुखी होंगे और उनमें गाम्भीर्य भी पहिले की अपेक्षा अधिक आने की संभावना है। ऐसा होने पर निबन्धों के पढ़ने का क्षेत्र केवल विद्यार्थियों से बढ़कर अन्य व्यक्तियों में भी होने लगेगा। विचारकों को चाहिए कि वह ऐसी समस्याओं पर अपने विचार प्रकट करें कि जो सर्वसाधारण पढ़े-लिखों के हाथों में जाकर उनमें भी निबन्ध पढ़ने की अभिरुचि पैदा कर दें। निबन्धों की उन्नति में सरकार का रेडियो-विभाग भी काफी कार्य कर रहा है और वहाँ से विभिन्न विषयों पर सुन्दर निबन्ध पढ़े जाते हैं।

साहित्यिक-निबन्ध

वीरगाथा साहित्य पर एक दृष्टि

हिन्दी साहित्य के इतिहास–पढितों ने भाषा के इतिहास को चार भागो मे विभाजित किया है। वीरगाथा-काल, भक्ति-काल, रीति-काल तथा आधुनिक काल। इस प्रकार वीरगाथा-काल का स्थान इन चारों कालों मे ऐतिहासिक दृष्टि कोण से सर्व प्रथम आता है। इस काल का समय सवत् १०५० से १३७५ तक माना गया है और यह भाषा के उत्थान और क्रमिक विकास के विचार से बहुत महत्वपूर्ण काल है।

जिस समय यह काल प्रारम्भ होता है उस समय भारतवर्ष में व्यवस्थित राज्य-सत्ता का अभाव था और समस्त देश छोटे छोटे मन-चले राज्यों मे विभाजित हो रहा था। प्रत्येक राज्य का पृथक पृथक निरकुश राजा था और वह अपनी मनमानी आकाँक्षाओं के अनुसार राज्य करता था। राजे सभी प्राय वीर थे परन्तु सगठन न होने के कारण देश बहुत दुर्बल बना हुआ था और इसी लिये विदेशियों की लालच भरी दृष्टि भारत की धन सम्पत्ति पर जमी हुई थी। भारत के राजाओं की शक्तियों का ह्रास आपस में लड भिड कर होता जा रहा था और एक दूसरे की कन्याओं को बल पूर्वक स्वयंम्बरों मे से भगा लाना मात्र ही केवल उनके युद्ध कौशल के प्रदर्शन का क्षेत्र था। इस प्रकार आपस में वैमनस्य बढ़ाकर अपनी शक्तियों का अपव्यय करना ही उनका गौरव बन गया था।

हिन्दी कविता इस काल में केवल दर्बारों मे पलती थी और कवि लोग विशेष रूप से चारण होते थे जिनका उद्देश्य अपने आश्रय दाता

वीर राजाओं का गुणगान गाना होता था। देश मे फूट थी, दुर्बलता थी, विलासिता थी, आलस्य था परन्तु फिर भी वीर राजाओं का एक दम ह्रास नहीं हो गया था। इसी समय वीर पृथ्वीराज दिल्ली का राज्याधिकारी हुआ परन्तु स्वयम्वरों से डोला उठाकर लाने वाली प्रथा से अपने को मुक्त वह भी न कर सका। सयोक्ता का डोला उठाकर लाने का मूल्य उसे क्या देना पडा यह भारत निवासी युग-युग तक-नहीं भुला सकेंगे।

इस काल में हिन्दी का जितना भी साहित्य सृजन हुआ वह विशेष रूप से दो ही रसों से ओत प्रोत था, एक शृ गार तथा दूसरा वीर रस। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इस काल मे वीरता का प्रदर्शन भी शृ गार के आश्रित ही होकर चलता है, अर्थात शृ गारिक भावनाओं की पूर्ति के लिये ही वीरता का प्रदर्शन किया जाता था और कवियों ने भी अपने नायको मे दोनों ही गुणों की प्रधानता दिखलाई है। इसलिये इस काल के कवियों के नायक रसिक भी हैं और वीर भी। रसिकता उनका प्रधान गुण है और उस रसिकता के क्षेत्र में आने वाली बाधाओं को जड मूल मे उखाड फेंकने के लिए उन्होंने अपने बल कौशल तथा पराक्रम का प्रयोग किया है। इस काल के प्राय सभी ग्रन्थ नाम मात्र के सुनने तथा देखने मे ऐतिहासिक से प्रतीत होते हैं परन्तु यदि उनको आद्योपांत पढ़कर देखा जाये तो उनमें ऐतिहासिकता का अभाव पाया जाता है। इन ग्रन्थों की कथाओं मे केवल नाम के लिये ऐतिहासिकता रहती तो है—परन्तु वास्तव में सब कथायें आख्यायिकाओं पर आधारित हैं। कल्पना और कवि-स्वच्छन्दता को उनमे विशेष स्थान दिया गया है, इन ग्रन्थों में अतिशयोक्तियों की इतनी भरमार है कि कहीं कहीं पर तो पाठक इस संसार को भूल कर आकाश में उड़ने लगता है और वास्तविकता उस समय उसे कोरा उपहास मात्र प्रतीत होती है।

इस काल के ग्रन्थो मे वीरता पूर्ण युद्धों के बहुत सजीव चित्रण मिलते हैं और उन वर्णनो मे जिन छन्दो तथा जिस भाषा का प्रयोग किया गया है वह वीर रस को व्यक्त करने मे बहुत उपयुक्त सिद्ध हुए है। एक विशेष बात इस काल के ग्रथों मे कई कई प्रकार की भाषाग्रों का प्रयोग है और कभी कभी उसमे यह भी भ्रम हो जाता है कि वह ग्रन्थ उस समय और उस लेखक का लिखा हुआ भी है अथवा नहीं कि जिस काल मे जिस लेखक द्वारा लिखित उन्हे माना जाता है। यही कारण है कि इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता के विषय में बहुत सन्देह है और भाषा वैज्ञानिको को इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता जाँचने के लिये काफी खोज करनी पडी है।

प्राय सभी ग्रन्थ वीरगाथा काल में देशज और अपभ्र श भाषा मे लिखे गये है। दोहा, छप्पय, कवित्त तथा कुण्डलिया इत्यदि छन्दों का प्रयोग इन सब ग्रन्थों मे है। काव्य प्रवन्ध तथा मुक्तक दोनों ही प्रकार के पाये जाते-है। उर्दू और फारसी भाषा के शब्द भी इस समय की कविता मे पाये जाते हैं।

इस काल के कवि केवल कवि ही नहीं होते थे वरन वह तलवार के भी वैसे हीं धनी थे जैसे लेखनी के। इन चारण कवियों का कर्म साहित्य सेवा उतना नहीं होता था जितना स्वामि-सेवा और इसी-लिये यह रणक्षेत्र में जाकर युद्ध की आग में कूदना और नगी तलवारें नचाना अपना कर्तव्य समते थे। इनकी ओजस्विनी कविता वीरों में उत्साह का सचार करती थी और उन्हे युद्ध-क्षेत्र में सीना तान कर मतवाला बना देती थी। उनकी कविता को सुनकर योद्धाओं के भुज-दण्ड फडकने लगते थे और वह सिरों पर कफन बांध कर रण-भूमि मे जूझ जाते थे।

हम्मीर रासो, कीर्तिलता, कीर्तिपताका इस काल के अपभ्र श काव्य हैं तथा विद्यापति की पदावली, खुसरु की पहेलियाँ, जयचन्द-प्रकाश,

पृथ्वीराज-रासो, खुमान-रासो, बीसलदेव-रासो, परमाल-रासो इत्यादि देशज भाषा में लिखे गये प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इस काल का सबसे प्रसिद्ध कवि पृथ्वीराज रासो का लेखक चन्द्रबरदाई है। पृथ्वीराज तथा चन्द्रबरदाई इस काल के प्रतीक हैं। इन्हीं दो व्यक्तियों पर केन्द्रित होकर इस काल का निर्माण हुआ है।

भाषा, इतिहास और साहित्य तीनों ही दृष्टिकोणों से वीरगाथा-काल बहुत महत्वपूर्ण है। यह हिंदी भाषा का प्रारंभिक काल है जिस में देशभाषा का निर्माण और वीरता-पूर्ण काव्य का सृजन हुआ। परन्तु खेद की बात है कि वीरगाथा काल होते हुए भी इस समय का कोई पूर्ण ग्रंथ हमें ऐसा नहीं मिलता जिसमें स्वतन्त्रता या राष्ट्रीय भावना से पूर्ण विचार मिलते हों। इसका प्रधान कारण यही है कि इस काल में राष्ट्रीयता का सर्वथा अभाव था और कवि अपना उत्तरदायित्व देश अथवा राष्ट्र के प्रति न समझ कर उन शृंगारिक राजाओं के ही प्रति समझते थे जिनकी वीरता का प्रदर्शन भी राज-कुमारियों के डोलों पर ही अटका हुआ था।

वीरगाथा-साहित्य की विशेषतायें —

१. इस काल के प्रधानतया सभी ग्रंथ शृंगार और वीररस प्रधान हैं।
२. इस काल के प्राय सभी कवि दरबारी थे और अपने अपने आश्रय-दाताओं की प्रशंसा मात्र ही उनके काव्यों के विषय थे।
३. इस काल के प्राय सभी ग्रंथ ऐतिहासिक से प्रतीत होते हुए भी काल्पनिक हैं।
४. काव्यों में युद्धों का सुन्दर चित्रण है।
५. इस काल के ग्रंथों की भाषा और कथायें अभी तक सदिग्ध है और उनकी समकालीनता के विषय में विद्वानों में मतभेद है।
६. राष्ट्रीयता की भावना का इस काल मे सर्वथा अभाव मिलता है।
७. छप्पय, दोहा और कवित्त छंदों में ओजपूर्ण कविता इस काल के

कवियों ने लिखी है ।

८ इस काल में प्रबन्ध तथा मुक्तक दोनो प्रकार के काव्य लिखे गये हैं।

९ भारत की शासन व्यवस्था अव्यवस्थित होने के कारण इतिहास में भी उच्छृंखलता का आभास मिलता है, सुसगठन का नहीं ।

१० भाषा परिमार्जित नहीं है, उसमें कई भाषाओं के शब्द है ।

हिन्दी मे निर्गुण धारा

अथवा

संत साहित्य की एक झलक

भारत मे सम्पूर्ण रूप से मुसलमान शासन-सत्ता स्थापित हो जाने पर हिन्दू गौरव और वीरता के लिये बहुत कम स्थान रह गया था। स्थान-स्थान पर देव मन्दिर गिराये जा रहे थे और उनके स्थान पर मस्जिदें बन रही थी । मुसलमान पूरी तरह भारत-भूमि मे बसते चले जा रहे थे, शासक और शासित होते हुए भी दो जातियो का एक दूसरी से सर्वथा पृथक रहकर जीवन निर्वाह करना कठिन था । इसलिये दिन प्रतिदिन इन दोनों को एक दूसरे के निकट आना पड़ा और ध्रापस के मिलन की भावना को प्रचारित करने के लिए कुछ सन्त-कवियों ने इस काल में जन्म लिया ।

ऐसी परिस्थिति में देश के अन्दर एक 'सामान्य-भक्ति मार्ग' का विकास हुआ जिसमें हिन्दू तथा मुसलमान दोनो ने ही सहयोग दिया । इस 'सामान्य-भक्ति-मार्ग' के विकास का मार्ग वीरगाथा काल में ही सिद्ध और नाग पथी योगी निर्धारित कर चुके थे परन्तु उसकाल में उसे देश की अव्यवस्थित राजनीति होने के कारण, कोई व्यवस्थित रूप रेखा नहीं दी जा सकी थी । सिद्ध और नाथ योगियो के मत से वेद, शास्त्र, पूजा, अर्चा सब व्यर्थ था, ईश्वर को वह घट-घट

मानते थे, हिन्दू मुसलमान इनके निकट एक थे और वह जात-पाँत क भेद भाव मे विश्वास नहीं रखते थे। इसी समय दक्षिण से आने वाली शक्ति की लहर ने भी हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रतिपादन किया और (स० १३२८-१४०८) महाराष्ट्र देश के प्रसिद्ध भक्त नामदेव ने भी इसी मत का प्रचार किया।

हिन्दी साहित्य मे इस विचार को लेकर एक युग का निर्माण करने वाला व्यक्ति सन्त कबीर था। कबीर ने एक ओर तो निराकार ब्रह्म के निरूपण मे भारतीय वेदान्त को अपनाया और दूसरी ओर भक्ति के क्षेत्र मे प्रेमतत्व का निरूपण करने के लिए सूफी सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। नाथ पन्थियों के नीरस उपदेशों से शुष्क पड़े जनता के हृदयों मे कबीर ने सूफी प्रेम-भावना का स्रोत बहाकर उन्हें परिप्लावित कर दिया। कबीर ने अपनी कविता में मानवता के महान आदर्शों का निरूपण किया और जनता के हृदयों से जातीयता की संकुचित भावना को नष्ट करके प्रेम भावना भरने का भरसक प्रयत्न किया।

कबीर तथा अन्य निर्गुण-पन्थी संतों ने भक्ति तथा योग का संयोग करके कर्म के क्षेत्र मे नाथपन्थियों के ही सिद्धांतों को अपनाया। सन्तों के लिये ईश्वर का स्वरूप ज्ञान और प्रेम तक ही सीमित रहा। धर्म के क्षेत्र में वह पदार्पण नहीं कर सके। ईश्वर के जिस धर्म-स्वरूप को लेकर लोकरंजन की महान् भावना के साथ रामभक्ति शाखा का निर्माण गोस्वामी तुलसीदास ने किया उसका संत साहित्य मे सर्वथा अभाव ही बना रहा।

संत कबीर का एकेश्वरवाद इस प्रकार एक अनिश्चित रूप को लेकर खड़ा हुआ, जिसमे कभी ब्रह्मवाद की झलक दिखाई देने लगती है और कभी पैगम्बरों के खुदावाद की। संत कबीर का यह पथ निर्गुण पथ कहलाया। इस पथ में जो प्रधान प्रगति पाई जाती है वह है एकता की भावना, जातिभेद, समाज भेद, स्थान भेद और काल भेद मे

रहित। निर्गुण पथ मे हिन्दू और मुसलमानों ने समान रूप से आस्था रखी है। 'राम रहीम' की एकता का वर्णन सत कवियो ने उन्मुक्त कठ से किया है।

सत कवियो की वाणी इतनी स्पष्ट नही है जितनी कि वैष्णव कवियों की कविता में मिलती है। इसका प्रथम कारण यही है कि वह लोग ज्ञान और प्रेम को मिला कर जो विचार प्रकट करते थे उसे अटपटी भाषा मे कहना उनके लिये कठिन हो जाता था। इस मत के प्रतिपादकों में विद्वत्ता का अभाव रहा है इसलिये साहित्यिक दृष्टि से उसमे उतना सौंदर्य नहीं आ पाया है जितनी विचारो की गहनता। सत कबीर ने रूपकों और अन्योक्तियों द्वारा अपने भावों का प्रदर्शन किया है और कही कहीं पर भाव इतने गहन हो गये हैं कि उसका सही अर्थ लगाना कठिन हो जाता है।

कबीर, रैदास, धर्मदास, गुरु नानक, दादू दयाल, सुन्दर दास, मलूकदास, इत्यादि इस धारा के प्रधान कवि हैं।

निर्गुण धारा की विशेषताये —

१ इस शाखा की विचारावलि रामानन्द जी के धार्मिक प्रचार से सम्बन्धित है।
२ इस काल के प्राय सभी कवियो की कविता मे किसी न किसी सीमा तक रहस्यवाद की पुट पाई जाती है।
३ यह लोग जीव को दुलहिन और परमात्मा को प्रियतम के रूप म मानते हैं।
४ प्रेम का प्रतिपादन ज्ञान-मार्ग से जनता मे सरसता पैदा करने के लिए किया गया है।
५ कबीर का राम दशरथ-पुत्र राम न होकर निर्गुण ब्रह्म है।
६ हठयोग और वेदान्त की झलक इन कवियों की वाणी मे यत्रतत्र मिलती है।

७ हिन्दू और मुसलमानों में एकता प्रतिपादित करने का सभी सन्तों ने समान रूप से प्रयत्न किया है।

८ इनके साहित्य मे मडन की अपेक्षा खण्डन की प्रवृत्ति बहुत अधिक है।

९ इनकी कविता मे खडी बोली, अवधी और पूर्वी तीनो का सुन्दर सम्मिश्रण है।

१० काव्य विषयक सौंदर्य का सन्तों की कविता मे सर्वथा अभाव है।

११ इनकी वाणी मे स्पष्टवादिता आवश्यकता से अधिक है।

हिन्दी मे सूफी प्रेम धारा

पन्द्रहवीं शताब्दी के अंतिम भाग से लेकर १७ वी शताब्दी के अन्त तक हिन्दी साहित्य मे निर्गुण तथा सगुण दोनो ही धाराओ का प्रचार समान रूप से चलता हुआ दृष्टिगोचर होता है। निर्गुण भक्ति के क्षेत्र मे जहा सत साहित्य का प्रसार दिखाई देता है वहा उसी के साथ साथ विशुद्ध प्रेम की भावना से ओत प्रोत साहित्य भी मिलता है। इसे और अधिक स्पष्ट शब्दों में यों समझना चाहिये कि निर्गुण भक्ति धारा के दो पृथक पृथक रूप बन गये, जिस के पहले रूप का नाम ज्ञानाश्रयी शाखा पडा और दूसरी का प्रेमाश्रयी शाखा।

प्रेमाश्रयी शाखा विशुद्ध सूफी सिद्धांतो के आधार पर हिन्दी कवियों ने अपनाई जिस के फल स्वरूप हिन्दी भी प्रेम-आख्यायिकाओं के साहित्य मे प्रादुर्भाव हुआ। इस शाखा के कवियो ने अपने प्रेम-मार्ग और उसके सिद्धांतो का प्रतिपादन कल्पित कहानियो द्वारा किया। कवियों ने लौकिक प्रेम में ईश्वरीय झलक डालने का प्रयत्न किया है और अपनी कविताओं मे 'प्रेम की पीर' पर विशेष रूप से लिखा है।

इन कहानियो मे राजकुमार और राजकुमारियो के प्रेम को लेकर ही कवि चलता है। राजकुमार राजकुमारी के अलौकिक सौंदर्य पर आसक्त होकर ससार की सब विभूतियो, यहां तक कि अपनी स्त्री और घरबार से भी नाता तोड देता है, और पागल वैरागी बन कर उस राजकुमारी को प्राप्त करने के लिये निकल पडता है। उस राजकुमारी को प्राप्त करने मे अनेकों कष्ट उठाता है और अ त मे उसके लिये अपने प्राणों तक को त्यागने के लिये उद्यत हो जाता है। अ त मे वह उस राजकुमारी को प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार कवि के विचार से आत्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता है।

इन सूफी कवियों ने प्राय वही कहानिया ली है जिनकी कथायें हिन्दू गाथाओं मे प्रसिद्ध हैं और इस प्रकार हिन्दू-कथाओं मे सूफी सिद्धातो की पुट देकर उन्होने अपने काव्यो को हिन्दू-मुस्लिम समन्वय के योग्य बनाने का प्रयत्न किया है। सत कवियो की भाँति इन कवियो में भी जातिभेद-भाव के लिये कोई स्थान नही पाया जाता।

प्रेम मार्गी शाखा के कवि सत कवियों की अपेक्षा अधिक सहृदय थे। इनकी कविताओ मे भी स्थान-स्थान पर योग की रूढियाँ मिलती अवश्य है परन्तु फिर भी कविता के अधिकाँश भाग सरसता पूर्ण ही है। प्रेम चित्रण कवियो ने खूब किया है और स्थान-स्थान पर मनुष्य के साथ-साथ पशु, पक्षी, पेट-पौधो तक के साथ सहानुभूति से काम लिया है। मनुष्य के कष्ट को देख कर बन के वृक्षों में भी रोने की कल्पना करना इन कवियों की विशेषता है।

इन सूफी कवियों के प्रेम-काव्यों मे सत कवियो जैसी खटन और मडन की प्रवृत्ति नहीं मिलती। इनकी कविता आद्योपांत मनुष्य के हृदय को स्पर्श करने वाली होती थी। प्रेम का जितना सजीव चित्रण इन कवियों ने किया है उतना हिन्दी साहित्य मे अन्य कवि नही कर पाये। सरस कविता के बीच-बीच मे जो इन्होंने रहस्यमय परोक्ष की

भावना का समावेश किया है वह कविता को बहुत रहस्यमय बना देता है और उससे कविता का महत्त्व उथलेपन के साधारण स्तर से उठकर विचार क्षेत्र के ऊचे स्तर पर पहुँच जाता है।

प्रेम मार्ग की इस शाखा का प्रतिनिधि कवि मलिक मुहम्मद जायसी है और 'पद्मावत' इस काल का सर्व प्रसिद्ध एव सुन्दर ग्रथ। हिन्दी साहित्य के प्रबन्ध काव्यो में राम चरित मानस के पश्चात् पद्मावत का ही स्थान है। प्रेमाश्रयी शाखा के रहस्यवाद मे भावनात्मकता का अभाव नहीं पाया जाता। जायसी के अतिरिक्त कुतबन, मझन, उसमान, शेखनबी, कासिमशाह और नूर मुहम्मद इस धारा के अन्य प्रसिद्ध कवि हैं।

हिन्दी मे सूफी धारा की विशेषताये —

१ इस धारा के प्राय सभी कवि सूफी थे जो स्वाभाव और जीवन में बहुत सरल थे।
२ ज्ञानाश्रयी कवियो की भाति प्रेमाश्रयी शाखा के कवि भी गुरु को ईश्वर के ही समान मानते है।
३ यह कवि सर्वेश्वरवाद की ओर अधिक झुके हुए प्रतीत होते हैं।
४. 'प्रेमपीर' के साथ ही साथ सगीत और माधुर्य की भी इन कवियों में विशेषता पाई जाती है।
५ यह किसी भी धर्म के कट्टर अनुयाई नहीं थे और हिन्दू मुस्लिम एकता को अच्छा समझते थे।
६ इस धारा के ग्रथ विशेष रूप से विशुद्ध अवधी भाषा में मिलते हैं।
७ इन कवियों की प्रेम कथाओं में हिन्दू चरित्रों को ही प्रधानता दी गई है।
८ इस धारा के कवि भी ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों ही की भाँति कम विद्वान् थे और साहित्य का उन्हें बहुत ही अल्प ज्ञान था।
९ ठेगठ अवधी भाषा में इस धारा का साहित्य रचा गया।

हिन्दी सहित्य में राम-भक्ति

सं० १०७३ के आस-पास स्वामी रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत-वाद का वह रूप जनता के सम्मुख रखा जिसके अनुसार चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म के ही अंश जगत के सब प्राणी हैं, और वह सब उसी से उत्पन्न होकर उसी में लय हो जाते हैं। इसलिए इन जीवों को अपने उद्धार के लिये नारायण की भक्ति करनी चाहिये। इस सिद्धांत के आधार पर रामानुजाचार्य ने श्री सम्प्रदाय की स्थापना की, जिसने देश में फैल कर नारायण की उपासना और भक्ति का प्रचार किया। इनके पश्चात् इस वैष्णव श्री सम्प्रदाय में प्रधान आचार्य श्री राघवानन्द जी हुए, और फिर उन्होंने रामानन्द जी को दीक्षा दी। भक्तमाल के अनुसार रामानन्द जी के बारह शिष्य कहे गये हैं—सनतानन्द, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानिन्द, भावानन्द, पीपा, कबीर, सेन, धना, रैदास, पद्मावती और सुरी। इन सभी ने राम नाम की महिमा गाई है।

हिन्दी साहित्य में निर्गुण धारा के साथ साथ १५ वी शताब्दी के अंत से लेकर १७ वीं शताब्दी के अंत तक, सगुण भक्ति धारा भी बराबर अबाध रूप से बहती चली आ रही थी। सगुण-भक्ति धारा के अंतर्गत रामभक्ति शाखा तथा कृष्ण भक्ति शाखा दोनों ही आती हैं। यहाँ हम केवल राम भक्ति शाखा पर प्रकाश डालेंगे परन्तु इनके राम में और वैष्णव सम्प्रदाय के राम में सर्वदा अन्तर रहा है। कबीर इत्यादि ने जिस मत का प्रतिपादन किया है वह निर्गुण ब्रह्म की उपासना है।

यह सत्य है कि श्री रामानन्द जी की शिष्य परम्परा द्वारा भक्ति की देश में निरन्तर पुष्टि होती चली आ रही थी और भक्तो ने अपनी छोटी-मोटी कविताओं द्वारा सरसता के साथ राम नाम को देशवासियों

के हृदय मे उतारने का प्रयत्न किया था और बहुत कुछ अंशों में वह उसमें सफल भी हुए थे परन्तु हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे राम महिमा का सजीव गान करने वाला सर्व प्रथम सफल कवि तुलसी ही हुआ है। १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध मे गोस्वामी तुलसीदास जी की प्रतिभा हिन्दी साहित्य मे प्रस्फुटित हुई। अपनी सर्वोमुखी प्रतिभा तथा कलाओ के साथ कवि ने भारत में अपने देव राम को लेकर जनता के हृदयों पर सिंहासनारूढ हो गया। कवि की कविता का चमत्कार अब अपने पूर्ण ओज और माधुर्य के साथ भक्तो के प्राणों मे समा गया। "राम-भक्ति का परम विषद साहित्यिक सदर्भ भक्तशिरोमणि कविवर तुलसी दास द्वारा ही सघटित हुआ, जिससे हिन्दी-काव्य की प्रौढता के युग का आरम्भ हुआ।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

गोस्वामी तुलसी दास ने राम भक्ति का जो स्वरूप जनता के सम्मुख रखा है उसकी सबसे बडी विशेषता इसकी सर्वाङ्ग पूर्णता है। जीवन के सभी पक्षों पर कवि ने पूरी सहृदयता के साथ प्रकाश डाला है। कवि का न कर्म, धर्म से विरोध है और न ज्ञान से। तीनों ही विचारावलियों मे आपने सामजस्य स्थापित किया है और यही कारण है कि तुलसी का राम सबके हृदय का राम बन सका है। तुलसी की भक्ति में धन और धर्म दोनो की रसानुभूति है। योग का भी सर्वथा लोप उसमें नहीं मिलता परन्तु केवल इतना जितना ध्यान को एकाग्र करने के लिए आवश्यक है।

हिन्दी साहित्य मे जिस राम-भक्ति धारा को कवि ने प्रवाहित किया है उसमें सब धर्मों के लिये समान स्थान है, विरोध किसी का भी नहीं मिलता। अपनी सामजस्य प्रवृत्ति द्वारा कवि ने शैवों और वैष्णवों के बीच बढ़ते हुए विद्वेश को रोका। कवि ने एक तरफ लोक-धर्म और भक्ति भावना का मेल कराया है तो दूसरी ओर कर्म, ज्ञान और उपासना में सामजस्य स्थापित किया है। भक्ति को चरम सीमा तक

पहुचने पर भी कवि ने लोक को सर्वथा छोड़ा नहीं है। लोक सग्रह तुलसी दास की भक्ति का प्रधान गुण है। यह लोक सग्रह की भावना न तो कृष्ण भक्ति शाखा के ही अन्तर्गत मिलती है और न प्रेम और ज्ञानमार्गियों के अन्दर ही। कवि केवल उपास्य तथा उपासक तक ही सीमित नहीं रह गया है वरन उसने लोक-व्यापक अनेकों समस्याओं पर भी ध्यान दिया है और अपने काव्य को सब प्रकार से कल्याणकारी बनाने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि राम भक्ति शाखा की वाणी अन्य साम्प्रदायों की अपेक्षा अधिक मगलकारिणी होने से भारत की जनता में सबसे ऊचा स्थान बना सकी है। भारतीय जनता कृष्ण-उपासना भी कम नहीं करती परन्तु जो सम्मान राम चरित मानस को प्राप्त हुआ है वह सूर सागर को प्राप्त नहीं हो सका।

इस शाखा के प्रधान कवि तुलसीदास हैं और इसके अतिरिक्त हृदय राम इत्यादि भी हुए हैं। इस धारा में हमें अधिक कवि नहीं मिलते। इसका कारण स्पष्ट ही है कि गोस्वामी तुलसी दास जी ने इस साहित्य मे जिस परम्परा को अपनाया है उसमें कवि के लिये उतनी स्वच्छन्दता नहीं है जितना कृष्ण भक्ति शाखा मे है। कवि को परिमार्जित क्षेत्र मे ही रचना करनी होती है और उसकी कल्पनाओं को उड़ान लेने मे कठिनाई होने के कारण रचना करने का साहस अन्य कवि नहीं कर पाये।

यों राम साहित्य पर लेखनी उठाने वाले दो अन्य कवियों को भी भुलाया नहीं जा सकता क्योंकि साहित्यिक दृष्टिकोण से उनके ग्रन्थ भी अपनी-अपनी विशेषता रखते हैं। इनमें पहला कवि केशवदास है जिसने रामचन्द्रिका लिखी। राम चन्द्रिका पृथक् पृथक् लिखे हुए वर्णनों का सग्रह सा जान पड़ता है और उसमें कथा प्रवाह का अभाव है। यह ग्रथ जनता में प्रसिद्धि नहीं पा सकता क्यों कि इसे समझना साधारण पाठक के लिये कठिन है। राम विषयक होते हुए भी यह ग्रथ रामभक्ति से सबधित है ऐसा नही जान पड़ता, दूसरा प्रसिद्ध ग्रथ साकेत

है जिसे वर्तमान युग के प्रख्यात कवि श्री मैथिली शरण जी ने लिखा है। इस ग्रंथ मे भी मानस का गम्भीर्य नहीं आपाया और इसके पठन-पाठन का क्षेत्र भी स्कूल के विद्यार्थियों से आगे नहीं बढ सका।

राम भक्ति-शाखा का प्रभाव हिन्दी साहित्य में सभी दिशाओं में हुआ है। राम साहित्य न तो किसी शैली विशेष तक ही सीमित रहा और न किसी छन्द अथवा काव्य विशेष तक ही। प्राय समय की सभी प्राचीन शैलियों में, इस साहित्य का सृजन हुआ है। वीरगाथा काल की छाप्पय-पद्धति, विद्या पति और सूरदास की गीत-पद्धति, गग आदि भाटों की कवित्त सवैया पद्धति, कबीरदास की दोहा-पद्धति चौपाई पद्धति सभी का प्रयोग राम-साहित्य मे प्रचुरता के साथ मिलता है। काव्य क्षेत्र मे मुक्तक और प्रबन्ध सभी प्रकार के ग्रन्थ लिखे गये है और राम चरित मानस हिन्दी साहित्य का सर्वोत्तम ग्रन्थ आजतक माना जाता है। राम भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं मे नौ के नो रसो का प्रयोग अपनी कविता मे किया है और प्राय सभी प्रकार के अलकार भी इनकी रचनाओं मे खोजने से मिल जायेंगे। इस प्रकार हर तरह से रामभक्ति शाखा ने हिन्दी साहित्य के भडार की पूर्ति की है और हिन्दी साहित्य को इस भक्ति धारा का महान ऋणी होना चाहिए।

रामभक्ति साहित्य की विशेषताये —

१ इस धारा की प्रधान विचाराबलि रामानन्द जी के सिद्धांतों पर आश्रित है।

२ राम भक्ति शाखा मे दशरथ पुत्र राम को इष्टदेव मान कर सगुण भक्ति का प्रतिपादन किया है।

३. भक्ति-क्षेत्र में सभी जातियों को तुलसी दास जी ने समान स्थान दिया है।

४ भक्त को कवि ने दास के रूप मे देखा है।
५ कवि ने यों ज्ञान और भक्ति दोनो का प्रतिपादन किया है परन्तु ज्ञान पर भक्ति को ही प्रधानता दी है।
६ रामनाम के जाप में ही जीवन की मुक्ति मानी जाती है।
७ कर्मक्षेत्र मे वर्णाश्रम धर्म को मान्य माना है और तीर्थों के महत्त्व का गान किया है।
८ साहित्यिक दृष्टि से सब प्रकार के छन्दों, सब रसों और सब प्रकार के काव्यों मे रचना की गई है।
९ भगवान को लोक रजक स्वरूप मे कवियो ने गाया ह।
१० राम भक्ति शाखा का विशेष साहित्य अवधी भाषा मे रचा गया परतु ब्रज और खडी मे भी इसका सर्वथा अभाव नहीं कहा जा सकता है।

हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्ति

१५ वीं और १६ वी शताब्दी मे वैष्णव धर्म का प्रचार भारत में बडे जोर के साथ हुआ और उस समय के प्रचारकों मे श्री वल्लभाचार्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह वेद शास्त्र मे पारगत और धुरधर विद्वान् थे। शकराचार्य के मायावाद ने भक्ति को जिस अविद्या की कोटि में रख दिया था और इसी से रामानुजाचार्य से लेकर वल्लभाचार्य तक सब अपने को उसी से मुक्त करना चाहते थे। वल्लभाचार्य ने ब्रह्म में शकराचार्य के मतानुसार न केवल निगुर्णसत्ता को ही माना वरन् सर्व गुण और धर्मों का समावेश उसमे किया और सारी सृष्टि को उन्होंने लीला के लिये ब्रह्म की आत्मकृति कहा। आपने माना कि श्री कृष्ण जो परब्रह्म हैं, जो सब दिव्य गुणों से युक्त होकर 'पुरुषोत्तम' बने हैं उन्हीं में सत्-चित् और आनद का समन्वय है। "कृष्ण अपने

भक्तो के लिये 'व्यापी वैकुठ मे (जो विष्णु के वैकुंठ से ऊपर है) अनेक प्रकार की क्रीड़ाये करते रहते हैं। 'गोकुल' इसी व्यापी वैकुंठ का एक खड है जिसमे नित्य रूप मे यमुना, वृदावन, निकुज इत्यादि हैं। भगवान की इस 'नित्य-लीला-सृष्टि' मे प्रवेश करना ही जीव की सबसे उत्तम गति है।" रामचन्द्र शुक्ल।

रामानद की भाति श्री वल्लभाचार्य ने भी देशाटन करके अपने मत का प्रचार किया परन्तु हिन्दी साहित्य म वैष्णव सम्प्रदाय के इस पुष्टि मार्ग को सफलता पूर्वक लाने का श्रेय सूरदास को ही प्राप्त है। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता के अनुसार सवत् १५८० के आस-पास सूरदास जी गऊघाट पर श्री वल्लभाचार्य के शिष्य बने और तभी उन्होंने सूरदास को अपने श्रीनाथ जी मदिर की कीर्तन सेवा सौंपी। श्री वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलदास जी ने इस धारा के कवियों का सगठन करके 'अष्टछाप' की प्रतिष्ठा की। अष्टछाप मे आठ कवि थे सूरदास, कुम्भन दास, परमानद दास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंद-स्वामी, चतुर्भुज दास और नददास। कविवर सूरदास इस धारा के सबसे प्रसिद्ध कवि हैं जिन्होंने सूरसागर, सूर सूरावली, साहित्य लहरी, इत्यादि कई ग्र थ लिखे। कविवर सूरदास के बाद दूसरा नाम नददास का आता है।

कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों ने रामभक्ति शाखा के सिद्धांतों के सर्वथा विपरीत लोक रजन की भावना को भुलाकर कृष्ण की प्रेम मयी मूर्ति के ही आधार पर प्रेम तत्त्व का बडे विस्तार के साथ वर्णन किया है। प्रेमोन्मत्त गोपिकाओं से घिरे हुए कृष्ण का आनद मय स्वरूप ही अष्टछाप के कवियों ने पाया है। इन कवियों ने अनत सौंदर्य और हास-विलास के समुद्र में ही गोते लगाये हैं। प्रजा रक्षक और प्रजा पालक कृष्ण के रूप का निरूपण नहीं किया। यह कृष्ण भक्त कवि अपने रग मे मस्त रहने वाले प्रेमी जीव थे। ससार से मुक्त,

तुलसीदास के समान लोक का इन्हे कोई ध्यान नही था। इन्हे यह भी ध्यान नहीं था कि समाज किधर जायेगा? यह तो अपने भगवत्प्रेम में मस्त थे और उसकी भक्ति के लिये शृंगारमयी कविता ही उनका साधन थी। यह तो जनता को अपनी शृंगारिक कविता द्वारा रसोन्मत्त कर देना चाहते थे। यही कारण है कि जिस राधा और कृष्ण को इन विशुद्ध भक्त कवियों ने अपनी कृष्ण भक्ति का साधन बनाया वही राधा और कृष्ण रीति कालीन कवियों के लिये केवल नायक और नायिका के रूप मे रह गये।

राधा-कृष्ण के चरित्रो के गान मे जो गीत-काव्य की परम्परा जयदेव और विद्यापति ने चलाई थी वही अष्टछाप के कवियों ने भी अपनाई। इस प्रकार इस भक्ति और शृंगार के क्षेत्र मे मुक्तक पदो का ही प्रचार हुआ, प्रबन्ध की ओर कवियो का ध्यान नहीं गया। इस धारा के कवि इतनी स्वच्छद प्रकृति के थे कि वह प्रबन्ध-काव्य के झमेले मे पड़कर अपने को बन्धन मे बाँधना भी पसद नहीं करते थे। बहुत बाद में सवत् १६०६ मे ब्रजवासी दास ने दोहा चौपाई मे एक ग्रंथ मानस की तरह लिखा भी परन्तु वह साहित्य में विशेष स्थान नहीं पा सका। कवि-स्वच्छदता के अतिरिक्त प्रबन्ध-काव्य न लिखा जाने का दूसरा प्रधान कारण यह भी था कि कृष्ण भगवान के चरित्र का जितना अंश इन कवियो ने अपनी कविताओं में चित्रित किया है वह अच्छे प्रबन्ध काव्य के लिये पर्याप्त भी नहीं था। मानव जीवन की अनेक रूपता का समावेश उसमें नही हो सकता था। कृष्ण-भक्ति शाखा के कवियो ने अपने काव्य मे केवल कृष्ण की बाललीला और यौवन लीलाओ को ही लिया है परन्तु इसमें सँदेह नहीं कि इन कवियों ने वात्सल्य और शृंगार रस के वर्णनों को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है।

सूरदास जी ने श्री मद्भागवत की कथा को गाया है। सूर सागर में भागवत के दशमस्कध की कथा का विस्तार पूर्वक वर्णन है। उसमें

कृष्ण जन्म से लेकर मथुरा जाने तक का वर्णन है। कृष्ण को भिन्न-भिन्न लीलाओं पर अनेकों सुन्दर पद लिखे हैं। कवि ने सरल ब्रजभाषा का बहुत सरसता के साथ प्रयोग किया है। "जिस प्रकार रामचरित का गान करने वाले कवियों में गो स्वामी तुलसीदास जी का स्थान सर्व श्रेष्ठ है उसी प्रकार कृष्ण चरित का गान करने वाले भक्त कवियों में भक्त सूरदास का है। वास्तव में यह हिन्दी काव्य गगन के सूर्य और चन्द्र हैं। हिन्दी काव्य इन्हीं के प्रभाव से अमर हुआ, इन्हीं की सरसता से उसका स्रोत सूखने न पाया।" (रामचन्द्र शुक्ल)

वात्सल्य के ही समान शृंगार के संयोग तथा वियोग दोनो पक्षों पर इस धारा के कवियों ने अनूठी कवितायें की हैं। जब तक कृष्ण गोकुल में रहते हैं उस समय तक तमाम जीवन संयोग-पक्ष में रहता है और मथुरा चले जाने पर वियोग-पक्ष प्रारम्भ हो जाता है। दान-लीला, माखन-लीला, चीरहरण लीला, रासलीला इत्यादि पर सहस्त्रों सुन्दर पद इस धारा के कवियों ने लिखे हैं। शृंगार वर्णन में भाव और विभाव पक्ष दोनों का ही विस्तृत और अनूठा वर्णन कवियों ने किया है। राधाकृष्ण के रूप वर्णन का तो कुछ ठिकाना ही नहीं। कवियों ने काव्य सुलभ सभी उपमा उत्प्रेक्षा रूपक और अतिशयोक्तियों को समाप्त कर दिया है। प्रकृति-चित्रण भी कवियों ने किया है परन्तु वह स्वतन्त्र रूप से नहीं आ पाया है। कालिंदी कूल पर शरत चाँदनी का सजीव चित्रण मिलता है। कुंज वन का भी अच्छा वर्णन किया गया है। वियोग पक्ष में सूर और नंददास के भ्रमरगीत काव्य क्षेत्र में अपनी विशेषता रखते हैं।

अष्टछाप के कवियों के अतिरिक्त कृष्ण भक्ति शाखा में अन्य कई उल्लेखनीय कवि आते हैं जिनका उल्लेख करना यहां परमावश्यक है। हितहरिवंश, गदाधर भट्ट, मीराबाई, सूरदास, मदन मोहन, श्री भट्ट, व्यास जी, रसखान इत्यादि का इनमें विशेष स्थान है। मीरा और

-रसखान की सरसता सूर के अतिरिक्त अन्य कवियों में नहीं पाई जाती। इस प्रकार कृष्ण भक्ति शाखा के कवियो ने अपनी अमूल्य रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य के भडार को भरा है।

कृष्ण भक्ति-शाखा की विशेपतायें —

१ इस धारा के सूत्रधार वल्लभाचार्य हैं और पुष्टिमार्ग का प्रतिपादन करने के लिये अष्टछाप के कवियों ने उल्लेखनीय कार्य किया है।

२ इस धारा के कवियों ने सरस ब्रज भाषा में साहित्य सृजन किया है।

३ इस धारा के कवियों ने लोक-रंजकता से दूर भगवान के वात्सल्य और शृंगारिक रूप को ही लिया है।

४ इस धारा के कवियों ने अपने मत प्रतिपादन के लिये काव्य में गीत-प्रणाली को ही अपनाया है। प्रबन्धात्मकता इस धारा के कवियों मे नहीं मिलती।

५ इनके साहित्य मे वात्सल्य और शृंगारिक भावना प्रधान है और रागात्मक वृत्ति पर विशेष बल दिया गया है।

६. इस धारा के कवियों ने अनूठे पद गाये है और इनका प्रचार भक्तों पर बहुत हुआ है।

हिन्दी-साहित्य में रीति-काल

हिंदी साहित्य के इतिहासज्ञों ने रीति-काल का प्रारभ संवत् १७०० से माना है। हिन्दी काव्य अब प्रौढ हो चुका था। मोहनलाल मिश्र ने 'शृंगार-सागर' शृंगार सम्बन्धी और करुणेश कवि ने 'कर्णा भरण' और 'श्रुति-भूषण' इत्यादि ग्रंथ अलकार सम्बन्धी लिखे। इस प्रकार रस निरुपण होने पर केशव ने शास्त्र के सब अगों का निरुपण शास्त्रीय पद्धति पर किया। परन्तु हिन्दी साहित्य में केशव की 'कवि

प्रिया' के पश्चात ५० वर्ष तक कोई अन्य ग्रन्थ नहीं लिखा गया और ५० वर्ष बाद भी जो रीतिग्रन्थों की अविरल परम्परा चली वह केशव के आदर्शों से सर्वथा भिन्न एक पृथक आदर्श को लेकर चली।

केशव काव्य में अलकारो का प्रधान स्थान मानने वाले चमत्कारवादी कवि थे। काव्यागनिरूपण में उन्होंने हिन्दी पाठकों के सम्मुख मम्मट और उद्भट के समय की धारा को रखा। उस समय रस, रीति और अलकार तीनों के ही लिए अलकार शब्द का प्रयोग होता था। केशव की 'कवि-प्रिया' मे अलकार का यही अर्थ मिलता है। केशव के ५० वर्ष पश्चात् हिन्दी साहित्य मे जो परम्परा चली उसमें अलकार-अलकार्य का भेद परवर्ती आचार्यों के मतानुसार माना गया और केशव की अपनाई हुई धारा को वहीं पर छोड़ दिया गया। हिन्दी के अलकार ग्रथ 'चन्द्रालोक' और 'कुवलयानन्द' के आधार पर लिखे गये और कुछ ग्रन्थों में 'काव्य-प्रकाश' तथा 'साहित्य दर्पण' का भी अनुकरण किया गया। इस प्रकार सस्कृत साहित्य का सक्षिप्त उद्धरण हमें हिन्दी साहित्य में मिलता है।

हिन्दी साहित्य में रीति युग का प्रवर्तक हम इस लिये केशव को न मान कर चिंतामणि त्रिपाठी को मानते हैं। इन्होंने काव्य के सभी अगों का निरूपण अपने तीन प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्य-विवेक' 'कवि कुल-कल्पतरु' और 'काव्य-प्रकाश' द्वारा किया। इन्हों ने छन्द-शास्त्र पर भी एक पुस्तक लिखी है। चिन्तामणि त्रिपाठी जी के पश्चात् तो एक प्रकार से हिन्दी साहित्य में रीति-ग्रन्थों की बाढ़ ही आ गई और कवियों ने कविता ही केवल इस लिये आरम्भ कर दी कि उन्हें रीति ग्रन्थ लिख कर उनमें उदाहरण देने होते थे। अलकारों अथवा रसों के लक्षण उन कवियों ने अधिकतर दोहों में लिखे हैं और फिर उनके उदाहरण कवित्त या सवैयों में दिये हैं। सस्कृत साहित्य में कवि और आचार्य पृथक्-पृथक् रहे हैं परन्तु हिन्दी साहित्य में कवियों ने ही

आचार्य बनने का दावा किया और फल यह हुआ कि उनमे से अनेकों आचार्य तो बन नहीं पाये और उन्हे अपनी कविता के यश से भी हाथ धोने पडे और दूसरी ओर आचार्यत्व के लिये जिस सूक्ष्म विवेचना की आवश्यकता होती है उसका उचित विकास साहित्य मे नहीं हो पाया। यही कारण है कि इस काल मे न तो कोई तुलसी और सूर की टक्कर का कवि ही हो पाया और ना ही कोई प्राचीन सस्कृत आचार्यों की टक्कर का आचार्य। इस काल मे गद्य का विकास न होने के कारण भी आचार्य लोगों को नये नये सिद्धातों के निरुपण पद्य मे करने मे कठिनाई होती थी और इसी लिये विषयो की उचित मीमाँसा न हो पाई और न ही उन पर उचित तर्क-वितर्क हुआ।

इस लिये इस काल के सभी कवियों को जिन्होने रीति-ग्रन्थ लिखे है हम आचार्यों की श्रेणी मे नही रख सकते। पूर्ण आचार्य न होने के कारण इन कवियो के ग्रथ भी अपर्याप्त लक्षण-सहित्य शास्त्र का ज्ञान कराते है। कही-कही पर तो अलंकार रस और रीतियो का स्वरूप भी ठीक-ठीक प्रकट नहीं होता। काव्य के दो भेदो श्रव्य और दृश्य में से दृश्य को तो आचार्यों ने छोड ही दिया है।

काव्यॉगों का विस्तृत विवेचन दास जी ने 'काव्य-निर्णय' में किया है। दास जी ने अलकारो पर भी प्रकाश डाला है और अंत्यानुप्रास पर जो कि सस्कृत साहित्य मे नहीं मिलता और हिंदी साहित्य मे प्रारम्भ से मिलता है, अपनी पुस्तक मे विचार किया है। रीति-ग्रथो के लेखक भावुक कवि थे इस लिए उनके द्वारा एक महत्वपूर्ण कार्य भी इसके क्षेत्र में प्रतिपादित हुआ। उन्हों ने रस और अलकारों के बहुत सरस और सुन्दर उदाहरण अपनी कविताओं मे प्रस्तुत किये है। इस दिशा मे इन कवियो ने सस्कृत साहित्य को भी पीछे छोड दिया है। इन कवियो का झुकाव अलकारो की अपेक्षा नायिका-भेद की ओर अधिक रहा है। शृगार रस की मुक्तक रचना इस समय में—

पराकाष्ठा को पहुँच गई और इस काल ने बिहारी जैसा अनूठा कवि हिन्दी साहित्य को प्रदान किया। इस काल के प्राय सभी ग्रन्थ नायिका-भेद के ग्रन्थ हैं और उनमे कृष्ण तथा राधा को ही लेकर कविता लिखी गई हैं। शृंगार रस का आलम्बन, नायिका और वह भी विशेष रूप से राधा ही रही है। इस काल मे केवल नखशिख वर्णन पर ग्रन्थ लिखे गये हैं।

इस काल में साहित्य का विस्तृत विकास नहीं हो पाया। प्रकृति की अनेक रूपता और जीवन की विस्तृत व्याख्या की ओर कवियों का ध्यान गया ही नही। कवि केवल नायक और नायिका के शृंगार में ही सीमित हो गया। कृष्ण-भक्ति शाखा के कवि लोक को तो पहिले ही भुला चुके थे परन्तु इस काल मे आकर कृष्ण भक्ति के आलम्बनों को लेकर शृंगारिक वासना की पूर्ति के लिए उन्हें विस्तृत क्षेत्र मिल गया। काव्यों का क्षेत्र सीमित होगया, वाक्य धारा थमगई, जीवन की अनेक रूपता नष्ट हो गई, भाषा, शैली और विचार सीमित हो गये।

रीति-काल मे सैंकड़ों कवियों द्वारा परिमार्जित होकर भाषा पहुँची थी, उसे उस समय व्याकरण द्वारा व्यवस्थित हो जाना चाहिए था परन्तु यह नहीं हो पाया। भाषा में कोई स्वच्छता नहीं आई और यहाँ तक कि वाक्यदोष भी दूर नहीं हुए। शब्दों का तोड़ना मरोड़ना भी ज्यों का त्यों चलता रहा। इस काल के प्राय सभी कवियों की भाषा सदोष है। इस काल के कवि ब्रज और अवधी का अपनी इच्छा द्वारा सम्मिश्रण कर देते थे। इस सम्मिश्रण के कारण भी भाषा परिमार्जित और व्यवस्थित रूप धारण नहीं कर सकी।

चिंतामणि त्रिपाठी, महाराज जसवन्तसिंह, बिहारी, मण्डन, मतिराम, कुलपति, सुखदेव, कालिदास त्रिवेदी, देव, दास, तपोनिधि, पद्माकर, भट्ट इत्यादि इस परंपरा के प्रधान कवि हैं। इनके अतिरिक्त भी

इस काल में बहुत से कवि हुए हैं। जिन्होने अन्य विषयों पर भी कविता की हैं परन्तु इस काल मे प्रधानता इसी प्रकार के कवियो की रही है। इसी लिए इस काल को रीतिकाल नाम दिया गया है।

रीत काल की विशेषतायें —

१ इस काल का प्रारम्भ चिंतामणि त्रिपाठी से होता है।

२ इस काल मे शृंगार प्रधान मुक्तक कवितायें लिखी गई हैं। प्रबन्ध काव्य भी लिखे गये परन्तु वह विशेष उल्लेखनीय नहीं हैं।

३ इस काल में भी वीर गाथा काल की भाँति कवि लोग आश्रयदाताओं के यहा रहते थे। इस लिये उनमे भक्ति कालीन कवियो की स्वाभाविकता और स्वच्छदता का सर्वथा अभाव हो गया था।

४. इस काल में कवि आचार्य हो गये थे।

खड़ी बोली और गद्य का विकास

हिन्दी साहित्य के इतिहासज्ञों ने जो काल विभाजन किया है उसके आधार पर हिन्दी साहित्य मे गद्य-युग का प्रारम्भ सवत् १९०० से होता है। यह अ गरेजी शासन-काल था, इसलिये जब अन्य देशों में युग-परिवर्तन हुआ और पद्य का स्थान गद्य ने लिया तो हिन्दुस्तान की अपनी भाषा हिन्दी के लिए ऐसा करने मे समय लगा। इसका प्रधान कारण यह था कि सभी सरकारी कामो मे अ गरेज़ी का प्रयोग होता था और इस लिये नौकरी पाने के इच्छुक पाठक केवल अ गरेजी ही पढ़ना पसद करते थे। शासन-सत्ता हिन्दी का कोई महत्व नहीं समझती थी और प्रजा भी इसे लाभदायक न मानकर इसकी ओर ध्यान न देती थी। हिन्दी और उर्दू के कुछ मदरसे यहाँ थे अवश्य, परन्तु यह अनाथाश्रमों से कम नही थे। लार्ड मैकाले ने भारत में अंगरेजी का प्रचार किया। १८३९ ई० मे अदालतो की भाषा उर्दू बनी। इससे जनता को अपनी बोलचाल की भाषा के कुछ निकट आने का अवसर

तो प्राप्त हुआ परन्तु अपनी वास्तविक भाषा का आभास उन्हें अभी प्राप्त नहीं हो सका। उर्दू जनता के साहित्य की भाषा से पृथक थी और इस लिये वह भी जनता द्वारा अंगरेजी की भाँति केवल काम निकालने के लिये अपनाई गई।

खड़ी बोली, जिस पर उर्दू और फारसी का प्रभाव था रेखता कहलाई। मुगल साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर दिल्ली आगरे का प्रभुत्व नष्ट हो गया। यहाँ के कवियों ने लखनऊ और मुर्शिदाबाद में जाकर आश्रय लिया। इनके साथ खड़ी बोली भी वहा पहुंची और प्रचारित हुई। यह उर्दू न होकर साधारण बोलचाल की भाषा थी। रीति काल की कविता का युग जीवन की रंगीनियों के साथ समाप्त हुआ और वास्तविकता ने अपना पैर जमाया। वास्तविकता के स्पष्टी-करण के लिये एक स्वच्छ भाषा की आवश्यकता थी और वह भी गद्य के रूप में। आने वाले युग मे परिवर्तित विचारों का अवधी और ब्रज साथ न दे सकीं।

यों तो खड़ी बोली और गद्य के उदाहरण यत्र-तत्र पिछले युग में भी मिलते हैं, परन्तु उस समय यह भाषा काव्य-भाषा न होने के कारण साहित्यकों द्वारा नहीं अपनाई गई। हिन्दी गद्य के चार प्रवर्तक माने जाते हैं। मुंशी सुखलाल जी, लल्लू लाल जी, सदल मिश्र और इंशा अल्लाखाँ। इन विद्वानों ने हिन्दी में सर्वप्रथम गद्य लिखी, किसी की भाषा में पूर्वीपन और संस्कृत मिश्रित पदावलि थी तो किसी ने उसमें ब्रज की पुट दे रखी थी, किसी ने फारसी के शब्दों की झड़ी लगा रखी थी तो किसी ने उसमें मुहावरे और अन्त्यानुप्रास भर कर उसे रोचक बनाने का प्रयत्न किया था।

इन चार महानुभावों के अतिरिक्त गद्य के प्रचार में ईसाई धर्म और आर्य समाज ने भी काफ़ी सहयोग दिया। ईसाई पादरियों को अपने मत के प्रचार के लिये हिन्दी सीखनी पड़ी और इस प्रकार

हिन्दी का भी प्रचार हुआ। बाइबिल का खड़ी बोली में अनुवाद हुआ। स्वामी दयानन्द जी ने अपना प्रधान ग्रन्थ 'सत्यार्थ-प्रकाश' हिन्दी गद्य में लिखा। इसके पश्चात् राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह जी का समय आता है। इस काल में भी हिन्दी प्रचार पर काफी बल दिया गया।

इस समय तक केवल खड़ी बोली गद्य का प्रारम्भिक काल चल रहा था, जिसमें किसी विशेष साहित्य का सृजन नहीं हुआ और ना ही कोई प्रतिभाशाली लेखक ही उस काल का मिलता है,जो कुछ नमूने मिलते हैं वह गद्य के उत्थान काल के होने के कारण हिन्दी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। अब हिन्दी गद्य के उत्थान मे दूसरा युग भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का आता है। भारतेन्दु जी ने भाषा-क्षेत्र में जिस मार्ग का अनुसरण किया है वह राजा शिव-प्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह का मध्यवर्ती मार्ग था। इन्होंने भाषा मे उन सभी शब्दो का प्रयोग किया जिन्हें भाषा पचा सकती थी। न इन्हे फार्सी से कोई द्वेष था और न भाषा को संस्कृत-गर्भित बनाने मे कोई रुचि। तत्सम शब्दो की अपेक्षा तद्भव शब्द आप अधिक प्रयोग मे लाये है। भारतेन्दु जी की प्रतिभा सभी दिशाओं म समान थी इसलिए आपने सभी प्रकार के साहित्य का सृजन किया है। नाटक, गद्यलेख, कविता और विविध विषयों पर आपने लिखा है। प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बाबू बाल मुकुन्द, बद्री नारायण चौधरी तथा अम्बिका प्रसाद व्यास इस काल के प्रमुख लेखक हैं। यह काल भाषा-निर्माण के लिए जितना उल्लेख-नीय है उतना ही साहित्य-निर्माण के लिए भी है। शुद्ध व्यवस्थित भाषा न होने के कारण ठोस साहित्य का सृजन इस काल में भी कम अवश्य हुआ, परन्तु उसका सर्वथा अभाव नहीं कहा जा सकता। इस काल में बँगला और अँग्रेजी साहित्यों से काफी अनुवाद हुए। गद्य-

लेख भी इस काल में लिखे गये और पत्र-पत्रिकायें भी निकलीं जिनमें उनका जोर रहा। यह समय हिन्दी प्रचार के आन्दोलन का समय था, इस लिये इस काल से हम ठोस साहित्य की आशा भी नहीं रख सकते।

इसके पश्चात् हमारे सामने महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का काल, जिसे नवीन युग कहते है, आता है। इस काल में हिन्दी गद्य ने व्यवस्थित रुप धारण किया और द्विवेदी जी के परिश्रम द्वारा भाषा को परिमार्जित करने में बहुत सहयोग मिला। भाषा को शुद्ध सुसंस्कृत रूप दिया, व्याकरण की अशुद्धियाँ दूर कीं, वाक्य दोषो को निकाला, विचार-शील लेखकों को हिन्दी लिखने पर मजबुर किया, भाषा के कोष मे शब्दावलि की कमी पूरी की, हिन्दी मे नये लेखकों को जन्म दिया। यह सभी दिशाओं मे अबाध-रूप से होना प्रारम्भ हो गया। नाटक, कहानी और उपन्यास, समालोचना, निबन्ध, जीवनियाँ, इतिहास, गद्य-काव्य, नागरिक शास्त्र, यात्रायें, दर्शनशास्त्र, विज्ञान, भाषा विज्ञान, चिकित्सा- सभी विषयों पर ग्रंथ लिखे गये। गद्य का परिमार्जन और व्यवस्था होने की देर थी कि लेखकों ने अपनी लेखनियों को उठा लिया और साहित्य भंडार को भर दिया। जयशंकर प्रसाद जैसे नाटककार, देवकीनदन खत्री और मुंशी प्रेमचन्द जैसे कहानीकार और उपन्यासकार, प० पद्मसिंह तथा रामचन्द्र शुक्ल जैसे समालोचक, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल और गुलाबराय एम० ए० जैसे निबन्धकार, हिन्दी साहित्य में पैदा हुए जिन्होंने सुन्दर गद्य लिख कर पठन-पाठन के लिये पर्याप्त पुस्तकें हिन्दी साहित्य को प्रदान कीं। इस प्रकार यह नवीन-काल भाषा और साहित्य दोनों की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। इस काल में गद्य-साहित्य अपनी सभी दिशाओं में पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुआ और आज हिन्दी जब कि वह राष्ट्र-भाषा घोषित होचुकी है उसमें सभी प्रकार का साहित्य दिन प्रतिदिन दिने दूनी

और रात चौगुनी प्रगति के साथ लिखा जा रहा है। हिन्दी का गद्य-साहित्य आज किसी भाषा से पिछड़ा हुआ नहीं कहा जा सकता। उसमे सभी विषयो की पुस्तके अच्छे-अच्छे विचारवान लेखकों द्वारा लिखी हुई मिलती हैं और जिन विषयों पर अभी पुस्तकों की कमी है, उस कमी को हिन्दी के प्रकाशक बहुत शीघ्र पूरा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। आशा है निकट भविष्य मे हिन्दी का गद्य-साहित्य अंग्रेजी और रूसी साहित्य के समान विश्व-साहित्यों की श्रेणी में रखा जा सकने योग्य बन जायेगा। प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषी को इसके लिये भरसक प्रयत्न करना चाहिये।

खडी बोली और उसके गद्य की विशेषताये :—

१. गद्य-निर्माण का प्रारम्भिक-युग, सदासुख लाल, इंशाअल्ला इत्यादि का समय।
२ भारतेंदु-युग, गद्य की ओर प्रगति, भाषा का प्रसार और व्यवस्थित साहित्य सृजन।
३. द्विवेदी युग, व्यवस्थित भाषा में हिन्दी-गद्य की सब शाखाओं का प्रसार, प्राय सभी विषयों पर विद्वानो का ध्यान देना, और सुन्दर साहित्य का सृजन करना।
४ हिन्दी गद्य का भविष्य।

हिन्दी कविता का नवीन युग

हिन्दी साहित्य का नवीन युग भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्रजी के काल से प्रारम्भ होता है। इस युग को वर्तमान युग या गद्य-युग भी कहते है। गद्य-युग कहने का यह तात्पर्य कभी नही समझना चाहिये कि इस काल मे पद्य का सर्वथा लोप हो गया और उसका स्थान गद्य ने ले लिया। इस युग में गद्य-साहित्य के साथ-साथ पद्य-साहित्य भी

अवाध-रूप से प्रवाहित होता चला आ रहा है। इतिहास के विद्वानों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि साहित्य लोक और काल का प्रतिबिम्ब होता है। जिस काल में जो साहित्य लिखा गया है वहाँ की व्यापक परिस्थितियों का प्रभाव प्रधान रूप से उसपर पड़े बिना नहीं रह सकता। हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डाल कर देखिये कि राजपूतों के उच्छृ खल काल में वीर गाथाओं का साहित्य प्रस्फुटित हुआ, मुसलमानी राज्य-काल में निराश्रित जनता ने भक्ति का आश्रय लिया और देश मे भक्ति-साहित्य का प्रचार हुआ, और फिर वर्तमान-काल मे जब संसार बदल रहा था तो भारत भी दास नहीं रह सकता था, इस मूल सत्य को पहिचान कर भारत के आत्मसम्मानी नेताओं ने भारत की स्वतंत्रता के आंदोलन प्रारंभ किये और जनता में देश-प्रेम और स्वतन्त्रता की भावना जाग्रत हुई, जिसके फलस्वरूप साहित्य मे भी राष्ट्रीयता की लहर उठी और वह कवियों की वाणी बन कर जनता के हृदयों में छागई। यह पहिली प्रवृत्ति है वर्तमान युग की कविता की। इस प्रवृत्ति के अ तर्गत भारतेंदु युग से लेकर आज तक अनेकों कवियों ने सुन्दर काव्य की रचना की है। यहाँ हम मैथिली शरण जी की भारत भारती और सुभद्रा कुमारी चोहान की झांसी की रानी और माखनलाल चतुर्वेदी की सुमन के प्रति कविता को नही भुला सकते।

प्राचीन युग से एक दूसरा विशेष परिवर्तन भाषा के दृष्टिकोण से है। इस काल की कविता का विशेष साहित्य खड़ी बोली में लिखा गया है। एक प्रसिद्ध प्राचीन मत था कि खड़ी बोली में सरस कविता नहीं लिखी जा सकती। वर्तमान युग के प्रसिद्ध कवि जयशकर प्रसाद, मैथिली शरण गुप्त, आचार्य निराला, सुमित्रानंदन पत, महादेवी वर्मा कविवर बच्चन इत्यादि ने इस प्राचीन मत की धज्जियाँ बिखेर कर उसे एक उपहास की वस्तु बना दिया। गीत गोविंद की सरसता लेकर

हिन्दी खडी बोली मे गीत लिखे गये और कवितायें रची गईं। यहा कामायिनी का एक सरस पद देखिये।

तुमुल कोलाहल कलह में मैं हृदय की बात रे मन!
विकल होकर नित्य चचल, खोजती जब नींद के पल,
चेतना थक सी रही तब, मै मलय की वात रे मन—
जहा मरू ज्वाला धधकती, चातकी धन को तरसती
उन्हीं जीवन घाटियों मे मैं सरस बरसात रे मन।

इस काल में कविता विभिन्न धाराओं मे बही है। कुछ प्राचीन प्रणाली के भी कवि इस काल में हुए हैं परन्तु कोई विशेप महत्वपूर्ण पुस्तक या कविता उन कवियों की नहीं मिलती। इसीलिये विशेप उल्लेखनीय नहीं है। रत्नाकरजी इस काल के प्राचीन प्रणाली के उल्लेखनीय कवि हैं। खडी बोली साहित्य के इस युग मे कई नवीन वादो का प्रादुर्भाव हुआ। इन वादों मे दो वाद छायावाद और प्रगतिवाद बहुत महत्वपूर्ण हैं। वैसे पलायन वाद, हालावाद इत्यादि कुछ फुटकर वाद भी सामने आये परन्तु उनकी कोई महत्वपूर्ण रूप-रेखा नही बनसकी।

यह काल बुद्धिवाद के विकास का है इसमे रूढिवाद के लिये कोई स्थान नहीं। अंग्रेज़ी साहित्य के पठन-पाठन से स्वतन्त्रता के विचारों का प्रचार हुआ। हिन्दी कविता केवल शृंगार, भक्ति और रीतिकालीन प्रवृत्तियों के सीमित क्षेत्र से निकल कर स्वतत्र मानव विश्लेपण के क्षेत्र में आ गई। मानव-जीवन की कठिनाइयो और परिस्थितियो के अन्दर साहित्य ने झाका और उनके विश्लेपण की ओर अग्रसर हुआ। अंग्रेज-राज्य इस समय व्यवस्थित था, इस लिये जनता के विचारो में भी वीर गाथा काल की उच्छृंखलता नहीं थी। इस लिये साहित्य मे भी स्थिरता आई और काव्य मे जीवन की अनेक समस्याओ के साथ अनेक-रूपता भी आई। साहित्य का क्षेत्र परिमित न रह कर विस्तृत हो चला। जातीयता और समाज-सुधार की ओर लेखको का ध्यान

गया। काव्य ने सादगी सौंदर्य को पहिचाना और रीतिकालीन प्रवृत्ति का एक दम ह्रास हुआ।

खड़ी बोली कविता की कुछ विशेषतायें हैं जो पुरानी किसी भी भाषा में नहीं पाई जाती। इसमे हमे सस्कृत छदों का प्रयोग मिलता हैं। ब्रज भाषा के छद इसके लिये उपयुक्त नही हो सके। शब्दोंद्भव रूप प्रयोग मे न जाकर कवि तत्सम रूप प्रयोग मे लाये हैं। कविताओं में जो तुकों की प्रधानता आ गई थी इस युग के कवियों ने अपने को उससे मुक्त कर लिया और बहुत सुन्दर-सुन्दर अतुकाँत कवितायें लिखीं। इस धारा को प्रवाहित करने का श्रेय महा कवि निराला को है।

नाथूराम शर्मा, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिली शरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त यह एक धारा के कवि है। इन कवियो ने विविध विषयों पर सफलता पूर्वक लेखनी उठाई है और हिन्दी साहित्य को 'साकेत', 'प्रिय-प्रवास' और 'भारत भारती' जैसी अमूल्य रचनायें प्रदान की है। माखन लाल चुतुर्वेदी, 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान इत्यादि ने राष्ट्रीय कवितायें लिखी है।

तीसरी धारा के कवियों में जयशकर प्रसाद, निराला, पत, महादेवी वर्मा इत्यादि के नाम बहुत उल्लेखनीय हैं। कामायिनी, और 'यामा' इस धारा की अमूल्य देन हैं और हिन्दी साहित्य को और अनेकों अन्य पुस्तकें भी। पल्लव, गुंजन, अनामिका, यह सभी सुन्दर कविताओं के सग्रह हैं जिनमे अपनी-अपनी विशेषता वर्तमान है।

कविवर बच्चन ने हालावाद की अपनी पृथक धारा प्रवाहित की परन्तु वह उसी तक सीमित नहीं रहे और उन्होंने प्रगतिवादिक कवितायें तथा कुछ-कुछ छायावादी जैसी कवितायें भी लिखी हैं।

इस काल का कवि भक्ति काल की स्वतंत्रता अपने में रखता है और वीर गाथा काल की स्वच्छन्दता और रीति-काल की रसिकेता। इस प्रकार तीनों कालों का निचोड हमें इस कालमें मिलता है। इस काल

का कवि किसी का आश्रित नहीं, उसे किसी की प्रशंसा नहीं करनी है। वह अपनी इच्छा का स्वच्छंद पुजारी है। जैसा चाहता है लिखता है, उस पर किसी का कोई अंकुश नहीं। यही कारण है कि आज का साहित्य बंधन-विहीन साहित्य है जो किसी काल, विषय अथवा भावना के साथ नहीं बाँधा जा सकता। वह मुक्त है और पूर्ण वेग के साथ अबाध रूप से सर्वोन्मुखी होकर प्रसारित हो रहा है। संसार के सभी उच्चतम साहित्यिकों के साथ-साथ आशा है कि निकट भविष्य में ही हिन्दी कविता-साहित्य भी यदि कुछ अन्य साहित्यों से पीछे भी हो तो उनके साथ और उनसे भी आगे बढ़ जायेगा।

कविता के नवीन युग की विशेषतायें —

१. भारतेन्दु-काल से ही इसका भी प्रारम्भ होता है।
२. रूढ़िवाद समाप्त हो गया और विचारों में स्वच्छंदता आगई।
३. साहित्य ने राष्ट्रीयता को अपनाया और समय के प्रचलित वादों को उचित स्थान दिया।
४. कवि किसी पर आश्रित नहीं रहा, उसने स्वतंत्र-रूप से अपने विचारों का प्रदर्शन किया।
५. ब्रज भाषा का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया। छंद संस्कृत से लिये और भाषा तद्भवता की ओर से हटकर तत्समता की ओर बढ़ी।

हिन्दी में नाटकों का विकास

हिन्दी में नाटक-साहित्य मौलिक रचनाओं द्वारा न आकर अनुवादों द्वारा प्रस्फुटित हुआ है। मुसलमान-काल में लेखकों का ध्यान इस साहित्य की ओर इसलिये नहीं गया कि देश का वातावरण अव्यवस्थित होने के कारण इसके प्रतिकूल था। मुसलमानों ने धार्मिक दृष्टि से भी इस प्रकार के साहित्य को नहीं पनपने दिया। केवल कुछ रियासतों में अवश्य नाटकों का प्रचार था और वहाँ पर रंगमंच भी थे।

गद्य का विकास न होने के कारण भी नाटक लिखने की ओर लेखको की अधिक रुचि नहीं हुई।

यों भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से पहिले भी दो-चार नाटक हिन्दी मे उपलब्ध हैं परन्तु वह रगमच पर सफलता पूर्वक नही लाये जा सकते। इसलिये भारतेन्दु बाबू को ही हिन्दी का प्रथम नाटककार मानते हैं। आपके छोटे बडे १८ नाटक मिलते है। यह मौलिक तथा अनुवाद दोनों प्रकार के हैं। 'मुद्राराक्षस' और 'भारत दुर्दशा' आपके प्रधान नाटक हैं। भारतेन्दु बाबू ने अपने नाटक प्राचीन नाट्यशास्त्र के आधार पर लिखे हैं और परन्तु उन पर बङ्गला की प्रणाली का भी प्रभाव स्पष्ट है। रगमच के विचार से भी यह सफल नाटककार सिद्ध हुए हैं।

'केटोकृतात' के लेखक श्री तोताराम, 'रणधीर-प्रेम' के लेखक श्री लाला श्री निवासदास, केशोराम, गदाधर, भट्ट बद्रीनारायण चौधरी, राधाकृष्ण दास जी, अम्बिकादत्त व्यास, सत्यनारायण कविरत्न, राजा लक्ष्मणसिंह, राधेश्याम इत्यादि इस काल के प्रमुख नाटककार है।

अन्य क्षेत्रों की भाँति प्राचीन प्रणालियाँ परिवर्तित होने लगीं। यह नाटक का दूसरा युग आया। नाटकों मे पात्र देवताओं के स्थान पर साधारण साँसारिक मनुष्य बनने लगे। नाट्यशास्त्र के व्यर्थ के नियमों से भी नाटककारो ने अपने को मुक्त किया। रगमच के महत्व को समझ कर नाटक ऐसे लिखे जाने लगे जिन्हें मंच पर प्रदर्शित किया जा सके। पद्य की अपेक्षा नाटको मे गद्य का अधिक प्रयोग हुआ। लेखकों ने सामाजिक कथाओं के आधार पर रचनायें की और राष्ट्रीयता को भी नहीं भुलाया। इस काल में समस्यात्मक नाटक लिखे गये।

इस दूसरे युग के प्रतिनिधि नाटककार हैं श्री जयशकर प्रसाद जी। आपने प्राचीन रुढ़िवाद के विरुद्ध लेखनी उठाई और पूर्ण सफलता के

साथ प्राचीन संस्कृति का प्रतिपादन करते हुए नाट्यशास्त्र के रूढ़िवाद को आपने अपने नाटको में स्थान नहीं दिया। आपके नाटको के अधिकतर कथानक भारत के प्राचीन इतिहास पर अधारित हैं। काल्पनिक नाटकों मे भी प्राचीन भारत की सभ्यता झाकती दिखलाई देती है। अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, स्कदगुप्त इत्यादि इनके प्रसिद्ध नाटक हैं। जयशकर प्रसाद जी के साथ भी नाटक-साहित्य में सबसे बडा दुर्भाग्य यह रहा कि उनके नाटक मंच के विचार से सफल नही बन पाये। उनका महत्त्व केवल साहित्यिक क्षेत्र में ही प्रसारित होकर रह गया। जयशकर प्रसाद जी ने पात्रों का चरित्र-चित्रण बहुत मनोवैज्ञानिक ढंग पर किया है और उनके नाटकों मे अ तर्द्वन्द्वो का समावेश प्रचुरता के साथ मिलता है।

इस काल मे नाटक-साहित्य की एक प्रकार से भाषा ही पलट गई और एक नई विचार-धारा के साथ मुक्त कवियों ने नाटक-रचना मे स्वतन्त्रता पूर्वक भाग लिया। नाट्य शास्त्र के बधन ढीले पडने पर नाटक साहित्य मे स्वाभाविकता को स्थान मिला और रगमच को विचार में रखते हुए रचनायें की गई। इस कार्य मे नाटक कपनियों ने भी सहयोग दिया परन्तु उनका सहयोग मच तक ही सीमित रह गया साहित्यिक क्षेत्र मे नहीं आ पाया। इसका प्रधान कारण यही रहा है कि नाटक कम्पनी तथा सिनेमा वालो ने अच्छे साहित्यिको को नहीं अपनाया और अच्छे साहित्यिकों ने उस गदगी मे जाने से सकोच किया और जो गये भी, वह उस वातावरण को अपने को अनुकूल नहीं बना सके।

बद्रीनारायण भट्ट, माखन लाल चतुर्वेदी, मिलिन्द जी, गोविन्दवल्लभ पत, हरिकृष्ण प्रेमी, जी० पी० श्री वास्तव, रामकुमार वर्मा सुमित्रानंदन पन्त, सेठ गोविन्ददास तथा उदयशंकर भट्ट इत्यादि इस कला के प्रमुख नाटककार हैं। आज का नाटक-साहित्य काफी

उन्नति कर रहा है और भविष्य मे उन्नति की सम्भावना है। बँगला और अंग्रेजी के अनुवादों ने भी हिंदी साहित्य को सुन्दर पुस्तकें प्रदान की हैं और उनका यहां की मौलिक रचनाओं पर काफी प्रभाव पड़ा है। सजीव सामाजिक-चित्रण, मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण, अभिनय योग्य कथानक तथा भाषा,सरलता के साथ गीतो का माधुर्य, बस यही इस युग के नाटकों की विशेषताए हैं जिनके कारण इस साहित्य को समाज के पाठकों ने प्रोत्साहन दिया। हिंदी नाटक-साहित्य का भविष्य बहुत आशा-पूर्ण है। नई से नई रचना साहित्य में आ रही है। लेखक अपनी अपनी विशेषताओं के साथ नाटक साहित्य का सृजन कर रहे हैं और गद्य के विकास ने उन्हें इस कार्य मे पर्याप्त सहयोग दिया है। सिनेमाओं मे भी अब अच्छे लेखक पहुचने लगे हैं। हरिकृष्ण प्रेमी, सुदर्शन, नरेन्द्र शर्मा, इत्यादि के नाम इस दिशा मे उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी नाटकों पर संक्षिप्त विचार —

१ संस्कृत और अंग्रेजी के अनुवाद हिन्दी में आये।
२ भारतेन्दु जी ने १८ नाटक लिखे।
३ नाटक-साहित्य प्राचीनता से नवीनता की ओर अग्रसर हुआ।
४ जयशंकर प्रसाद जी ने नाटक-युग में क्रांति पैदा कर दी।
५ नाटक-क्षेत्र में रंगमंच का महत्व बढ़ा और साथ २ जन-साधारण में नाटक साहित्य का प्रचार भी।

हिंदी गल्प और उपन्यास

हिन्दी गद्य का उत्थान हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने तीन कालों के अन्तर्गत विभाजित किया है। भारतेन्दु से पहिला काल, भारतेन्दु-काल और फिर द्विवेदी काल। गल्प और उपन्यास-साहित्य का प्रारम्भ हमें निबन्धों की भांति भारतेन्दु से पूर्व के काल में न मिल

कर उन्हीं के काल से मिलता है। भारतेन्दु बाबू से पूर्व जो कथायें मिलती भी हैं उनका साहित्यिक महत्व कुछ नही है ।

• नाटक-साहित्य की भाति कथा-साहित्य भी हिंदी मे सर्व प्रथम मौलिक रचनाओं द्वारा न आकर अनुवादों के ही रूप में आया। संस्कृत-साहित्य मे उपन्यास या कहानी के प्रकार का साहित्य नहीं मिलता। इसलिये सस्कृत से अनुवाद होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। प्रथम अनुवाद बंगला और अंग्रेजी से हुए परन्तु इनकी भाषा अधिक रोचक नही बन पाई क्योंकि उस समय तक भाषा मे ही रोचकता का अभाव था और वह धीरे २ सुधर रही थी। गदाधर-सिह, रामकृष्ण वर्मा, और कार्तिक प्रसाद खत्री इस काल के प्रधान अनुवादक थे।

लाला श्री निवास को हम हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास लेखक मानते हैं। आपके 'परीक्षा गुरु' उपन्यास का शिक्षित समाज में काफी आदर हुआ। इसके पश्चात् तो मौलिक तथा अनुवादों की हिदी मे झड़ी लग गई। बाबू राधाकृष्ण जी का "नि सहाय हिन्दू" बालकृष्ण भट्ट, का "नूतन ब्रह्मचारी" गोपालराम गहमर के बगला के अनुवाद, अयोध्यासिह उपाध्याय की "वेनिस का बांका" तथा देवकीनन्दन खत्री की 'चन्द्रकांता सन्तति" इस काल की प्रमुख रचनायें हैं।

इस काल मे उपन्यास केवल दिलचस्पी के लिये या चमत्कार प्रधानता के लिये ही लिखे गये। उनमे ना तो चरित्र-चित्रण ही किसी काम का है और ना सामाजिक समस्या और उस पर विवेचना ही। भाषा मे भी कोई विशेष आकर्षण नही है, केवल देवकीनदन खत्री की भाषा में प्रवाह अवश्य है और कथा की तारतम्यता तो उसकी विशेषता है। इसकाल के मौलिक उपन्यास उच्च कोटि के साहित्य की श्रेणी में नहीं रखे जा सकते। उनकी विदेशी अनुवादों

से कोई तुलना नहीं। देवकीनदन खत्री के अतिरिक्त किसी अन्य लेखक ने जनता को अपनी ओर आकर्षित नहीं किया।

इस काल के पश्चात हिंदी उपन्यासों तथा कहानियो का नवीन काल प्रारम्भ होता है और यह काल बहुत महत्त्व-पूर्ण भी है। इस युग का सचालक तथा प्रतीक हम मु शी प्रेमचन्द को मानते है। मु शी प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य के प्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने तिलस्म और अय्यारी को छोड कर सामाजिक समस्याओ के मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण की ओर ध्यान दिया। आपने हिन्दी के उपन्यास-साहित्य के अभाव को पहिचाना और अपने भरसक प्रयत्नो द्वारा उस अभाव की पूर्ति की। यहॉ हम कथा के इस युग को शैली के विचार से तीन धाराओं मे विभक्त करते हैं। इन तीनों के प्रवर्तक मु० प्रेमचद, जयशकर प्रसाद तथा पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हैं।

प्रथम धारा जो प्रेमचद ने बहाई उसकी भाषा विशुद्ध होते हुए भी अपने अन्दर से उर्दू के शब्दों को बिलकुल नही खो पाई। यह मुहावरेदार कुछ उर्दू-मिश्रित हिन्दुस्तानी का चलता स्वरूप है जो उपन्यासों के लिये उपयुक्त ही रहा और लोकप्रिय भी बन गया। इस भाषा में रवानी है और गाम्भीर्य भी। इस धारा के लेखकों में नवीनता अवश्य पाई जाती है परन्तु प्राचीनता का भी सर्वथा अभाव नहीं है। सामाजिक समस्याओं को लेकर इस धारा के लेखकों ने लेखनी उठाई है और सफलता-पूर्वक उन समस्याओं पर प्रकाश डाला है, परन्तु फिर भी इनकी लेखनी द्वारा समाज का वह स्पष्ट और सत्य चित्रण नहीं हो पाया, जो आज का समालोचक चाहता है। इस धारा के लेखकों के चित्रण बहुत लम्बे होते हैं और उन में वर्णनों की की भरमार रहती है। अंग्रेजी साहित्य के विक्टोरिया काल की झलक इनके साहित्य में मिलती है। सक्षेप मे कुछ कह जाने की प्रवृत्ति उनमें नहीं थी। इन लेखकों मे उपदेशात्मक प्रवृत्ति भी थी। मानो

लेखक होने के नाते उपदेशक होने का भार भी इन्होंने अपने सिर ले लिया था। उस धारा के प्रधान लेखक मुंशी प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ कौशिक प० सुदर्शन इत्यादि हैं।

दूसरी धारा को प्रचारित करने वाले थे बाबू जयशंकर प्रसाद हैं। इनके उपन्यास और कहानियो मे आदर्शवाद को प्रधानता दी गई है। इनके चित्रण बहुत सजीव और मार्मिक है परन्तु इनकी भाषा उपन्यासों और कहानियो के अनुकूल नही है। इनकी भाषा में तत्सम शब्दों का ही अधिक प्रयोग मिलता है इसलिए कम हिन्दी जानने वाले पाठकों मे आपकी रचनायें अधिक प्रसारित नहीं हो सकी। भावुकता इनकी रचनाओ मे कूट-कूट कर भरी थी। कही कहीं पर तो कहानियों में कविता का मिठास आजाता है और साथ ही साथ गाम्भीर्य भी। इनकी कथाओं मे बौद्ध-कालीन सस्कृति का चित्रण मिलता है। ग्रामीण दृश्यों का भी चित्रण है परन्तु बहुत कम। कथाओ मे कथनोपकथन अधिक मिलते है। चरित्र-चित्रण बहुत सजीव हैं। चडीप्रसाद जी हृदयेश इत्यादि इस धारा के अन्य लेखक हैं। इस धारा मे प्रवाहित होने के लिए पाडित्य की आवश्यकता थी और कथा लेखकों मे इसका अभाव होता है। इसलिए इस धारा मे बहने वाले बहुत कम लेखक-साहित्य मे पैदा हो सके। इस धारा के साहित्य का मूल्य साहित्य की दृष्टि से बहुत अधिक है।

तीसरी धारा जिसके प्रवर्तक उग्रजी थे बहुत चटपटी भाषा तथा विचारों के साथ साहित्य में आई। मनचले नौजवानो और प्रेम के पुजारियों ने इसका हाथो हाथ आगे बढ़कर स्वागत किया और इस धारा का प्रचार भी बहुत हुआ, परन्तु यह धारा हिन्दी साहित्य का कुछ अधिक हित नहीं कर सकी। इस धारा का साहित्य उच्चकोटि के साहित्य की श्रेणी मे नहीं आ सका और समाज के चरित्र को सुधारने तथा सामाजिक समस्याओ को सुलझाने में भी इसने कोई सहयोग

नही दिया । इस धारा के लेखको ने समाज के नग्न-चित्र प्रस्तुत किये हैं और जीवन की कमजोरियो को ज्यो का त्यों खोल कर रख दिया है। लेखको ने कमजोरियो को केवल खोलकर रख देना ही अपना कर्तव्य समझा। कोई सुझाव वह प्रस्तुत नही कर सके। इस धारा की रचनाओ मे गाम्भीर्य का अभाव रहा। यही कारण था कि इनकी रचनायें केवल एक ही वर्ग द्वारा अपनाई गई। प० उग्र, आचार्य चतुरसेन शास्त्री इत्यादि इस धारा के प्रमुख लेखक हैं।

इस प्रकार इन तीन धाराओं मे बहता हुआ साहित्य (उपन्यास तथा कहानी) उन्नति के पथ पर अग्रसर हुआ। आज के युग का हिन्दी कथा-साहित्य बहुत समुन्नत दशा में है और वह किसी भी अच्छे साहित्य के सम्मुख तुलना के लिए रखा जा सकता है। आज हिन्दी में कई बहुत अच्छे लेखक हैं जो इस साहित्य को निरतर उन्नति देने में जुटे हुए हैं और अपनी एक से एक अच्छी रचना पाठकों को प्रदान कर रहे हैं। इस साहित्य का भविष्य बहुत उज्ज्वल है।

हिन्दी गल्प और उपन्यासों की सक्षिप्त रूपरेखा —

१ भारतेन्दु-युग में अनुवाद तथा कुछ मौलिक उपन्यासों का प्रादुर्भाव।
२ द्विवेदी-युग में तीन प्रमुख धाराओं में विभाजित होकर आगे बढ़ना और उन्नति करना।
३ भविष्य बहुत उज्ज्वल है।

हिन्दी मे समालोचना साहित्य

यों तो समालोचनायें अपने पुरातन ढग पर बहुत दिनों से हिन्दी साहित्य मे चलती चली आ रही थीं, परन्तु आज के युग में समालोचना ने जो रूप धारण कर लिया है उसकी प्रथम झलक हमें भारतेन्दु

युग मे ही मिलती है। प्रारम्भिक समालोचनायें पुस्तकाकार रूप में न मिल कर पत्र-पत्रिकाओं मे ही मिलती हैं।

बद्रीनारायण चौधरी ने 'आनद कादम्बिनी' मे अपने कई समालोचनात्मक लेख लिखे। भारतेन्दु-युग में केवल यही समालोचनाये उल्लेखनीय हैं। इसके पश्चात् द्विवेदी जी का काल आजाता है, जब उन्होंने खोज खोज कर हिन्दी के लेखक और समालोचक पैदा किये। प० पद्मसिंह जी हिन्दी समालोचना-क्षेत्र मे एक नवीन शैली लेकर आये। उन्होंने इस क्षेत्र में एक क्राति पैदा कर दी और समालोचकों को एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया। प० पद्मसिंह जी हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत और अंग्रेज़ी के अच्छे विद्वान थे। यही कारण था कि आपने सभी साहित्यों का अच्छा अध्ययन किया था। आपने प्रथम बार हिन्दी साहित्य को तुलनात्मक समालोचना की झाकी दिखाई और वह बाद में इतनी प्रचारित हुई कि अनेकों समालोचकों ने उसे अपनाया। आपने विहारी सतसई की समालोचना की।

इसके पश्चात कृष्णविहारी मिश्र ने 'देव और विहारी', ला० भगवान दीन ने 'देव और बिहारी', विश्वप्रसाद मिश्र ने 'बिहारी वाग् विभूति', बस विहारी पर समालोचनाओ की झडी लग गई। इसी काल मे भुवनेश्वर नाथ मिश्र ने 'मीरा की प्रेम साधना' नामक एक समालोचनात्मक पुस्तक लिखी।

समालोचना का नया युग आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से प्रारम्भ हुआ। वर्तमान हिन्दी समालोचकों में शुक्ल जी का सर्वप्रथम स्थान है। तुलसीदास और जायसी की पद्मावत पर जो कुछ आपने लिखा है वहाँ विराम लगा दिया है। दूसरे समालोचक उलट-पलट कर उसी के चारो ओर घूम जाते हैं, कोई नवीन विचार प्रस्तुत नहीं कर पाते। शुक्ल जी की समालोचनाओं पर विदेशी प्रभाव है। आपका विषय का विश्लेषण पुराने ढग का न होकर नवीन ढंग का होता है।

आपने लेखक का कर्तव्य और उसके काव्य की सफलता दोनों विषयों की तुलनात्मक रूप से विवेचना की है। गम्भीर विषयो को सुलझाने के लिये शुक्ल जी ने उपयुक्त भाषा का प्रयोग किया है।

आज के युग में हिन्दी का समालोचना-साहित्य दिन प्रति दिन उन्नति करता जा रहा है और भविष्य में बहुत उन्नति की सम्भावना है। प्राय सभो प्राचीन ग्रन्थो पर विद्वानों ने लेखनी उठाई है और उनकी समालोचनायें करके उन्हे इस योग्य कर दिया है कि पाठक उन्हें पढ कर उचित अर्थ समझ सकें। बाबू श्यामसुन्दर दास जी, श्री व्यास जी, शातिप्रिय द्विवेदी जी, नरोत्तम प्रसाद नागर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पदूमलाल पन्नालाल बरशी इत्यादि लेखकों ने इस दिशा मे महत्व-पूर्ण कार्य किया है।

आज के युग मे समालोचना विश्लेषणात्मक ढग की होती है जिसमे रचना के प्रति किसी विशेष प्रतिपादन की दृष्टि को लेकर नहीं चला जाता वरन् उसके गुण और दोषो पर समुचित रूप से विचार किया जाता है। समालोचक का कर्तव्य है कि वह रचना को पाठकों के निकट पहुचाने मे सहयोग प्रदान करे और आज के हिन्दी साहित्य के समालोचक अपने इस कर्तव्य को निभाने मे पूर्ण-रूप से कटिबद्ध हैं। आशा है इस से हिन्दी साहित्य की उन्नति मे सहयोग मिलेगा।

समालोचना साहित्य संक्षिप्त में —

१ प्राचीन समालोचनायें।

२ प० पद्मसिंह जी ने तुलनात्मक समालोचना को जन्म दिया।

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने विश्लेषणात्मक समालोचना को जन्म दिया।

४ समालोचना-साहित्य उन्नति कर रहा है और इसका भविष्य बहुत उज्जवल है।

पृथ्वीराज-रासो पर एक दृष्टि

पृथ्वीराज-रासो वीरगाथा-काल का उसी प्रकार प्रतिनिधि ग्रंथ है जिस प्रकार चन्द्रवरदाई इस काल का प्रतिनिधि कवि। पृथ्वीराज रासो ६९ समय(अध्याय)का एक बृहद् ग्रंथ है यह ग्रंथ दोहा, तोमर, त्रोटक तथा रोला इत्यादि आर्य छन्दो मे लिखा हुआ है। इस ग्रंथ के लेखक के रूप में जिस कवि का नाम आता है वह महाकवि चन्द्रवरदाई ही हैं, परन्तु इस विषय मे बहुत से मतभेद भी हैं। पहिले हम ग्रंथ की विवेचना करके फिर उसकी प्रामाणिकता अथवा अप्रामाणिकता पर विचार करेंगे।

इस ग्रंथ मे आद्योपात कवि द्वारा महाराज पृथ्वीराज के यश का गान किया गया है। यह इस काल के ग्रंथ के लिये कोई नई बात नहीं थी। किसी न किसी का यह वर्णन होना तो उसमें आवश्यक ही था और फिर इसमें तो हिन्दुत्व के उस काल के प्रतीक का चरित्र-चित्रण था फिर क्यों न यह ग्रंथ हिन्दू जनता मे प्रसिद्धि पाता? कल्पना की उड़ानों के साथ २ उक्तियो और अलंकारों का इस ग्रंथ में विशेष प्रयोग किया गया है। अनेकों स्थलों पर युद्ध-कला का बहुत सजीव चित्रण मिलता है। वीर और वीभत्स का बहुत सुन्दर प्रवाह इस पुस्तक मे मिलता है।

समस्त ग्रंथ के पढने पर यह ज्ञात होता है कि वह ग्रंथ एक ही काल में नहीं लिखा गया। उसकी भाषा मे भी स्थान २ पर बहुत अन्तर है। कहीं पर विशुद्ध संस्कृत गर्भित हो जाती है तो कहीं पर उसमे ग्रामीणता आ जाती है कहीं पर उर्दू का सा ठाठ दिखलाई देने लगता है तो कहीं कबीर कालीन शब्दावलि मिल जाती है।

इस ग्रंथ की प्रामाणिकता अथवा अप्रामाणिकता एक ऐसा विषय है जिस पर हिन्दी के विद्वानों में सर्वदा से मत-भेद रहता चला आया

है। दोनों ही पक्ष में टक्कर के विद्वान हैं इसीलिए हम दोनों ही मतों को यहां पर प्रकट करेंगे। पहिला मत जो इस ग्रंथ को अप्रामाणिक मानता है उसे धारण करने वाले प्रधान व्यक्ति पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, श्यामलदास और मुरारीदास हैं। यह अपने मत की पुष्टि में उसी काल के काश्मीरी कवि जयानक चरित नाटक 'पृथ्वीराज-विजय' को प्रस्तुत करते हैं। इस नाटक के आधार पर यदि देखा जाए तो चन्द्रवरदाई इस काल के कवि ही नहीं ठहरते। जयराज ने अपने काल के सभी प्रसिद्ध कवियों का उल्लेख अपने ग्रंथ में किया है परन्तु उसमें कहीं पर भी राजकवि पृथ्वीराज का नाम नहीं आया। दूसरा प्रमाण जो वह देते हैं वह यह है कि इस काल के शिला-लेखों और दान-पात्रों पर जो संवत् दिया है वह रासो के संवतों से मेल नहीं खाता। तीसरी बात जो रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज ने गौरी को सात बार रण में हराया वह ऐतिहासिक सत्य नहीं है। चौथा प्रमाण इसकी भाषा है। भाषा ग्रंथ की स्थान स्थान पर बदल कर ऐसी जान पड़ती है कि इस ग्रंथ की पूर्ति कई कालों में जाकर हुई और जब जब यह लिखी गई उस काल की भाषा की छाप इसमें आ गई। पांचवां प्रमाण जो पहिलों से अधिक प्रबल है वह यह है कि इस ग्रंथमें चंगेज़ तथा तैमूर के भी नाम आते हैं और यह लोग भारत में इस काल के पश्चात आये हैं। छटा प्रमाण यह है कि 'पृथ्वीराज विजय' के आधार पर संयोगिता-हरण और पृथ्वीराज का अपने नाना की गोद जाना दोनों ही असत्य है। सातवां प्रमाण यह है कि हांसी के शिला लेख और 'पृथ्वीराज-विजय' के अनुसार पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूर देवी है यह बात रासो द्वारा प्रतिपादित नहीं होती।

जिस प्रकार अप्रमाणिक मानने वाले विद्वान तर्क देते हैं उसी प्रकार प्रामाणिक मानने वाले भी उनसे पीछे नहीं हैं। इस ग्रंथ की

प्रामाणिकता सिद्ध करने वाले प्रधान व्यक्ति हैं प० मोहनलाल विष्णु-लाल जी, मिश्र बन्धु और बाबू श्यामसुन्दर दास जी। इनका मत है कि यह ग्रंथ पूर्ण रूप से प्रामाणिक है, हाँ इतना अवश्य है कि अधिक पुराना होने कारण और साहित्य प्रेमियों द्वारा गाया जाने के कारण इसकी भाषा में कुछ अंतर अवश्य आ गया है। कश्मीरी नाटक्कार जयानक ने अपने 'पृथ्वीराज-विजय' में जो चन्द्रवरदाई के विषय में कुछ नहीं लिखा इसका कारण कलाकारों का आपस का द्वेष हो सक्ता है। सवतों के अन्तर के विषय मे मोहनलाल विष्णुलाल जी कहते है कि अन्तर सब सवतो मे ९० वर्ष का है और प्रत्येक स्थान पर यह अतर निश्चित होने से यह सिद्ध होता है कि कवि ने इसे जानबूझ कर रखा है। नन्द वशीय शूद्र राजाओ का ९० वर्ष का काल कवि ने अपने सवतों मे नहीं गिना। मिश्रबधु कहते हैं शाहबुद्दीन गौरी का सात बार हराया जाना मुसलमान इतिहासज्ञों द्वारा स्वीकार न करना उनकी कमजोरी है। बाबू श्यामसुन्दर दास जी चन्द को पृथ्वी-राज का समकालीन मानते हैं परन्तु उनका यह मत है कि इस ग्रथ का कुछ अंश प्रक्षिप्त अवश्य है, कितना है इसका आज निर्णय करना कठिन है। फारसी शब्दों के विषय मे ओझाजी की शका का समाधान मिश्र बन्धु इस प्रकार करते हैं कि मुसलमान यहाँ पहिले से ही आए हुए थे और चन्द क्यो कि लाहौर के निवासी थे इस लिये उनकी भाषा पर उनका प्रभाव पडे बिना नही रहा।

इस प्रकार दोनों ही मत प्रबल हैं। पृथ्वीराज-रासो इस काल की ही नहीं, हिन्दी साहित्य की एक अनुपम कृति है जिस पर साहित्य को गर्व है और रहेगा।

रासो पर संक्षिप्त विचारः—

१ यह डिंगल भाषा का सर्व प्रथम महत्त्वपूर्ण वीर महाकाव्य है।

२ इसमे पृथ्वीराज का यश-गान किया गया है।

३ इस ग्रंथ की अप्रामाणिकता अथवा प्रामाणिकता के विषय में दो प्रबल मत हैं ।
४ उपसंहार ।

पद्मावत पर एक दृष्टि

पद्मावत हिन्दी साहित्य की प्रेमाश्रयी शाखा का प्रधान ग्रंथ है। इस शाखा के सभी सिद्धान्तों का समावेश हमें पद्मावत में मिलता है। इस ग्रंथ के लेखक मलिक मुहम्मद जायसी हैं, जिन्होंने विशुद्ध अवधी भाषा में इस ग्रंथ की रचना की है। इसकी भाषा मानस जैसी परिष्कृत अवधी नहीं है उसमें ग्रामीणता की झलक आ जाती है। हिन्दी साहित्य में मिलने वाले प्रबन्ध काव्यों में रामचरित मानस के पश्चात् पद्मावत का ही स्थान है और प्रेम काव्यों में इसका स्थान सर्व प्रथम है। हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों का मत है कि कुछ दृष्टि कोणों से देखने पर यह हिन्दी साहित्य का सर्व-प्रथम ग्रंथ ठहरता है।

प्रेम तत्व का प्रतिपादन इस ग्रंथ में सूफी सिद्धान्तों के आधार पर किया गया है और आत्मा का सम्बन्ध स्त्री प्रेम के रूप में ही ईश्वरीय शक्ति के साथ कवि ने प्रदर्शित किया है। कवि का मत है कि सच्चे प्रेम से स्त्री प्रेम ही ईश्वरीय प्रेम में परिवर्तित हो जाता है यदि मनुष्य माया से अपने को मुक्त कर ले। पद्मावत का नायक रत्नसेन अपनी रानी नागमती रूपी माया से अपने को मुक्त करके अनेकों कष्टों को सहन करता हुआ पद्मनी को प्राप्त करने के लिये जाता है और उसके प्रेम में योगी हो जाता है। पद्मावती उसकी परीक्षा करके अपना प्रेम उसके ऊपर अर्पित कर देती है। यह सब सूफी सिद्धान्तों के आधार पर होता है। कवि ने भौतिक प्रेम से सफलता पूर्वक पारलौकिक प्रेम प्रदर्शित किया है।

ग्रंथ की कथा ऐतिहासिक है परन्तु कवि ने कल्पना के क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता से काम लिया है और काव्यात्मक सौंदर्य लाने में वह

बहुत सफल हुआ है। विरह का वर्णन जायसी की विशेषता है। रत्नसेन के चले जाने पर नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी साहित्य मे अपने ढग की अनोखी रचना है। इसकी तुलना केवल सूर के किये गये गोपियों के विरह-वर्णन से ही की जा सकती है परन्तु प्रबन्धात्मकता मे बंध कर भी जिस मुक्त-प्रवाह के साथ जायसी ने वर्णन किया है वह सराहनीय है। सूर और जायसी के लिए वर्णन मे साहित्यक सौदर्य का अतर नही, अतर केवल यह है कि सूर का वर्णन पूर्ण रूप से भारतीय ढग पर हुआ है, और जायसी का उर्दू ढग पर। विरह-वर्णन में अत्युक्तियां अवश्य है परन्तु जायसी की शैली और वातावरण के दृष्टिकोण से वह दोष प्रतीत नहीं होता।

पद्मावत आद्योपात भाव और भावनाओं के निर्मल साँचे मे ढला हुआ है। शब्द, अलकार और भाषा का चमत्कार कवि ने काव्य में पैदा करने का प्रयत्न नहीं किया। ऐसा न करने का एक प्रधान कारण यह भी था कि कवि पहिले थे और विद्वान् बाद मे। कवि ने स्वय विद्वान होने का दावा भी नही किया। उन्होंने लिखा है—"हौं पंडित न केर पछ लगा ·   ।"

कवि ने स्वाभाविक अनुभूति और हृदय की मार्मिकता का निचोड़ पद्मावत में आदि से अ त तक भरने का प्रयत्न किया है। जिस विषय को भी लिया है उसका पूर्ण रूप से रसास्वादन वह अपने पाठकों को कराने मे हर प्रकार से सफल हुआ है।

ज्योतिष, योग, शतरज इत्यादि के सुन्दर वर्णन इस काव्य में मिलते है और ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को उन विषयो का पूर्ण ज्ञान था। कवि के वर्णन बहुत सजीव और सुन्दर हैं। ज्ञान और प्रेम का जो सम्मिश्रण इस काव्य-ग्र थ में किया गया है वह हिन्दी के अन्य किसी ग्र थ में नहीं मिलता।

कबीर के काव्य म जिस प्रकार ज्ञान को प्रधान स्थान दिया गया है उसी प्रकार जायसी ने अपने काव्य में प्रेम को प्रधानता दी है। ज्ञान, योग और प्रेम के सम्मिश्रण से यह विषय भी चिंतन का बन गया है और इसलिये इसे भी विद्वान् रहस्यवाद के अन्तर्गत ही गिनते हैं। कवि का दर्शन इसी रहस्य में छिपा हुआ है। यह दर्शन कबीर पन्थी ज्ञान, वैष्णव भक्ति और सूफी प्रेम का मिला-जुला स्वरूप है। भावनायें बहुत स्पष्ट हैं। रूपकों को समझने में अधिक कठिनाई नहीं होती। यह सब होते हुए भी प्रेम तत्व को समझने मे कठिनाई होती है। सूफी सिद्धांतों का पूर्ण ज्ञान हुए बिना प्रेम तत्व को समझना कठिन हो जाता ह।

पद्मावत सुन्दर साहित्यक ग्रथ होते हुए भी जनता मे अधिक प्रचारित नहीं हो सका। इसका प्रधान कारण यही था कि उस काल में जन-साधारण साहित्य को साहित्य के लिये न पढ़ कर धार्मिक दृष्टि-कोण से अधिक पढ़ते थे। जायसी का धार्मिक दृष्टिकोण उसकी अपनी कल्पना थी, जो भारतीय जनता का ध॰ सिद्धांत नहीं बन सकी। यही प्रधान कारण था कि इस ग्रथ का भी अधिक प्रचार नहीं हो सका। परन्तु उस काल में इसका प्रचार न होते हुए भी आज का साहित्यक समुदाय इस महान् ग्रन्थ के मूल्याकन मे भूल नहीं कर सकता। हिन्दी साहित्य में इस ग्रथ का बहुत बडा मूल्य है और इसने एक युग की एक विशेष धारा का प्रतिनिधित्व किया है।

पद्मावत पर संक्षिप्त विचार —

१. विशुद्ध अवधी का यह प्रथम प्रेम ग्रन्थ है।
२. प्रेमाश्रयी शाखा का यह प्रतिनिधि ग्रथ है जिसमें उस धारा के सभी सिद्धातों का प्रतिपादन किया गया है।
३. इस ग्रथ की कथा ऐतिहासिक है परन्तु कवि ने अपनी कल्पना से उसे अपने अनुकूल बना लिया है।

-४ काव्य मे भाषा-सौंदर्य की अपेक्षा भावो ने विशेष बल दिया है।

-५ इस ग्रंथ का हिन्दी साहित्य म विशेष मान है और इस ग्रन्थ ने एक साहित्यिक-धारा का प्रतिनिधित्व किया है।

रामचरित मानस पर एक दृष्टि

प्राचीन भाषाओं मे कालिदास कृत 'रघुवश' 'वाल्मीकीय रामायण' होमरकृत 'ईलियड', वर्जिल कृत 'ईनियड', फिरदौसी कृत 'शाहनामा' और आधुनिक भाषाओं मे मिल्टन का 'पैराडाइज लोस्ट' दाते का 'डिवाइन कमेडी' माइकेल मधुसूदन दत्त का 'मेघनाद वध' इत्यादि प्रमुख काव्य माने जाते हैं। रामचरित मानस को हम बहुत सुगमता से उक्त काव्य ग्रंथों की श्रेणी में रख सकते हैं। भाषा, भाव, काव्य-सौंदर्य, दूरदर्शिता, दर्शन, हृदय-ग्राहिता, पाठकों में सम्मान और व्यापकता सभी दृष्टि-कोण से मानस एक अलौकिक ग्रथ है जिस की तुलना ससार के किसी भी महाकाव्य से की जा सकती है। मानस मानस ससार के उन अमर काव्यों मे से है जिसमे क्षण-भंगुर काव्य का सृजन कवि ने नहीं किया बल्कि मानव के उन गूढ़ भावों का विवेचन किया है जिन के द्वारा कवि ने अपनी सूक्ष्म-दृष्टि से मानव समाज का जीता-जागता स्वरूप सामने रख दिया है।

महाकाव्य भाषा और भाव का संयोग है। गोस्वामी तुलसीदास ने मानस मे प्रेम, क्रोध, मद, लोभ, मोह इत्यादि मानव के सभी विकारों का सुन्दर भाषा मे चित्रण किया है। मानस की भाषा भारत के अधिकाश वासियों की भाषा है, इस लिये इस ग्रन्थ का लाभ केवल कुछ इने-गिने साहित्य प्रेमी ही न उठाकर सभी काव्य प्रेमी तथा भक्तो ने उठाया है। हिन्दी साहित्य के इस ग्रंथ ने जितनी ख्याति प्राप्त की है उतनी अन्य कोई ग्रन्थ नहीं प्राप्त कर सका। यह भारत की

जनता के हृदय का ग्रंथ बन गया और गले का कंठ हार । इसके बिना आज हिन्दू जाति की गति नहीं । फिर हो भी भला क्यों नहीं, आप मानस को आद्योपात पढ़िये और बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक का आनंद-लाभ करिये । बचपन में राम हमारे भाई हैं, कौशल्या हमारी माता है, दशरथ हमारे वृद्ध पिता हैं ।" गुरु के साथ जाने की आज्ञा देने पर दशरथ को उसी प्रकार दुःख होता है जिस प्रकार वृद्ध पिता को होना स्वाभाविक है परन्तु पुत्र आज्ञा-पालन मे सँकोच नहीं करता । राम धनुविधा सीखते हैं, वन-वन विचरते हे,॰ यौवनावस्था में कुमारी के प्रेम पाप मे फंसते हें, सीता दर्शन होने पर राम और लक्ष्मण का वार्तालाप सुन्दर है । यह सौंदर्य स्वय बाल्मीकि भी अपनी रामायण मे नहीं ला पाये हैं राम का गार्हस्थ्य जीवन कटकमय है, सम्भवत इस लिये क्योंकि इस जीवन के प्रति कवि स्वय भी उदासीन था । राम की वन-यात्रा का कवि ने बहुत सजीव चित्रण किया है । लकाकाड में युद्ध-वर्णन पुराने ढग का हे और बहुत योग्यता के साथ किया गया है । यहा मदोदरी का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक है । तुलसीदास ने मानसिक चित्र खींचने मे जितनी निपुणता बालकाँड और अयोध्या काड मे दिखलाई है उतनी अन्य किसी काड में नहीं दिखला पाये हैं, उत्तरकांड तो बालकों और युवकों की समझ मे ही आना कठिन है । ज्ञान का वर्णन है त्यागी मनुष्यों के लिये । इस प्रकार यह ग्रन्थ आद्योपाँत अपने-अपने स्थान पर सुन्दर है ।

इस महाकाव्य मे कवि ने समाज के प्राय सभी पात्रों का सृजन किया हे । पुत्र के रूप में 'राम', 'लक्ष्मण', 'भरत', पुत्री 'सीता' पिता 'दशरथ, जनक', माता कौशल्या' 'सुमित्रा, कैकेई', भाई 'राम, लक्ष्मण, भरत' 'विभीषण' 'सुग्रीव' सुमित्र 'सुग्रीव' 'विभीषण', स्त्री 'सीता' जनता 'अयोध्या की जनता', राजा 'दशरथ', शत्रु 'रावण', देशद्रोही 'विभीषण', दुष्ट भाई 'बाली' इस प्रकार समाज में जितने प्रकार

भा चरित्र उपलब्ध हो सकते हैं कवि ने खोज-खोज कर इस महाकाव्य में सफलतापूर्वक चित्रित किये हैं।

मानस कवि की हिन्दी साहित्य को एक अनूठी देन है। इस महाकाव्य मे तुलसी ने अपने काव्य और दर्शन दोनों का समन्वय किया है। महाकवि तुलसीदास ने इस ग्रंथ द्वारा उस लोकधर्म का प्रतिपादन किया, जिस की निर्गुण पँथ के कवि अवहेलना करते चले आ रहे थे। पारस्परिक सम्बन्धो की उदासीनता को दूर कर कवि ने पति-प्रेम, मित्र-भक्ति, मातृ-स्नेह, कुल-मर्यादा, अत्याचार का दमन इत्यादि भावनाओ से भारतीय समाज को एक बार फिर से भर दिया। जनता को कर्तव्य की वेदी पर लाकर खड़ा कर दिया और जीवन को जीवन मान कर चलने का आदेश दिया। कवि ने जनता के भूले हुए लौकिक कर्तव्यों की ओर ध्यान दिलाया। मानस की रचना करके आपने मानव के अँग प्रत्यग पर प्रकाश डाला है। व्यक्तिगत साधना और भक्ति के बहाव मे मनुष्य को लोकधर्म ठुकराने की आज्ञा कवि ने नहीं दी। सीता के दुवारा बनवास के पश्चात् राम साधू हो सकते थे परन्तु नहीं, उन्हें अपना कर्तव्य पालन करना था। इस प्रकार तुलसी दास जी ने मानस की रचना करके समय के झूठे वेदांतियों को अपनी भक्ति के बहाव से पाखँड फैलाने से रोका और ज्ञान तथा भक्ति के बीच मे एकता स्थापित की।

रामचरित मानस की कथा आज जनता के जीवन की अपनी कथा है। काव्य मे उसका तारतम्य कहीं टूटने नहीं पाया। व्यर्थ का चित्रण जैसा जायसी के पद्मावत मे मिलता है उसका मानस में अभाव है। जिस बात को मानस में कवि ने कहना चाहा है उसका आभास हमे पहिले से ही मिलना प्रारम्भ हो जाता है। इसलिये जब वह सामने आती है तो भार-स्वरूप नही मालूम देती। ग्रन्थ मे जहाँ जहाँ भी दुष्ट पात्रों का समावेश हुआ है वहाँ वहाँ उनपर कवि अपना

कोप प्रकट करने मे नही चूके हैं। ब्राह्मणो की महिमा का कवि ने गान किया है। स्त्री की निदा की है परन्तु प्रमदा के रूप मे नारी अथवा अन्य किसी रूप में नहीं। यदि हम महाकाव्य की एक पँक्ति को काव्य से बाहर निकाल कर विचार करना प्रारम्भ कर देते हैं तो वह कवि के साथ अन्याय होता है। क्योकि हमे उस पंक्ति का अर्थ उसी स्थान पर लगाना चाहिये जहाँ जिस पात्र के लिये कि उसका प्रयोग किया गया है। यदि तुलसी ने "ढोर गवार शूद्र अरु नारी, यह सब ताडन के अधिकारी" लिख भी दिया है तब भी सीता का चरित्र-चित्रण क्या ससार की माता के रूप में उन्होंने नहीं किया ?

काव्य की दृष्टि से मानस एक अनुपम काव्य है। इसमें अच्छे काव्य के सभी गुण वर्तमान हैं। प्राय नौ के नौ रस इस ग्रन्थ मे कहीं न कहीं पर मिलते हैं और यदि अलकारों को खोज कर निकालने का प्रयत्न किया जाये तो वह भी एक रीति-कालीन ग्रथ की पूर्ति के लिये पर्याप्त हैं। अर्थालकार के साथ-साथ अनुप्रासों पर कवि ने विशेष बल दिया है। ग्रन्थ दोहा और चौपाइयों में लिखा गया है। तुलसीदास जी ने यों सभी रसों में रचना की है परन्तु इनका विशेष रस शात ही रहा है। जायमी की ही भाँति मानस की भाषा भी कवि ने अवधी चुनी है। शास्त्र पारगत विद्वान् होने के कारण गोस्वामी जी की शब्द-योजना साहित्यिक और सस्कृत-गर्भित है।

कथा-काव्य या प्रबन्ध-काव्य के भीतर इतिवृत्त, वस्तु व्यापार-वर्णन, भाव-व्यजना और वाद, ये अवयव होते है, अयोध्यापुरी की बाल-लीला, नख शिख, जनक-वाटिका के वर्णन-कहीं पर भी कवि ने इतिवृत्त की शृंखला को टूटने नहीं दिया है। जिस मर्यादा का पालन कवि ने रामचरित रचने में किया है काव्य-रचना मे भी उसे भुलाया नहीं है। न कहीं आवश्यकता से अधिक वर्णन है और न कहीं आवश्यकता से कम। मानस में कवि ने प्रसगों के अनुकूल भाषा

और रसों के अनुकूल शब्दों का प्रयोग किया है समाज और परिस्थिति के अनुसार ही संस्कृत-गर्भित हिन्दी और ठेठ ग्रामीण भाषा का प्रयोग काव्य मे किया गया है। घरेलू प्रसंग होने के कारण कैकेई और मथरा के सम्वाद ठेठ बोली में हैं। काव्य में शृंगार का लोप नहीं है परन्तु मर्यादा के साथ उसे कवि से कुशलता पूर्वक निभाया है।

इस प्रकार मानस पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने मानस की रचना केवल अपने दृष्टिकोण से नहीं की वरन् समस्त ससार पर दृष्टि फैलाकर की है। इसमे जीवन के मार्मिक चित्रण हैं, प्रकृति का असीम सौंदर्य है, द र्शन की पैनी साधना है, काव्य का अलौकिक सौंदर्य है, भक्ति की मर्यादा है, हिन्दू मात्र के सब धर्मों का समन्वय है, मानव जीवन की एकता का महान आदेश है और सब से सुन्दर है शात रस का अथाह सागर जिसमें डुबकिया लगाकर मानव अपने जीवन की, अपने हृदय की और अपने शरीर की जलन को सर्वदा के लिये बुझा सकता है। मानस को पढ कर हृदय और मन को शान्ति मिलती है और यह भूले-भटके जीवन-राही का पथ-निर्देशन करता है। मानस की रचना करके कवि ने न केवल हिन्दी भाषा भाषियों का ही वरन मानव समाज का महान हित किया है।

मानस पर सक्षिप्त विचार—

१ ससार के महाकाव्यो में मानस का विशेष स्थान है।
२ समाज के सभी मिलने वाले चरित्रो का चित्रण इस ग्र थ मे उप लब्ध है।
३ साहित्य और दर्शन दोनों को कविने इस ग्रन्थ मे सफलता पूर्वक निभाया है।
४. काव्य, भाषा, और चित्रण तीनो प्रकार का सौंदर्य इस काव्य मे वर्तमान है।

५. कवि ने यह ग्रन्थ एक काल के लिये नहीं वरन् सब कालो के लिये समान रूप से लिखा है ।

विनय-पत्रिका पर एक दृष्टि

विनय-पत्रिका गोस्वामी जी की अन्तिम और साहित्य की दृष्टि से सबसे प्रौढ़तम रचना है । इसकी शैली उनकी सभी रचनाओं से पुष्ट है । इस रचना में भावों की पुष्टि के लिए कवि को कई भाषाओं का आश्रय लेना पड़ा है । यह समस्त पुस्तक गीति-काव्य है और विनय भावना के इतने सुन्दर पद समस्त सूर-सागर में भी देखने को नहीं मिलते । आत्म-विस्मृति, तन्मयता, भाव-सचय और गीत-माधुर्य इस रचना में कूट-कूट कर कवि ने भर दिये हैं । तुलसी का दर्शन और उसके आध्यात्मिक विचार इस ग्रथ मे बहुत पुष्ट होकर भक्त पाठकों के सम्मुख आये है । कुछ विद्वान समालोचक तो आध्यात्मिक-क्षेत्र मे विनय-पत्रिका को मानस से कहीं प्रौढ़ रचना मानते हैं । इस पुस्तक मे कवि के लौकिक जगत पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है ।

स्तोत्र पद और कवित्त तीन प्रकार की शैलियों में इस रचना को विभक्त किया जा सकता है । जहाँ तक साहित्यिक दृष्टि का सम्बन्ध है तुलसीदास जी के स्तोत्रों को अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता । उनमें सस्कृत स्तोत्रों की छाया भी प्रतीत होती है इनकी भाषा बहुत क्लिष्ट है, और इतनी सस्कृत-गर्भित हैं कि साधारण हिन्दी पाठकों के लिए उन्हें समझना कठिन हो जाता है । इनमे अनेकों देवी देवताओं की लीलाओं का सुन्दर वर्णन किया गया है । इनमे पुनरावृत्ति की भरमार है, इसलिये साहित्यिक रोचकता नष्ट हो जाती है इनमे अनेकों देवी देवताओं की उपासना राम के निमित्त ही की है । तुलसी के लिये सब देवता उपास्य हैं परन्तु स्वतत्र रूप से नहीं ।

विनय-पत्रिका मे कवि ने भक्ति की दीनता को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है। दास्य-भावना के साथ कवि देवेच्छा के प्रतिकूल कुछ न कहने का संकल्प करता है, भगवान की रक्षा मे विश्वास रखता है, भगवान् को मुक्ति प्रदान करने वाला और भक्त-वत्सल बतलाता है। इस रचना में आत्म समर्पण की भावना प्रचुरता के साथ कवि ने प्रदर्शित की है। भगवान् के सामने कवि इतना दीन है कि वह तो अपनी विनय-पत्रिका को लेकर भी स्वयं नहीं जा सकता। उसे लेकर जाने के लिये भी उसे हनुमान जी का आश्रय लेना होता है। वैष्णव सम्प्रदाय के विनय सम्बन्धी सिद्धांतों के प्रतीक स्वरूप हम विनय-पत्रिका को ग्रहण कर सकते हैं। दीनता, मान-मर्षता, भयदर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य, विचारण विनय की यह सातों प्रकार की भूमिकाएं इस ग्रंथ में उपलब्ध है। यही कारण है कि तुलसी के आध्यात्मिक दृष्टिकोण का अध्ययन करने से पूर्व विनय-पत्रिका का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

यह ग्रन्थ वृद्धावस्था का लिखा हुआ होने के कारण कवि की धार्मिक कल्पनाओं, धारणाओं और सिद्धातों का एक निश्चित आदर्श बन गया है। आध्यात्मिक क्षेत्र मे जो पुष्टि मानस मे भी नहीं आ पाई वह इस रचना मे आ गई है। मानस लिखने के पश्चात् कवि की भावनाओं मे जितना विकास हुआ है वह सब इस रचना में आ गया है। मानस में कवि की भावना भक्ति ज्ञान और कर्म के साथ-साथ चलती है, परन्तु विनय-पत्रिका की भक्ति अनन्य है,वृद्धावस्था में आकर कवि अपने को एक अनन्य भक्त के रूप में देखता है और उसके अन्दर से कर्म तथा ज्ञान का सर्वथा लोप सा ही हो जाता है। यहाँ उसका एक देवता है और एक उपासना पद्धति। कवि भक्ति की ओर ही अग्रसर है, कर्म तथा ज्ञान की ओर नहीं। अपने उपास्य को प्राप्त करने के लिये केवल भक्ति ही उसका साधन है और साध्य भी। यहा आकर कवि

प्रत्येक देवता से राम की भक्ति कराना चाहता है। अन्तिम काल में कवि ससार से सम्बन्धविच्छेद करके राम-चरणों में लगन लगाते हैं। संसार के सब सम्बन्ध वह राम से ही जोड़ लेते हैं —

ब्रह्म तू, हौं जीव, तुम्हीं ठाकुर हौं चेरो।
तात, मात, गुरु, सखा, तू सबविधि हितु मेरो॥

राम के शील का मनन, रामनाम का स्मरण, राम के सम्मुख आर्त भाव से निवेदन, रामभक्तों का सत्सग और अन्त में हरि-स्वकृपा। यह सब गोस्वामी तुलसीदास जी के हरि उपासना के साधन विनय पत्रिका में बतलाये गये हैं। हरि कृपा को कवि ने सबसे प्रधान साधना बतलाया है जिसके बिना अन्य सब साधन व्यर्थ हो जाते हैं और जीव को गति प्राप्त नहीं होती। भक्त पर भगवान् जब करुणा करके द्रवित होते हैं, यह कृपा तभी सम्भव है और वह द्रवित तभी हो सकते हैं जब भक्त फल की इच्छा न रखते हुए दास्य भावना से भगवान् की भक्ति में अपना तन, मन, धन लगा लेता है। मानव जीवन की शाँति के लिये हरिभक्ति की आवश्यकता है। मनकी शुद्धि से शातिप्राप्त होती है, और मन की शुद्धि से ही भक्ति हो सकती है। शाँति पूर्वक शुद्ध मन से भक्ति करने पर ही हरि कृपा प्राप्त होती है। राम चरणों में अनुरक्ति होने से ही कलि-काल में मानव पापों से मुक्त हो सकता है और उसके चित्त की प्रवृत्ति शुद्धि की ओर हो सकती है। ससार का रमणीक अथवा भयानक लगना भ्रम और अविवेक के ही कारण है। यह भ्रम और अविवेक हरि कृपा के बिना दूर नहीं होता।

इस प्रकार हमने देखा कि विनय-पत्रिका की रचना प्रधानतया कवि ने साहित्यिक दृष्टि-कोण के लोक धर्मस्थापना अथवा पांडित्य प्रदर्शन के लिये नहीं की। यह रचना कवि ने अपने आध्यात्मिक दृष्टिकोण के प्रतिपादन के लिये की है। इसमें जीवन-निर्माण के उच्चतम आदर्शों को कवि ने प्रस्तुत किया है। "सन्तोष, परहित चिंतन मृदुभाषण रागद्वेष

हीनता, मानहीनता, शीतलता, सुखदुख मे समबुद्धि” इत्यादि गुणों की ओर भक्तजनो का ध्यान आकर्शित किया है और अपने इस ध्येय में कवि पूर्णतया सफल रहा है।

विनय-पत्रिका पर सक्षिप्त विचार —

१ विनय-पत्रिका में तीन साहित्यिक शैलियों का प्रयोग मिलता है।
२ इस रचना में राम-भक्ति को कवि ने पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है।
३ विनय पत्रिका तुलसी के आध्यात्मिक दृष्टिकोण का प्रतीक है।
४ ग्रन्थ को ललित साहित्यिक रचना न कहकर यदि धार्मिक रचना कह दिया जाये तो उचित ही होगा।
५ यह कवि की अन्तिम बहुत प्रौढतम रचना है।

सूर-सागर पर एक दृष्टि

‘सूर सागर’ महाकवि सूरदास की प्रधान रचना है। सूर के जीवन की महानता और उनके काव्य का मूल्यांकन इसी महान् ग्रंथ द्वारा किया जासकता है। ‘सूर सागर’ का जो रूप इस समय उपलब्ध है उसे देखने से ज्ञात होता है कि ‘सूर-सागर’ की कथा कुछ बिखरे रूप मे श्रीमद् भागवात की ही भांति स्कधों मे बँटी हुई है। पहिले नौ स्कधो और अंतिम दो स्कधों का क्रम भागवत से बिलकुल मिलता है। ‘सूर सागर’ मे भागवत् की सभी कथाओं का समावेश नहीं है और जितना है वह सक्षेप में किया गया है। कही-कही पर साहित्यिक सौन्दर्य लाने के लिये कथाओं में कुछ परिवर्तन भी कवि ने कर दिया है। नवम स्कध में रामकथा पदो में गाई गई है और वह बहुत सुन्दर काव्य है। दशम् स्कंध के अतिरिक्त शेष कथा वर्णनात्मक चौपाइयों मे लिखी गई है। सूर की कला का प्रदर्शन चौपाई छंद में उतना सुन्दर नहीं हो पाया जितना पदों में हुआ है। यह कथायें

सुन्दर न लिखी जाने पर भी कवि ने पुष्टि-मार्ग के धार्मिक दृष्टिकोण से उन्हे लिखा है। श्रीमद् भागवत् का भाषा मे प्रचार करना वह अपना धर्म-कर्तव्य समझते थे। यह कथायें कवि ने अपनी और अपने साथियों की प्रेरणा से लिखी होगी। सूर सागर के दशम स्कध के पूर्वार्ध मे सुन्दर वर्णात्मक छ द मिलते हैं और यहां पर कहीं-कहीं पर कथाओं की पुनरुक्ति भी हो गई है। सम्भवत. कवि ने पहिले इस समस्त ग्रथ की रचना की है और बाद मे जो सुन्दर पद उन्होंने लिखे हैं उन्हें भी विषयानुकूल इसी ग्र थ मे रख दिया है। कुछ विद्वानों का मत है कि इस ग्र थ में अन्य भक्त कवियों द्वारा लिखे हुए पद भी हैं। सूरदास ने खडिता, फाग, मान आदि के जो नवीन प्रसग लिये हैं इनका वर्णन कवि ने पदों मे किया। यह समस्त ग्र थ सरल और मधुर व्रज भाषा में लिखा हुआ है।

यदि साहित्यिक दृष्टि और सूरदास के महत्त्व को लेकर सूर-सागर को देखा जाय तो सूर-सागर के दशम स्कध का पूर्वार्ध पुस्तक का सबसे महत्वपूर्ण भाग ठहरता है। यह भाग पदों में गाया गया है। इन पदों का पहिला भाग कृष्ण की उन लीलाओं से सम्बन्धित है जिनमे उन्होंने असुरों का वध किया है। इन पदों में वर्णनात्मकता ही पाई जाती है, कवि की प्रतिभा का कोई चमत्कार नहीं दिखलाई देता। केवल कालिय-दमन और इन्द्र-गर्व-हरण की कुछ लीलाओं का वर्णन सुन्दर है। इनके वर्णन मे कवि की उच्चतम प्रतिभा का आभास मिलता है। इन कथाओं मे सूरदास ने भागवत की कथाओं को ज्यों का त्यों नहीं रख दिया है वरन् उनमें कलात्मक परिवर्तन किया है, और उनमे सरल स्थान पैदा किए हैं। इन अलौकिक कथाओं के अतिरिक्त कृष्ण की अन्य लीलाओं में कवि ने कृष्ण की लौकिक लीलाओं का ही चित्रण किया है।

कृष्ण की लौकिक लीलाओं का जो चित्रण सूर ने किया है वह अमर है और उन्हीं के आधार पर सूर को भाषा के पडितों ने सूर्य की

दवी प्रदान की है। बाल-काल और किशोरावस्था सम्बन्धी पद सूरदास ने अपनी मौलिक कल्पनाओं के आधार पर लिखे हैं। इनमें भागवत् से कवि ने कुछ नहीं लिया। कृष्ण का बाल-चित्रण और नन्द यशोदा का वात्सल्य वर्णन करने में कवि की अद्वितीय प्रतिभा प्रस्फुटित हुई है। किशोर कृष्ण की प्रेम-लीलायें कुछ भागवत् पर अवश्य आधारित हैं परन्तु उनसे भी कवि ने अपनापन पूर्ण रूप से भर दिया है। दानलीला, मान, खंडिता, हिंडोलाफाग और राधा की कल्पना यह सब सूर के मौलिक प्रसग हैं। राधा का प्रथम मिलन, फिर वियोग और फिर मिलन यह कथा कवि ने बहुत विस्तार और सौन्दर्य के साथ वर्णित की है। भागवत् मे तो कहीं राधा नाम भी नहीं मिलता।

सूर सागर का भ्रमर-गीत प्रसग बहुत सुन्दर है। भागवत् के भ्रमर-गीत और सूर के भ्रमर-गीत मे आकाश-पाताल का अ तर है। भ्रमर-गीत का आकार कवि ने शृ गार शास्त्र के आधार पर खड़ा किया है। राधा-कृष्ण के प्रसगो को लेकर कवि ने वशी उद्दीपन विभाव प्रस्तुत करके काफी लिखा है। वाग्वैदग्ध्य के सुन्दर उदाहरण, रूप सौन्दर्य और उद्धव के प्रसगों में मिलते हैं। कवि ने मुरली और नेत्रों के प्रसग में सुन्दर कूटपद लिखे हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि 'सूर सागर' की समस्त कथा भागवत् से ली हुई होने पर भी उसमे मौलिकता का अभाव नहीं है। वल्लभाचार्य के कह े पर ही सूरदास ने भागवत् लीला का गान किया था। सूर के साहित्य मे सरलता केवल धार्मिक दृष्टिकोण से ही नहीं है वरन् साहित्यिक सौन्दर्य और प्रतिभा की भी इनमे कमी नहीं है। भ्रमर गीत, नेत्रों और मुरली के पदों मे जो रूपक कवि ने प्रस्तुत किये हैं उनमें सुन्दर साहित्य के दर्शन होते हैं और रीतिकाल की भीनी-भीनी महक आने लगती है। सूर ने विद्यापति की भांति सरस पदों की

रचना की है, परन्तु सूर की विशेषता यह है कि उसका आधार धर्म होते हुए भी उसमें विद्यापति के श्रृंगार से कम सरसता नहीं आ पाई है। सूर ने श्रृंगार और रीति का आश्रय अवश्य लिया है। परन्तु अपने साहित्य को उनके अर्पण नहीं कर दिया है, वरन् उन्हे अपने साहित्यिक सौन्दर्य मे प्रभावोत्पादक बनाने के लिये प्रयोग किया है। मान और खंडिता के प्रसंग जो सूर ने लिए हैं वह लौकिक रूप में न लेकर आध्यात्मिक रूप मे लिए हैं। यदि वह लौकिक रूप में लेते तो नायिका भेद, अभिसार और परकीया जैसे रसोत्पादक विषयों को न छोड़ते। कवि ने काव्य-शास्त्र का उपयोग भक्ति साहित्य मे कोमलता, सरसता, माधुर्य और सौन्दर्य लाने के लिए किया है।

सूर-सागर मे राधा कृष्ण के संयोग, रति-विलास इत्यादि का जो चित्रण मिलता है उनमे आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध स्थापित करने का कवि ने प्रयत्न किया है। इसमे गीत-गोविंद की झलक आती है। सूर की गोपियों का आध्यात्मिक भावना के कारण श्रृंगार में कम विकास हो पाया है। सूर की गोपियाँ राधा के प्रति ईर्ष्या न करके उस पर मोहित होती हैं। यह श्रृंगार-काव्य की धारणा के विपरीत भाव है। सूर-सागर के यह पद फुटकर होते हुए भी कथाबद्ध होकर चलते हैं और पाठक भी उनसे आनन्द-लाभ तभी कर सकता है जब इसे प्रसंग वश पढ़े। इस प्रकार सूर सागर मे गीतात्मकता और प्रबन्धात्मकता का ऐसा सम्मिश्रण मिलता है जैसा हिन्दी के अन्य किसी काव्य में नहीं मिलता।

सूर-सागर एक वृहद् ग्रंथ है परन्तु इसे हम रामायण की भाँति महाकाव्य नहीं कह सकते क्योंकि इसमें जीवन के विविध प्रसंगों और दृष्टिकोणों का स्पष्टीकरण नहीं मिलता। जीवन की विविध परिस्थितियों को भुलाकर केवल कुछ अंगों पर ही बल दिया गया है। परन्तु जीवन के जिन भागों का चित्रण सूर सागर में हुआ है वह

यहुत पूर्ण हैं। याल-चित्रण, संयोग और वियोग इन तीन जीवन की परिस्थितियों पर कवि ने इतना सुन्दर लिखा है कि हिन्दी का कोई अन्य कवि नहीं लिख पाया। इस प्रकार सूर-सागर का महत्व हिन्दी साहित्य में महान् है। यदि हिन्दी के समस्त साहित्य को उसका जीवन मान लिया जाये तो उसके तीन भागों की पूर्णतया पूर्ति हमें सूर-सागर में मिलती है।

सूर-सागर की विशेषतायें —

१ समस्त ग्रथ कथाबद्ध होते हुए भी फुटकर पदो का सग्रह सा प्रतीत होता है।

२ कथा का आधार भागवत है पर कवि ने अपनी मौलिकता को भी पूर्ण स्वच्छंदता दी है।

३ बाल-लीला, सयोग और वियोग का चित्रण सूर साहित्य की विशेषता हैं।

४ काव्य ब्रज भाषा मे चौपाई और पदों मे लिखा गया है।

५ यह सूर की प्रधान रचना है और इसी के आधार पर सूर हिन्दी-काव्य जगत का सूर्य कहा जाता है।

बिहारी-सतसई पर एक दृष्टि

हिन्दी-साहित्य के ग्रथों मे बिहारी-सतसई अपना विशेष स्थान रखती है। ग्रथ की सर्व-प्रियता न धर्म के कारण है और न किसी अन्य प्रभाव के ही कारण। इसे सर्वप्रिय बनाने वाली हैं कवि कला, कवि का साहित्य और काव्य का साहित्यिक सौन्दर्य। इस काव्य ने किसी बाहर की भावना से यश नहीं प्राप्त किया वरन् बल स्वय इसके अन्दर निहित है और जब तक हिन्दी साहित्य और इसके प्रेमी ससार मे रहेंगे, बिहारी सतसई का महत्व कम होने की सम्भावना नहीं।

यह ग्रंथ ब्रज भाषा मे लिखा हुआ है और दोहा छंद का इसमे प्रयोग है। प्रत्येक दोहा स्वतन्त्र है। किसी कथा के आधार पर इस ग्रंथ का निर्माण नहीं हुआ है। कवि ने स्वच्छंदता पूर्वक काव्य की रचना की है और यदि यह कह दिया जाये कि गागर मे सागर भरने में वह सफल हुआ है तो यह कथन सत्य ही है। बिहारी सतसई की प्रसिद्धि कवि के जीवन-काल में ही होनी आरम्भ हो गई थी। मतिराम जैसे प्रसिद्ध कवि पर भी उसका प्रभाव पड़े बिना न रहा और उस काल से ही बिहारी सतसई पर टीकायें लिखनी आरम्भ हो गई। आधे शतक से ऊपर टीकायें बिहारी सतसई पर लिखी गई। हिन्दी साहित्य में जगन्नाथ प्रसाद 'रत्नाकर' जी के शब्दों में "बिहारी सतसई से अधिक टीकायें आज तक किसी अन्य ग्रंथ पर नही लिखी गई।"

जिस प्रकार कबीर के पश्चात् अनेकों संत हुए, पद्मावत के पश्चात प्रेमकाव्य लिखे गये, मानस के पश्चात् राम-साहित्य की रचना हुई और सूर-सागर के पश्चात् कृष्ण-साहित्य की झड़ी लगी, इसी प्रकार 'बिहारी सतसई' के पश्चात् हिन्दी साहित्य में सतसइयों का प्रादुर्भाव हुआ। ब्रज भाषा के प्राय सभी कवियों पर किसी न किसी रूप मे 'बिहारी सतसई' का प्रभाव पड़ा है। दोहे, सवैये और कवित्तों में रीति-काल मे जो साहित्य रचा गया उनमें होने वाली स्वच्छंद कविता का 'बिहारी सतसई' प्रधान आधार रही है। बहुत से कवियों ने तो बिहारी के एक-एक दोहे पर कई-कई छंद लिखे हैं। प० पद्मसिंह जी ने अपनी तुलनात्मक समालोचना में इसके अनेकों उदाहरण दिये हैं।

'बिहारी सतसई' का रचनाकाल १६६२ ई० माना जाता है। ग्रंथ में ७०० दोहे हैं, जो समय-समय पर लिखे गये हैं। राजा जय-

सिंह की आज्ञा से आपने इन सब दोहों को संग्रहीत करके सतसई का रूप दिया —

हुकम पाइ जयसिंह को, हरि राधिका प्रसाद।
करी बिहारी सतसई भरी अनेक सँवाद॥

सतसई के दोहे इतने प्रभाव-शाली हैं कि एक जनश्रुति के अनुसार राजा जयसिंह नई रानी से विवाह करने पर अपने राज्य के प्रति कर्त्तव्य को भुला बैठे थे। हर समय महलों मे ही रहने लगे थे और और राज-कार्य में हानि होने लगी थी। उस समय कवि के निम्नलिखित दोहे की रचना की जिसे पढकर राजा राज-महलों से बाहर निकल आये और उन्होंने अपने राज-कार्य को पूर्ववत् सँभाल लिया।

नहिं पराग नहिं मधुर रस, नहिं विकास इहि काल।
अली कली सों ही बिंध्यो आगे कौन हवाल॥

इसी प्रकार कवि ने अन्य बहुत से दोहे लिखे है। कहते है राजा जयसिंह प्रत्येक दोहे पर कवि को एक अशर्फी देता था। बिहारी ने सतसई के दोहो मे सातवाहन, गोवर्धनाचार्य और अमरुक आदि प्राचीन कवियों की रचनाओं से भाव लिये है परन्तु उनमें इस प्रकार अपनापन ला दिया है कि पुरानी गंध भी शेष नहीं रह गई है। बिहारी ने उनमें बहुत चमत्कार पूर्ण परिवर्तन किये है।

बिहारी सतसई के दोहे व्यंजना-प्रधान है। इस प्रकार के काव्य को मुक्तक, उद्भट-काव्य या सूक्ति-काव्य कह सकते है। जीवन और साहित्य को ध्यान मे रखते हुए कवि ने चमत्कारात्मक काव्य की रचना की है। सतसई का प्रधान विषय शृंगार है। यत्र-तत्र भक्ति, दर्शन, नीति और ऐतिहासिक दोहे भी है परन्तु प्रधानता शृंगार की ही है। सत-साहित्य, भक्ति-साहित्य और रीति-काल तीनो काल के साहित्यों की झलक हमे सतसई में देखने को मिल जाती है। शृंगार के अतिरिक्त अन्य विषयो के दोहे साग मे नमक की ही भाँति हैं और इस

ग्रंथ का आज जो कुछ भी साहित्य मे मान है वह भी शृंगार के ही दोहो के कारण है। सतसई मे ६०० दोहे शृंगार के हैं। नायिका सौंदर्य, दीप्ति, कांति, नखशिख, हावभाव, अनुभाव, केलि-विलास सभी का सजीव-चित्रण इस ग्रंथ मे मिलता है। नेत्रों, हावो और अनुभावों के चित्रण में सूर के बाद बिहारी ही आते है। एक-एक दोहे में अनेकों भावों को सुन्दर ढंग से सजाना बिहारी जैसी विशेषता हिन्दी के अन्य किसी भी कवि मे नहीं पाई जाती। एक दोहा देखिये —

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै, भौहनु हँसै, दैन कहै नटि जाय॥

प्रेम की भारतीय रीति का बिहारी को हम पंडित मानते हैं। प्रेम की तन्मयता, उसमे लीन हो जाना, अपनत्व को उसमे खोकर बेबस हो जाना, इन सबका कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। एक दोहा देखिये —

कागद पर लिखत न बनत कहत सँदेसनु लजात।
कहि है सब तेरो हियो मेरे हिय की बात॥

बिहारी सतसई में सुन्दर शब्द-चयन, मधुर शब्द-योजना, उचित और भावपूर्ण शब्दों का प्रयोग, आनुप्रासिक शब्द-सग्रह, नाद-सौंदर्य-पूर्ण शब्द सकलन इतना व्यवस्थित मिलता है, इसम बिहारी के अतिरिक्त अन्य कोई हिन्दी कवि सफल न हो पाया है। बिहारी ने प्रकृति-चित्रण भी सुन्दर किया है। एक दोहा देखिये —

चुवत सेदु मकरद कन तरु-तरु तर बिरमाय।
आवत दच्छिण देस तो थक्यौ बटोही बाय॥

बिहारी सतसई पर फारसी विरह-निरूपण का भी स्पष्ट प्रभाव है। नायिका का विरह में दुर्बल होजाना, निश्वासों के साथ छै-छै सात-सात हाथ आगे-पीछे झूलना, विरह-ताप मे राधिका पर सखियों

द्वारा शीतकाल मे भी गुलाव जल छिड़कवाना इत्यादि कल्पनायें विदेशी ही है।

विहारी सतसई भाषा, भाव, चित्र-सौंदर्य, प्रेम-चित्रण, तथा हाव-भाव वर्णन में अद्वितीय है। हिंदी साहित्य को इस रचना पर अभिमान है। भारत की अन्य प्रांतीय भाषाओ में विहारी सतसई के समान रचना देखने को नहीं मिलती। साहित्य में यदि शृंगार और प्रेम का स्थान प्रधान है तो हिन्दी साहित्य में विहारी सतसई का भी स्थान प्रधान ही रहेगा।

विहारी सतसई की विशेषताये —

१. हिन्दी काव्य में विहारी सतसई का स्थान, विश्लेषण और शृंगार वर्णन।
२. सतसई में प्रकृति-चित्रण तथा नायक-नायिका का प्रधान-चित्रण।
३ विहारी की रसिकता, आचार्यत्व और कला-प्रियता।
४. उपसहार।

साकेत पर एक दृष्टि

साकेत वाबू मैथिली शरण जी का वह अमर काव्य है जिसम उन्होंने एक ऐसे पात्र का चरित्र-चित्रण किया है जिसके प्रति आज तक का हिन्दी साहित्य सर्वदा ही उदासीन रहा है। यो साकेत में रामायण की पूरी ही कथा आ जाती है परन्तु उर्मिला का चित्रण कवि ने पूरे दो सर्गों में किया है। अयोध्या में प्रधानतया होने वाली घटनाओ को ही इस काव्य में महत्त्व दिया गया है इसी लिये इस ग्रथ का नाम कवि ने साकेत रखा है। राम के राज्याभिषेक से लेकर चित्र-कूट मे राम-भरत मिलन तक की कथा आठ सर्गों में चलती है। फिर नौ और दस सर्ग में उर्मिला के वियोग का नाना परिस्थियों में कवि ने

हम केवल कल्पनाओं और आदर्शवाद मे ही नहीं घूमते वरन दुनिया के महान चरित्रों की कलात्मक कल्पना करते हैं।

साकेत का नायक हम राम को न मानकर लक्ष्मण को मान सकते हैं, क्योंकि इस ग्रंथ में प्रधान चित्रण लक्ष्मण और उर्मिला का ही है। परन्तु लक्ष्मण के चरित्र का विकास राम के ही साथ हो सकता है इसलिये राम के महत्त्व को भी कम नहीं किया जा सकता। लक्ष्मण की सेवा-भावना और त्याग का कवि ने बहुत सुन्दर चित्रण किया है। साकेत की कैकेई मानस की कैकेई से भिन्न है। साकेत की कैकेई को अपनी भूल ज्ञात होने पर बहुत खेद होता है। साकेत अपने ढंग का अकेला महाकाव्य है। इसमें स्थान-स्थान पर गीत और छंदों की अनेक-रूपता होते हुए भी प्रबन्धात्मकता को कवि ने खूब निभाया है। घटनाओं का तारतम्य साकेत मे कवि ने बहुत सुन्दर दिया है।

खड़ी बोली साहित्य का यह प्रथम महाकाव्य है जिसमे हम राम-भक्ति शाखा की वर्तमान प्रगति के दर्शन करते हैं। इसमे खड़ी बोली का वह मँजा हुआ स्वरूप है जिसमें माधुर्य के साथ-साथ अलंकार शास्त्रो की भी पूरी निपुणता प्राप्त होती है। कवि ने इस काव्य मे अपनी कला, पाण्डित्य और भावुकता का सुन्दर सम्मेलन प्रस्तुत किया है। यह इस युग की वह अनुपम देन है जो हिन्दी साहित्य में एक अमर रचना बनकर आई है और ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जायेगा, हिन्दी के पाठकों मे इसकी सर्व-प्रियता बढ़ती ही जायेगी। बाबू मैथिलीशरण गुप्त की यह वह प्रतिनिधि रचना है जिसके आधार पर कि कवि को पूर्ण-रूप मे समझा जा सकता है।

साकेत के विषय में संक्षिप्त विचार.—

१ यह खड़ी बोली का प्रधान महाकाव्य है जिसमें उर्मिला के चरित्र का सुन्दर विकास कवि ने किया है।

२ इस ग्रंथ का नायक हम राम को न मान कर लक्ष्मण को मान सकते हैं।
२. साकेत के लक्ष्मण और सीता रामचरित मानस के राम और लक्ष्मण नहीं हैं उनसे भिन्न हैं।
४ साकेत की कैकेई और मानस की कैकेई में भी बहुत अन्तर है।
५. साकेत भाषा, भाव, कथा, साहित्य और अलंकार-शास्त्र सभी विचारों के बहुत सुन्दर ग्रन्थ है।
६ ग्रंथ मे चरित्र-चित्रण कवि ने बहुत सुन्दर किया है।
७ उपसंहार।

कामायनी पर एक दृष्टि

कामायनी हिन्दी साहित्य के वर्तमान युग की एक सुन्दरतम देन है। कवि 'प्रसाद' ने हिन्दी साहित्य को कामायनी देकर क्या कुछ नहीं दिया? कामायनी की कथा कवि ने वैदिक उपाख्यान से ली है। इस काव्य का नायक आदि पुरुष मनु है और ग्रथ में यह चित्रित किया गया है कि नवीन सभ्यता की प्रतिष्ठा किस भाँति हुई और मानवता के सर्वथा नूतन-युग का प्रारम्भ किस प्रकार हुआ?

नायक मनु महा प्रलय से बच कर चिंतित बैठे हैं कि इसी समय कामगोत्र की पुत्री श्रद्धा (कामायनी) से उनका परिचय होता है। श्रद्धा और मनु साथ रहने लगते हैं। श्रद्धा मनु मे मानवीय सस्कार पैदा करना चाहती है परन्तु मनु में दैवी सस्कार जागृत हो जाते हैं, और वह यज्ञ,बलि इत्यादि के लिये शिकार करने लगता है। श्रद्धा माता होती है और उसका प्रेम बट जाता है इससे मनु के मन में ईर्ष्या होती है और उनका मन उचाट हो जाता है। वह श्रद्धा को छोड़ कर चल देता है और सारस्वत-प्रदेश की रानी इडा से उसकी भेंट होती है। इडा देवों की बहन थी और मनु के अन्न से पली थी परन्तु मनु इस

भेद से अनभिज्ञ थे। इडा को एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो सारस्वत प्रदेश के राज्य-कार्य को सँभाल सके और मनु ने उसे सँभाल लिया। राज्य ने उन्नति की। मनु राज्य-सत्ता पाकर सतुष्ट नहीं हुए और उनका मन इडा की तरफ दौड़ने लगा। मनु प्रमाद में बलात्कार पर उतारू हो गये। इधर देव भी क्रुद्ध हुए और प्रजा ने विद्रोह कर दिया। मनु युद्ध में घायल होकर बेहोश हो जाते हैं। दूसरी ओर श्रद्धा स्वप्न में मनु की इस दशा का स्वप्न देखकर अपने बच्चे को ले खोज के लिये चल देती है। श्रद्धा बेहोश मनु को अनेक उपचारों द्वारा, वहाँ आकर, होश में लाती है। मनु फिर श्रद्धा की ओर आकर्षित होते हैं परन्तु उनका मन उन्हें धिक्कारता है और वह फिर भाग निकलते हैं। इडा भी दुखी है और वह श्रद्धा से उसका पुत्र माँगती है। श्रद्धा इडा को लोक-कल्याण का उपदेश देकर अपना पुत्र उसे दे देती है और स्वयं मनु की खोज में चल देती है। एक घाटी में उसकी मनु से भेंट होती है। मनु अपनी भूल समझ चुका था। वह श्रद्धा का अनुसरण करता है और उसके पीछे-पीछे ससार के विविध रूप देखता हुआ एक ऊँचे स्थान पर पहुँच जाता है। यही ऊँचा स्थान कैलाश है। एकात्म्य की अनुभूति यहाँ पहुँच कर मनु को होती है और विराट् नृत्य के दर्शन होते हैं। वहाँ जीवन के सब रहस्य आनन्द में लय हो जाते हैं।

प्रागैतिहासिक महाकाव्य होते हुए भी 'प्रसाद' जी ने कामायनी में मनोवैज्ञानिक तत्त्वों को पूर्ण रूप से सर्गों में रख कर काव्य की रचना की है। व्यष्टि और समष्टि रूप से जीवन की क्रमिक भावनाओं में से होकर जीवन का विकास कवि ने किया है। कामायनी में किसी भी तत्त्व की सीधी व्यंजना न करके प्रतीकात्मक रूप से की गई है। आध्यात्मिक अथवा रूपक के रूप में मनोवैज्ञानिक व्याख्या में कवि ने ऐतिहासिकता का आधार लिया है। कामायनी के सब शीर्षकों के अन्तर्गत

उन शीर्षकों के भाव तथा उनसे सम्बन्धित भावनाओं का विश्लेषण कवि ने बहुत रोचकता के साथ किया है। मानव जीवन की सब भावनाओं का क्रमिक-विकास कामायनी में मिलता है। प्रथम सर्ग चिन्ता है सो मानवता के प्रारम्भ में चिंता है भी अनिवार्य। चिंता समाप्त होने पर मानव के जीवन में आशा का उदय होता है। आशा के स्वर्णिम प्रभात का कवि ने बहुत सजीव-चित्रण किया है। आशा के पश्चात् श्रद्धा जीवन में आती है, और श्रद्धा के मिल जाने पर काम का प्रभाव होता है। कितने सुन्दर क्रमिक विकास के साथ कवि चल रहा है? काम के पश्चात् वासना और फिर लज्जा जीवन का प्रधान गुण बनकर आ जाती है। इसी समय जीवन मे कर्म की प्रधानता होती है और साथ ही साथ नासमझी के कारण ईर्ष्या भी होने लगती है। ईर्ष्या से मानव पथ-भ्रष्ट हो जाता है और वह अंधा होकर उचित-अनुचित को भूल जाता है। वहन उसे अपना सर्वस्व अर्पण कर देती है परन्तु वह मदांध है। मदांध होकर उसे टक्कर खानी पड़ती है परन्तु श्रद्धा उसे फिर आकर सँभाल लेती है और शाँति का मार्ग दिखलाती है। यह जीवन का क्रमिक विकास है जिसमें चिंता, मिलन, वासना, संघर्ष क्लेश, शाँति सभी कुछ कवि ने निहित किया है। मानव के विकास की बहुत सुन्दर अभिव्यक्ति कामायनी में मिलती है। हिन्दी साहित्य में अपने ढंग का यह अकेला ही ग्रंथ है और अन्य साहित्यों में भी इस प्रकार का कोई ग्रन्थ देखने में नहीं आता। मानव-सृष्टि का उदय, विकास और उसकी चरम सिद्धि इस ग्रंथ में मिलती है। कवि ने कामायनी की रचना बौद्धिक तथा आध्यात्मिक दोनो ही की पृष्ठ-भूमि पर की है। कामायनी में शैव-तत्वज्ञान की प्रधानता है। सृष्टि का प्रारम्भ, उसका स्थिरता और उसकी निर्वाण सब कुछ आनन्दमय है। शिव विश्वात्मा के चिरमंगल का तत्व है। एकाँत प्रेम और मंगल में

भी शिव की कल्पना करनी होती है। कामायनी में मनु का प्रकृति के साथ महान सामजस्य स्थापित किया गया है।

कामायनी एक महाकाव्य है क्योंकि इसमें मानव-जीवन की सम्पूर्ण व्याख्या मिलती है। जीवन की नाना परिस्थितियो का उत्थान और पतन कामायनी मे मिलता है। इसमे एक ऐसे नायक का चरित्र-चित्रण किया गया है जो मानव जाति का नायक है, जिससे मानवता का उदय होता है, कामायनी विश्व के सम्मुख एक आदर्श भी प्रस्तुत करती है और इतिहास भी। 'साहित्य दर्पण' के मतानुसार महाकाव्य की कथा कल्पित न होकर ऐतिहासिक अथवा पौराणिक होनी चाहिये और उसका नायक एक देवता। यह गुण भी कामायनी मे मिलता है। महाकाव्य शृंगार, वीर या शाँत रस-प्रधान होना चाहिये और उसमें आठ से अधिक सर्ग होने चाहियें। इस दृष्टि से तो कामायनी एक उच्च कोटि का महाकाव्य ठहरता है। कामायनी में सध्या, सूर्योदय रात्रि, प्रात, अन्धकार, वर्षा इत्यादि के सुन्दर चित्रण हैं। संयोग और वियोग-शृंगार की पूर्ण अभिव्यक्ति है।

कामायनी में चरित्रों का विकास बहुत सुन्दर हुआ है। श्रद्धा काव्य की नायिका है और वह मनु को भी 'शक्तिशाली और विजयी' बनने का आदेश करती हैं। कामायनी इडा और मानव को भी इसी प्रकार संदेश देकर कहती है —

तुम दोनों देखो राष्ट्र नीति,
शासक बन फैलाओ न भीति ॥

समस्त ग्रंथ में श्रद्धा का चरित्र प्रधान है। एक प्रकार से मनुष्य चरित्र का भी उदय और विकास श्रद्धा के ही सम्पर्क में आकर होता है। श्रद्धा इस प्रकार इस महाकाव्य का आधार है।

कामायनी शृंगार तथा शाँत-रस प्रधान है। 'वासना' सर्ग में शृंगार का सुन्दर चित्रण दिया गया है। संयोग और वियोग का

आधुनिक गीतात्मक शैली-चित्रण है। नायिका और नायक एकांत में मिलते हैं और प्रेमालाप होता है। 'कर्म' के अंतिम छन्दो मे श्रृंगार का बहुत सुन्दरतम स्वरूप कवि ने प्रस्फुटित किया है।

कामायनी में प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण किया है। जल प्लावन में प्रकृति के पाँचों तत्वों का संघर्ष कवि ने दिखलाया है। प्रातः काल और रात्रिके अन्तिम प्रहर का कितना सुन्दर-चित्रण कवि ने किया है —

उषा सुनहले तीर बरसती जय लक्ष्मी सी उदित हुई।
उधर पराजित काल-रात्रि भी जल मे अन्तर्निहित हुई॥
नव कोमल आलोक बिखरता हिम-संसृति पर भर अनुराग,
सित सरोज पर क्रीड़ा करता जैसे मधुमय पिंग पराग।

इसी प्रकार है प्रकृति का चित्रण बहुत सजीवता के साथ कवि ने किया है। प्रकृति को मानव-जीवन के साथ-साथ तथा स्वतन्त्रता से, दोनों प्रकार कवि लेकर चला है। मानव-प्रकृति का बहुत सुन्दर चित्रण कामायनी मे मिलता है। कामायनी के १५ सर्गों मे कवि ने शृंखला-बद्ध कथा के अंतर्गत प्रकृति, मानव-प्रकृति और काव्य गुणों का सुन्दर समावेश किया है। कामायनी में उपमा उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकारों का प्रधानतया प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार हमने कामायनी की संक्षिप्त विवेचना करके देखा कि उसमें कवि ने दर्शन शास्त्रीय-विवेचना, महाकाव्य विषयक सिद्धान्तो, चरित्र-चित्रण, बुद्धिवादिता, प्राकृतिक-चित्रण इत्यादि सभी गुणों का बहुत कलात्मक ढंग से चित्रण किया है। कामायनी कवि की वर्तमान युग की काव्य-धारा का वह प्रतीक है जिसमें वर्तमान गीतात्मकता और जिसे छायावाद कहा जाता है उस वाद की सम्पूर्ण सृष्टि मिलती है। कामायनी वर्तमान युग के काव्य का वह दर्पण है जिसमें पाठक हर प्रकार की छाया का प्रतिबिम्ब देख सकते हैं।

के सामने ही वह देखती है कि पतिता भोली का आदर-सम्मान बड़े-बड़े धर्मश करते हैं, पर उसके लिये इतना भी नहीं कि वह अपनी मर्यादा को एक नीच सिपाही के हाथ से भी बचा सके। पति महाशय (गिरजाधर जी) क्या करें। पत्नी के वस्त्राभूषण और मान-प्राप्ति की लालसा को वह कुछ और ही समझे। एक दिन आग लग ही तो गई, सुमन गृहिणी के उच्च पद से गिर गई।

परन्तु अभी कुछ और पतन होना बाकी है। दूसरे दृश्य मे उसे हम दालमंडी के एक कमरे में देखते हैं। यदि लेखक महाशय जरा भी चूक जाते तो सुमन के पतन की पराकाष्ठा हो जाती। सदनसिंह के प्रेम-पाश में सुमन फँस जाती है, परन्तु पतित नहीं होने पाती। इसके पहले ही समाज-सुधारक विट्ठलदास उसके उद्धार के लिये पहुँच जाते हैं पर उसका उद्धार नहीं होता। विधवा-आश्रम में उसका बहुत शीघ्र लाया जाना, समाज की कृपा से उसके उद्धार-विरुद्ध कठिनाइयों का पड़ना, शाँता की विपत्ति, उसके भावी श्वसुर मदनसिंह का विरोध—इसमें से किसी एक का भी काम कर जाना सुमन को गिरा देने के लिये काफी था। परन्तु लेखक उसको हर तरफ़ से बचा कर अंत में सेवासदन की संचालिका का पद तक दे देते हैं। सुमन ने अपने ही को नहीं, उपन्यास को भी गिर जाने से बचा लिया।

स्त्री-पात्रों में यदि प्रधान चरित्र सुमन का है तो पुरुष-पात्रों में पद्मसिंह का मानने योग्य है। कथा-प्रसंग में वह कुछ देर बाद दिखाई देते हैं परन्तु फिर वह दृष्टि के सामने से नहीं हटते। पद्मसिंह एक साधारण समाज-सुधारक हैं। विचारों के बहुत ऊंचे हैं, हृदय के बहुत कोमल हैं, परन्तु हैं बड़े दब्बू। ऐसे पुरुष लेख चाहे जितने लिख मारें, वक्तृताएं चाहे जितनी झाड़ आयें परन्तु मौका पड़ने पर रहेंगे सबके पीछे। नाच के बड़े विरोधी, परन्तु मित्रों ने दबाया तो जलसा करा बैठे। इसका उन्हें बहुत प्रायश्चित्त भी करना पड़ा—न

यह नाच होता, और न सुमन घर से निकाली जाती। वह विट्ठल-दास की शरण लेते है। परन्तु उससे पद्मसिंह की नही बनती। जैसे वह कर्म मे कच्चे हैं वैसे ही विट्ठलदास विचार मे कच्चे है, चंदा वसूल करने में कठिनाई, वारांगनाओं को शहर के बाहर जगह देने के प्रस्ताव का म्यूनीसिपैलिटी के मेंबरों द्वारा विरोध, इधर घर मे सदनसिंह की ज़ियादती, उधर सुमन की बहन शांता के साथ सदनसिंह के विवाह में विघ्न पड़ने की चोट—पद्मसिंह बिलकुल ढीले पड़ गये। परन्तु विचार-शक्ति में कमी नहीं पड़ी। उन्हीं के द्वारा लेखक महाशय ने अपना विचार प्रकट किया है कि वार-नारियों को निकाल देने ही से सुधार न हो जायगा। क्यों न उनको और उनकी संतान को अच्छे मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया जाय? इस विचार को विट्ठलदास सेवा-सदन के रूप में परिणत करते हैं। परन्तु पद्मसिंह के हृदय में अंत तक भय की सत्ता बनी रहती है। झेंप के मारे वह सेवा-सदन में नही जाते, कही ऐसा न हो जो सुमन से चार आँखें हो जाँय।

ऐसे और भी अनेक पात्र हैं। परन्तु लेख बढ़ जाने के भय से हम उनका वर्णन न करेंगे। सरला, शांता को अनेक कष्ट सहन करके भी, अन्त में, सौभाग्यवती गृहिणी का सुख भोगना बदा था। चंचला परन्तु पतिव्रता सुभद्रा, अनेक आपदाएँ झेल कर भी, पति के सामने हँसती ही रहती है। गृहस्थ गजाधर के सन्यासाश्रमी अव-तार गजानंद, अन्त मे, बहन के घर से निकाली हुई किसी समय की अपनी पत्नी को शोक-सागर से उबार कर शांति-प्रदान करते है। पुराने विचार के दिहाती रईस मदनसिंह नाच कराने में अपनी मर्यादा समझते हैं। दुलार से बिगड़े हुए नवयुवक सदनसिंह का पतन, और अपनी ही मेहनत द्वारा उद्धार, म्यूनिसिपैलटी के मेम्बरों में से कोई गान-विद्या और हिंदी का शौकीन है, किसी को अंगरेजी बोले बिना चैन नही, किसी के दुर्व्यसन वैसे ही हैं जैसे उसके दुर्विचार—इन

सबके लिए इस उपन्यास मे स्थान है, सबके चित्र देखने को मिलते हैं, सबसे किसी न किसी प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्राप्त होता है।

उपन्यास के पात्रो से दृष्टि हटा कर यदि वह उसके उद्देश्य की ओर प्रेरित की जाय तो एक बहुत बड़ा समाजिक प्रश्न सामने आ जाता है। क्या वह 'सेवासदन', जिसकी झलक हम इसउपन्यास-स्वप्न मे देखते हैं, कभी प्रत्यक्ष देखना भी नसीब होगा? प्रश्न कठिन है। शहरों की आबादी दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। इस काम को म्यूनीसिपैलटियों के भरोसे छोड़ देने से सफलता होने की नहीं। देखें, हमारी व्यवस्थापक-सभायें इस प्रश्न को क्योंकर हल करती हैं। लेखक के विचार यदि उपन्यास के बहाने पाठक-जनता पर कुछ भी असर करें तो समाज एक बड़े बुरे रोग से मुक्त हो जाय।

उपन्यास मे दोष दिखाने के लिए बहुत कम जगह हैं। मुसलमान पात्रो की उर्दू बहुत क्लिष्ट है। यदि सरल हो सकती तो बहुत अच्छा था, टिप्पणी मे कठिन शब्दों के अर्थ ही लिख दिये जाते तो पाठकों को बहुत सुभीता हो जाता।"

सेवा सदन के विषय में संक्षिप्त विचार —

१ सेवासदन प्रेमचन्द्र जी का प्रथम सुन्दर उपन्यास है।

२ इस उपन्यास में लेखक ने वेश्या-चित्र उपस्थित करके भी समाज-सुधार की ओर पाठकों को आकृष्ट किया है।

३ उपन्यास का चरित्र-चित्रण बहुत सुन्दर और मार्मिक है।

४. भाषा में कुछ उर्दूपन अधिक है, यदि कुछ कम होता तो अच्छा होता।

५. यह हिन्दी का अपने ढग का प्रथम सफल उपन्यास है।

प्रेमाश्रम समालोचना क्षेत्रमें

'प्रेमाश्रम' सेवा सदन के पश्चात् मुन्शी प्रेमचन्द जी का दूसरा सुन्दर उपन्यास है। प्रेमाश्रम मे उपन्यासकार ने किसी एक चरित्र का निर्माण नहीं किया वरन् अनेकों चरित्रों का निर्माण किया है। प्रेमचन्द जी चरित्र-चित्रण कला मे इतने प्रवीण थे कि कहीं पर भी उनके चरित्र-चित्रण मे शिथिलता देखने को नही मिलती।

प्रेमाश्रम मे समाज के साथ-साथ लेखक ने राजनीति के क्षेत्र मे भी पदार्पण किया है। देश-प्रेम-भावना से उपन्यास के प्रधान पात्र ओतः प्रोत होकर चलते हैं। समय की प्राय सभी प्रचलित विचार धाराओं का समावेश हमें इस उपन्यास मे मिलता है। समाज और राजनीति की प्रतिनिधि विचार धाराओं को लेकर ही उपन्यासकार ने अपने इस उपन्यास का निर्माण किया है और यही कारण है कि प्रेमाश्रम को पढ कर उस समय का प्रत्यक्ष चित्र पाठक के नेत्रों मे झूलने लगता है। "प्रेमाश्रम के विषय में 'प्रेमाश्रम' की समालोचना करने के लिए किस पद्धति का प्रयोग करें? बंकिमचन्द्र जी के उपन्यासों को देखकर अंगरेज़ी-साहित्य से परिचित समालोचक तुरत कह सकते हैं कि यह स्काट के ढर्रे के ऐतिहासिक उपन्यास है। रवींद्रनाथ जी के उपन्यासों को आप सामाजिक कहते हैं। आपको अंगरेजी साहित्य मे इनकी जोड के बहुत से उपन्यास-लेखक मिलेंगे। जार्ज इलियट, थैकरे, या डिकेंस—इनके तथा रवींद्रनाथजी के उपन्यास-क्षेत्र मे कोई भारी भेद नहीं है। परन्तु प्रेमचन्दजी के उपन्यास इन श्रेणियों मे से किसी मे नहीं आ सकते। इन उपन्यासकारों का काम यह है कि किसी समय के समाज का चित्र खींच दिया, और पात्रों से सहानुभूति दिखाकर, उनकी हसी उडाकर, या उन्हे नीचा दिखाकर, पाठकों के चरित्र सुधारने का प्रयत्न किया। परन्तु इनमें भविष्य का चित्र नहीं है। कला में शायद यह प्रेमचन्दजी से अधिक निपुण हों, परन्तु

इसमें वह उत्तेजना-शक्ति नहीं, उतना कल्पना का विकास नहीं। वे समाज के सामने एक आइना रख सकते हैं जिसे देखकर वह हंसे या कुढ़े, परन्तु उस आइने के पीछे कोई चित्र नहीं, जिसकी सुन्दरता तक पहुँचने के लिए उसके हृदय में उत्तेजना हो।

'प्रेमाश्रम' के उपन्यास-पट पर सामने तो १९२१ के भारतीय समाज का स्पष्ट चित्र है, और पीछे किसी भावी भारत की छाया है। ऐसे चित्र का क्या नामकरण हो? क्या 'प्रेमाश्रम' दार्शनिक उपन्यासों की श्रेणी में रक्खा जाय?"

प्रेमचन्दजी दिहाती झगड़ों का करुणा-जनक दृश्य दिखाने में सफल हुए हैं। यों तो राय कमलानंद, गायत्री, विद्या, ज्ञानशंकर, ज्वालासिंह, डा० इर्फानअली के राग-रंग नगर-निवासियों के हैं, परन्तु उनका अस्तित्व दिहात ही पर है। सुक्खू, विलासी, मनोहर, बलराज, कादिर मियाँ—ये सब तो पूरे दिहाती ही हैं।

चरित्र-चित्रण-कला को जाने दीजिए। शायद किसी और समय, दिहाती और बेगार, मुक़द्दमेबाज़ी और नौकरी के प्रश्न इतने रुचिकर न होते, पर यह उपन्यास सन् १९२१ का लिखा हुआ है और उस वर्ष के अन्दर जितना आँदोलन और राजनैतिक ज्ञान दिहातों में पहुंच गया, उतना शायद ही साधारणतः ५० वर्ष में पहुंचता।

प्रेमाश्रम हाजीरपुर का दूसरा नाम है, परन्तु उपन्यास की नींव में लखनपुर है। वह बनारस के पास हो या कलकत्ते के—इससे कोई प्रयोजन नहीं। सुक्खू चौधरी के से पंचों के सदर, क़ादिर मियाँ के से नरम दिहाती नेता, मनोहर के से अक्खड़ किसान, बलराज के से उदार-हृदय और बलिष्ठ नवयुवक भारतवर्ष के प्रत्येक गाँव में मिलते हैं। उनके प्रभाशंकर के से जिमींदार थे, जो अभ्यागतों के सम्मान में अपनी इज्जत समझते थे, आसामियों के प्रति सहानुभूति

थी, और उनके विरुद्ध अदालत जाने में सकोच होता था। ऐसे जिमींदार भी सुखी थे और उनके किसान भी।

परन्तु इधर पाश्चात्य सभ्यता के साथ मालिकों की आवश्यकताए भी वढीं। जिन जमीदारों के पुरखे बहलियों पर चढते थे, घुटने के ऊपर तक धोती और चार आने सिलाई का अगरखा या मिर्ज़ई पहनते थे, उनकी सतानों के लिए मोटर की सवारी, लबी रेशमी किनारे की धोती और साहबी ठाठ की आवश्कता पडने लगी। दिहात की उन्नति कौन करता है इजाफा और बेदखली का अत्याचार होने लगा।

अभी तक लखनपुर पर सिर्फ उन लोगों का अत्याचार है, जो वर्षा-ऋतु के बाद गांवों पर धावा करते हैं। अभी ज्ञानशकर ने जिमीदारी पर हाथ नहीं लगाया। इसलिए अभी मनोहर के साथियो का यही विचार है कि अँग्रेज़ हाकिम अच्छे होते हैं। परन्तु इधर प्रभाशकर का बुढापा, जमीदारी की आमदनी से ज्यादा खर्च, और उधर ज्ञानशकर पर पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव और यौवन की उमग। ज्ञानशकर ने हर तरफ हाथ बढाना शुरू कर दिया। बस इनके पदार्पण से उपन्यास का प्रादुर्भाव होता है।

यहाँ पर प्रश्न होता है कि इस उपन्यास मे कोई नायक या नायिका है या नही? यदि है, तो कोन है, और नही है तो क्यो नही है?

यह तो मान ही नहीं सकते कि इस उपन्यास मे नायक और नायिकी हैं ही नहीं। यदि चरित्र की उज्ज्वलता पर ही ध्यान दिया जाय, तो एक ओर प्रेमशकर और दूसरी ओर विद्या—यही पात्र लेखक के आदर्श मालूम पडते हैं। इस उपन्यास में ज्ञानशकर का चरित्र आदरणीय नहीं है। गायत्री भी विद्या के सामन तुच्छ मालूम पढ़ती हैं। परन्तु हैं ये ही उपन्यास के नायक और नायिका। ज्ञानशंकर न होते तो कोई लखनपुर का नाम ही न सुनता।

ज्ञानशंकर का चरित्र बहुत जटिल है। एक भारतीय नवयुवक पर पश्चिमी शिक्षा की नई रोशनी का प्राथमिक प्रभाव क्या पड़ता है? यह बहुत ही खूबी के साथ दिखलाया गया है। उक्त शिक्षा ने उसकी भारतीय आत्मा को ही नष्ट कर दिया। जब कभी किसी पवित्र आत्मा के सामने उसकी ऐश्वर्य-लोलुपता का परदा हट जाता है, तो हमें उसकी अन्तरात्मा के मधुर प्रकाश की झलक देख पड़ती है, परन्तु फिर परदा गिर जाता है और ज्ञानशंकर फिर उसी ऐश्वर्य-छाया की ओर बढ़ता हुआ दिखाई देता है। ज्ञानशंकर नायक होते हुए भी अपने भाग्य का विधाता नहीं है। वह समझता है कि अपनी चतुरता के बल पर वह अपना भविष्य आनन्दमय बना सकेगा, परन्तु काल उसे भी नचाता है। प्रभाशंकर की भलमनसाहत प्रेमशंकर के त्याग, गायत्री की लालसा, ज्वालासिंह का स्वाभिमान, राय कमलानन्द की निष्काम संसार-परता—सभी से वह लाभ उठाता मालूम होता है। परन्तु किसलिए?

उपन्यास के दो अंग हैं। एक सामाजिक, दूसरा राजनैतिक। ज्ञानशंकर दोनों को बाँधे हुये हैं। पर इन दोनों में एक एक प्रधान पात्र भी है। सामाजिक अंग पर गायत्री का प्रभुत्व है और राजनैतिक अंग के विधाता प्रेमशंकर हैं।

गायत्री के चरित्र का इज़ाफ़े से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह एक बड़ी भारी जिमींदारी की मालकिन अवश्य है। उसके प्रबन्ध के लिए वह ज्ञानशंकर को बुलाती है। परन्तु इन बातों का उसके चरित्र से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। गायत्री का पतन धर्म-जाल की ओट में होता है। उसे नहीं मालूम होता कि वह किधर जा रही है और जब अकस्मात उसके सामने पाप का अन्धकार-मय गढ़ा दिखाई देता है, तो फिर वह समाज को अपना मुँह नहीं दिखाती। हिन्दू विधवा का पतन यों ही होना स्वाभाविक है।

उपन्यास का वह अंश अधिक करुणामय है, जिसमे लखनपुर की गाथा है। इस अंश के प्रधान पात्र प्रेमशंकर हैं। यदि पश्चिमी शिक्षा का एक फल ज्ञानशंकर की ऐश्वर्य-लोलुपता मे है, तो दूसरा फल प्रेमशंकर की निष्काम जाति-सेवा में है। जिस समुद्र मे हलाहल विष है, उसमें अमृत भी है। प्रेमशंकर उस शिक्षा के अमृतरूपी फल हैं। कुछ मित्रों का खयाल है कि प्रेमशंकर में गाँधीजी की छाया है। हम लेखक के मन की थाह लेने का साहस तो नहीं कर सकते, हमें तो इस पात्र में महर्षि टाल्स्टाय के चरित्र की छाया दिखलाई पडती है।

ज्ञानशंकर चाहते हैं कि प्रेमशंकर को गाव का आधा हिस्सा न देना पडे। इसके लिए क्या क्या जाल रचे, श्रद्धा को कहा तक भरा, बिरादरी को कहा तक उभाडा। परन्तु प्रेमशंकर अमेरिका से और ही पाठ सीख आये हैं। उन्हें साम्यवादियों के मतानुसार एक आदर्श कृषक-संस्था तैयार करनी थी, गाँव को तिलांजलि दे दी और जाति-सेवा मे लीन हो गये। श्रद्धा छूट गई, उसका उन्हे समय-समय पर शोक होता हैं। भाई से बिगाड हो गया, इसके लिए भी उनकी आत्मा को क्लेश होता है। पर वह अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होते। इसीलिए लेखक ने भी भविष्य की बागडोर को उनके हाथ से नहीं जाने दिया।

प्रेमशंकर हाजीपुर को एक साम्यवादी गाँव बना देते है। लखन-पुर का उद्धार करते हैं और मायाशंकर को आदर्श जिमीदार का पद देने मे सफल होते हैं। प्रेमशंकर के संसर्ग मे जो पात्र आया, उसको उन्होंने पवित्र कर दिया। उद्दण्ड मनोहर, स्वार्थी ज्ञानशंकर और लालसामयी गायत्री इस योग्य नहीं थे, इसीलिए लेखक ने इनका अन्त ही कर दिया। सुक्खू चौधरी बैरागी हो गया, ज्वालासिंह डिप्टी-कलक्टरी छोडकर जाति-सेवा मे रत हुए, डाक्टर इर्फानअली

ने वकालत छोड़ दी और डा० प्रियानाथ एक सर्व-प्रिय डाक्टर होगये, यहाँ तक कि पतित दयाशंकर का भी उन्होंने अपनी सुश्रूषा से उद्धार कर दिया। प्रेमशंकर का जीवन एक प्रकार श्रद्धा के बिना अपूर्ण सा था, सो श्रद्धा और प्रेम का ज्वाला द्वारा सम्मिलन भी होगया।

और भी पात्र है। गाव के अत्याचारी अँगरेज नहीं हैं। मनोहर और सुक्खू को गौसखाँ तथा साहयों के अहलकारों से ही शिकायत है। ज्वालासिंह न्याय करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु धोखा खाते हैं और उन्हें स्तीफा देना पड़ता है। गौसखा का भी वही अन्त हुआ जो अत्याचारी जिलेदारों का होता है। मनोहर की उद्दंडता का भी फल उसे मिल गया। सुक्खू को मनोहर के खेतों की बड़ी लालसा थी, परन्तु गाँव पर विपत्ति आने पर वह उनका नेता हो गया। कादिरमियाँ गाँव के सच्चे सेवक बने रहे। दुखरन भगत पर विपत्ति का दूसरा ही असर हुआ। निराशा ने उसके हृदय में जन्म भर की सचित शालिग्राम के प्रति श्रद्धा उखाड़ कर फेंक दी। बलराज गाव के भविष्य का युवक है। उसमें स्वतन्त्रता है, वह किसी से नहीं, क्यों कि उसके पास जो परचा आता है उसमें लिखा है कि रूस में किसानों का राज्य है। यदि परिस्थितियां प्रतिकूल हुईं तो वह भविष्य का बालशेविक होगा। मनोहर की पतिव्रता गृहिणी बिलासी इनके झगड़ों को शात करने का प्रयत्न करती रहती है, पर गाँव में विप्लव उसी के द्वारा होता है। न उस गाँव की द्रौपदी पर गौसखाँ का अत्याचार होता, न विद्वेष की आग इतनी भड़कती। इस विप्लव के शांत होने पर जो बचते हैं, वे उपसंहार में भावी गवर्नर हिज़ एक्सलेंसी गुरुदत्त राय चौधरी और भावी जिमींदार मायाशकर के समय में रामराज्य का सुख भोग करते हुए दर्शन देते हैं।

कथा-प्रसंग के परे और भी पात्र हैं। राय कमलानन्द का चित्र विशेषकर भावमय है। मालूम नहीं कि यह उपन्यास लेखक के

मस्तिष्क से निकले है या इनकी जोड़ के ससार मे कोई हैं भी। इनका जीवन सासारिक विलास में मग्न है। पर इससे इनके पौरुष में कोई अन्तर नहीं आता। इनकी भोग-क्रियाएँ इसीलिए थीं कि जीवन की चरम सीमा तक सुख भोग कर सकें। इनका आत्मबल इतना प्रखर था कि ज्ञानशकर भी उनके सामने नहीं ठहर सका। परन्तु जीवन का आदर्श त्रुटियों से भरा है।

विद्या और श्रद्धा के चित्र भी उल्लेखनीय हैं। दोनों साधारण हिन्दु-रमणियाँ हैं। विद्या के चरित्र में जटिल समस्या ही कभी नहीं आई, और जब उस पर कष्ट पड़ता है तो लेखक उसे बरदाश्त करने योग्य न समझ कर उसका अन्त ही कर देता है। कुटिल ज्ञानश कर की पतिव्रता पत्नी का यही अन्त होना था। श्रद्धा के सामने पहले से ही धर्म और प्रेम की समस्या मोजूद है। पर प्रेमशंकर के चरित्र का अत में उस पर इतना प्रभाव पड़ा कि धर्म की शृंखलायें ढीली पड़ गई। लेखक ने श्रद्धा को प्रेम से मिला कर दोनों का जीवन सार्थक कर दिया।

पात्रों का अवलोकन करके अब लेख-शैली पर विचार कीजिए। प्रेमचदजी की यह पुरानी आदत है कि भाषा हिंदी ही रहती है, पर शब्दों का रूप पात्रानुसार बदलता रहता है। 'प्रेमाश्रम' मे दिहाती पात्र भी हैं, इस लिए उनके काम में आने वाले शब्द भी वैसे ही हैं। रिसवत, सरबस, मुदा, मसक्कत, मूरख, सहूर, अचरज, कागद, ये सब दिहातियो के ही शब्द हैं। भाषा सिर्फ करतार की बिगड़ गई है। वह ठेठ गँवारू है। और जितने दिहाती हैं, उनकी भाषा मे पूर्वोक्त प्रकार के शब्द आने से लालित्य बढ़ ही गया है।

प्रेमचद जी ने अपनी लेख-शैली मे "इनवर्टेड कामाज़" का प्रयोग न करके प्राचीन परिपाटी का ही अनुसरण किया है। पुरानी हिंदी मे इनवर्टेड कामाज़ नही थे। वार्तालाप में पात्र का नाम और उसके

बाद बस काम आ गया। कोई आंतरिक विचार हुए या कोई लम्बी बातचीत हुई तो इसकी भी आवश्यकता नहीं।

मनोविकार के चित्र तथा विचित्र उपमाएं उपन्यास-धारा की तरंगों पर कमल के फूलों की तरह दर्शन देती चली जाती हैं।

यह उपन्यास अपने ढंग का अनूठा उपन्यास है जिसे देकर उपन्यासकार ने हिन्दी-साहित्य-निधि के कोष को भरा है। यह उपन्यास हिन्दी साहित्य के उन उपन्यासों में से है जिन्हें लेकर हिन्दी साहित्य अन्य भाषा के उपन्यासों मे सगर्व खड़ा हो सकती है और उनके सम्मुख अपनी महत्ता प्रस्तुत कर सकता है।

प्रेमाश्रम के विषय मे संक्षिप्त विचार—

१ प्रेमाश्रम समाज और राजनीति दोनों की समस्याओं के आधार पर भारत की १६२१ की डायरी है।

२ प्रेमाश्रम मे किसी एक पात्र का विकास न होकर समाज के विविध अंग प्रत्यांगों के साथ विविध पात्रों का विकास हुआ है।

३. उपन्यासकार की भाषा मजी हुई और सर्व-साधारण की समझ में आने वाली है परन्तु हिन्दी होते हुए भी उसमे उर्दू शब्द बहुत हैं।

४. उपन्यास मे वर्तमान का चित्र और भविष्य की सुन्दर कल्पना है।

५. लेखक सब प्रकार से अपने आदर्श में सफल रहा है और जो आदर्श वह प्रस्तुत करना चाहता है उसे उसने पूर्ण-रूप से प्रस्तुत किया है।

रङ्ग-भूमि पर एक दृष्टि

रंग-भूमि मुंशी प्रेमचन्द का चौथा उपन्यास है। इस उपन्यास में भारत के अन्दर कल-कारखानों का उदय और ग्रामीण उद्योगों का पतन दिखलाया है। शहर और ग्रामों की यह समस्या उस समय

पश्चिमीय देशों मे समाप्त हो चुकी थी और पूर्वी देशों मे चल रही थी। कारखानों के प्रताप से ग्राम शहरो में परिवर्तित होते जा रहे थे और उसी के विपरीत विद्रोह की भावना को लेकर उपन्यासकार ने रंग भूमि की रचना की है। इसी समय भारत मे गांधी जी अपनी चर्खा-प्रणाली का प्रचार कर रहे थे। इस चर्खे के प्रचार के साथ-साथ चल रहा था महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन। यही कारण था कि यह गाधी जी की चर्खा विषयक प्रस्तावना सपत्ति-शास्त्र वेत्ताओं को उतना आकृष्ट न कर सकी और देहातों में कर्घे इत्यादि की योजनायें अधिक प्रस्फुटित नहीं हो सकीं। भारत के देहाती बराबर कल-कार-खानों के चक्कर में फसते रहे। सरकार ने समाज को सहयोग नहीं दिया और ना ही देहाती उद्योग-धंधों को। जिसका स्पष्ट फल यह हुआ कि देहातों मे जो बचे-कुचे देहाती धधे थे वह भी समाप्त होने लगे और कलों का प्रचार भारत में बढ़ने लगा। अंगरेज़ी कारखानो में बनी हुई कलो को बेचने के लिये भारत का बाज़ार खुल गया और भारत का रुपया विलायत को जाने लगा। रंग-भूमि सरकार की इस नीति के विरुद्ध उस काल मे एक खुला हुआ विद्रोह था। भारत की राजनीति को यह एक सुझाव भी था।

"रंग-भूमि के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के विषय में कालिदास कपूर एम० ए० लिखते हैं :—

"विनय और सोफी के चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक है मनुष्य और स्त्री की प्रेम-भावना में क्या अन्तर है? क्या यह सत्य है कि मनुष्य का प्रेमोपासना-मार्ग आदर्श प्रेम के आकाश से लालसा के पाताल तक है, और स्त्री का उससे उलटा, लालसा के पाताल से आदर्श प्रेम के आकाश तक। यदि ऐसा है तो चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता का अंश अवश्य है। विनय में जो कुछ देश-सेवा का अंकुर है वह उसकी माता जाह्नवी की कृपा से। सोफी के प्रेमपाश में फँस कर

उसमें अधर्मता आ जाती है। विनय आदर्श प्रेम से गिर कर इन्द्रिय-भोग की लालसा में अपनी आत्मा को हानि पहुँचाता है। सोफी का दूसरा हाल है। वह आदर्शवादिनी है। यों तो वह अबला है परन्तु विनय के प्रति अंकुरित प्रेम उसे कर्मवीरांगना बना देता है। उपन्यास के दूसरे भाग में उसी का राज्य है।

प्रेमचन्दजी ने भारतीय स्त्रीत्व तथा मनुष्यत्व का वास्तविक चित्र खींचा है। मनुष्य लालसा और लोभ के वश तो कर्मण्य रहते हैं पर आदर्श उन्हे अकर्मण्य और आलस्यी कर देता है। स्त्रियाँ भी लालसा और लोभ के पाश मे फँस जाती हैं, पर अपना धर्म नहीं खोती।

प्रेमचन्दजी देहाती जीवन का करुणामय चित्र खीचने में दक्ष हैं। सेवा-सदन, प्रेमाश्रम और रंग-भूमि में प्रेमचन्दजी का प्रेम शहर से देहात की ओर अधिक है। 'प्रेमाश्रम' मे प्रेमचन्दजी ने 'सेवासदन' की भाँति एक आदर्श ग्राम की सृष्टि की है। पर साथ ही वास्तविक लखनपुर की भी पूरी व्याख्या की है। 'रंग भूमि' का पाँडेपुर 'प्रेमाश्रम' का लखनपुर है 'रंग-भूमि' मे वह हृदय-विदारक दृश्य है कि कल और कारखाने किस प्रकार इस ग्राम का विनाश करते हैं और उसके साथ ही अधर्म का प्रचार बढाते हैं। इसकी सूरदास ने कारखाने बनने की प्रस्तावना पर पहले से ही सूचना दे दी थी। "सरकार बहुत ठीक कहते हैं। मुहल्ले की रौनक जरूर बढ़ जायगी, रोज़गारी लोगों को फायदा भी खूब होगा। लेकिन जहाँ यह रौनक बढ़ेगी, वहाँ ताड़ी-शराब का भी तो प्रचार बढ़ जायगा, कसबियाँ भी तो आकर बस जायेंगी, परदेशी आदमी हमारी बहू-बेटियों को घूरेंगे कितना अधर्म होगा? देहात के किसान अपना काम छोड़कर नौकरी के लालच मे दौड़ेंगे, यहाँ बुरी-बुरी बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरण अपने गाँवों में फैलायेंगे। देहातों की लड़कियाँ बहुएं मजूरी

करने आयेंगी और यहाँ पैसे के लोभ में अपना धरम बिगाड़ेगीं। यही रौनक शहरों में है, वही रौनक यहाँ हो जायगी।" बजरंगी और जगधर के मकान मिट गये, सूरदास को झोंपड़ी के लिए सत्याग्रह करना पड़ा। परन्तु यह दृश्य उतने कष्टमय नहीं हैं जितना कि वह जिसमें देहात के नवयुवक घीसू और विद्याधर का नैतिक पतन होता है। ठीक ही है "धन का देवता बिना आत्मा का बलिदान पाये प्रसन्न नहीं होता" इस उपन्यास पर देहात के जीवन का साम्राज्य है। नायक और नायिकायें शहर के हैं, पर वे देहात पर अपनी जीविका के लिए निर्भर हैं। 'रंग-भूमि' मे देहाती जीवन के विनाश का करुणा-मय दृश्य है। क्षेत्र काशी से उदयपुर तक है। उपन्यास के पात्र देशी और विदेशी, देहाती और शहर के—गाव का नायक सूरदास है और उसके ही चरित्र में देहात के जीवन का चित्र है। देहातियो की सरलता धर्म-भीरुता साहस सहन-शक्ति, प्रकृति, घरेलू झगड़े, संगठन-शक्ति इन सब का प्रतिबिम्ब सूरदास में मिलता है।

'सेवासदन' मे दिहात के उदय, 'प्रेमाश्रम' में उसके मध्याह्न और रंग-भूमि में उसके अस्त होने का दृश्य है। प्रथम उपन्यास में आशा, दूसरे में आशा और निराशा, दोनो का मेल, और तीसरे में अन्धकार और निराशा, रंग-भूमि में करुणा की पराकाष्ठा है। इस उपन्यास का हास्य भी करुणा से घिरा हुआ है।

प्रेमचन्दजी के चरित्र-चित्रण में एक दोष है, जिसका उल्लेख करना आवश्यक है। आपको जब पात्रों की आवश्यकता नहीं रहती, जब उनमें रंग भरते-भरते आप थक जाते हैं तब झट उनका गला घोंट डालते हैं। 'सेवासदन' में कृष्णचंद नदी में डूब कर आत्म-हत्या करता है, 'प्रेमाश्रम' मे गायत्री पहाड़ से गिर कर जान देती है और 'रंग-भूमि' मे विनय पिस्तौल द्वारा अपनी हत्या करता है।

हमें यह ढग दोषपूर्ण मालूम होता है। आत्महत्या का नीति तथा धर्मशास्त्र दोनों मे निषेध है और धर्म और नीति दोनो की अवहेलना करना न कवि के लिए योग्य है और न उपन्यास-लेखक के लिए। उपन्यास लेखक को भी कवि की भाँति अपनी कला मे निरंकुशता का अधिकार प्राप्त है पर इतना नहीं कि जिस कर्म का शास्त्र तथा नीति में निषेध हो उसका लेखक द्वारा सम्मान किया जाय।

इतना सब कुछ होते हुए भी प्रेमचंद जी के उपन्यासों का महत्व कम नहीं होता, हम हेमचदजी जोशी की प्रेमचद के प्रति आलोचनाओं से सहमत नही है। यह उपन्यास क्षणभगुर नही हैं। हिंदी के दुर्भाग्य से इनका अनुवाद, अभी तक किसी पाश्चात्य भाषा में नहीं हुआ है। यदि कभी हो, और योरोप के विद्वान् प्रेमचद की रवींद्रनाथ ठाकुर और टाल्स्टाय से तुलना करें तब हम भी समझने लगेंगे कि ये उपान्यास भी कुछ महत्त्व रखते हैं। प्रेमचद का यथासमय भारतीय साहित्य में वही सम्मान होगा जो डिकेंस और टाल्स्टाय को योरपीय साहित्य में प्राप्त है। भारत का हृदय कलकत्ते की गलियों में नहीं है, न वह शिक्षित बगालियों की अट्टालिकाओं में है। उसका हृदय देहात में है, किसानों के टूटे-फूटे झोपड़ों में है। हरे-भरे खेतों को देख कर उसे शाति मिलती है। अनावृष्टि से अन्न सूख जाता है। उस हृदय का मार्मिक चित्र जिसने खींचा है वह देश भर का धन्यवाद-पात्र है। अभी भारतीय किसानों में शिक्षा का अभाव है। जिस समय वह समझेंगे कि कोई साहित्यक ऐसा भी हुआ था जिसने उस समय अपने जीवन की अनुभूतियों को हमारी झोपड़ियों में लाकर बिठलाया था और हमारा उस समय का चित्रांकन करके आनंद लाभ लिया था जब देहाती असभ्य समझे जाते थे। वह काल प्रेमचद के विकास का काल होगा, जब उसके उपन्यासों के पात्र भारत के भाग्य-विधाता बनकर अपने पूर्वज को सम्मान के उच्चतम आसन पर बिठला कर उसकी पूजा करेंगे।

रग-भूमि के विषय मे संक्षिप्त विचार —

१ भाषा और भाव की दृष्टि से सेवासदन और प्रेमाश्रम की अपेक्षा यह उपन्यास अधिक परिपक्व अवस्था मे है।

२ ग्रामोद्योग और कल-कारखानो का सघर्ष इसमें लेखक ने दिखलाया है।

३ पात्रों का सुन्दर-चित्रण है भाषा प्रौंजल है। यह उपन्यास करुणा-प्रधान है जिसमे ग्रामो के पतन का चित्राकन लेखक ने किया है।

४. उपसहार।

हिन्दी साहित्य में रहस्य-वाद

भारतीय चितन मे रहस्य-वाद कोई नई वस्तु नही है। यह सत्य है कि हिन्दी साहित्य मे इसका प्रादुर्भाव कबीर और जायसी के साहित्य द्वारा ही सर्व प्रथम धार्मिक क्षेत्र मे इसका पूरा-पूरा ब्यौरा हमें मिलता है। ऋग्वेद के "नासि देय-सूत्र" और पुरुष यति की कथा में सर्व-प्रथम रहस्यवाद की झलक मिलती है। उपनिषदों मे तो इस प्रकार की उक्तियों की भरमार है।

रहस्य-वाद ईश्वर जीव के चिंतन का एक ढंग है, जो कि निर्गुण पंथियों ने अपनाया। इनका एक प्रकार का चितन वह है जो भागवत इत्यादि रूपक ग्रथों मे मिलता है और दूसरा वह है जो उपनिषदों में प्राप्त होता है। एक मे प्रेम को आधार माना है और दूसरे मे ज्ञान को। हिन्दी साहित्य मे दोनों ही प्रकार के रहस्य-वाद के दर्शन होते हैं।

रहस्य-वाद की प्रारम्भिक धारा उपनिषदों की है जिसका प्रचार सिद्ध-साहित्य द्वारा हुआ। फिर उसे नाथ पथियों ने अपनाया और अन्त में वह कबीर के निर्गुण-पथ का प्रधान-चितन का विषय बन

कल्पना की है । विरह का बहुत सुन्दर चित्रण हमें जायसी की पद्मावत में मिलता है और वह हृदय-स्पर्शी भी है। प्रेमात्मक रहस्यवाद का प्रादुर्भाव वास्तव में सूफी सिद्धांतो के सम्मिश्रण से ही हुआ है।

सगुण-भक्ति काव्य में भागवत के रहस्य-वाद की झलक नहीं मिलती। भक्त-कवियों ने मुक्त-कंठ से उस भगवान का गाना किया है जिसमें कोई रहस्य नहीं है, जो उनका सखा है, साथी है, और जिसके साथ वे हँस-खेल सकते हैं। सूर साहित्य मे रुपकों को स्थान अवश्य मिला है, परन्तु उनमें भी कृष्ण का जो चित्रण है उसमे दर्शन का वह गाम्भीर्य नहीं आ पाया जो कबीर की कविता में पाया जाता है। वहाँ तो ईश्वरीय सत्ता दृष्ट है, उनके सामने है फिर क्यों वह रहस्य की कल्पनाओं मे अपने मस्तिष्क को परेशान करें? उनका इष्टदेव रहस्य की वस्तु नहीं भक्ति की वस्तु है और भक्ति के लिए मस्तिष्क की आवश्यकता नहीं। वहाँ तो सच्चा और सरल हृदय चाहिए। फिर भी सूर के साहित्य में कहीं-कहीं पर रहस्य की साधारण सी झलक अवश्य मिल जाती है परन्तु उसके कारण हम सूर को रहस्यवादी कवि नहीं कह सकते।

इस रहस्य-वाद का स्रोत सूर और तुलसी के काल में भी धीरे-धीरे बहता रहा और सोलहवीं शताब्दी के अंत तक इसका प्रवाह कभी कहीं कभी कहीं दिखलाई दे जाता था। कबीरदास और जायसी के अतिरिक्त सुन्दर दास, मलूक दास, कुतबन, नूरमुहम्मद इत्यादि ने भी रहस्यवादी प्रणाली का ही अपनी काव्य-धारा में अनुसरण किया है।

सत्रहवीं शताब्दी में आकर भक्ति-साहित्य का एक दम लोप होता चला गया और रीति-कालीन कवियों ने लाक्षिक-साहित्य की रचना की। इस साहित्य में राधा-कृष्ण के नाम तो प्रयोग में अवश्य आये परन्तु साधारण नायक और नायिकाओं के रूप में। रहस्य-वाद

का वह अलौकिक-सौन्दर्य कवियों के जीवन से पृथक हो गया जिसके आनन्द में विभोर होकर भक्त-कवियों ने राज-दरबारो को ठुकरा दिया था'—

संतन को कहा सीकरी सौ काम।
आवत जात पन्हरिया टूटीं, विसरि गयो हरि नाम।।

कवि और सत-जीवन का यह महानादर्श रीति-काल मे समाप्त हो गया। अठारहवीं शताब्दी में पूर्ण-रूप से शृंगारिक कवितायें हुई। अध्यात्म-वाद का पूरी तरह लोप हो गया। १६ वीं शताब्दी में हिन्दी में जो साहित्य-रचना हुई उस पर अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव पडे बिना न रहा। ऊपर हम हिन्दी के प्राचीन साहित्य में रहस्य-वाद का दिग्दर्शन करा चुके हैं अब हमें देखना है कि वर्तमान युग में रहस्य-वाद का क्या स्वरूप रहा? बीसवी शताब्दी में हिन्दी के साहित्य पर अगरेजी के १६ वी शताब्दी के रोमाँचकारी साहित्य का प्रभाव पडा। उस काव्य मे भी रहस्य-वाद की झलक थी। इसी समय बग प्रदेश के प्रसिद्ध कवि रवीन्द्र की गीतांजलि प्रकाशित हुई। गीतांजलि पर कबीर का प्रभाव स्पष्ट है और थोडा थोडा वैष्णव तथा १६ वी शताब्दी के अंग्रेजी साहित्य का भी प्रभाव है। इस रचना द्वारा पूर्व तथा पश्चिम का मिलन हुआ और आगे आने वाले हिन्दी साहित्य पर भी इसका काफी प्रभाव पडा। इस प्रकार रहस्य-वाद का यह नया रूप साहित्य में आया।

प्राचीन रहस्य-वाद में और इस वर्तमान-कालिक रहस्य-वाद में स्पष्ट अंतर है। प्राचीन कवि पहिले आध्यात्मिक विचारक थे और बाद में कवि। उन्होंने कविता को, अपने विचारों को प्रचारित करने के लिए साधन-स्वरूप अपनाया, परन्तु वर्तमान-कालिक रहस्यवादी कवियों ने कविता को कला के रूप मे लिया और कविता की साधना का महत्त्व उनके नजदीक, रहस्य-वाद प्रतिपादन से किसी भी प्रकार,

कम नहीं रहा। इससे यह स्पष्ट ही है कि प्राचीन कालिक रहस्य-वाद यह माना कि बहुत ऊंचे धरातल पर था परन्तु उसमें वह काव्य-सौन्दर्य नहीं आ पाया जो वर्तमान साहित्य में है।

आज का रहस्यवाद कल्पना-प्रधान है। उसमे धार्मिक अनुभूति नहीं है, कहीं-कहीं पर उसकी झलक है भी तो वह गौण-रूप से वर्तमान है। साधना से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। वह कोरी काव्य की एक शैली है। भक्ति-काल में रहस्य-वाद के जिन प्रतीकों को लेकर कवियों ने रचनाये की वह प्रतीक आज के प्रतीक नहीं रहे। यही कारण है कि आज का रहस्य-वाद साधारण लोगों मे प्रचारित नहीं हो पाया। प्रौढ भाषा में नवीन छंदों के साथ काव्य का सौन्दर्य तो उसमें आया परन्तु क्षेत्र विस्तृत होने की अपेक्षा संकुचित हो गया। इस काल के इस रहस्य-वाद को हिन्दी के विद्वानों ने 'छायावाद' का नाम दिया है।

आधुनिक 'रहस्यवाद' अथवा 'छायावाद' में प्रकृति-सौन्दर्य, प्रेम-विरह इत्यादि पर अध्यात्म-रूप से नहीं लौकिक रूप से कवियों ने लेखनी उठाई है। आज के युग में धर्म गौण होता जा रहा है इसलिए धार्मिक रहस्यवाद का आज के युग में पनपना भी सम्भव नहीं हो सकता था। वर्तमान काल में इस काव्य के अंतर्गत कई शैलियों मे साहित्य-रचना हुई, इनमें सर्व-प्रधान शैली गीत-काव्य की है। हिन्दी के प्राचीन और वर्तमान सभी रहस्यवादी साहित्य पर विदेशियों का प्रभाव रहा है इस सत्य को हमें मानना ही पड़ता है। सूफी और अंगरेजी प्रभाव इनमें अपना विशेष स्थान रखते हैं। भारतीय-चिंतन सर्वदा से समन्वय की भावना को लेकर चला है इसलिए इसने सर्वदा ही विशाल-हृदय से सबको सम्मान के साथ अपनाया है और अपने काव्य-रचना में उचित स्थान दिया है। रोमांस-काव्य का उदय विरह से होता है। आधुनिक रहस्य-वाद में

इसीलिये रचनाओं के विषय हैं, मिलन, विरह, प्रतीक्षा, प्रकृति-सौन्दर्य में प्रेम की कल्पना, प्रकृति की विविध वस्तुओं मे आकर्षण, प्रेयसि-प्रणय इत्यादि। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा इत्यादि इस काल के प्रधान रहस्य-वादी कवि हैं। इस प्रकार हिन्दी साहित्य का रहस्य-वाद आध्यात्मिक क्षेत्र से चलकर लौकिक-क्षेत्र में आ गया।

रहस्यवाद पर संक्षिप्त—

१ रहस्यवाद का आदि स्रोत।

२ हिन्दी साहित्य में संत और सूफियों का रहस्य-वाद।

३ सगुण काव्य और रहस्यवाद।

४ आधुनिक साहित्य में 'छायावाद' कहलाने वाला रहस्य-वाद।

५ आध्यात्मिक दृष्टिकोण से रहस्यवाद का लौकिक दृष्टिकोण।

हिन्दी में छायावाद

हिन्दी साहित्य मे छायावाद का उदय जयशंकर प्रसाद के 'आँसू' और सुमित्रा नन्दन पन्त की 'वीणा' से होता है। इन कविताओं के पाठकों ने इनमें रवीन्द्र बाबू की गीतांजली और अंग्रेजी के मिस्टिक (Mystic) कवियों की छाया पाई। इस लिये प्रारम्भ मे व्यंग-स्वरूप इस नई धारा की कविता को 'छायवादी' कविता कहा गया जिसने बाद में जाकर वही नाम ग्रहण कर लिया। बंगला साहित्य में इसी प्रकार का साहित्य रहस्य-वादी साहित्य कहला रहा था।

हिन्दी की इस छायावादी धारा का विकास धीरे-धीरे बंगला से भी आगे हो गया और इसमें एक से एक सुन्दर रचनाएं प्रकाशन में आईं। धीरे-धीरे छायावाद मे से व्यंग का भाव बिल्कुल लुप्त होगया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद साहित्य को "काया वृत्तियों का प्रच्छन्न पोषण" कहा है, जिसकी विशेषता इसकी लाक्षणिकता

अतिरिक्त और कुछ नहीं है। नन्ददुलारे जी का मत दूसरा ही है। वह कहते हैं, "छायावाद में एक नूतन सास्कृतिक मनोभावना का उद्‌गम है, और एक स्वतन्त्र दर्शन की आयोजना भी। पूर्ववर्ती काव्य से इसका स्पष्टत पृथक अस्तित्व और गहराई है" यह मत रामचन्द्र शुक्ल जी के मत से बिलकुल मेल नहीं खाता। कविवर जय शकर-प्रसाद जी छायावाद को अद्वैत रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास मानते हैं। इसमें परोक्ष की अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौंदर्य के द्वारा 'अहम' का 'इदम' से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न पाया जाता है।

छायावाद हिन्दी साहित्य की नवीन धारा का वह स्वरूप है जिसमे भारतीय दर्शन, प्रकृति और बुद्धिवाद को एक नवीन दृष्टिकोण से परखा गया है। इसमे आध्यात्मिक रहस्यवाद की प्रवृत्तियाँ, सौंदर्य निष्ठा, लाक्षणिकता और मानव जीवन की नवीन दृष्टिकोण के साथ विवेचना मिलती है। छायावाद शब्द बहुत व्यापक है इस लिये इसे किसी विशेष परिभाषा के दाहिरे में बाँधने का प्रयास व्यर्थ है। छाया-वाद की निम्नलिखित विशेषतायें कवियों ने अपने काव्य मे रखी हैं—

१. छायावादी कविता में आत्माभिव्यक्ति अधिक मिलती हैं।
२ आध्यात्मिक दृष्टिकोण से अद्वैतीयवाद का आश्रय लेकर छाया-वादी रहस्यवाद का विकास होता है। प्रेम, विरह और करुणा की प्रधानता रहती है। पन्त, महादेवी, निराला, प्रसाद, सभी कवियों की रचनाओं में इनके उदाहरण प्रत्यक्ष मिल सकते हैं।
३ छायावादी कवि वैचित्र्य और सौंदर्य के उपासक पाये जाते हैं। उनमें कुछ खोया-खोया सा पन रहता है और कविता भी कुछ अटपटी करने का प्रयास मिलता है।
४. कविता में शब्द-माधुर्य को प्रधानता दी जाती है और भावों को स्वच्छन्दता। पांडित्य को बाँधकर चलने का प्रयास वह नहीं

करते। इस धारा के इस गुण मे कविवर निराला अपवाद स्वरूप आते हैं।

५ प्रकृति का सुन्दर-चित्रण मिलता है, स्वतन्त्र भी और नायक-नायिकाओं के साथ भी। इस धारा के कवियों ने शृंगार का सुन्दर-चित्रण किया है परन्तु उसे पढ़कर वासना जागृत नहीं होती। रीतकालीन-श्रृङ्गारिकता के प्रति, इनमे विद्रोह मिलता है।

६ छायावादी शैली की प्रधानता उसके शब्दो मे लाक्षणिक प्रयोग की है। अन्योक्ति, वक्रोक्ति और प्रतीकों का आश्रय लेकर यह कविता रहस्यमय भावना के साथ पाठक के सम्मुख आती है। पाठक तनिक सतर्कता के साथ पढ़ने पर इनके समझने मे कोई कठिनाई अनुभव नहीं करता।

७ छायावादी कवियों की प्रकृति ही उनके रहस्य का प्रधान विषय है, जिसमे जीवन की कल्पना करके कवि उसकी विभूतियों मे तन्मय होकर रहस्योद्घाटन करता है।

८ मानव-जीवन का निराशामय-चित्रण इस धारा की कविता मे उपलब्ध होता है। इस निराशा में लौकिकता के अन्दर स्थान-स्थान पर अलौकिक पुट मिलती है। सूफी प्रेम मार्गी शाखा की प्राचीन प्रणाली का इसमें आभास मिल जाता है।

हिन्दी साहित्य की इस छायावादी धारा को चाहे विदेशी (Mysticism) रहस्यवादी कविता का प्रभाव कहे या बङ्गाली रहस्य वादी कविता का परन्तु यह हिंदी साहित्य मे एक नवीन दृष्टिकोण के साथ आई है और इसने सौ वर्ष के कठिन परिश्रम के पश्चात् एक अपना स्वरूप खड़ा किया है। जनता तक पहुँचने में इसे बहुत समय लगा और वह लगता भी, क्यों कि एक बिलकुल नये दृष्टिकोण को समझने मे इतना समय लग ही जाता है। नये-नये आलोचना के माप-दण्डों

द्वारा समालोचकों ने इस कविता को पाठकों के सामने रखकर समझाने का प्रयत्न किया, तब कहीं जाकर हिन्दी पाठक इसे समझने में सफल हुए।

"कोई भी काव्य अपने युग से बहुत ऊँचा नहीं उठ सकता। छायावाद काव्य पर अस्पष्टता, अलौकिकता, अव्यवहारिकता, अनैतिकता, ईमानदारी की कमी और अश्लीलपन ये कितने ही दोष लगाये जाते हैं परन्तु यदि सच पूछा जाय तो यह अपने युग का श्रेष्ठ प्रतिबिम्ब है। मध्ययुग का मध्यवर्ग जिस बौद्धिकता के ह्रास, भावुकता के प्राबल्य और मन वाणी के सामाजिक और राजनैतिक नियन्त्रणों में से गुजर रहा था उसी के दर्शन इस काव्य में भी मिलेंगे। गांधीवाद ने दुःख, कष्ट सहन और पराजय को राष्ट्रीय साधना के रूप में स्वीकार कर लिया था। समाज में प्रेम कहना पाप था। मध्यवर्ग में से साकार उपासना पर से विश्वास उठ रहा था, परन्तु वैष्णव भावना को बिलकुल अस्वीकार करना असम्भव था। आर्थिक और राजनैतिक संकटों ने कमर तोड़ दी थी, महायुद्ध के प्रारम्भ के प्रभात के स्वप्न युद्ध समाप्ति पर कुहरे के धरोहर बन गये। ऐसे समय काव्य का रूप ही और क्या होता? रवीन्द्र के काव्य ने इस प्रदेश की मनोवृत्ति के अनुकूल होकर उसकी काव्य चिन्ता को यह विशिष्ट रूप दे दिया था।" डाक्टर रामरतन भटनागर एम० ए० 'हसरत'

छायावाद संक्षेप में—

१ छायावाद का इतिहास और उसकी परिभाषा।
२ उसकी विशेषतायें।
३ छायावाद का आध्यात्मिक दृष्टिकोण।
४. छायावाद इस युग का प्रतिबिम्ब है, कल्पना नहीं, सत्य है।

हिन्दी में प्रगतिवाद

छायावादी साहित्य की पलायनवादी प्रवृत्तियों के विपरीत विद्रोह स्वरूप प्रगतिवाद का हिन्दी साहित्य मे प्रादुर्भाव हुआ। ससार के राजनैतिक दृष्टिकोण से आध्यात्मिकता का धीरे-धीरे ह्रास हो रहा है। रूस के काम्यूनिज्म ने इस प्रवृत्ति को बल दिया और धीरे-धरे इसका प्रभाव मध्य वर्ग के पढ़े-लिखे लोगों पर पड़ा। छायावादी कविता में जो श्रृंगारिक भावना थी वह तो मानव हृदय को अवश्य अपनी ओर आकर्षित कर रही थी परन्तु उसमें अद्वैतवाद की पुट देकर जो पलायन की प्रवृत्ति आने लगी थी उसने छायावादी कवि को जीवन की वास्तविकता से बहुत दूर धकेल दिया। ऐसी परिस्थिति मे जीवन की उन वास्तविकताओ को भुला कर नहीं चला जा सकता था, जो लौकिक जगत मे नित्य हमारी आखों के सम्मुख आती हैं।

प्रगतिवादी कवि ने सोचा कि क्या कविता का विषय आत्मा, परमात्मा और श्रृंगार ही हो सकते हैं। क्या सड़क पर खड़ा हुआ पसीने मे लतपथ मज़दूर कविता का विषय नहीं बन सकता? यह विचार आते ही कवि ने उसे देखिये चित्र-रूप दे दिया —

वह तोड़ती पत्थर,
देखा मैंने इलाबाद के पथ पर—
वह तोड़ती पत्थर।

फिर उसने एक भिखारी को देखा और लेखनी उठाकर रचना की।

वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता
पेट पीठ मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक।

मुट्ठी भर दाने को
भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता।
वह आता।

प्रगतिवाद के अन्तर्गत हमे उस साहित्य की झलक मिलती है जिसमें मानवीय प्रवृत्तियों का पूरा पूरा सन्निवेष हो। इसमे जीवन के लौकिक तथ्यों का यथार्थ-चित्रण होता है। हिन्दी साहित्य मे यह धारा नवीन होते हुए भी प्रगति की ओर अग्रसर है। जीवन प्रगति का नाम है और यदि जीवन मे प्रगति नहीं है, तो जीवन जीवन ही नहीं रहता। वस्तु-जगत से मुह मोड़ कर स्वप्न या अध्यात्म की ओर दौड़ना प्रगतिवादिता के सर्वथा विरुद्ध है। प्रगतिवाद चाहता है जीवन में साम्य हो, समाज में साम्य हो और राजनीति मे साम्य हो। पुरातन रुढ़िवाद नष्ट करके प्रगतिवाद नवीन मानवता का निर्माण करना चाहता है। वहां बड़े-छोटे का भेद-भाव नहीं है। धनवान और निर्धन का भेद नहीं है। वहाँ मानव-मानव के बीच किसी प्रकार का अन्तर ही नहीं माना जाता है। इस साहित्य में शोषक वर्ग का विरोध और शोषित वर्ग के प्रति साहित्यकार की सहानभूति होती है। चरित्र-चित्रण और स्पष्ट-वादिता इस साहित्य का प्रधान गुण है। प्रगतिवादी कवि के सम्मुख निर्बल सबल की अपेक्षा अधिक यथार्थ हैं। अश्लील कहलाने वाले तत्त्वों का भी प्रगतिवाद मे स्पष्ट चित्रण किया गया है।

हिन्दी का वर्तमान प्रगतिशील साहित्य दो पृथक-पृथक धाराओं मे बह रहा है। एक वह जिसमे राष्ट्रीयता प्रधान कविता हैं और दूसरा वह जिसमें शृंगार प्रधान कविताऐं हैं। समाज की उच्छृंखल और विच्छृंखल प्रवृत्तियों को रोकने के लिए यौवन-सम्बन्धी-साहित्य का निर्माण भी आवश्यक है। प्रगतिवादी कवियों मे साम्यवाद की

प्रधानता है। राष्ट्रीयता-प्रधान कवियों ने भी दो प्रकार की कवितायें की हैं। उनकी रचनाओं के आधार पर उनके दो वर्ग बनते हैं। एक वह जो अपनी रचनाओं में संयम, शाँति, प्रेम, उन्नति निर्माण और आशा का पाठ पढ़ाते हैं। इस वर्ग के अन्तर्गत नरेन्द्र और पंत आते हैं और दूसरा वर्ग वह जिस पर रूस के साहित्य का प्रभाव है। इस वर्ग के प्रतिनिधि कवि हैं 'नवीन', 'दिनकर', भगवतीचरण वर्मा इत्यादि यह दूसरा वर्ग विद्ध्वंस, खण्डन और विनाश में विश्वास रख कर चलता है।

राष्ट्रीय भावना से प्रवाहित कवि शृंखला के अतिरिक्त इनमें दूसरी धारा वह है जो शृंगार-प्रधान है। इस धारा के वर्णित शृंगार में काल्पनिक सौंदर्य के वर्णन मात्र से कवि की तृप्ति नहीं होती बल्कि वह तो नायिका के मांसल सौंदर्य का सजीव-चित्रण करने पर उतारु रहता है। यह वर्ग अपने चित्रण को बिलकुल आवरणहीन कर डालता है और इस आवरण-हीनता को ही वह अपनी कला, अपने काव्य का सौंदर्य और अपनी वास्तविकता के अन्दर पैठ समझता है। फ्राईड के काम - विज्ञान का इन पर प्रभाव है। गद्य में नरोत्तम प्रसाद नागर और पद्य में अंचल को हम इस धारा के अन्तर्गत ले सकते हैं।

प्रगतिवाद का साहित्य सिद्धांत के क्षेत्र में जितना अग्रसर हुआ है उतना व्यवहार के क्षेत्र में प्रस्फुरित नहीं हो पाया। इसका प्रधान कारण यही है कि प्रगतिवादी कवियों के जीवन का इस प्रगतिवाद के सिद्धाँतो से बहुत कम सम्बन्ध है। पंत में केवल एक बौद्धिक प्रगतिवादिता है। नरेन्द्र में कुछ वास्तविकता की झलक मिलती है। शेष कवि प्रगतिवादी कविता केवल इस लिये लिखते हैं कि साहित्य में प्रगतिवादी लहर चल पड़ी है। वीरगाथा-काल में हर कवि वीरगाथा-लेखक था, संत-युग में हर कवि निर्गुण-ब्रह्म का उपासक था, राम

कृष्ण-भक्ति काल में हर कवि वैष्णव-भक्त था, रीति-काल में हर कवि आचार्य था, छायावादी युग मे हर कवि छायावादी था और उसी प्रकार प्रगति के युग में हर कवि के लिये प्रगतिवादी बनना अनिवार्य हो गया।

प्रगतिवादी धारा के अन्तर्गत जिस साहित्य की अभी तक रचना हुई है उसे बहुत उच्चकोटि के साहित्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। ना तो उसमें साहित्यिक सौंदर्य ही आगया है और ना भावों की कोमलता ही। कवि पंत यदि साहित्य में अमर होगा तो 'ग्राम्या' के कारण नही होगा 'पल्लव' के कारण होगा। प्रगति-शील साहित्य का सृजन समाज और देश के निर्माण के लिए होना चाहिए, ना कि जो कुछ आज बना हुआ है उसे भी किसी विदेशी प्रभाव में पड़कर अपनी विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया जाये। ऐसा करने से देश का कल्याण न होकर अहित ही होगा। इसका उत्तरदायित्व लेखकों के ऊपर है। उन्हे अपना कर्तव्य देश और समाज के प्रति समझना है। केवल भावनाओं और समय की प्रगतियों में बहकर ऐसे साहित्य का निर्माण करना उनका लक्ष्य नहीं होना चाहिए, जिससे देश और समाज का पतन हो। प्रगतिवाद उचित मार्ग पर ही चल कर अपने उद्देश्य को पूर्ति कर सकता है। वर्तमान प्रगतिवाद के साहित्य से हमें देश और समाज के हित की बहुत कम सम्भावना है।

प्रगतिवाद विषयक संक्षिप्त विचार —

१. प्रगतिवाद छायावाद में निहित पलायनवाद की प्रतिक्रिया है।

२ प्रगतिवादी साहित्य में साहित्यिक सौंदर्य बहुत कम है।

३. इस धारा के अन्तर्गत देश-प्रेम का और शृंगारिक दोनों प्रकार के साहित्य लिखा गया है।

४. प्रगतिवादी साहित्य में लोकहित की भावना का बहुत कम समावेश दिखलाई देता है।

५ इस साहित्य पर विदेशी प्रभाव है और उच्छृ खल प्रवृत्ति का आधिक्य मिलता है।

हिन्दी-साहित्य में प्रकृति-चित्रण

साहित्य में प्रकृति का प्रधान स्थान है। प्रकृति में सौंदर्य है और सौन्दर्य साहित्य का प्रधान गुण है, इसलिये साहित्य में सौन्दर्य लाने के लिये प्रकृति-चित्रण अत्यन्त आवश्यक है। साहित्यकारो ने प्रकृति का चित्रण स्वतन्त्र रूप से और मानव जीवन के साथ-साथ दोनो प्रकार से किया है। मानव-जीवन प्रकृति से प्रभावित होकर कवि का वर्ण्य-विषय बनता है। वह स्थान-स्थान पर उससे प्रभावित होकर अपना रूप बदलता है और कवि उसका अपनी पैनी दृष्टि द्वारा निरीक्षण करके सुन्दर साहित्य का सृजन करता है।

भारत के सुन्दर-सुन्दर प्रकृति-खण्डों ने आदि कवि वाल्मीकि और महाकवि कालीदास के काव्यो को रमणीयता प्रदान की। प्रकृति के अनेकों सुन्दर संश्लिष्ट चित्र इन कवियों ने अपने काव्यो मे प्रस्तुत किये हैं। परन्तु यह प्रयोग हिन्दी साहित्य-काल तक नही चल सका। कवियो ने संश्लिष्ठ दृश्यखण्ड उपस्थित करना छोड़कर प्रकृति को केवल उपमा-उत्प्रेक्षा इत्यादि के लिये ही प्रयोग करना शुरू किया। ऋतु-वर्णन केवल उद्दीपन की सामग्री बन गया। कालीदास ने सर्व प्रथम ऋतु सहार में छै ऋतुओं का चित्रण किया है।

दुर्भाग्यवश हिन्दी का जन्म उस समय हुआ जब सस्कृत और हिन्दी साहित्य पतन की ओर अग्रसर थे। प्रकृति का स्वतन्त्र-चित्रण सन्त-साहित्य मे नहीं मिलता। केवल अपनी अन्तर-साधना को प्रकट करने के लिये उन्होंने प्रकृति का आश्रय अवश्य लिया है। साधक स्वय ब्रह्मॉड है और उसके अन्दर प्रकृति की विविध लीलायें होती हैं। कबीर और दादू के साहित्य में वर्षा, फाग, बसन्त इत्यादि के चित्रण

हैं अवश्य, परन्तु आध्यात्मिक तत्वों के निरूपण मात्र के लिये। जायसी ने अपने काव्य में स्वतन्त्र तथा मानव प्रवृत्तियों के साथ दोनों रूप से प्रकृति का चित्रण किया है। जायसी का प्रकृति-चित्रण कबीर और दादू की अपेक्षा अधिक सफल तथा कला-पूर्ण है। उसमे कवि-हृदय की सुन्दर झाकी मिलती है।

भक्त-साहित्य में प्रकृति का स्थान बहुत गौण है। भावों के उद्दीपन उपमान प्रस्तुत करने के लिये कवियों ने प्रकृति का आश्रय लिया है। पुराणों मे वर्षा और शरद्-वर्णन की शैली पाई जाती है। तुलसी ने अपने मानस मे उसी शैली का कुछ परिवर्तित रूप मे अनुसरण किया है। कृष्ण-साहित्य में प्रकृति केवल शृंगार के उद्दीपन-स्वरूप आई है। नायिका अभिसार प्रथम है, और प्रकृति बाद मे। रीति-काल मे भी कवियों ने प्रकृति के स्वतन्त्र अस्तित्व को नहीं पहिचाना, और पहिचानते भी किस तरह, उन्हें तो अपनी नायिकाओं के ही गिनने से अवकाश नहीं था। 'षठऋतु-वर्णन' मे प्रकृति के दर्शन होते अवश्य हैं परन्तु प्रधानता वहाँ नायिका की ही रहती है, यह षट्ऋतु वर्णन की प्रथा हिंदी साहित्य में वीर-गाथा काल से मिलती है। बीसलदेव रासो, पद्मावत और फिर रीति-काल में तो इसपर ग्रन्थ के ग्रन्थ लिखे गए। रीति-काल में आकर तो ऐसा लगता है कि मानो विधाता ने समस्त सृष्टि का सृजन ही नारी के उपमानों के लिये किया हो। प्रकृति का अस्तित्व रीति-कालीन कवियों के लिये नारी तक सीमित था। सक्षेप में इस काल तक प्रकृति का चित्रण मिलता है' उपमान के रूप मे, रति-भाव के उद्दीपन के स्वरूप और कहीं-कहीं पर कुछ साधारण चित्रण। श्लिष्ट चित्रण केवल कुछ तुलसी और जायसी ने ही दिये हैं अन्य किसी कवि ने नहीं दिये। प्रकृति के कुछ स्वतन्त्र चित्रण वीर-काव्यों में भी मिलते हैं। परतु उनमें वह सौंदर्य और सजीवता नहीं है। सस्कृत-साहित्य में प्रकृति के जो उपमान लगा लिये गये थे वह अब हमारे व्यावहारिक

जीवन से निकल चुके हैं और उनका नया रूप साहित्य में कवियों ने प्रस्तुत कर दिया है। यही कारण है कि आज साहित्य में प्रयोग करने पर भी पाठक पर उनका उतना प्रभाव नहीं पड़ता।

साहित्य की प्रगतियां बदलती रहती हैं। वर्तमान साहित्य संस्कृत साहित्य की देन कहलाने पर भी सब प्रकार से स्वतंत्र है और उसने स्वतंत्रतापूर्वक ही अपना निर्माण किया है। प्रकृति का जो चित्र संस्कृत-कवियों के सम्मुख था, जब भारत में एक छोर से दूसरे छोर तक घने वन और जङ्गल थे वह आज के कवियों के सम्मुख होना असम्भव है जब स्थान-स्थान पर कल पुर्जों की नवीनता से भारत का वातावरण आच्छादित हो चुका है वास्तविक कवि जिसके अन्दर वास्तव में कवि का दृष्टिकोण है संसार को केवल प्राचीन पुस्तकों के कीर्ण शीशे में नहीं देख सकता। वह प्रकृति को अपनी आँखों से देखता है और उसका प्रतिबिम्ब उसके साहित्य पर पड़ता है। मानव ने जड़ पर चेतन को प्रधानता दी और साहित्य भी इस सत्य को ठुकरा कर केवल प्रकृति के अन्दर ही उलझा हुआ न रह सका। आज के कवि के लिये मानव प्रधान है और बाद में वह सभी वस्तु आती हैं जिनका मानव पर प्रभाव पड़ता है अथवा मानव से जो प्रभावित होती हैं।

हिन्दी साहित्य में आध्यात्मवाद की प्रधानता रही है और इस आध्यात्मवाद में प्रकृति गौण रूप से आकर भी परब्रह्म की श्रेष्ठतम सृष्टि होने के कारण कवियों का प्रधान विषय रही है। रहस्यवाद, प्रेम-मार्गी सूफ़ी धारा, राम और कृष्ण-भक्ति, रीति-काल, छायावाद और यहाँ तक कि प्रगति-वाद में भी प्रकृति को भुलाकर चलना कवि के लिये असम्भव हो गया है। यदि प्रकृति को माया या भ्रम भी मान लिया जाये तब भी आध्यात्मिक साहित्य के क्षेत्र में उसका सुन्दर से सुन्दर रूप कवि को प्रस्तुत करना होता है और उसमें अनुपम काव्य की सृष्टि हुई है। हिन्दी-काव्य का साहित्य इस प्रकार के प्रकृति-चित्रणों

से भरा पड़ा है। छायावादी कवियों ने प्रकृति का सुन्दरतम चित्रण किया है और उनमे अंग्रेजी रोमास (Mysticism) बङ्गला रहस्यवाद और भारतीय अद्वैतवाद की सुन्दरतम झलक मिलती है। कवि पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, इत्यादि ने प्रकृति के सुन्दर चित्रण किये हैं। निराली की पचवटी, पन्त का आसू और प्रसाद की कामायनी में प्रकृति के हृदय स्पर्शी चित्र हिन्दी साहित्य की अमर थातियाँ हैं। आधुनिक साहित्य मे सस्कृत साहित्य की प्रणाली का अनुसरण किया गया है। देखिये स्वतन्त्र प्रकृति का कितना सुन्दर चित्र 'कामयनी' मे हमे देखने को मिलता है —

उषा सुनहले तीर बरसती, जय लक्ष्मी सी उदित हुई।
उधर पराजित काल रात्रि भी जल मे अन्तर्निहित हुई।
वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का आज लगा हँसने फिर से,
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि मे शरद् विकास नये सिर से।
× × × ×
प्रकृति के यौवन का शृंगार करेंगे कभी न बासी फूल
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र आह उत्सुक है उनकी धूल।

इसी काल में प० श्रीधर पाठक ने काश्मीर-सुषमा इत्यादि कवितायें लिखीं। आपके काव्य पर अंग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ का प्रभाव है। उपाध्याय जी ने भी काव्य मे प्रकृति को स्थान दिया है परन्तु उसमे प्रकृति का अलकृत प्रयोग देखने को मिलता है। स्वतत्र प्रकृति को वह नहीं अपना सके। प्रकृति के सामान्य रूपों पर ही वह उलझे हुए रह गये है। बाबू मैथिली शरण ने 'पचवटी' 'साकेत' इत्यादि मे प्रकृति के सुन्दर चित्र अंकित किये हैं। पचवटी का एक चित्र देखिये —

इतने मे पौ फटी पूर्व मे, पलटा प्रकृति नटी का रग।
किरण कटकों से श्यामाम्बर फटे दिवा के दमके अंग॥

कुछ कुछ अरुण सुनहली कुछ कुछ प्राची की अब भूषा थी।
पचवटी का द्वार खोल कर स्वयं खडी वहा ऊषा थी॥

सीता को प्रकृति की सुन्दरतम उषा बना कर कवि ने खडा कर दिया। मानव और प्रकृति का जो घनिष्ट सम्बन्ध है उस पर 'गुप्तजी' की लेखनी खूब चली है। इस काल के छायावादी कवियों ने रीति कालीन प्रकृति को एक दम उलटा फेर कर अग्रेजी रोमांटिक कवियो की भाषा मे कहा, "प्रकृति की ओर लौटो"। कीट्स, वर्ड्सवर्थ, शैले की कविताओं की छाया हमे 'लहर' 'पल्लव' और 'परिमल' मे मिलती है। प्रकृति का विशाल सौंदर्य देख कर 'पत' आश्चर्य से भर जाता है, 'निराला' उसके सुन्दर चित्र उपस्थित करने का प्रयास करता है और 'प्रसाद' तथा 'महादेवी' ने उनमे 'रहस्य' की अनुभूति पाई है। नैपाली ने भी प्रकृति के सहानुभूति-पूर्ण चित्र उपस्थित किये है। इस काल के कवियों ने प्रकृति को अत्यत निकट से देखा है। प्रकृति का अङ्ग बनकर उसका निरीक्षण किया है। महादेवी के नारी-हृदय ने प्रकृति-चित्रण मे वह प्रवीणता पाई है जो मीरा के भक्ति-चित्रण मे मिलती है। हमारे अधिकाश कवि शहरों के रहने वाले है और उन्हो ने प्रकृति के रहस्य को बहुत कम देखा है। शहरी जीवन से ऊब कर उनका आकर्षण प्रकृति की ओर होना एक स्वाभाविक, आकर्षण की प्रेरणा है। चित्रण स्वाभाविक करने का प्रयास वर्तमान कवियो मे मिलता है और कवि सुलभ अनुभूति से उन्होंने इस साहित्य को अमरत्व प्रदान किया है।

इस युग के स्पष्ट प्रकृतिवादी कवि 'दिनकर', गुरु भक्तसिंह और 'नैपाली' हैं जिनकी कविता में विशुद्ध प्रकृति की छापा मिलती है। गुरु भक्तसिंह की 'नूरजहाँ' में प्रकृति का जैसा सजीव चित्रण मिलता है वैसा इस काल के अन्य किसी ग्रथ मे नही मिलता। आज के युग ने सस्कृत काल की भांति प्रकृति की स्वतत्र सत्ता को पूर्ण रूप से स्वी-

कार कर लिया है। प्रकृति विलासिता का साधन अथवा अभिसार के उपयुक्त स्थान ही न होकर कविता का स्वच्छन्द विषय बनी और नगर वालों के समक्ष अपनी स्वर्णिम आभा लेकर प्रस्तुत हुई। मानव की कोरी स्वप्नाओं और अध्यात्मवाद के आदर्शों से बाहर निकल कर उन्हें प्रकृति के असीम सौंदर्य में रहस्यवाद की वह झलक दिखाई दी जिसे पाकर कबीर जैसे सन्तों ने उलक सया लिखीं और रवीन्द्र बाबू ने 'गीतांजलि' की रचना की। आज के प्रकृति-चित्रण में यथार्थवाद की स्पष्ट झलक है और उसमे महान् सौंदर्य का संदेश है। भविष्य में आशा है कि हिन्दी कविता म प्रकृति का विशेष स्थान रहेगा।

हिन्दी मे प्रकृति चित्रण की संक्षिप्त रूप-रेखा —

१ संस्कृत साहित्य मे प्रकृति-चित्रण, हिन्दी मे उनका प्रभाव और नवीन दृष्टिकोण।

२ सन्त-साहित्य मे प्रकृति का रूप।

३ भक्ति-साहित्य मे प्रकृति-चित्रण और उसका दृष्टिकोण।

४. रीति-काल में प्रकृति की गौणता।

५ वर्तमान युग की कविता पर प्रकृति, अंग्रेज़ी और बंगला का प्रभाव और हिन्दी की कुछ अपनी विशेषताएँ।

६. आधुनिक युग में प्रकृति की स्वतन्त्र रूप-रेखा।

७. द्विवेदी युग की कविता और उसमें प्रकृति।

८ छायावादी कविता में प्रकृति और उस पर अंग्रेज़ी रोमेंटिक-काल का प्रभाव।

९. प्रकृति का यथार्थ चित्रण और उसमे आधुनिक युग की विशेषता। प्रकृति-चित्रण का भविष्य।

तुलसी के साहित्य की सर्वांगीणता

प्राचीन-काल मे जब गद्य का उदय नही हुआ था तो कविता का नाम साहित्य था। हिन्दी साहित्य के प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि साहित्य का अर्थ था 'कविता' जिसे समय-समय पर 'डिंगल' 'अवधी' और 'ब्रज' भाषा मे विविध शैलियों के अ तर्गत लिखा गया। साहित्य के विषय भी इने-गिने थे। वीर गाथायें, भक्ति काल मे निगु ण-भक्ति, सूफ़ी प्रे म-साधना, राम कृष्ण-भक्ति और रीति-काल में शृ गार। साहित्य मे न नाटक लिखे जाते थे और न कहानी और उपन्यास न निबन्ध लिखे जाते थे और ना जीवनिया या और अन्य किसी विषय का साहित्य ही। इस लिये इस काल के कवि की सर्वांगीणता देखने के लिये हम उसी कविता के सीमित क्षेत्र पर विचार करेगे, जयशकर प्रसाद के काल की सर्वांगीणता पर नहीं।

गोस्वामी तुलसीदासजी का प्रादुर्भाव हिन्दी साहित्य मे सत्तरहवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे हुआ। तुलसीदासजी ने राम-भक्ति का विषय लेकर अपनी साहित्य लहरी को प्रवाहित किया। जहां तक भाषा का सम्बन्ध है उस काल मे 'अवधी' तथा 'ब्रज' यही दो भाषाएं हिन्दी की साहित्यिक भाषायें थी। कविवर तुलसीदास का दोनों ही भाषाओ पर समान अधिकार था और दोनो ही भाषाओं में आपने कविता की। वीरगाथा काल और सत साहित्य-धारा की चलती भाषा को गोस्वामी तुलसीदास ने परिमार्जित और सुसस्कृत रूप दिया। "हिन्दी काव्य का पूर्ण प्रसार इनकी रचनाओं मे ही पहिले पहल दिखाई दिया।" सधुक्कडी भाषा मे साहित्य का सृजन न करके तुलसीदासजी ने भाषा का सस्कार किया और भाषा को उच्च-कोटि के साहित्य के योग्य बनाया।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने काल की प्राय सभी प्रचलित

शैलियों का अपने साहित्य में पूर्ण सफलता के साथ प्रयोग किया है। आपकी रचनाओं मे जहां तक सौंदर्य, निपुणता और काव्यात्मकता का सम्बन्ध है वह शैली निर्मांताओं से भी अधिक पाया जाता है। उस समय की प्रचलित काव्य-शैलियां थीं (१) वीरगाथा-काल की छप्पय पद्धति (२) विद्यापति और सूर की गीत-पद्धति (३) गग इत्यादि भाटो की कवित्त-सवैया पद्धति (४) कबीरदास की नीति सम्बन्धी दोहा-पद्धति (५) और जायसी इत्यादि की दोहा चौपाई-पद्धति। इस प्रकार उस काल की यह पाँच प्रचलित शैलिया थी जिनमें कवि अपनी कवितायें लिखकर साहित्य के भडार को भर रहे थे। "तुलसीदास जी के रचना-विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अपनी सर्व-मुखी प्रतिभा के बल से सब के सौंदर्य की पराकाष्ठा अपनी दिव्य वाणी मे दिखाकर साहित्यिक-क्षेत्र में प्रथम पद के अधिकारी हुए। हिन्दी कविता के प्रेमी जानते हैं कि उनका ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। ब्रज भाषा का जो माधुर्य हम सूर सागर में पाते हैं वही माधुर्य और भी सुसंस्कृत रूप में हम गीतावली और कृष्ण गीतावली में पाते हैं। ठेठ अवधी का जो मिठास हमें जायसी की 'पद्मावत' मे मिलता है वही जानकी-मगल, पार्वती म गल, बरवै रामायण और रामलला नहछू में मिलता है। यह सूचित करने की आवश्यकता नहीं कि ना तो सूर का अवधी पर अधिकार था और न जायसी का ब्रज भाषा पर।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

इस प्रकार हमने देखा कि तुलसीदास की सर्वांगीणता इस ऊपर दिये गये आधार से सर्वथा स्पष्ट हो जाती है। अभी तक हमने शैली और भाषा पर ही विचार किया है। जहा तक शैली और भाषा का सम्बध है हम तुलसीदास जी को साहित्य की समस्त प्रणालियों में पूर्ण सफलता के साथ साहित्य का सुन्दर और सुसस्कृत रूप पाठकों के

सम्मुख प्रस्तुत करते हुए पाते हैं। ब्रज और अवधी दोनों मे रचना करने पर भी कभी भाषाओं मे खिचडी हो जाने का दोष साहित्य मे नहीं आ पाया है। साहित्यिक निर्मलता के साथ-साथ भाषा भी अत्यत निर्मल है।

साहित्य के सब अंगों का समान अधिकारी, महाकवि तुलसीदास जीवन के सब अंगों से भी पूर्णतया परिचित था। जीवन के सभी पहलुओं पर कवि ने सुन्दर रूप से प्रकाश डाला है। बालकाल, यौवन और वृद्धावस्था का चित्रण हमे मानस मे मिलता है। बालकांड मे बाल-काल, अयोध्याकांड मे दशरथ की वृद्धावस्था की दशा और यौवन का तो चित्रण आद्योपात मिलता है। जीवन के सभी पहलुओं पर प्रकाश डालने के साथ-साथ जीवन की विविध परिस्थितियों को भी कवि ने अपनी तूलिका द्वारा रंगा है। खेल, विवाह, बन-गमन, मिलन, विछोह, आनद, कष्ट सभी भावनाओ का चित्रण कवि ने किया है। काव्य-शास्त्रो के प्राय सभी गुण हमे तुलसीदास जी के साहित्य में मिलते हैं। नवों रसों पर आपने सुन्दर रचनायें की हैं। अनेको प्रकार के अलकारो का प्रयोग अपनी रचनाओ मे किया है।

हमने देखा कि भाषा, शैली और साहित्यिक दृष्टिकोण से महाकवि तुलसीदास का साहित्य सम्पूर्ण दिशाओ मे पूर्णता की पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है। अब साहित्य के विषय पर और विचार करना है। उस काल मे साहित्य का विषय प्रधानतया भक्ति रहा है। भक्ति-क्षेत्र मे गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम-भक्ति को अपनाया परन्तु रामभक्ति के साथ आपने सहिष्णुता से काम लिया और कृष्ण, शिव इत्यादि सभी के प्रति आदर प्रदर्शित किया है। इस प्रकार आपने भारत के प्रचलित सभी धर्मो मे अपने साहित्य द्वारा सम्मिलन की भावना को प्रचारित किया जिससे भारत का जो हित हुआ उसे यहा नहीं लिखा जा सकता। तुलसीदास के साहित्य ने भक्ति-क्षेत्र में जो कार्य किया वह जन साधा-

रण के दृष्टिकोण से वेद-शास्त्रों द्वारा किया भी प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार हमने पूर्ण-रूप से परख कर देख लिया कि भाषा, शैली, काव्यात्मकता, और विषय के आधार से तुलसीदास जी के साहित्य मे पूर्ण-रूप से सर्वांगीणता प्राप्त होती है।

तुलसी की सर्वांगीणता पर सँक्षिप्त विचार :—

१ समय की सभी भाषाओ पर तुलसीदास जी का समान अधिकार था।

२. समय की सब शैलियों मे व्रज तथा अवधी मे कवि ने सुन्दर रचनायें की हैं।

३ जीवन के सभी पहलुओं पर कवि ने प्रकाश डाला है।

४ कवि के साहित्यिक विषय मे सहिष्णुता होने के कारण उसका भक्ति-विषय आज भी सर्व-प्रिय बना हुआ है।

५. कवि की सर्वाङ्गीणता सभी क्षेत्रों मे सम्पूर्ण-रूप से प्रस्फुटित हुई है।

सूरदास और उनका साहित्य

"सूर-सूर तुलसी ससी उडुगन केशवदास" यह पंक्ति हिन्दी-पढी-लिखी जनता मे बहुत प्रचलित है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूर पर गोस्वामी तुलसीदास को प्रधानता दी है परन्तु इसमे कुछ सन्देह नहीं कि यह दोनों ही कवि हिन्दी साहित्य के प्राण हैं। सूरदासजी श्री वल्लभाचार्य के शिष्य पुष्टिमार्गी वैष्णव भक्त थे। आपने अपने समस्त साहित्य में कृष्ण लीलाओं का ही गान किया है। सूर-सागर, साहित्य-लहरी और सूर-सारावली सूरदास जी के यही तीन ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। साहित्य-लहरी सूरदास जी के कूट पदों का संग्रह है, जो सभी सूरसागर में यत्र-तत्र बिखरे हुए मिलते हैं। सूरदास का हिन्दी साहित्य में सूर्य अथवा चन्द्रमा होना सूर-सागर पर ही आधारित है।

सूर-सागर की कथा श्रीमद्भागवत के अनुसार स्कंधों में विभा-
जित है। पहिले नौ और अंतिम दो स्कंध भागवत से बिल्कुल मिलते
हैं। भागवत की सभी कथाओं का गान सूर-सागर में नहीं मिलता।
कुछ कथाओं में कवि ने परिवर्तन भी कर दिया है। सूर-सागर के दशम
स्कंध में श्रीमद्भागवत की छाप अवश्य है पर उसमें मौलिकता भी
बहुत पाई जाती है। इस स्कंध में छंदोबद्ध कथा के बीच-बीच में
पद पाये जाते हैं। सम्भवतः पहिले कथा लिखी गई है और फिर
स्थानानुकूल फुटकर पदों को कवि ने इस बृहद् ग्रंथ में रख दिया है।
यही कारण है कि इन पदों में अनेकों कथाओं की पुनरुक्ति मिलती
है। सूर-सागर के इस स्कंध में खंडिता, फाग और मान इत्यादि के
जो पद मिलते हैं उनका वर्णन श्रीमद्भागवत में नहीं मिलता। वह
पद कवि ने स्वतंत्र-रूप से लिख कर बाद में सूर-सागर में रखे हैं।

सूर-सागर के दशम स्कंध को सूर-साहित्य का दर्पण मानना
चाहिये। सूर की बाल लीलाओं में कालियदमन और इन्द्र-गर्व-हरण
के चित्रण में कवि की उत्तमतम प्रतिभा के दर्शन होते हैं। इन चित्रणों
में कवि ने भागवत की कथाओं का और नवीन कथाओं का बहुत
मौलिक ढंग से चित्रण किया है। इन चित्रणों में मानवीय भावनाओं
का अलौकिक चित्रणों के साथ समावेश किया गया है।

सूर ने कृष्ण के बाल-लीला के जो लौकिक चित्र अंकित किये हैं
वह हिन्दी साहित्य ही नहीं वरन बाल-विज्ञान के पण्डितों का मत है
कि अन्य साहित्यों में भी उनकी समानता नहीं मिलती। कृष्ण की
बाल-लीला और नन्द-यशोदा का वात्सल्य सूर की अमर निधियां हैं,
जिन्हें उन्होंने अमूल्य रत्नों की भांति सूर-सागर में सजा कर रखा हुआ
है। "गोस्वामी जी ने भी गीतावली में बाल-लीला को सूर की
देखा देखी बहुत अधिक विस्तार से दिया सही, पर उसमें बाल-सुलभ
भावों और चेष्टाओं की वह प्रचुरता नहीं आई, उसमें रूप-दर्शन की
प्रचुरता रही।' रामचन्द्र शुक्ल

बाल चित्र के नमूने देखिये —

१. सोभित कर नवनीत लिये।
घुटरुन चलत, रेनु तन मण्डित, मुख दधि लेप किये।

२ सिखवत चलत यशोदा मैया।
अरबराय कर पानिगहावति, डगमगाय धरै पैया।
'स्पर्द्धा' का देखिये कितना सुन्दर भाव है ?

३ मैया कबहिं वढ़ैगी चोटी ?
किती वार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।
तू तो कहाति 'बल' का वेनी ज्यो ह्वै है लम्बी मोटी।

सूर-साहित्य में जहा वात्सल्य का इतना सुन्दर चित्रण है वहा शृ गार के भी दोनों पक्षों को खूब निभाया है। जब तक श्रीकृष्ण गोकुल में रहे उस समय तक का उनका चित्रण शृ गार के सयोग पक्ष के अन्तर्गत आता ह। बाल-लीला, माखन-लीला, रास-लीला इत्यादि पर अनेकों सयोग पक्ष के पद कवि ने लिखे हैं। किशोर कृष्ण की प्रेम-लीलायें भागवत से सूर ने ली हैं, परन्तु चीर-हरण इत्यादि लीलाओ में मौलिकता का अभाव नहीं है। राधा की कथा सूर की अपनी उपज है। राधा कृष्ण के मिलन और विछोह की कथा मे कवि ने शृ गार का सुन्दरतम-चित्रण किया है। भाव और विभाव दोनो पक्षो पर बहुत अनूठे और विस्तृत चित्रण सूर सागर मे मिलते हैं। राधा-कृष्ण के रूप-वर्णन के अनेकों ऐसे पद सूर-सागर में आये हैं जिनमें उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि की प्रचुरता है। नेत्रों के प्रति उपालम्भ का एक चित्र देखिये —

मेरे नैना विरह की वेल वई।
सींचत नैन-नीर के, सजनी! मूल पतार गई।
विगसति लता सुभाय-आपने छाया सघन भई॥
अब कैसे निरुवारौं सजनी, सब तन पसरि छई॥

देख री! हरि के चचल नैन।
खंजन, मीन, मृगज चपलाई, नहिं पठतर एक सैन॥
राजिवदल इन्दीवर, शतदल कमल, कुशेशय जाति।
निसि मुद्रित प्रातहि वै विगसत, ये विगसे दिन राति॥

कालिंदी-कूल पर रास का इतना मनोहर चित्रण कविने किया है कि उसे देखने लिये देवता पृथ्वी पर उतर आये हैं। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर तो गोपियों के विरह-सागर का वार-पार ही नहीं रहता। वियोग मे वियोगिनी की जितनी भी प्रकार की दशा हो सकती है सभी का चित्रण कवि ने किया है। गोपियाँ कृष्ण को याद करती हुई वृन्दावन के हरे भरे वनो को कोसती हैं —

मधुबन तुम तक रहत हरे?
विरह-वियोग श्याम सुन्दर के ठाडे क्यों न जरे?

वियोग-वर्णन मे चन्द्रोपालम्भ का सुन्दर चित्रण मिलता है। इन चित्रणो में सूर ने नवीन प्रसगो की उद्भावना की है। यह सूर की विशेषता है। कृष्ण-भक्ति-धारा मे बाह्यार्थ-विधान की प्रधानता रहने के कारण केलि, विलास, रास, छेड-छाड, मिलन, बिछोह, मान, इत्यादि बाहिरी बातो का ही चित्रण सूर-सागर में विशेष रूप से मिलता है। वियोग वर्णन में सचारियों का समावेश परम्परागत है उनमें नवीन उद्भावनाओं का अभाव है। अभ्यतर पक्ष का उद्घाटन सूर के भ्रमर गीत में मिलता है। प्रेम-विह्वल गोपियों के हृदयो की न जाने कितनी भावनाओं का अनूठा चित्रण कवि ने भ्रमर गीत में किया है? भावनाओं का तो यहाँ समुद्र ही उडेल दिया है। यह सूर-सागर का सबसे मर्मस्पर्शी भाग है। वाग्वैदग्धता भी इसमे पराकाष्ठा को पहुँच गई है। ऊधव गोपियों को ब्रह्मज्ञान का उपदेश करते हैं तो वह कहती हैं —

निगु'न कौन देस को वासो ?
मधुकर हंसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच न हाँसी।

इस प्रकार सूर ने भ्रमर-गीत में निगु'ण उपासना का उपहास किया है और सगुणोपासना का प्रतिपादन। यह सगुण और निगु'ण के सम्वाद कवि के मौलिक हैं, श्रीमद्भागवत में नहीं मिलते। सूर की कविता का जो मौलिक अंश है वह कवि की अलौकिक प्रतिभा का द्योतक है और शेष छन्दोबद्ध कथा मे वह सौन्दर्य नहीं आ पाया जो मुक्तक पदों मे है। सूर की कविता में बहिरंग प्रधान रहते हुए भी अन्तरङ्ग भावनाओं की कमी नही है और उनमें शृंगार के साथ भक्ति की ही महानता मिलती है विद्यापति इत्यादि की भांति रीति की नहीं। यह सूर की प्रधानता है। नायिका-भेद, परकीया, अभिसार इत्यादि विषयों पर सूर ने लेखनी नहीं उठाई। खण्डिता का विचार करते समय भी कवि ने आध्यात्मिक पक्ष को ही प्रधानता दी है। कवि ने काव्य शास्त्र का प्रयोग भक्ति की पुष्टि के लिये किया है उसे विषय मानकर नहीं। सूर के शृंगार मे आध्यात्मिक पक्षप्रधान होने के कारण सूर की गोपियों के चरित्र उतने विकसित नहीं हो पाये जितने ऐसे प्रतिभाशाली कवि द्वारा होने चाहिये थे। राधा के प्रति उनमें ईर्षा होने के स्थान पर उल्टी वह राधा की सुरतांत छवि पर मोहित हो जाती हैं।

सूर सागर मे अलग से रखे हुए पद प्रतीत होने पर भी प्रबन्धात्मकता उनमें मिलती है। गीतात्मकता और प्रबन्धात्मकता का सुन्दर सम्मिश्रण हमें सूर-सागर में मिलता है। सूर-सागर में क्रमबद्धता की कमी नहीं है। क्रम पर कवि ने ध्यान दिया है। फुटकर पद बिलकुल पृथक् हैं।

अन्त में हम यही कहेंगे कि सूर जैसा वात्सल्य और शृंगार का गायक जिसने पूर्ण भक्ति भावनाओं से ओत प्रोत होकर अपना साहित्य

सृजन किया हो कोई अन्य कवि नहीं हुआ। सूर के साहित्य पर हिन्दी को अभिमान है और वात्सल्य-चित्रण में सूर-सागर के स्वाभाविक पद उच्चतम साहित्य की श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

सूर-साहित्य की संक्षिप्त विवेचना—

१ हिंदी साहित्य में सूर और सूर-साहित्य का स्थान विशेष है।
२ सूर की रचनायें और उनमें सूर सागर की विशेषता।
३ सूर-सागर का दशम स्कन्ध, उसकी मौलिकता और विशेष साहित्यिक सौन्दर्य।
४ सूर का अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग चित्रण।
५ सूर के शृंगार में रीति-भावना न होकर भक्ति की भावना का ही प्राधान्य है।
६ उपसंहार।

भारतेन्दु और उनके नाटक

आधुनिक हिन्दी साहित्य का जन्मदाता हम भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को मानते हैं। भारतेन्दुजी ने प्रथम हिन्दी गद्य और पद्य कीभाषा का परिमार्जन किया, दूसरे नवीन विचार धारा का वह साहित्य हिन्दी को प्रदान किया जो रीति कालीन प्रवृत्तियों से आच्छादित नहीं था, तीसरे पद्य के साथ ही साथ गद्य मे रोचकता पैदा करके हिन्दी पाठकों तथा लेखको का ध्यान इस की ओर आकर्षित किया, चौथे आपने नाटकों की मौलिक रचना तथा अनुवाद करके हिन्दी मे रंगमंच के आने की सम्भावना को प्रस्तुत किया और पाँचवें आपने अपने साहित्य द्वारा देश-सेवा और समाज सुधार का संदेश जनता को दिया। प्रकृति के प्रति भी नवीन दृष्टिकोण को आपने साहित्य में उपस्थित किया।

इस प्रकार हमने देखा कि यह युग क्राँति का युग है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के साहित्य ने हिन्दी साहित्य मे एक क्राति का सचार किया और एकबार विचार-धारा के दृष्टिकोण को ही बदल दिया। कवियों को कविता करने के लिए नवीन विषय प्रदान किये और गद्य लेखकों को गद्य लिखने और नाटक लिखने का मार्ग दिखलाया। मुशी सदासुख लाल, ईशाअल्लाखाँ सदलमिश्र और लल्लूलाल अपनी अपनी शैली लेकर आये परन्तु कोई मार्ग निर्धारित नहीं कर सके, इनके पचास वर्ष पश्चात् राजा लक्ष्मण सिंह और राजा शिवप्रसाद ने दो स्वतन्त्र शैलियों को जन्म दिया। राजा शिवप्रसाद की भाषा उर्दू और फ़ारसी मिश्रित थी और राजा लक्ष्मणसिंह की सस्कृत मिश्रित ठेठ हिन्दी। सवत् १६३० में इन दोनों धाराओं का मध्यवर्ती मार्ग ग्रहण करके साहित्यिक क्षेत्र में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने एक सुसचालित मार्ग प्रस्तुत किया और अन्य लेखकों के मार्ग प्रदर्शन की ओर भी उन्होंने-ध्यान दिया। आपने भाषा मे से प्रान्तीय शब्दो को निकाल कर एक ऐसा रूप प्रस्तुत किया जिस का क्षेत्र बहुत व्यापक हुआ। वाक्यों का भी पृथक् पृथक् करना आपने प्रारम्भ किया। एक में एक गूथते जाने की प्राचीन प्रथा को आपने तिलाजलि दे दी। भारतेन्दु जी ने जहाँ गद्य के लिए खड़ी बोली को अपनाया वहा पद्य के क्षेत्र में उन्हे ब्रजभाषा ही मान्य रही। इन्होंने ब्रज भाषा के प्रयोग में 'बिहारी' 'घनानन्द' इत्यादि की भाँति तोड़ा-मरोड़ा नहीं। आपने गद्य और पद्य दोनों मे ही सरल-सुबोध-भाषा शैली को जन्म दिया। भाषा के सभी रूपों में एक ऐसा सामजस्य स्थापित किया कि जिससे भाषा मजकर एक व्यवस्थित रूप में आ गई। भाषा को सरल रखने की ओर उनका सर्वदा ध्यान रहता था। इस प्रकार हमने देखा कि भारतेन्दु बाबू ने हिन्दी को एक नवीन मार्ग दिखलाया और नई शैली, नई भाषा और नये विषयों के साथ वह शिक्षित जनता के सामने आये।

भारतेन्दु जी की मृत्यु ३५ वर्ष की अवस्था में हो गई थी। इसी छोटे मे जीवन-काल में आपने हिन्दी साहित्य को अमूल्य निधियाँ प्रदान कीं। गद्य का सर्व प्रथम प्रचुरता के साथ प्रयोग आपने अपने नाटकों मे किया। अपनी 'नाटक' नाम की पुस्तक में उन्होंने लिखा है कि हिन्दी में आपके नाटकों से पहिले केवल दो ही नाटक उपलब्ध थे, विश्वनाथ सिंह का 'आनन्द-रघुनन्दन-नाटक' और गोपाल चन्द जी का, "नहुष-नाटक"। यह दोनो ब्रज भाषा मे थे। भारतेन्दु जी ने १८ नाटक लिखे हैं। इस संख्या के अन्तर्गत मौलिक और अनुवाद सभी नाटक आ जाते हैं। यह सब निम्नलिखित हैं —

मौलिक

वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति, चन्द्रावली, विषस्य विषमौषधम्, भारत-दुर्दशा, नील देवी, अंधेर-नगरी, प्रेम-जोगिनी, सती-प्रताप (अधूरा)

अनुवाद

विद्यासुन्दर, पाखंड-विडम्बन, धनंजय-विजय, कर्पूर-मंजरी, मुद्रा राक्षस, सत्य हरिश्चन्द्र, भारत-जननी।

भारतेन्दु जी ने जीवन के कई क्षेत्रों से सामग्री लेकर इन नाटकों का सृजन किया है। 'चन्द्रावली' में प्रेम तत्व की प्रधानता है तो 'नील देवी' मे एक ऐतिहासिक वृत्त लिखा है। भारत-दुर्दशा मे देश की दशा का चित्रण है तो 'विषस्य विषमौषधम्' में रजवाड़ों के कुचक्रों का प्रदर्शन किया गया है। 'प्रेम जोगिनी' मे धर्म और समाज के पाखण्ड का खाका खींचा है। इस प्रकार समाज, धर्म, प्रेम, राजनीति और इतिहास सभी दिशाओं की ओर नाटककार का ध्यान बहुत व्यापकता के साथ गया है।

भारतेन्दु जी ने शैली के क्षेत्र मे मध्यवर्ती मार्ग ग्रहण किया है। उन पर बंगला का भी प्रभाव पड़ा और संस्कृत का भी। इस लिए

ना तो उन्होंने प्राचीन रुढियों में बाँध कर अपने नाटकों को सकुचित ही बनाया और ना नवीन में फंसकर प्राचीन रुढियों से अपने नाटकों को सर्वथा मुक्त ही कर दिया। बगला के नाटक अ गरेजी के प्रभाव से प्राचीनता को एक दम तिलाँजलि दे चुके थे । उस प्रणाली को भारतेन्दु बाबू ने पसन्द नही किया।

भारतेन्दु जी के नाटको को रगमच पर स्थान मिला और उनका प्रचार भी हुआ। साहित्यिक क्षेत्र में उनका विशेष मान रहा। हिन्दी साहित्य में आपने एक नवीन धारा का सचार किया और अन्य दिशाओं के साथ-साथ नाटक-साहित्य का विशेष प्रसार आपके द्वारा हुआ। भारतेन्दु बाबू को हम हिन्दी का प्रथम सफल नाटककार कह सकते हैं। आपने पश्चिम और पूर्व के भावों का सामजस्य करके एक नवीन प्रगति हिन्दी साहित्यि को प्रदान की। भारतेन्दु युग का नाट्यसाहित्य निम्नलिखित विशेषतायें लेकर हिदी साहित्य में अवतीर्ण हुआ —

(१) प्राचीन प्रणालियाँ धीरे धीरे परिवर्तित होती चली जा रहीं थी। नाटकों के पात्र देवताओं के स्थान पर इसी ससार के मनुष्य बनने लगे थे ।

(२) नाटकों में दैवी चमत्कार प्रदर्शित करने की अपेक्षा वास्तविक सत्य का स्पष्टीकरण करना लेखक अपना कर्तव्य समझने लगे थे। "भारत-दुर्दशा" इसका ज्वलत उदाहरण है।

(३) नाट्य—शास्त्र के नियम भी धीरे-धीरे ढीले पड़ते जा रहे थे। स्वच्छन्द रूप से स्पष्टी-करण करना लेखक अपना कर्तव्य समझने लगे थे।

(४) नाटक रगमच के विचार से लिखे जाने लगे थे न कि केवल पाठ्य साहित्य की पूर्ति के लिए।

(५) नाटकों में पद्य की अपेक्षा गद्य को प्रधानता दी जाने लगी

यी। द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों के अनुवादों का इस गद्य-लेखन की प्रणाली पर विशेष प्रभाव पड़ा।

(६) नाटकों के कथनोपकथनों में स्वाभाविकता आने लगी थी। लेखकों ने स्वाभाविकता का विशेष रूप से सम्मान करना प्रारम्भ कर दिया था।

(७) सामाजिक-चित्रणों की ओर भी लेखकों का ध्यान गया और वह मानव जीवन के अधिक निकट पहुँचने लगे।

(८) राष्ट्रीय-विचारावली ने भी नाटकों में स्थान पाया। रंगमंच पर नाटकों के आने से भाषा का अच्छा प्रचार हुआ।

(९) समस्यात्मक नाटकों का भी श्रीगणेश हमें हिन्दी-नाटक के इस द्वितीय-युग में मिलता है।

संक्षिप्त रूप-रेखा —

१ भारतेन्दु जी का भाषा परिमार्जन, हिन्दी उर्दू का मध्यवर्ती मार्ग ग्रहण करना और गद्य को एक व्यवस्थित रूप देना।

२ हिन्दी साहित्य में रंगमंच द्वारा एक क्रांतिकारी युग का आना।

३ नई भाषा-शैली, नवीन विषय और नवीन रूप-रेखा के साथ नाटकों का हिन्दी में उदय।

४ पश्चिम और पूर्व के प्रभावों का सामंजस्य।

५ भारतेन्दु हिन्दी के प्रथम सफल नाटक कार हैं।

जयशङ्कर 'प्रसाद' और उनके नाटक

प्राचीन प्रचलित सब प्रणालियों के बंधनों को नवीनता के विस्फोट से एक दम उड़ाते हुए बाबू जयशंकर-प्रसाद जी नाटकीय-क्षेत्र मे आये। प्राचीनता को नष्ट करने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति का अपने नाटकों मे ध्यान नहीं रखा। जहां तक प्राचीनता का यह अर्थ लिया जाता है वहां तक यह कहा जा

सकता है कि भारतीय प्राचीन सस्कृति का प्रतिपादन और अपने साहित्य मे समावेश जितना बाबू जयशकर प्रसाद जी ने किया है उतना इस युग के अन्य किसी लेखक ने नहीं किया। जयशकर प्रसाद जी ने अपने नाटकों के कथानक विशेष रूप से भारत के प्राचीन इतिहास से ही लिये हैं। जो काल्पनिक भी हैं उनमे भी प्राचीन भारत की झलक स्पष्ट दिखलाई देती है परन्तु जहा तक नाट्य शास्त्र के नियमों का सम्बन्ध है आपने उन्हें एक दम ढीला कर दिया है। ऐसा करने से ही आप नवीन युग के प्रवर्तक कहलाये।

"अजात शत्रु", "स्कन्द गुप्त", "कामना" इत्यादि आपके विशेष नाटक हैं। इन नाटकों में आपने बौद्ध-कालीन सस्कृति का चित्रण किया है। लेखक को इसमें बहुत सफलता मिली है।

जयशकर प्रसाद जी के नाटकों का महत्व केवल साहित्य के ही क्षेत्र में विशेष निखरे हुए ढग से अनुमानित किया जा सकता है। रंगमच के विचार से आपके नाटक अधिक सफल नहीं हो सके। पात्रों का आपने बहुत मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। अ तद्वन्द्वों का समावेश आपके चित्रण में खूब मिलता है। आपके नाटकों की भाषा बहुत क्लिष्ट है।

बाबू जयशकर प्रसाद जी पर जहा तक शैली का सम्बन्ध है बगला और अ ग्रेज़ी साहित्य का बहुत प्रभाव पड़ा है। आपने पूर्वी ढाचे मे भारतीय सस्कृति को इतने सुन्दर रूप से ढाला है कि वह हिन्दी साहित्य के लिये एक देन बन गया है। भारतीय नाट्य शास्त्र के नियमों के बधनों से अपने को मुक्त करते हुए आप आगे बढ़े और अपनी एक नवीन शैली का हिन्दी में आविष्कार किया। इस शैली को बाद मे आने वाले सभी नाटककारों ने अपनाया है। यह परिवर्तन का युग अ ग्रेज़ी साहित्य में भी आया था परन्तु भारत के पराधीन होने के कारण यह लहर भारत में बहुत पीछे आसकी। जयशकर प्रसादजी

ने अपने नाटकों का क्रम नवीन रखा। पद्य का स्थान गद्य ने सफलत से अपना लिया। वार्तालाप कविता में न चलकर गद्य में चलने लगे और नाटकों का संगीत से सम्बन्ध विच्छेद न हो इस लिये नाटकों मे गीतों का आविष्कार हुआ। नाटको के लिये बाबू जयशकर प्रसाद जी ने गीत लिखे, परन्तु दुर्भाग्य-वश उन गीतों का प्रसार जनता तक न हो सका। यहाँ यह समझ लेना अधिक उपयुक्त होगा कि इस युग मे साहित्य और समाज दो पृथक् वस्तु बन चुके थे। भारत की पराधीनता इसका प्रधान कारण थी। यदि उस काल में भी आज की स्वतंत्र सरकार की भाँति रेडियो पर जयशकर प्रसाद के गीत गाये गये होते तो कोई कारण नहीं था कि जयशकरप्रसाद का साहित्य जनता का साहित्य न हो जाता। परन्तु पराधीनता के कारण साहित्य और समाज दूर-दूर रहते रहे।

जयशंकर प्रसाद को समाज नहीं समझ पाया और ना ही अपना पाया परन्तु साहित्यिक जनों ने उन्हे अपनाया, सिर आँखो पर रखा और हिन्दी साहित्य की उस अमर निधि को सुन्दरता से मान-पूर्वक सजा कर उसकी पूजा की।

बाबू जयशकर प्रसादजी ने अपने नाट्य-साहित्य द्वारा हिन्दी नाटककारों के सम्मुख एक मार्ग रखा और उसपर चलने वाले अनेकों नाटककार आज हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे हैं। जयशकर प्रसादजी के नाटकों ने जिस धारा को जन्म दिया उस मे निम्नलिखित विशेषतायें पाई जाती है —

१—नाट्य-शास्त्र के नियमो मे से सम्भवत एक आध ही बाकी रह गया होगा। उनका क्रम नवीन है। अङ्क और दृश्य तक लिखना आज कोई पसन्द नहीं करता। अङ्क और दृश्य के स्थानों पर केवल नम्बर डाल कर ही काम चला लेते हैं।

२—सिनेमा के आविर्भाव के कारण आज यह भी आवश्यक नहीं

समझा जाता कि केवल उन्ही घटनाओं को अपने नाटको मे रखें कि जो रगमंच पर दिखलाई जा सकें।

३—पद्य के नाम पर केवल कुछ गीत मात्र नाटकों में बाकी रह गये हैं। समस्त नाटक गद्य मे ही लिखे जाते है।

४—कथोपकथनों में पूर्ण स्वाभाविकता पाई जाती है।

५—मध्यवर्ग की समस्याओं को लेकर विशेष रूप से नाटको की कथायें रखी जाती हैं। इसी वर्ग के पात्रों का चित्रण विविध परिस्थितियों में मिलता है।

६—हिन्दी का रगमच कुछ अधिक सफलता नहीं पा सका। सिनेमा क्षेत्र मे हिन्दी पूर्ण सफल है और साथ ही साथ हिन्दी के नाटक और गीत भी।

७—लम्बे लम्बे नाटक न लिखे जाकर छोटे नाटकों की प्रणाली चल रही है। अधिकतर छोटे ही नाटक लिखे जा रहे हैं। तीन अङ्क के नाटक अच्छे समझे जाते हैं।

८—इन नाटकों पर बँगला और अग्रेजी साहित्य का प्रधान असर हुआ है। सस्कृत का प्रभाव भी कम नहीं कहा जा सकता परन्तु यह एक स्थान पर जाकर रुक जाता है।

हिन्दी नाटक-साहित्य का भविष्य बहुत आशा पूर्ण है। नये लेखक दिन प्रति दिन एक से एक नवीन रचना लेकर सामने आ रहे हैं। उनकी रचनाओं में विशेष रूप से समाज की समस्याओं के चित्र भरे हुए होते हैं। आज का समाज चाहता भी ऐसे ही नाटक है। आज का साहित्य केवल कला के लिये नहीं रह गया है वह तो देखता है उसकी उपयोगिता। केवल नाटक ही नहीं वरन इस समय का सभी साहित्य उपयोगिता की ओर बढ़ रहा है।

जयशकर प्रसाद के नाटकों की विशेषतायें —

१ उनमें समाज की प्रवृत्तियों का सूक्ष्म निरीक्षण है।

२. मनोवैज्ञानिक चित्रण ।
३. अभिनय करने के योग्य कथानक ।
४ समाज और व्यक्तियों को बल देने वाली कथा ।
५. सरसता के लिये मधुर गीत ।
६. भाषा सरल, सरस और उच्चारण में मधुर हो ।
७ मध्य वर्ग का चित्रण ।
८ नाटकों में कथनोपकथन के लिए गद्य का प्रयोग ।

प्रेमचन्द्र की नवीन उपन्यास–धारा

हिन्दी में कथा-साहित्य का नवयुग मुंशी प्रेमचन्द से प्रारम्भ होता है। मुंशी प्रेमचन्द पहले उपन्यासकार हैं जिन्होंने तिलस्म और अय्यारी को छोड़कर समाज की समस्याओं को अपनाया। आपने उपन्यास-साहित्य के अभाव को पहिचाना और अपने भरसक प्रयत्नों द्वारा उस अभाव को दूर कर दिया। हिन्दी के वर्तमान कथा-युग को शैली के विचार से तीन धाराओं में विभाजित कर सकते हैं। इन तीन धाराओं के प्रवर्तक मुं० प्रेमचन्द बा० जयशंकर प्रसाद और पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र हैं।

प्रथम धारा के प्रवर्तक मु० प्रेमचन्द हैं। इस धारा के लेखकों ने उर्दू-मिश्रित चलती हुई मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है। यह भाषा उपन्यासों के लिये बहुत उपयुक्त है। एक रवानी इस भाषा में ऐसी पाई जाती है कि पाठक किसी पुस्तक को प्रारम्भ करके छोड़ने का नाम नहीं ले सकता। इस धारा के लेखकों को बिल्कुल नवीन नहीं कहा जा सकता। उन पर प्राचीनता का काफी प्रभाव है। दकियानूसी पन उनमें से समाप्त नहीं हो गया है।

समाज की समस्याओं को ही इस धारा के लेखकों ने अपनी लेखनी का विषय बनाया है परन्तु इन्होंने समाज का वह स्पष्ट-चित्रण नहीं किया जो वर्तमान लेखक चाहता है, या वर्तमान प्रगति-वाद जिसके पीछे हाथ धोकर पड़ा है।

प्रेमचन्द के चित्रण बहुत लम्बे होते हैं। उनमे वर्णनात्मक प्रवृत्ति विशेप है। यदि किसी स्थान का ही उन्हे वर्णन करना होता है तो खूब खुलासा करते हैं। अंग्रेजी साहित्य के विक्टोरिया के समय के उपन्यासों से इनकी समानता की जा सकती है। सक्षेप मे कहने की प्रवृत्ति नहीं है। इन लेखकों मे उपदेशात्मक प्रवृत्ति पाई जाती है। यह लेखक सम्भवत जनता को उपदेश देने का भार अपने ऊपर कर्तव्य के रूप में मान बैठे हैं।

'प्रतिज्ञा' 'वरदान' 'सेवासदन' 'निर्मला' 'गबन' 'प्रेमाश्रम' 'रगभूमि' 'कायाकल्प' 'कर्मभूमि' और 'गोदान' मु० प्रेमचन्द्र की प्रमुख पुस्तकें हैं। नवीन उपन्यास धारा की सभी विशेषताओं के प्रारम्भ-कर्त्ता के रूप मे हम मुंशी जी को पाते हैं। भाषा का बहाव, शब्दों का चयन, समाज के चित्र, मनोवैज्ञानिक भावनाओं का स्पष्टीकरण, समाज के दुखी जीवन का चित्रण, भाषा की रवानी, हृदय की पुकार, करुणा का चीत्कार, मानसिक जीवन की व्यथा, किसानों की दशा, सरकारी कर्मचारियों के व्यवहार यह सभी चीजें प्रेमचन्द्र से पूर्व उपन्यास साहित्य मे कहाँ वर्तमान थीं? इस सभी प्रकार के चित्रणों का जन्म-दाता प्रेमचन्द है। प्रेमचन्द के साहित्य में वास्तविक जीवन का सहृदय-चित्रण मिलता है। न यहाँ बनावट है न शृङ्गार, हाँ कुछ कहने का ढग ऐसा अनूठा अवश्य है कि पाठक उसकी ओर आकर्पित हुए बिना नहीं रह सकता।

किसी भी काव्य को जन-प्रिय बनाने के लिये दो भावनाओं में से एक को लेखक अपनाकर चला करते हैं। एक "नारी का चित्रण"

तथा दूसरी "करुणा की पुकार"। इन दोनो भावनाओ के प्रति साहित्य मे एक विशेष प्रकार का आकर्षण होता है। बंगला के जहाँ प्राय सभी लेखकों ने "नारी चित्रण" को प्रधानता दी है वहां प्रेमचन्द को "करुणा की पुकार" प्रिय लगी है। यहा यह अनुमान किया जा सकता है कि लेखक की प्रवृत्ति कहाँ जाकर स्थिर होती है? वास्तव में यदि देखा जाय तो पता चलता है कि हिन्दी का लेखक जीवन के उस स्तर से उठा है, जहां परिश्रम को प्रधानता दी जाने पर भी मनुष्य का पेट नहीं भरता। हिन्दी का लेखक आज भी गरीब है। उसका पेट कठिनाई से भरता है। बगला के लेखक ऊपर से आते हैं। ऊपर कहने का तात्पर्य केवल यही है कि वह उस वर्ग से आते हैं जहा पैसे को विशेष मूल्य नही दिया जा सकता। इसलिये वह वर्ग जितना अच्छा चित्रण "नारी"का कर सकता है हमारे हिन्दी वर्ग के प्रतिनिधि प्रेमचन्द ने उससे भी कहीं सुन्दर आकर्षक और वास्तविक चित्रण दुखी मजदूर और किसानों का किया है।

प्रेमचन्द ने उपान्यास-साहित्य मे ही नहीं, हिन्दी-पंडित समाज में भी एक सामाजिक क्रांति पैदा करदी। आपके साहित्य को हम कला की ही वस्तु न मानकर यदि मानव-जीवन की आवश्यकताओं की वस्तु मानलें तो लेखक के साथ अधिक न्याय होने की सम्भावना है।

प्रेमचन्द के चित्रणो में समस्याओं के चित्र हैं और प्रेमचन्द के उपन्यासो में भारत की वास्तविक दशा की झांकी है। अपने समाज के सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक प्रकार के व्यक्ति का चरित्र-चित्रण मुं० प्रेमचन्द ने किया है। प्रेमचन्द ने अपने सब उपन्यासों में एक भी पूर्ण-पात्र न देकर अनेकों पात्र दिये हैं। किसी एक प्रकार के वर्ग में घुस जाना ही आपके साहित्य का उद्देश्य नहीं था बल्कि जीवन के सब पहलुओ को झाकना आपका मूल उद्देश्य था।

मुं० प्रेमचन्द ने साहित्य की केवल एक ही दिशा में रचनायें की

हैं और उस दिशा में अपना एकाकी स्थान बनाया है । आपने राष्ट्र की जो सेवा अपनी लेखनी द्वारा की है वह अनेकों प्रचारक भी प्लेटफार्मों से चिल्ला-चिल्लाकर नहीं कर पाये । हिन्दी उपन्यास-क्षेत्र में यह प्रथम सफल लेखक हैं ।

मुं० प्रेमचन्द की कहानियाँ

मु ० प्रेमचन्द ने हिन्दी में ढाई तीन सौ कहानिया लिखी हैं और इन कहानियों में समाज, राष्ट्र, और व्यक्ति के अनेकों अ गों को स्पष्ट किया है, जीवन की अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला है । प्रेमचन्द ने अपनी कहानियो में पूर्व और पश्चिम दोनों की समस्याओं का सामजस्य, कला, शैली और विचारों के आधार पर किया है । इनकी कहानियों को किसी एक विशेष शैली के अन्तर्गत रखकर हम विचार नहीं कर सकते, क्योंकि इनकी अनेकों कहानियों का क्षेत्र बहुत व्यापक है ।

प्रेमचन्द भारतीय-सस्कृति मे पले थे । वह सस्कृति के मूल स्रोत और उसकी विभिन्न धाराओं से भली-भाँति परिचित थे । भारतीय सस्कृति के अ तर्गत प्रधानता काव्य के बहिरग को न होकर अ तरग की रहती है । काव्य की आत्मा को बल देकर उसमें आध्यात्मवाद की पुट आ जाना अनिवार्य हो जाता है । प्रेमचन्द अपनी कहानियों में दैवी गुण लाकर हमें आध्यात्मिकता की ओर ले जाते हैं । प्रेमचन्द की इस दैविक भावना को प्रस्तुत करने में भारतीय आध्यात्मवाद की झलक मिलती है । प्रेमचन्द ने पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की कलों में भारतीयता को पिसने से बचा लिया । प्रेमचन्द ने पश्चिम की अच्छाइयों को अपनाया, आँख मींच कर अ धों की तरह उनके पीछे नहीं दौड़े ।

प्रेमचन्द की कहानियो को हम कई भागों मे विभाजित कर सकते हैं। उनकी ऐतिहासिक कहानियाँ सास्कृतिक-दृष्टिकोण के अंतर्गत आती हैं। इस प्रकार की कहानियाँ लिखने मे वह उतने सफल नहीं हो पाये जितने जयशकर प्रसाद, क्योंकि इतिहास विषयक उनका ज्ञान प्रसाद जी की भाँति पूर्ण नहीं था। प्रसाद जी की ऐतिहासिक कहानियो मे उस काल के बिखरे हुए तत्त्वो का सुन्दर सकलन मिलता है, परन्तु प्रेमचन्द जी मे इस बात का अभाव है। जयशकर प्रसाद के ऐतिहासिक चित्रणो में साँस्कृतिक अथवा भौतिक सदेश नहीं मिलता। वहा तो मिलता है सीधा सच्चा चित्रण, परन्तु प्रेमचन्द उन कहानियो द्वारा समाज के सामने अपना सदेश रखना चाहते हैं। प्रेमचन्द की अधिकाँश कहानियां राजपूतो, मराठो अथवा ठाकुरो की कहानिया हैं। देश-प्रेम, वीराङ्गनाओं के बलिदान, शरणागत की रक्षा, सतीत्व की रक्षा, रण से भागे हुए पति के लिये द्वार न खोलना, अमर-प्रेम इत्यादि विषयो पर उन्होंने सुन्दर प्रकाश डाला है। इस प्रकार की कहानियो में प्रेमचन्द जी ने भारतीय सस्कृति पर विशेष ध्यान दिया है। उत्तर मुगल-काल और पूर्व अंग्रेजी-काल पर भी प्रेमचन्द जी ने कहानियां लिखी हैं। भारत के पतन के चित्र इन कहानियो मे मिलते हैं और राजपूतों की वीरता के भी।

ऐतिहासिक कहानियों के साथ-साथ आपने जो सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं उनमें अपने काल के दो वर्गों का अधिक विस्तृत चित्रण मिलता है। एक समाज के मध्य वर्ग का और दूसरा ग्रामीण जनता का। मज़दूरों के चित्र भी प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों मे प्रस्तुत किये हैं परन्तु उनका अधिक विस्तृत चित्रण हमे उनके उपन्यासों मे मिलता है। समाज के चित्रों का वास्तविक चित्रण हमें सबसे पहिले प्रेमचन्द की कहानियो मे मिलता है। प्रेमचन्द ने यह स्पष्ट करके दिखला दिया कि सत्य गल्प से अधिक चमत्कार पूर्ण है(Truth is stronger than

fiction) प्रेमचन्द से पूर्व हिंदी में जो कहानियाँ लिखी गईं उन्हे वर्तमान कहानियो के साथ रखा भी नहीं जा सकता, वह कहानिया मानव-जीवन में गुद-गुदी पैदा कर सकती थीं, उन्हें सभाल या झकझोर नहीं सकती थीं। जीवन की वास्तविकता से उनका सम्बन्ध न होने के कारण वह मानव की आत्मा को छूने मे असफल थीं। प्रेमचन्द की कहानियों को पढ़कर पाठक ने अनुभव किया कि मानो वह अपनी ही कहानी पढ़ रहा है। प्रेमचन्द ने प्रथम बार समाज के जीवन मे बैठ कर समाज की आत्मा का अपने साहित्य मे चित्रण करने का प्रयास किया। प्रेमचन्द पहिले समाज-सुधारक थे और बाद में मनोवैज्ञानिक। उन पर आर्य-समाज के धर्म-प्रचार का प्रभाव था। समाज सुधार की कहानियों मे प्रेमचद ने उत्तम और मध्यम वर्ग की मानसिक आध्यात्मिक और आर्थिक समस्याओं के सजीव चित्रण किये हैं। वकील बैरिस्टर, प्रोफ़ैसर, रईस, मिल-मालिक, बड़े दुकानदार सभी के चित्र आपने रेखाँकित किये हैं।

प्रेमचन्द की अन्तिम निखरी हुई प्रतिभा का प्रदर्शन हमें शहरी चित्रों के अंकित करने में नहीं मिलता, बल्कि ग्रामीण-जनता के चित्रों को अंकित करने में मिलता है। देहाती जीवन पर सर्व-प्रथम प्रेमचंद ने ही हिंदी साहित्य मे लेखनी उठाई। प्रेमचन्द से पूर्व कभी किसी हिंदी लेखक का इस ओर विचार ही नहीं गया था कि यह अनपढ देहाती भी किसी साहित्य के विषय बन सकते है। प्रेमचन्द ने उन का इतना सजीव चित्रण अपनी कहानियों मे किया है कि पाठक के समुख देहात के चित्र आकर खड़े हो जाते हैं। किसान भारत का प्रतिनिधि है और प्रेमचन्द ने किसान का प्रतिनिधित्व किया है। इसलिये आज के साहित्यिक दृष्टि-कोण से प्रेमचन्द भारत का प्रतिनिधि हुआ। गाँव से सम्बन्धित ज़मीदार, काश्तकार, पटवारी, महाजन इत्यादि, सभी के चरित्र-चित्रण प्रेमचन्द ने किये हैं। ग्रामों की परम्परायें किस प्रकार

की हैं, समस्यायें किस प्रकार की हैं, कठिनाइयां किस प्रकार की हैं यह सब प्रेमचन्द की कहानियों में मिलता है। ग्रामीण जीवन को अपनी कहानियों का विषय बनाते हुए भी प्रेमचन्द ने उन कहानियों में मानव-जीवन के उन मनोवैज्ञानिक तत्वों को रखा है, जो विश्व-व्यापी हैं। कहानियों में मनोवैज्ञानिक तत्व की प्रधानता होने से उन कहानियों में क्षीणता नहीं आने पाई। मानव प्रकृति के उन तत्वों का चित्रण किया है जो सब स्थान और सब वर्गों के मनुष्यों में समान-रूप से पाये जाते हैं। समय और स्थान से ऊपर विश्व-जनीन मनोभावों का समावेश प्रेमचन्द ने अपने ग्रामीण पात्रों में किया है। प्रेमचन्द के समालोचकों को चाहिये कि प्रेमचन्द के साहित्य को संकीर्ण-क्षेत्र मे रख कर विचार करने की अपेक्षा व्यापक-क्षेत्र में रख कर विचार करें। उसमें विश्वजनीनता और विशाल मानव-आदर्शों के दर्शन करें।

प्रेमचन्द एक मनोवैज्ञानिक लेखक है, जिसने कुशलता पूर्वक सुख-दुख, हर्ष-शोक, ईर्ष्या-द्वेष, प्रेम-घृणा आदि प्राकृतिक मनोभावों को अपनी कहानियों मे रखा है। मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण होने से ही प्रेमचन्द अपनी रचनाओं मे यथार्थ-वाद को उचित स्थान दे पाये हैं। प्रेमचन्द की कहानियाँ जीवन से ऊपर हो कर कल्पना की रँगीनियों में नहीं चलतीं बल्कि उन्हें हम अपने प्रति-दिन के जीवन में घटती हुई देख कर उनके साथ अपनापन अनुभव कर सकते हैं। तमाम कहानी यथार्थ-वादी होते हुए भी कहानियो के अन्त में प्रेम-चन्द जी अपना नैतिक दृष्टिकोण प्रकट किये बिना नहीं रहते। वह प्रत्येक कार्य के फल को अच्छा ही देखना चाहते हैं। यह प्राचीन भारतीयता की झलक है जिसके अन्दर कि प्राचीन भारतीय नाटक-कारो ने दुखाँत नाटकों का लिखना ही उचित नहीं समझा था। पाप पर पुण्य की विजय, दुखात होते २ पात्र को सुधार कर कहानी

को सुखांत बना देना लेखक की प्रवृत्ति है। यह प्रेमचन्द का आदर्श-वादी दृष्टिकोण ही है जिसने उन्हें ऐसा करने पर विवश किया। प्रेमचन्द की कथावस्तु और चरित्र-चित्रण यथार्थवादी हैं परन्तु आदर्शवादी दृष्टिकोण होने के कारण अन्त में आदर्श-वाद की झलक अवश्य आ जाती है। प्रेमचन्द की सुधारक प्रवृत्ति कही स्पष्ट और कहीं अस्पष्ट रूप से झलक अवश्य आ जाती है। प्रेमचन्द ने विविध विषयों का समावेश अपनी कहानियों मे किया है। यदि विषयों के आधार पर उनका विभाजन किया जाय तो उन्हे अनेकों विभागों मे बाँटा जा सकता है, परन्तु क्रमिक विकास के आधार पर डा० रामरतन भटनागर ने उनके तीन भाग किये हैं —

(१) आरम्भ की कहानियाँ—इन मे घटना-चक्र और सामयिकता की प्रधानता है। इनमें कोई मूल विचार लेकर लेखक आगे नहीं बढ़ता। प्लाट ही प्रधान है, बीज-विचार और चरित्र-चित्रण गौण हैं। इन कहानियों मे यथार्थ-वाद की कमी है और मनोवैज्ञानिक तत्वो का भी समावेश लेखक उन में नहीं कर पाया है।

(२)(अ) दूसरी चरित्र-चित्रण और आदर्श प्रधान कहानियाँ—इस प्रकार की कहानियाँ प्रेमचन्द ने बहुत कम लिखी हैं। कला में उपयोगिता का होना प्रेमचन्द आवश्यक समझते थे। उपयोगिता के बिना अनेक विचारों में कला एक व्यर्थ की वस्तु है। 'माता का हृदय' 'स्वर्ग की देवी' इत्यादि कहानियाँ इस विभाग के ही अन्तर्गत आती हैं। कहानियों के शीर्षकों से ही उनके विषय, विस्तार तथा चित्रण का भान हो जाता है।

(आ) चरित्र-प्रधान वह कहानियाँ-जिनमें आदर्शों के साथ भावना को प्रधानता दी है। इन कहानियों में भी सुधारात्मक प्रवृत्ति पाई जाती है। लेखक समाज की कुरीतियों को मानवता के काटे पर तोल कर उन्हें दूर करने का प्रयत्न करता है। "स्त्री और पुरुष" "दियाला"

"नैराश्यशीला" "उद्धार" इत्यादि इसी प्रकार की कहानिया हैं। प्रेमचन्द की कहानियों मे भारतीयता की छाप पग २ पर मिलती स्पष्ट है।

(इ) घटना-प्रधान कहानियाँ—इन कहानियों मे अन्य प्रवृत्तियाँ होते हुए भी प्रधानता घटना चक्र को ही दी जाती है। "शूद्र", "आधार", "निर्वासन" इत्यादि कहानियाँ इसी वर्ग के अन्तर्गत आती हैं।

(ई) अन्तर्द्वन्द-प्रधान चरित्र-चित्रण वाली कहानियाँ—इन कहानियों मे प्रेमचन्द जी आदर्श की ओर से यथार्थवाद की ओर चले हैं। "दुर्गा का मन्दिर", "डिग्री के रुपये", "ईदगाह", "माँ", "घर जमाई", "नरक का मा" इत्यादि कहानियाँ इसी वर्ग मे आती हैं। यथार्थ-वाद की ओर चलने पर भी कहानियाँ सुखात ही हैं, दुखात-चित्रण लेखक नहीं कर पाया है।

(उ) वह कहानियाँ जिनमे प्रभावात्मकता पर बल दिया गया है और वह चरित्र-चित्रण प्रधान कहानियाँ हैं—इस प्रकार की कहानियो में कलात्मकता विशेष रूप से पाई जाती है। प्लॉट गौण है और चरित्र-चित्रण प्रधान। कुछ कहानियो मे प्लॉट है ही नही। यह सब होने पर भी प्रेमचन्द जी अपनी सुधारात्मक प्रवृत्ति को नही छोड पाये। "घास वाली", "धिक्कार", "कायर", "पूस की रात" इसी श्रेणी की कहानियाँ हैं।

(ऊ) लेखक की कहानियों की अन्तिम श्रेणी वह है जहाँ लेखक आदर्शवाद को छोड कर यथार्थवादी लेखक बन जाता है। "कफन और अन्य कहानिया" शीर्षक से छपी हुई कहानियाँ इसी वर्ग में रखी जा सकती हैं।

प्रेमचन्द की कहानिया की संक्षिप्त रूप-रेखा —

१ प्रेमचन्द की कहानियों में भारतीयता की झलक।

२ प्रेमचन्द की कहानियो में संस्कृति, राष्ट्र, समाज, और आंदोलनों का चित्रण ।
३ प्रेमचन्द की समाज-सुधार भावना ।
४. प्रेमचन्द का मनोवैज्ञानिक-चित्रण ।
५. प्रेमचन्द की कहानियो में यथार्थ-वाद और आदर्श-वाद का सम्मिश्रण ।
६ प्रेमचन्द की कहानियों का वर्गीकरण ।

मैथिलीशरण 'गुप्त' और उनका साहित्य

मैथिलीशरण गुप्त वर्तमान हिन्दी के उन कवियों मे से हैं जिन्होंने स० १९६३से कविता क्षेत्र में पदार्पण किया और आज तक बराबर अपने स्थान को सुदृढ ही बनाते चले आ रहे हैं। प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही प्रकार की रचनायें 'गुप्त' जी ने हिन्दी साहित्य को प्रदान की हैं परन्तु आपका विशेष महत्त्व प्रबन्ध काव्यों के ही कारण है। स० १९६२ मे प्रथम बार हिन्दी पाठकों ने आपकी रचनायें 'सरस्वती' में देखीं और फिर आप का प्रसिद्ध ग्रथ 'भारत-भारती' पाठकों के सम्मुख आया। "भारत भारती" मे 'मुसद्दस हाली' के ढग पर हिन्दुओं की भूत और वर्तमान दशाओ की विषमता दिखलाई गई है, भविष्य-निरूपण का प्रयत्न नहीं है। 'भारत-भारती' से पूर्व भी 'र ग में भग' नामक पुस्तक आपकी प्रकाशित हुई थी, परन्तु जो मान 'भारत-भारती' को मिला वह उसे प्रथम रचना होने पर भी प्राप्त नहीं हो सका।

'गुप्त' जी की प्रबन्ध-काव्य लिखने की धारा बराबर चलती रही और धीरे-धीरे आप ने 'र ग में भग', 'जयद्रथ वध', 'विकट भट्ट', 'प्लासी का युद्ध', 'गुरुकुल', 'किसान', 'पचवटी', 'सिद्धराज', 'साकेत' और 'यशोधरा' लिखकर हिन्दी साहित्य-भडार को भर दिया। इन काव्यों मे 'साकेत' और 'यशोधरा' बड़े हैं और महत्त्व-पूर्ण भी। 'विकट-

भट्ट' मे राजपूती टेक की कथा है, 'गुरुकुल' मे गुरु शिष्य का महत्व बतलाया है और 'जयद्रथ वध' और 'पञ्चवटी' मे प्रचलित कथाओ का कवि-कल्पना के साथ कलात्मक समावेश है। इन काव्यों की भाषा बहुत सुन्दर है और उनमे प्रसग-योजना भी प्रभावशाली है।

'गुप्त' जी ने अपने साहित्य में जीवन और जगत दोनो पर प्रकाश डाला है। साकेत में 'गुप्त' जी ने अपने राम को लोक के बीच अधिष्ठित किया है। साहित्य की प्रगतियों का 'गुप्त' जी पर प्रभाव न पड़ा हो ऐसी बात नही है। जिस समय साहित्य में छायावाद की लहर दौडी तो 'गुप्त' जी भी इससे अपने को पृथक नहीं रख सके। रहस्य वादियो के से कुछ गीत आप ने गाये अवश्य हैं, परन्तु असीम के प्रति उत्कठा और वेदना इनके जीवन मे निहित न होने के कारण वह केवल काव्य के प्रति एक रुझान मात्र ही रह गये है, जीवन की प्रेरणा नहीं बन सके। 'गुप्त' जी की इस धारा की कविताओ का सग्रह 'झकार' है।

'साकेत' और 'यशोधरा' गुप्त जी के दो अमर काव्य है। इन्हीं में उनके काव्य का सुन्दर विकास दिखलाई देता है। इन ग्रथो मे प्रबन्धात्मकता की वह पुष्टि नही दिखलाई देती जो 'रामचरित मानस' और 'पद्मावत' मे मिलती है। इस का प्रधान कारण यही है कि उनकी रचना कवि ने उस समय की, जब साहित्य की गीतात्मक प्रवृत्ति का उनपर प्रभाव पड चुका था। साकेत के दो सर्गों मे विरहणी उर्मिला का चित्रण 'गुप्त' जी के साकेत की विशेपता है। उर्मिला के चरित्र का जो प्रसार साकेत में मिलता है वह हिन्दी के अन्य किसी ग्रथ मे नहीं मिलता।

यशोधरा की रचना कवि ने नाटकीय ढग पर की है। "भगवान बुद्ध' के चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले पात्रों के उच्च और सुन्दर भावो की व्यजना और परस्पर कथनोपकथन इस ग्रथ मे हैं। भाव-व्यजना

गीतों में हुई है।" (रामचन्द्र शुक्ल) । इनके अतिरिक्त 'द्वापर', 'अनघ', 'तिलोत्तमा', 'चन्द्रहास' इनके छोटे ग्रथ भी हैं।

'गुप्तजी' ने समय और साहित्य की सभी प्रगतियों को काव्य का रूप दिया है। यह हिन्दी भाषा-भाषी जनता के प्रतिनिधि कवि हैं। भारतेन्दु-काल की देश-प्रेम भावना गुप्तजी की 'भारत भारती' में मिलती है। भक्ति-कालीन प्रवृत्ति अपने वर्तमान रूप में आकर 'साकेत' में मिलती है। भारत मे जितने भी आन्दोलन हुए हैं इन सब की झलक हमें 'गुप्त' जी के काव्य मे यत्र-तत्र दिखलाई देती है। सत्याग्रह, अहिंसा, मनुष्यत्व-वाद, विश्व-प्रेम, किसानो और मजदूरों के प्रति प्रेम और सम्मान की झलक इनके साहित्य में मिलती है। खड़ी बोली मे इतनी सुन्दर और निखरी हुई कविता लिखने का श्रेय 'गुप्त' जी को ही प्राप्त हुआ है। भाषा में लोच, सौन्दर्य, कर्ण-मधुरता और प्रेस्यानुप्रासों का लाना—इन सभी प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव हिन्दी कविता में 'गुप्त' जी का ही सफल प्रयास है।

इस प्रकार हम 'गुप्तजी' की रचनाओं का विश्लेषण करके देखते हैं कि उनमे भाषा के विचार से भी क्रमिक विकास पाया जाता है। 'गुप्त'जी की रचनाओं मे स्वच्छ और सुथरी भाषा का प्रयोग मिलता है। खड़ी बोली की गद्यात्मकता और रूखेपन को निकाल कर कवि ने उसमें सरस और कोमल पदावली का प्रयोग किया है। इतिवृत्तात्मक भाषा में परिमार्जन करके उसे गीतात्मक बनाया है। आपने बंगाली कविताओं का अनुशीलन किया। हिन्दी साहित्य में छायावादी-युग आने से पूर्व की जितनी भी 'गुप्त' जी की रचनायें हैं उनमें अनेकों स्थानों पर ऊबड़-खाबड़ और अप्रचलित संस्कृत शब्दों का प्रयोग मिलता है।

"गुप्त जी" सामंजस्य-वादी कवि हैं, प्रतिक्रिया प्रदर्शन करने वाले अथवा मद में झूमने वाले कवि नहीं। सब प्रकार की उच्चता से प्रभावित होने वाला हृदय उन्हें प्राप्त है। प्राचीन के प्रति पूज्यभाव और नवीन के प्रति उत्साह, दोनों इनमें हैं।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

प्रकृति-चित्रण, मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, समाज पर दृष्टि, विशुद्ध भाषा का प्रयोग, सुन्दर अलकारो का समावेश, नवो रसों पर पूर्ण अधिकार रखना—यह सभी मैथिली शरण जी और उनके साहित्य की विशेषताये है। प्राचीनता और नवीनता का इतना सुन्दर सामजस्य आज के किसी अन्य कवि मे नही मिलता जैसा 'गुप्त' जी के साहित्य में उपलब्ध है। कवि आज के साहित्य और समाज का प्रतिनिधि है और उसने अपने साहित्य मे मानव-चित्रण के उन तत्वों को प्रधानता दी है जिनके कारण उनका साहित्य केवल उनके ही काल का न रहकर, सब आने वाले समयों का साहित्य बनेगा। 'यशोधरा' और 'साकेत' हिन्दी साहित्य की अमर निधियाँ है जिनका महत्व सर्वदा एकसा ही बना रहेगा।

गुप्त जी के साहित्य पर सक्षिप्त विचार —

१. गुप्त जी की साहित्यक प्रगति।
२ खडी बोली भाषा में काव्यत्मक सौंदर्य का लाना।
३ प्राचीनता और नवीनता में साम जस्य स्थापित करना।
४ समय की सभी प्रगतियों पर समान रूप से प्रकाश डालना।
५ उपसहार।

कवि—'निराला' का दार्शनिक-प्रकृतिवाद

'निराला' के साहित्य मे स्पष्ट अद्वैतवाद की झलक है। 'परिमल' में अद्वैत-वाद का स्पष्टीकरण हमे कई कविताओं में प्रस्फुटित होता हुआ दिखाई देता है। 'जागरण' कविता मे आत्मा की चरम सत्ता मे स्थिति को सच माना है। मानव आत्मा को माया-जनित जडता के कारण परमात्मा से पृथक किये हुये है। मानव की यह जडता सत्य नहीं असत्य है। कवि के शब्दों मे यह 'अगणित तरग' के रूप में

है। चिदात्म तत्व गुणों से परे है, उसमे गुणों का आरोप हम नहीं कर सकते। हमे अपने चारों ओर जो जडसृष्टि दिखाई देती है यह सब माया-जनित है, वासनाओ से जन्म लेकर आती है, सत्य नहीं है। यह सब भिन्नता और परिवर्तन जो हमे विश्व में दिखलाई देता है यह सब हमारे अज्ञान के ही कारण है। जड इन्द्रियां हमें स्खलन और पतन की ओर ले जाती हैं। कवि का मत है कि ज्ञान से मानव उस माया-जाल को भेद कर ब्रह्मतत्व तक पहुंच सकता है। माया के आवरणो को भेदना जीवात्मा के लिये अत्यंत आवश्यक है। बिना उन आवरणों को भेदे आत्मा अपने निश्चित लक्ष्य पर नही पहुंच सकती। ज्ञान प्राप्त होने पर आत्मा की जो आनदमय स्थिति होती है उसका कवि इस प्रकार चित्रण करता है —

अविचल निज शाँति मे
क्लांति सब खो गई।
डूब गया अहङ्कार
अपने विस्तार मे,
टूट गये सीमा-बँध,
छूट गया जड पिंड,
ग्रहण देश काल का।

ज्ञान का आकर्षण पाकर आनन्द मय ब्रह्म में सृष्टि- रचना की इच्छा होती है। वहाँ मोह नहीं होता है, होता है शुद्ध प्रेम। ब्रह्म अपनी माया का प्रसार प्रेम के रूप से करता है, छल फैलाने के लिये नहीं। वह त्रिगुणात्मक रूप रचता है और मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार और पच भूत, रूप, रस, गध, स्पर्श विकसित हो जाते हैं। माया को कवि ने असत्य माना है। वह आनद की अभिव्यक्ति हो सकती है, प्रेम का निरूपण मात्र कर सकती है और यह भी तथ्य

जब मन उसे उसने प्रेम के विशुद्ध रूप में ही ग्रहण करे, छलना रूप में ग्रहण करने की भूल न कर जाये।

कवि के दर्शन पर कबीर के निर्गुण-तत्व का प्रभाव स्पष्ट दिख-लाई देता है। कबीर की प्रकृति मे राम की झलक थी और निराला की प्रकृति स्वय राम है, अन्तर केवल इतना ही है। कबीर ने माया को बिलकुल असत्य मान कर छलना रूप दिया है परन्तु 'निराला ने उसे प्रेम का रूप माना है घृणा का नहीं। 'परिमल' और 'गीतिका' का अध्ययन करने से हमे कवि के दार्शनिक दृष्टिकोण का पता चलता है। 'निराला' की कविता मे वेदांती दर्शन है। अद्वैत-वाद का उन्होंने प्रतिपादन किया है परन्तु 'निराला' का अद्वैतवाद विशुद्ध अद्वैत-वाद नहीं है। अद्वैत-वाद के साथ प्रेम का समावेश करके 'निराला' जी जायसी के निकट पहुँच जाते हैं। सूफी प्रेम की झलक पाकर-कविता में रस का सचार हो गया है अन्यथा उसमें वही रुखापन बना रहता जो कबीर की कविता में मिलता है। परिमल की पचवटी में कई दार्श-निक दृष्टिकोण कवि ने एक ही स्थान पर लाकर जुटा दिये हैं। कवि कहता है —

भक्ति, योग,कर्म-ज्ञान एक है
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते है।
एक ही है दूसरा नहीं है कुछ—
द्वैत भाव भी है भ्रम।
तो भी प्रिये,
भ्रम के ही भीतर से
भ्रम के पार जाना है।
मुनियों ने मनुष्यो के मन की गति
सोचली थी पहिले ही।
इसीलिए द्वैत-भाव-भावुकों मे
भक्ति की भावता भरी।

इस कविता मे समन्वय की भावना मिलती है तर्क की नहीं। वेदांत का आश्रय तर्क है, परन्तु समन्वय मे तर्क को एक ओर रख देना होता है और लोक हित के लिये समन्वय की भावना का होना कवि के लिये आवश्यक है। 'निराला' की कविता मे अद्वैतवाद के साथ साथ प्रेम और भक्ति के दर्शन होते है। यह 'निराला' की अपनी विशेषता है जिसे प्रकृति का सहारा लेकर कवि ने साहित्य मे प्रस्तुत किया है। 'निराला' का दर्शन ज्ञान मूलक है। जायसी की भाँति प्रकृति और परब्रह्म में वह एकात्म न मानकर भिन्नता मानते हैं।

'निराला' के प्रकृति-चित्रण साधारण नहीं है उनमे दर्शन की विशेषता होने के कारण चित्रणों मे भी विशेषता आ गई है। प्रकृति की प्रत्येक शक्ति मे उन्हें ब्रह्म की छटा दिखाई देती है। प्रकृति के रग उन्हे गहरे लगते हैं, पवन मे पराग और कुँकुम मिली दिखलाई देती है। दार्शनिक कवि पवन को देखता और रंगों से बातें करता है। 'निराला' ने प्रकृति का वह स्वरूप नहीं देखा जो जायसी ने देखा है। जिसने कवि प्रकृति मे मिलकर उसे अपने विरह का अग बना लेता है। कवि प्रकृति को रहस्यवादी और अद्वैतवादी रूप मे देखता है। 'निराला' की "जुही की कली" मे प्रकृति आत्मा और परमात्मा लीलाओं का स्थल बन कर आई है। पवन ईश्वर का स्वरूप है और कली आत्मा का। इन प्रतीकों को मानने मे 'निराला'मे पूर्ण भारतीयता के दर्शन होते हैं। काव्य मे प्रेम का समावेश करने पर भी ईश्वर को नारी-रूप मे कवि ने नहीं देखा। कवि ने अपनी दूसरी कविता 'शेफाली' में भी प्रकृति का चित्रण इसी प्रकार किया है। प्रकृति का निरीक्षण कवि ने एक विशुद्ध वेदाती बन कर किया है। 'निराला' के प्रकृति-चित्रण में प्रकृति को स्वतत्र रूप नहीं मिल पाया। यही कारण है कि प्रकृति चित्रण का वह विकास जो जायसी की पद्मावत या वर्तमान कालीन पत की भी कविता में प्राप्त हुआ है, वह

प्राप्त नहीं हो सका। इस प्रकार हमने देखा कि 'निराला' के दार्शनिक प्रकृति-वाद में प्रकृति माया का प्रेम-क्षेत्र है जिसमें आत्मा और परमात्मा की क्रीड़ायें होती हैं। यह लीलायें छल के प्रभाव से न होकर प्रेम के प्रभाव से होती हैं। मानव-ज्ञान से इस आनद-मय सृष्टि के दर्शन कर सकता है और अपने को उसका एक अंग बना सकता है।

संक्षिप्त रूप-रेखा —

१ कविवर 'निराला' ने प्रकृति का स्वतंत्र-चित्रण न करके एक विशुद्ध वेदांती के दृष्टिकोण से किया है।

२ 'निराला' ने अपने दर्शन में भारत के सभी दर्शनों का समन्वय करने का प्रयत्न किया है।

३. उपसंहार।

महादेवी वर्मा का दर्शन और साहित्य

महादेवी वर्मा की कविता में करुणा का अपार सागर लहरें मारता है। दुःख और रोदन से ही प्रस्फुटित होकर उनकी कविता बनती है। कविवर पंत की यह पंक्तियाँ —

वियोगी होगा पहिला कवी
आह से उपजा होगा गान,
उमड़ कर आँखों से चुप चाप
वही होगी कविता अन जान।

महादेवी के विषय में पूर्ण रूप से चरितार्थ हो जाती है। महादेवी की इस शैली को कुछ आलोचक दुःख-वाद कहकर पुकारते हैं। यह दुःखवाद आज के युग में न केवल महादेवी वर्मा के ही गीतों का प्राण बनकर आया है वरन् जयशंकर प्रसाद-का 'आँसू', पंत की 'ग्रंथि' तथा भगवती चरण और बच्चन तक के काव्यों में मिलता है।

इस दु ख-वाद के मूल में हम आध्यात्मिक असतोष और राजनैतिक कारणों को पाते हैं। छायावाद का आरम्भ इस दु ख-वाद और पला-यनवाद के सम्मिश्रण से हुआ। भारतीय जीवन आध्यात्मिक तत्वों को भुला कर पराधीनता में असहाय सा हो गया था। उसी में कुछ जागृति भरने के लिये या यो कहें कि अपनी दयनीय परिस्थिति पर रोने के लिये इस वाद का जन्म हुआ। बुद्धि-वाद का ज्यों-ज्यों प्रसार होता गया त्यों-त्यों यह दु ख-वाद छायावाद के अन्दर से निकल कर स्थूल रूप धारण करता चला गया।

महादेवी वर्मा के दु ख-वाद मे आध्यात्मिक तत्व प्रधान है। श्री रायकृष्ण दास जी नीरजा' की भूमिका मे लिखते है, "उनकी (महादेवी की) काव्य-साधना आध्यात्मिक है। उसमें आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय निवेदन है। कवियित्री की आत्मा मानो इस विश्व में बिछुडी हुई प्रेयसि की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है। उसकी दृष्टि से विश्व की सम्पूर्ण प्राकृतिक शोभा सुषमा एक अनन्त अलौकिक चिर-सुन्दर की छाया मात्र है।" महादेवी वर्मा के साहित्य में दार्शनिक-चिन्तन, स्त्री-सुलभ भावों की कोमलता, साहित्यिक-पर-म्पराओं से प्राप्त सौंदर्य, छायावाद का चमत्कृत-चित्रण, तत्सम शब्दों की मधुर झकार और प्रकृति का रंगीन-चित्रण बहुत सुन्दर ढग से सचित करके रखे गये हैं। महादेवी वर्मा को हम किसी भी अन्य कवि के पीछे चलता हुआ नहीं पाते, उनकी अपनी धारा है, अपनी शैली है, अपने विचार हैं और अपनी कल्पनायें हैं।

महादेवी ने आत्मा को 'प्रोषित पतिका' के रूप मे रखा है और उनका यह चित्रण 'नीरजा' प्रकाशित होने से पहिली रचनाओं में ही स्पष्ट हो जाता है। उनके हृदय में एक टीस उठती है और उससे विकल होकर उनकी कविता आध्यात्मिक विचारावलि को लेकर मुखरित होने लगती है। उनकी कविता मे इस प्रकार एक तरह की रहस्या-

समझता रहती है और उसी को हम इनका दर्शन कहते हैं। रहस्यवादी का ज्ञान व्यष्टि से समष्टि की ओर जाता है और समष्टि से व्यष्टि की ओर। वह कोरा पृथ्वी के ही निकट रहकर तर्क पर आधारित नहीं रहता। रहस्य-वादी कवि कभी-कभी तो ससार को न देख कर अपने को और परब्रह्म को ही देखता है। उसके नयनों की पुतलियों मे एक ही भाव समा जाता है। उसे जिस वस्तु का साक्षात्कार या सहज ज्ञान होता है उसे वह अनेकों प्रकार के प्रेम प्रतीकों द्वारा व्यक्त करता है। रहस्वादी कवि चरमतत्त्व का आत्मतत्त्व से सम्बन्ध स्थापित करना ही अपना एक उद्देश्य समझता है। प्रेम प्रतीकों द्वारा आत्मा-परमात्मा, व्यक्त अव्यक्त, ससीम-असीम, पूर्ण-अपूर्ण, साकार-निराकार के पारस्परिक सम्बन्ध का गान करना ही रहस्यवादी कवि का लक्ष्य होता है। महादेवी जी लिखती हैं,—

विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात।
वेदना में जन्म करुणा मे मिला अवसान॥

प्रकृति को परमात्मा से मिलाने वाला विरह का स्रोत है। आत्मा इस विरह के दुःख-स्रोत में पैदा होने वाला जलजात है। मानव की उत्पत्ति इस दुःख से ही हुई है। यह आत्मा निर्विकार और निष्काम है। आत्मा को सब चीजों का ज्ञान है, और ज्ञान होने पर ही उसमे वैराग्य की भावना उत्पन्न होती है। अव्यक्त की एक झलक पाजाने पर ही आत्मा सासारिक बधनों से अपने को मुक्त कर अलौकिक आनद की ओर अग्रसर हो जाती है।

(१) महादेवी वर्मा ने आत्मा की स्थिति 'प्रेम की पीर' मे मानी है। (२) ज्यों-ज्यों आत्मा को इस प्रेम-पीर का अनुभव होता जाता है त्यों-त्यों वह परब्रह्म के निकट पहुँचता जाता है। (३) विना परब्रह्म के अनुग्रह के मुक्ति प्राप्त नहीं होती। (४) आत्मा की परमात्मा के प्रति विह्वलता आत्मा की पूर्वानुभूति है। यह सभी बातें

कबीर के रहस्य-वाद से मिलती जुलती हैं जहाँ तक ज्ञान, दर्शन और चिंतन का सम्बन्ध है। महादेवी की कविता में योग का समावेश हमें नहीं मिलता। यहाँ पहुँच कर उनकी धारा कबीर से हट कर जायसी की तरफ बहने लगती हैं, परन्तु जायसी की 'प्रेम-पीर' और महादेवी की 'प्रेम-पीर' में अन्तर है। कविता के बहिरंग में तो आकाश-पाताल का अन्तर है परन्तु सूक्ष्म अन्तर उसके आत्म-तत्व में भी है।

जलते दीपक को आत्मा का प्रतीक मान कर कवियित्री लिखती है —

१ मोम सा तन घुल चुका है, अब दीप सा मन जल चुका है।

२ तू जल जल कितना होता क्षय,
मधुर मिलन में मिट जाता तू,
. . . .. .

अंधकार और प्रकाश का ज्ञान अज्ञान के कारण है। विरह की साधना से दोनों का भेद मिट जाता है। जब चेतना थक जायेगी, तन मोम की तरह गल जायेगा और मन दीपक की लौ की भाँति शुद्ध हो जायेगा तब जीवात्मा प्रकाश के दर्शन करेगा और उस समय अंधकार प्रकाश में और प्रकाश अंधकार में लय हो जायेगा।

महादेवी में मीरा की झलक मिलती है। साधना को दोनों ने ही अपनी कविताओं में विशेष स्थान दिया है। परन्तु ना तो मीरा में महादेवी वर्मा की कल्पना है और ना ही महादेवी में मीरा की स्वाभाविकता और प्रेम-दीवानगी। मीरा में निर्गुण की झलक अवश्य मिलती है परन्तु प्रधानता सगुण को ही दी है परन्तु महादेवी के काव्य में हमें सगुण के लिये कोई स्थान ही नहीं मिलता। यहा तो पूर्ण रूप से निर्गुण-चिंतन है।

महादेवी में विद्वता है मीरा में नहीं, महादेवी में काव्य परम्परागत सौंदर्य और उसकी पूर्ति है, मीरा में है उसकी स्वाभाविकता

पांडित्य नहीं, महादेवी में है सुन्दर शब्दचयन, मीरा में इसका अभाव है, महादेवी मे है निर्गुण दार्शनिक चिंतन, मीरा की सगुण भक्ति में कहीं कहीं निर्गुण दर्शन की झलक है, प्रेम-पीर दोनो में समान है—इस प्रकार हम मीरा और महादेवी की कविताओं पर एक दृष्टि डाल सकते हैं।

कविवर 'निराला' अद्वैतवादी होने के नाते आत्मा को निर्लेप मानते हैं परन्तु महादेवी तो अपने को बधनों मे बाधने मे भी नहीं सकुचाती —

क्यों मुझे प्रिय हो न बन्धन।
बीन बन्दी तार की झंकार है आकाशचारी।

इसी प्रकार वह अपनी कविता को 'आकाशचारी' मानती हैं।। महादेवी को अपनी ससीमता पर भी गर्व है, दुःख नहीं। महादेवी वर्मा ने सुन्दर गीतो में, कलात्मक छदो मे नवीन प्रतीकों को लेकर जो धारा प्रवाहित की है वह हर प्रकार से अपने में अपनापन रखती है। उसका हर विचार भारतीय हैं और प्राचीनता की उसपर गहरी छाप हैं। बुद्धि-वाद हमे महादेवी की कविता मे बहुत कम क्या, ना के ही बराबर मिलता है। शुद्ध दार्शनिक-चिंतन-प्रधान इनकी कवितायें हैं जिन्हें मधुर कंठ द्वारा गाया जा सकता है। वर्तमान युग के गायक उन्हे अपनाने का प्रयत्न कर रहे है परन्तु उन्हे वह सफलता अभी प्राप्त नहीं हो सकी है जो सूर और मीरा के पदों को प्राप्त है।

महादेवी के साहित्य पर संक्षिप्त विचार —

१ महादेवी का दुःखवाद और दर्शन।
२. महादेवी की कविता मे प्रतीकों का प्रयोग।
३ महादेवी की कल्पना प्रधान कविता और गीतात्मकता।
४. कबीर, जायसी, मीरा और 'निराला' के दर्शनों के बीच मे महादेवी का दर्शन।
५. गीतात्मकता मे संगीत की सफलता।

हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता

राष्ट्रीयता का सकीर्ण अर्थ है देश-भक्ति, और व्यापक अर्थों मे राष्ट्रीयता का अर्थ होता है राष्ट्र के विचार, राष्ट्र की सस्कृति, और राष्ट्र की भाषा। विचार, सस्कृति और भाषा का समुदाय कहलाता है राष्ट्रीयता। एक राष्ट्रीय कवि वह है जिसने राष्ट्र की भाषा में राष्ट्रीय सस्कृति को लेकर राष्ट्र के विचारो का प्रतिपादन किया हो। वाल्मीकि, कालीदास, तुलसी, सूर और मैथिली शरण गुप्त इस विचार से राष्ट्रीय कवि हैं। जिस प्रकार शेक्सपीयर इंगलैण्ड का और एवगेट जर्मनी के राष्ट्रीय कवि हैं उसी प्रकार तुलसी, सूर और 'गुप्तजी' हिन्दी के कवि हैं। तुलसी के 'मानस' में भारत-राष्ट्र की आत्मा के दर्शन होते हैं और सूर के 'सूर सागर' में राष्ट्र का आश्वासन मिलता है, एक अवलम्ब मिलता है, बल मिलता है, जीवन और जीने की शक्ति मिलती है और इसी प्रकार 'गुप्त जी' की 'भारत भारती' और 'साकेत' में राष्ट्र के धार्मिक और राजनैतिक उत्थान का व्यापक सदेश मिलता है। परन्तु यह व्यापक अर्थ समालोचक लोग प्रयोग नहीं करते। जब हम राष्ट्रीय कवियों पर दृष्टि डालते हैं तो हमारी दृष्टि केवल देश-प्रेम, जाति-प्रेम, और सस्कृति-प्रेम रखने वाले ही कवियों पर जाती है। हमारे दृष्टिकोण मे सकीर्णता आ जाती है। यही राष्ट्रीयता की साधारण परिभाषा है।

यदि हम राष्ट्रीयता को उसके सकीर्ण अर्थों में लें, तो भी हमें इस विषय पर विचार करते समय दो विचार धाराओं को लेकर चलना होता है। इनमे पहिली विचार-धारा का सम्बन्ध उस काल से है जो अंग्रेज़ी शासन के पश्चात् दिखलाई देती है। ससार के इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि 'धर्म' और राजनीति में एक प्रबल सघर्ष रहा है। अंग्रेज़ी राज्य से पूर्व मुसलमान शासन-काल मे धर्म

का बोल-बाला था। इसी लिए हिन्दू धर्म के ऊपर आक्रमणकारी बनकर आने वाले मुसलमानों के विरुद्ध जिस भावना को कवियों ने अपनी वाणी मे मुखरित किया है उस समय वही राष्ट्रीयता मानी जाती थी। चन्द और भूषण इस प्रकार की राष्ट्रवादी कविता के प्रतीक हैं। इन कवियों ने उस समय की जनता के हृदयो को राजनैतिक दृष्टि-कोण से बल दिया, उत्साह दिया, धर्म के सहायक तथा रक्षक वीर योद्धाओं का गुण गायन किया।

समय ने करवट ली। मुसलमान राज्य भारत पर छा गया। भारतीय सभ्यता ने दूसरों को अपने में खपाना सीखा है, हज्म करजाना सीखा है और उसने मुसलमानियत को भी अपना ही रूप दे दिया। अपनी जैसी जातियाँ उन्हें दे दी और अपने जैसे रीति-रिवाज भी। कबीर जैसे महाकवियों ने दोनों मे समन्वय की भावना भरी और सूर तथा तुलसी जैसे राष्ट्रीय कवियो ने जनता के उद्भ्रात हृदयों को अपनी गोद मे लेकर सहारा दिया। भक्ति का वह स्रोत बहाया था कि जीवन का नैराश्य एकदम समाप्त कर दिया जाये।

मुसलमान-काल के पश्चात् राजनैतिक युग आया। पहिले युग मे, जिस में राजनीति प्रधान हो गई, देश के नेताओं ने आपसी फूट और हिन्दू मुसलमानो का भेद-भाव भुलाने का आदेश दिया। राष्ट्र में एक नवीन विचार धारा ने जन्म लिया और वह राजनीति के पीछे-पीछे चल पड़ी।

भारतेंदु-काल में सर्वप्रथम इस राष्ट्रीयता के दर्शन होते हैं। राष्ट्रीय समन्वय मे संस्कृति के उत्थान की नेताओं और लेखकों ने कल्पना की और राष्ट्र तथा धर्म को पृथ २ कर दिया। भारत का समाज दो दलों में विभक्त हो गया। एक पूर्ण राजनैतिक राष्ट्रवादी और दूसरा हिन्दू धर्मी। जो दल प्रगतिशील था उसने धर्म के बखेडे को भारत की पराधीनता के सम्मुख उठा कर एक ओर रख दिया और

जो प्रतिक्रिया-वादी या प्राचीनता-वादी था उसने वही पुरानी प्रणाली को अपनाये रखा।

साहित्य में तो स्वय प्रगति होती है। इस लिये साहित्य के क्षेत्र में दूसरे दल का अधिक महत्त्व नहीं बन सका। राजनीति में स्वार्थ को लेकर नेता चलते हैं इस लिए प्रति-क्रियावादी भी अपनी जड़ों को खोखला होते देख कर भी उन्हे जमाये रखने का ही धोखा जनता को देने का प्रयत्न किया करते हैं। वास्तव में सत्य यह है कि जो व्यतीत हो चुका वह लौटेगा नहीं। इंगलैण्ड में चर्चिल भी फिर से कजर-वेटिव पार्टी की सरकार बनाने का स्वप्न देखता है और चीन में चेंकाई, शेख भी। साहित्य के क्षेत्रों में क्योंकि स्वार्थ नहीं है इस लिये विचारक को क्या पड़ी है कि वह मुक्त होकर विचार न करे और नवीनता को प्रश्रय न दे।

अंग्रेजी राज्य १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में भारतीय पराजय के पश्चात् दृढ हो गया। इस काल के राष्ट्रीय कवियों ने देश का करुण चित्र अंकित किया। 'प्रेमघन' जी ने लिखा कि भारत में अंग्रेजी राज्य आजाने से —

दुःख अति भारी इक यह जो बढ़त दीनता।
भारत मे सम्पत्ति की दिन दिन होत हीनता॥

'भारतेन्दुदंशा' में भारत की परिस्थिति का भारतेन्दु जी ने अच्छा चित्र अंकित किया है। सन् १८८५ में कॉंग्रेस की स्थापना होने पर 'प्रेमघन' जी सहर्ष कहते हैं —

हुआ प्रबुद्ध वृद्ध भारत निज आरत दशा निशा का।
समय अंत अतिशय प्रमुदित हो तनिक तक उसने ताका॥

इस प्रकार यह राष्ट्रीयता की भावना पृथक् पृथक् धाराओं में बहती हुई 'गुप्त' जी की 'भारत-भारती' तक आ पहुँचती है। 'भारत भारती' में राष्ट्र को स्वतन्त्र करने का स्पष्ट संकेत मिलता है। १९१८

के असहयोग आँदोलन से राष्ट्रीयता ने और पख पसारे और माखन-लाल चतुर्वेदी, 'सनेही', सुभद्रा कुमारी चौहान, बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन', इत्यादि कवियों ने फुटकर रचनाओ द्वारा राष्ट्रीयता की भावना से पत्र-पत्रिकाओं मे लिखकर भारत की जनता को जागृत किया। सुभद्रा की फड़कती हुई कविता हमे 'भूषण' की याद दिलाती है। 'झाँसी की रानी' मे जो ओज है वह भूषण के अतिरिक्त अन्य किसी की कविता में नहीं मिलता :—

बुँदेले हर बोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

जाओ रानी याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारत वासी।
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतत्रता अविनासी॥
हो मतवाली विजय, मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी।
तेरा स्मारक तू ही होगी, तू खुद अमिट निशानी थी॥
खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।

आज राष्ट्रीयता का बोल-बाला है। सियाराम शरण गुप्त, सोहन लाल द्विवेदी, सुधीन्द्र, 'चकोरी' तथा अन्य अनेको छोटे-मोटे कवि इस धारा के अ तगत आजाते हैं। इस काल की राष्ट्रीय कविता केवल पराधीनता से भारत को उभारने के लिये चमत्कार मात्र है। एक विद्रोह है विदेशी शासन के प्रति। कला के लिये उसमें स्थान बहुत है। इस कविता का इस लिये राजनैतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से जितना महत्त्व है उतना कविता होने से नहीं। काव्य के क्षेत्र मे आज भारत स्वतन्त्र हो जाने पर आशा है कि कुछ राष्ट्रीय कवि जन्म लें या वर्तमान कवियों का ध्यान उस ओर जाये और वह राष्ट्र के वास्तविक अर्थ को समझकर संस्कृति, समाज, राजनीति, भाषा, कला और काव्य परम्परा का ध्यान रख कर साहित्य का सृजन करें। प्रतिभा-शील कवियों से हम आशा करते हैं कि वह हिन्दी साहित्य के इस अभाव की पूर्ति करेंगे।

हिन्दी साहित्य मे राष्ट्रीयता की सक्षिप्त रूप-रेखा :—

१. राष्ट्रीयता के दो अर्थ, एक सकीर्ण और दूसरा व्यापक ।

२. मुसलमान काल में राष्ट्रीयता का अर्थ ।

३. अगरेज़ी शासन-काल मे आकर राष्ट्रीयता का अर्थ ।

४. राष्ट्रीय-साहित्य मे कला का अभाव ।

५ पराधीनता के प्रति केवल चीत्कार मात्र को छोड कर स्वतत्र भारत मे राष्ट्रीयता का नवीन दृष्टि कोण प्रस्तुत करने की आवश्यकता ।"

राष्ट्र भाषा हिन्दी, उर्दू या हिन्दुस्तानी

राष्ट्रभाषा पर दृष्टि डालने से पूर्व हमें राष्ट्र पर दृष्टि डालनी होगी । यह सच है कि समस्त भारत मे एक बोली नहीं बोली जाती और इतने बड़े प्रदेश में यह सम्भव भी नहीं हो सकता । बगाल, मद्रास, बम्बई इन तीन प्रांतों की अपनी-अपनी पृथक बोलिया हैं । उन बोलियों की भाषायें और उनके साहित्य हैं । इनके अतिरिक्त बिहार, सयुक्तप्रान्त, दिल्ली, राजपूताना, अजमेर और मध्यप्रदेश रह जाते हैं । इन सब प्रान्तों में भी अपनी-अपनी पृथक पृथक बोलियाँ बोली जाती हैं । परन्तु इन सब का उद्गम स्थान एक ही है और इन सब प्रदेशो के शहरों में करीब-करीब एक सी ही भाषा बोली जाती है । इनमे संयुक्त प्रांत और दिल्ली को छोड कर शेष सभी प्रातों मे सस्कृत-प्रधान खड़ी बोली बोली जाती है । इस लिये वहाँ पर तो राष्ट्रभाषा के प्रश्न का बखेड़ा ही नहीं खड़ा होता । बोल-चाल मे जो कुछ भिन्नता पाई जाती है उसका कोई विशेष महत्त्व इस लिये नहीं है कि बोल-चाल और साहित्य की भाषा में सर्वदा कुछ न कुछ अन्तर रहता ही आया है

जो प्रश्न हिन्दी और उर्दू का चलता है वह केवल दिल्ली और सयुक्त प्रांत के विषय मे ही सामने आता है। इन दो प्रांतो मे सभ्य लोगो के बीच शहरो में अवश्य दो भाषाओं का प्रयोग चलता है और वह है उर्दू और हिन्दी। हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और उ ू फारसी लिपि में। इन दोनों ही भाषाओ के व्याकरण में बहुत कुछ साम्य मिलता है। शब्द-कोष की दृष्टि से जब हम देखते हैं तो खड़ी बोली भारतीय भाषा की परम्परा मे आती है। उसमें फारसी के शब्द ठू स कर उसे जब उर्दू कोष के समीप ले जाया जाता है तो वह साधारण हिन् ू तो क्या मुसलमानों के भी लिये समझनी कठिन हो जाती है। उर्दू के छद, भाव, उपमा, उत्प्रेक्षा इत्यादि सब विदेशी हैं जिन्हे समझने में इस राष्ट्र के रहने वाले अस्सी प्रतिशत नागरिकों को कठिनाई होती है। उर्दू भाषा का प्रचार कायस्थ, काश्मीरी पढित कचहरी के लोगों और उर्दू साहित्य के प्रेमियो में उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार अंग्रेजी शासन काल मे अंगरेजी भारत की राष्ट्र भाषा बन गई थी। साहित्य का जहा तक सम्बन्ध है वहाँ उर्दू, फारसी, जर्मनी बँगाला सभी के साहित्यो को भारत में अपनाया जा सकता है, किसी को कुछ कम और किसी को कुछ अधिक, परन्तु यह विचार राष्ट्र-भाषा के साथ नहीं चल सकता। उर्दू में राष्ट्रीयता का अभाव देख कर प्रेमचन्द जैसे प्रतिभाशाली लेखक उर्दू को छोड़ कर हिन्दी क्षेत्र मे आ गये। उर्दू साहित्य पर भारतीय सस्कृति का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है और उसकी झलक उसमे आद्योपात मिलती है, परन्तु फिर भी वह लिपि भेद होने के कारण भारत राष्ट्र की राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती।

आज की राष्ट्रीयता क्या चाहती है? न तो वह सस्कृत-मिश्रित शब्दावली ही चाहती है और न फारसी से बोझिल भाषा ही। वह तो सीधी, सरल भाषा चाहती है जिस मे सभी प्रकार के भावों को सुगमता पूर्वक व्यक्त किया जा सके और जिस का क्षेत्र व्यापक से

व्यापक बन सके। साहित्यिकों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता। वह स्वतत्र हैं और इसी प्रकार उनकी भाषा भी स्वतत्र है। अब समस्या जो सामने आती है वह दो प्रकार की है एक राष्ट्र का शिक्षा-विभाग किस भाषा को अपनाये और दूसरा राष्ट्र का राज-कार्य किस भाषा का प्रयोग करे ?

आज कितने दिन से भाषा, राष्ट्र और समाज के सघर्षों के बीच में होकर यह निर्णय हो चुका है कि हिन्दी ही राष्ट्र भाषा बन सकती है। ऊपर हम विचार कर चुके हैं कि राष्ट्र के अधिकाश भाग में हिन्दी खड़ी बोली का ही प्रचार है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि राष्ट्रभाषा के प्रसार में सकीर्ण विचारावलि को मस्तिष्क से निकाल कर हिन्दी को विस्तार प्रदान किया जाये। प्रत्येक प्रचलित शब्द को बिना सस्कृत कोष का खोज किये ज्यों का त्यों भाषा सौंदर्य को ध्यान में रखते हुए अपना लेना चाहिये। उर्दू बगला, इत्यादि की भांति भारत में पनपे और अपने साहित्य की उन्नति करे, परन्तु उसे राष्ट्र भाषा का स्थान नहीं दिया जा सकता। उर्दू में भारतीय सस्कृति, समाज और राजनीति तीनों की ही रक्षा नहीं हो सकती फिर भाषा का तो प्रश्न ही सामने नहीं आता।

अब एक नया पचड़ा जो हिन्दी की जान को लगा है वह हिन्दुस्तानी का। हिन्दुस्तानी कोई भाषा नहीं है। हिन्दुस्तानी के पास अपना कुछ भी नहीं है। न उनके पास अपना साहित्य है और न उसके पास अपनी लिपि ही है। एक ऐसी भाषा को राष्ट्र भाषा बनाना जिसके पास न अपना साहित्य ही है, और न कोई लिपि यह राष्ट्र को पतन की ओर लेजाना नहीं तो और क्या है ?

प्रयाग में हिन्दुस्तानी एकेडेमी की स्थापना इसलिये नहीं हुई थी कि वह हिन्दी और हिन्दुस्तानी का इतना बड़ा विवाद खड़ा करेगी। उसकी स्थापना हिन्दी और उर्दू साहित्य के उत्थान के लिये

पृथक-पृथक् प्रयास करने के लिये हुई थी। परन्तु उस शक्ति का दुरुपयोग करके एक ऐसी हिन्दुस्तानी की धारा प्रवाहित की कि जिसने हिन्दी के ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारने का कार्य किया। भारत के कुछ नेताओं ने जिनपर पश्चिमी प्रभाव आवश्यकता से अधिक है, जिन्हें भारतीय संस्कृति के प्रति कोई मोह नहीं है, जिनके लिये हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी सब समान हैं, जिनके सामने हिन्दी लिपि से रोमन कहीं उत्तम है, हिन्दुस्तानी को प्रश्रय दिया। देश भर में एक आंदोलन चल पड़ा, पत्र-पत्रिकाओं के मुख-पृष्ठ इन्हीं विचारों से रंगे जाने लगे। इस आंदोलन ने काफी जोर पकड़ा परन्तु अन्त में विजय हिन्दी की ही हुई।

श्री पुरुषोत्तमदास टंडन जी ने इस आंदोलन मे महत्त्वपूर्ण कार्य किया और अपने संस्थापित हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा देश भर मे हिन्दी की एक ऐसी लहर दौड़ाई कि जिसने भारतीय संस्कृति की रक्षा की और हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा के उच्च आसन पर लाकर बिठलाया। वास्तव मे यदि सभी दृष्टिकोणों से हम विचार करें तो हिन्दी ही भारत की राष्ट्र-भाषा बनने के योग्य है।

संक्षिप्त विचार —

१ हिन्दी और उर्दू का संघर्ष।
२. हिन्दी और हिन्दुस्तानी का संघर्ष।
३ हिन्दी की विजय और राष्ट्र-भाषा पद प्राप्त करना।

हिन्दी को मुसलमानों की देन

हिन्दू और मुसलमान पृथक-पृथक् अवश्य प्रतीत होते हैं परन्तु उनके मानस मे ऐक्य है। हिन्दी साहित्य हिन्दुओं का साहित्य है, भाषा, भाव और संस्कृति के विचार से परन्तु फिर भी कुछ मुसलमान कवियों ने हिन्दी को वह रचनायें प्रदान की हैं जिन्होंने

हिन्दी साहित्य मे अपना स्थान बना लिया है। यह रचनायें उस काल की हैं, जब भारत में मुसलमान राज्य था और भारत की भक्ति-भावना ने भावुक मुसलमानो को भी अपनी धारा मे प्रवाहित कर लिया था।

मुसलमानों का पहिला महत्वपूर्ण वर्ग प्रेमाश्रयी धारा के अंतर्गत आता है जिसने सूफी सिद्धान्तों के अनुसार भारतीय चरित्रों में प्रेमामृत का चार किया। जायसी की प्रसिद्ध रचना पद्मावत का नाम इस स्थान पर उल्लेखनीय है, जिसके विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने भी यह लिखा है कि प्रबन्ध काव्यों मे रामचरित मानस के बाद पद्मावत का ही स्थान आता है। कुतबन "नूर" मुहम्मद, मझन इत्यादि इस धारा के अन्य कवि हैं। सूफी धर्म का प्रचार भारतीय जनता मे करना चाहते थे। अवधी भाषा मे इन कवियों ने अपनी रचनायें कीं। कविता के विषय के लिये इन कवियों ने हिन्दुओं की प्रचलित और अर्ध कल्पित कथाओं को अपनाया। यह अपनी भावुकता के साथ हिन्दू हृदयों तक पहुंचना चाहते थे। इसमें उन्हें अधिक सफलता प्राप्त नहीं हो सकी, हाँ हिन्दी को पद्मावत जैसा सुन्दर ग्रंथ अवश्य प्राप्त हो गया। इस धारा के कवियों मे पांडित्य का अभाव था।

मुसलमानों के दूसरे वर्ग के प्रतिनिधि के रूप मे हम 'रसखान' को पाते हैं। इस वर्ग पर कृष्ण-भक्ति का प्रभाव हुआ था और यह विशुद्ध कृष्ण-भक्ति की भावना को लेकर कविता क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। साहित्य सेवा उनका लक्ष्य नही था वह तो लालायित हुए थे श्याम की मनोहर मूर्ति पर। भक्ति-भावना से प्रेरित होकर यह मुक्त कंठ से गाते थे।

मानुष हौं तो वही रस खानि बसौं ब्रज गोकुल गॉंव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मझारन॥

पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरन्दर कारन,
जो खग हौं तो बसेरा करौ मिलि कालिंदी कूल कदम्ब की डारन ।।

इस वर्ग के कवि प्रेमी जीव थे जिनपर भक्ति और साहित्य का समान प्रभाव था और जिन पर भारतीयता अपना-असर भी कर चुकी थी।

तीसरे वर्ग के कवि हमें रीति-काल में देखने को मिलते हैं। राम भक्ति की मर्यादा ने उनके उच्छृश्रखल स्वभाव को अपने अन्दर समावेश करने की आज्ञा नहीं दी। या यों भी कह सकते हैं कि वह उसमें समावेश करने का साहस ही न कर सके। इस धारा में रहीम का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपने रहीम सतसई, बरवै, शृंगार सोरठ, मदनाष्टक इत्यादि ग्रंथों की रचना की। पठान सुलतान ने बिहारी सतसई पर कुंडलियाँ लिखी। हिन्दी साहित्य में इस वर्ग के कवियों की सख्या सबसे अधिक है। इस धारा में जो सहित्य रचा गया वह प्रधानतया शृंगार-प्रधान है। मुसलमान भावुक तो होते ही हैं, इस लिए उन्हें इस प्रकार का साहित्य लिखने में काफी सफलता मिली है।

चौथे वर्ग के मुसलमान लेखक सैलानी जीव हैं, जिन्होंने विनोद-पूर्ण साहित्य का सृजन किया है। इन्होंने हिन्दी साहित्य में एक नवीन धारा को प्रवाहित किया और एक प्रकार से साहित्य के गाम्भीर्य को तोड़ कर उसमें दिल बहलाने और मन को हलका करने की सामग्री प्रस्तुत की। खुसरु और इंशा अल्लाखा इसी वर्ग के प्रधान लेखक हैं। वर्तमान हिन्दी गद्य का प्राचीनतम रूप हमें इन्हीं दोनों की भाषा में मिलता है। खुसरु की कविता का एक निखरा रूप देखिये —

गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस,
चल खुसरू घर आपने रैन भई चहुँदेस।

खुसरु की मुकुरियाँ हिन्दी साहित्य मे अपना विशेष स्थान रखती हैं। इ शा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' हिन्दी गद्य का वह नमूना है जो हिन्दी भाषा साहित्य में जब तक भाषा-साहित्य का इतिहास रहेगा सर्वदा अमर रहेगा।

पाँचवां वर्ग उन मुसलमान कवियों का है जो वास्तव मे उर्दू के लेखक है परन्तु उन्होंने हिन्दी में भी लेखनी उठाई है। वर्तमान गद्य लेखकों में तो थोड़ा सा लिपि-भेद कर देने से अनेकों लेखक इस श्रेणी मे आ जायेगें।

इन ऊपर दिये गये सभी लेखकों की रचनाओं में अपनी अपनी विशेषता है। यह कहना तो असत्य होगा कि इनकी रचनाओं पर मुसलमानी प्रभाव है ही नहीं परन्तु इतना तो निश्चय पूर्वक ही कहा जा सकता है कि इन सभी लेखकों ने भारतीयता के साँचे में अपने साहित्य को ढाला खूब है। अपने-अपने समय की प्रणालियों और विचार-धाराओं को लेकर उसमें अपनेपन की पुट इन लेखकों ने दी है। इनकी रचनायें हिन्दी साहित्य की अमर निधिया है और उनके साहित्य मे आ जाने से साहित्य में एक ऐसा विस्तृत दृष्टिकोण उपस्थित हुआ है कि समन्वय की भावना के साथ रहस्यवाद के कई रूप सामने आ गये है। जायसी ने अपने दर्शन में जिस रहस्य-वाद की पुट दी है वह उसका अपना है और उसमें हिन्दू तथा मुसलमानी भावनाओं का इतना सुन्दर समन्वय मिलता है कि पाठक इनके ग्रंथ को पढ़कर मुक्तकंठ से इतनी प्रशंसा कर उठता है। रसखान ने बहुत कम लिखा है परन्तु जो कुछ भी लिखा है उसकी तुलना हम सूर और मीरा के ही पदों से कर सकते है। खुसरू की तुलना करने के लिये हमारे पास कोई अन्य लेखक हिन्दी में नही है और रहीम इनका स्थान भी अपना विशेष महत्व रखता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मुसलमनों ने जो हिन्दी सेवा की है वह बहुत महत्व पूर्ण है और

उसका हिन्दी साहित्य, भाषा और सौंदर्य के विचार से विशेष स्थान है। भारतीय और फारसी शैलियो का उसमें हमें सुन्दर समन्वय मिलता है।

हिन्दी को मुसलमानों की देन पर सक्षिप्त विचार —

१. मुसलमानों का महत्व-पूर्ण सहयोग।
२. प्रेमाश्रयी शाखा, कृष्ण-भक्ति शाखा, रीति-कालीन कविता और विनोद-पूर्ण साहित्य मुसलमानो की देन है।
३ वर्तमान हिन्दी गद्य का प्राचीनतम रूप मुसलमानो से प्राप्त होता है।
४. भारतीय और फारसी भाषा-शैलियों का प्रचलन इन कवियो ने हिन्दी साहित्य में किया।
५ उपसंहार।

हिन्दी साहित्य पर विदेशी प्रभाव

हिन्दी साहित्य का आदि-काल विदेशी आक्रमणो का काल था। इस लिये हिन्दी सात्यि पर प्रारम्भ से ही विदेशी प्रभाव हमें स्पष्ट दिखाई देता है। इस निबन्ध मे हम हिन्दी-काल-विभाजन के क्रम के अनुसार ही विचार करेंगे।

वीरगाथा-काल हिंदी साहित्य का प्रारम्भिक काल है और पृथ्वीराज रासो उस काल का प्रतिनिधि ग्रंथ। यह राष्ट्रीयता-प्रधान है और विशेष रूप से मुसलमानी सभ्यता का घोर प्रतिद्वंदी भी उसे हम कह सकते हैं परन्तु उसकी भी भाषा पर हमें विदेशी प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देता है। चदवरदाई लाहौर के रहने वाले थे और लाहौर पहिले से ही मुसलमानों के अधिकार मे आ चुका था इस लिये वहा की भाषा का भी उनपर प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। उसी प्रभावित भाषा के नमूने हम पृथ्वीराज रासों मे यत्र तत्र देखते हैं। फिर भी छद, विषय इत्या-

दि पर इस काल में कोई विदेशी प्रभाव नहीं पड़ा और ना ही दर्शन पर क्योंकि दर्शन-साहित्य तो इस काल में लिखा ही नही गया।

हिन्दी साहित्य का दूसरा काल हमें अनेकों रूपो मे विदेशी प्रभाव से आच्छादित दिखलाई देता है। यह सत्य है कि विदेशी प्रभाव राजनैतिक पराधीनता होने पर भी मूल तत्वों पर विजय नहीं प्राप्त कर सका, साहित्य की आत्मा को ठेस नही पहुँचा सका परन्तु रूप में, रंग में, आवरण में, सौंदर्य में, कल्पना में, वास्तविकता मे, और अन्य भी अनेकों रूपो मे उसने हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है और खूब सफलता के साथ किया। हिन्दी साहित्य के व्यापक दृष्टिकोण ने उन विदेशी प्रभावो को अपनाया, उनका सम्मान किया, उन्हे बल दिया और अमरता प्रदान की।

कबीर ने हिन्दू और मुसलमानों को अपने निर्गुण पथ पर चलाने के लिये भारतीय दर्शन और मुसलमानी एकेश्वरवाद का आश्रय लिया और दोनों का इतना सुन्दर सामंजस्य किया कि कबीर के रहस्यवाद का वह रूप खड़ा हो गया जिससे प्रभावित होकर रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने 'गीतांजलि' लिखी और नोबिल प्राइज (Noble prize) प्राप्त करके ससार मे अमरता ली। जायसी ने भारतीय निर्गुण ब्रह्म में सूफी प्रेम का सम्मिश्रण करके पद्मावत जैसा अमर काव्य हिन्दी साहित्य को भेंट किया। रसखान ने कृष्णभक्ति शाखा के अंतर्गत रचनायें करके हिन्दू और मुसलमान हृदयो को भक्ति के क्षेत्र में मिला कर एक कर दिया। रहीम के दोहे जन जन की वाणी बने और खुसरो ने साहित्य के मौन गाम्भीर्य को एक चहल पहल दी। हिन्दी की पाचन शक्ति ने सब को पचा कर अपना बना लिया और सम्मिश्रण से साहित्य के ऐसे ऐसे सुन्दर गुलदस्ते सजाये जो किसी भी हिन्दी साहित्य प्रेमी की बैठक को अपने पराग और गंध से हर समय

परिपूर्ण रखते हैं। भक्ति और रीति काल दोनों पर समान रूप से हमे विदेशी प्रभाव दिखलाई देता है।

अब हमारे सम्मुख आता है आधुनिक-काल। आधुनिक काल में मुसलमानी युग समाप्त हो गया और उसका प्रभाव पड़ने का प्रश्न भी उसके साथ-साथ हिन्दी साहित्य से विदा हुआ। यहाँ हम पाठको के सम्मुख यह स्पष्ट कर देना उचित समझते हैं कि इस विदेशी प्रभाव से प्रभावित होकर हिन्दी साहित्य ने अपनी निधि को निरतर बढाया ही है कम नहीं होने दिया। आधुनिक काल के साथ साथ भारत की राजनीति ने करवट बदली और यहा पर अंग्रेजो का शासन-काल आया। अंग्रेजी शासन-काल में योरोप की सभ्यता भारत में आयी। लार्ड मेकाले और राजा राममोहन राय ने भारत मे अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार किया। राज्य सम्बन्धी कार्यों मे अंग्रेजी का प्रयोग हुआ। न्यायालयों की भाषा अंग्रेजी बनी और इस प्रकार एक तरह से 'अंग्रेज़ी' भारत के सभी क्षेत्रों मे छाती चली गई। भारत मे विद्यालय खुले, उनमे योरोपियन ढग की शिक्षायें चलीं, और उन विद्यालयो मे पढ़ाने के लिये पुस्तकों की आवश्यकता हुई। हिन्दी में यह सब पुस्तके उपलब्ध नहीं थीं, उर्दू मे नहीं थीं, फ़ारसी में नहीं थीं और ना ही उन के पढ़ाने वाले ही थे। इस लिये एक बार समस्त देश मे अंग्रेजी का बोल-बाला हो गया। बगाल और मद्रास की तो अंग्रेजी मानो मातृ भाषा ही बन गई।

जहाँ एक तरफ अंग्रेजी का प्रभाव इस प्रकार बढ रहा था वहा दूसरी ओर हिन्दी के प्रेमी भी शात नहीं बैठे थे। वह भी बराबर प्रयत्न शील थे। राजा लक्ष्मणसिंह और राजा शिवप्रसाद विद्यालयों में हिन्दी को लाने का प्रयत्न कर रहे थे और महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने हिन्दी को अदालतों की भाषा बनाने का आन्दोलन किया। इन के साथ ही साथ हिन्दी के लेखक भी मौन नहीं थे। वह अपनी उसी

पुरानी रफतार पर चलना छोड कर अपनी पैनी लेखनी से कविता, कहानी, उपन्यास, समालोचना, निबन्ध, इतिहास, भाषा विज्ञान, भूगोल, गणित और इसी प्रकार अन्य क्षेत्रो मे उतर पडे। देखते ही देखते कुछ ही दिनों में उन्होंने रात-दिन परिश्रम करके हिन्दी साहित्य के भडार को भर दिया। परन्तु यह सब हुआ किस प्रकार ? इन सब धाराओं मे साहित्य की प्रगति किसके प्रभाव से हुई ? क्या यह सब सामग्री उन्हे सस्कृत साहित्य से मिली ? क्या फारसी ने इस प्रगति में कोई सहायता दी ? हम कहेंगे नहीं ! यह सब अ ग्रेजी साहित्य की देन है। हिन्दी के अनुभवी विद्वानों ने अंग्रेजी साहित्य पढा, अनेकों पुस्तकों के अनुवाद किये और अनेकों से विचार धारा लेकर, शैलियाँ लेकर, विषय लेकर हिन्दी साहित्य की अपूर्णता को पूर्ण किया। नि-बन्ध सस्कृत साहित्य मे नहीं थे, उपन्यास सस्कृत साहित्य मे नही थे और आज तो अनेकों ऐसे नये विषय हिन्दी मे आ रहे हैं जिन्हे सस्कृत साहित्य जानता भी नही था। बिजली-विज्ञान, लोको मोटिव, रेडियो विज्ञान, सिनेमा-विज्ञान यह सभी नये विषय हैं। इन सबका हिन्दी मे समावेश हमे अ ग्रेजी से ही आया हुआ मिलता है। अ ग्रेजी कविता का हिन्दी कविता पर प्रभाव पडा। छायावाद और प्रगतिवाद उसके उदाहरण हैं। प्रगतिवाद पर रूस के साहित्य का प्रभाव दिखलाई देता है। हिन्दी नाटकों पर बगला का प्रभाव पडा और उपन्यासों पर अ ग्रेजी का।

कुछ भी सही, प्रभाव सभी का है परन्तु हिन्दी ने उस प्रभाव में बह कर अपनी आत्मा का हनन नहीं किया। हिन्दी ने सर्वदा विषय अपने ही रखे हैं और रूप-रग चाहे जैसा भी हो। अपने साहित्य में विदेशी वातावरण उपस्थित करने का जिस लेखक ने भी प्रयत्न किया है वह सफल नहीं हुआ और ना ही हो सकता है। हिन्दी के लेखकों ने बहुत कुशलता-पूर्वक विदेशी विचारानलियों को भी आपने

ही पैमाने मे ढाला है और उसे वह मादक रूप दिया है कि एक हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य निधि बनकर रह गया है। इस प्रकार हिन्दी विदेशी प्रभाव का आभारी है क्योंकि उसने हिन्दी को विस्तार के लिए सामग्री दी है और विदेशी प्रभाव को हिन्दी का अभारी होना चाहिए क्योंकि हिन्दी ने उसे व्यापकता दी, अमरत्व दिया।

विदेशी-प्रभाव पर सन्क्षिप्त विचार—

१. वीरगाथा-काल में केवल शाब्दिक प्रभाव है।
२. भक्ति-काल में भाषा, छंद, शैली, विषय और दर्शन का भी प्रभाव हुआ। यह सब मुसलमानी था।
३ रीति-काल के अंत तक मुसलमानी प्रभाव चलता रहा।
४ आधुनिक-काल पर अंग्रेजी का प्रभाव बहुत व्यापक है। हिन्दी के सभी क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ा। विचार, वाद, समाज और राजनीति विशेष रूप से प्रभावित हुए।

हिन्दी का पुराना और नया साहित्य

मानव-जीवन की समस्याओं के साथ ही साथ साहित्य चलता है। जीवन मे जिस काल के अंतर्गत जो-जो भावनायें रही हैं उन-उन कालों मे उन्हीं भावनाओं से ओत-प्रोत साहित्य का भी सृजन हुआ है। प्रारम्भ में मानव की कम आवश्यकतायें थी, कम समस्यायें थीं। इसी लिये साहित्यिक विस्तार का क्षेत्र भी सूक्ष्म था। वीरगाथा-काल मे वीर गाथायें लिखी गईं, भक्ति-काल मे साहित्य का क्षेत्र कुछ और व्यापक हुआ, विकसित हुआ, भक्ति के भेद हुए और अनेकों धारायें प्रवाहित हुईं। निर्गुण भक्ति, प्रेमाश्रयी-शाखा, कृष्ण-भक्ति, राम-भक्ति और अन्त में सब मिलकर शृंगार की तरफ चल दिये। एक युग का युग शृंगारिक कविता करते और नायक-नायिकाओं के भेद गिनते हुए व्यतीत हो गया, न समाज ने कोई उन्नति की और

न राष्ट्र ने। फिर भला साहित्य मे प्रगति कहां से आती ? साहित्य अपने उसी सीमित क्षेत्र मे उछल-कूद करता हुआ अवास्तविक चमत्कार की ओर प्रवाहित होता चला गया। भक्ति-कालीन रसात्मकता रीति-काल मे नष्ट हो गई और वह प्रणाली आज के साहित्य म भी ज्यों की त्यों लक्षित है।

आज के नवीन युग मे साहित्य का क्षेत्र बहुत व्यापक होता जा रहा है। केवल शृंगार अथवा भक्ति के क्षेत्र तक ही साहित्य सीमित नहीं है। वह मानव-जीवन की सभी खोजों के साथ अपना विस्तार बढ़ाता चला जारहा है। यदि साहित्य का अर्थ हम सीमित क्षेत्र मे ललित-कलाओं तक भी रखें तब भी ललित कलाओं में गद्य का विकास हो जाने के कारण कहानी, उपन्यास, निबन्ध, समालोचना, जीवनियाँ, गद्य गीत इत्यादि साहित्य प्रस्फुटित हो चुके है नाटक-साहित्य भी अपनी विशेषताओं के साथ अग्रसर है। नाटक कम्पनियों और सिनेमा कम्पनियों ने इस साहित्य को विशेष प्रश्रय दिया है। साहित्य का रूप बदल गया और साहित्य का दृष्टिकोण भी। जब-जब राष्ट्र को जैसी-जैसी आवश्यकता रही है तब-तब उसी प्रकार का साहित्य लिखा गया है। साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है।

आज के साहित्य ने प्रेम, विरह और शृंगार को भुलाया नहीं परन्तु उनका दृष्टिकोण बदल दिया है। रीति-शास्त्रों पर आधारित स्थूल-चित्रणों के स्थान पर भाषा और शैली के आधुनिक प्रयोग किये जारहे है। नख-शिख वर्णन और प्राचीन केलि-विलास इत्यादि को आज के कवियों ने अपने साहित्य मे स्थान नहीं दिया। आज का कवि करता है, प्रेमी और प्रेमिका के भावना जगत में होने वाले मनोभावों का वैज्ञानिक-चित्रण। वह अभिसार, विपरीत रति, सुरतारम्भ, दूती इत्यादि का समावेश अपने साहित्य में न करके तन्मयता और आत्म-बलिदान का चित्रण करना है।

वीर-काव्य आज का कवि भी लिखता है, परन्तु उसमे केवल शब्दों की झकार मात्र न होकर कष्ट-सहन, और आत्मोत्सर्ग की भावना रहती है। युद्ध क्षेत्र मे जाकर तलवार चलाने वाले नायक का चित्रण आज के कवि को नहीं करना होता। उसे तो राष्ट्रीय-स्वरूप का निरूपण करना होता है। आज की राष्ट्रीय-भावना और प्राचीन राष्ट्रीय-भावना मे भी अन्तर आ चुका है। प्राचीन काल में धर्म पर राष्ट्र आधारित था और इसी लिये धार्मिक भावना ही राष्ट्रीय-भावना थी। वही भावना हमे "चन्द्र" और "भूषण" मे मिलती है। परन्तु आज के साहित्य मे धर्म गौण है और राष्ट्र प्रधान। इसलिये वीर-काव्य का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म का क्षेत्र पृथक् है और राष्ट्र का क्षेत्र पृथक्।

"आज के नये साहित्य मे देश के प्रति भक्ति और प्रेम, राष्ट्रीय और जातीय वीरों के गुण-गान, अपनी पतित दशा पर शोक, नारी-स्वतन्त्रता के गीत, व्यक्ति की आशा और निराशा, प्रकृति के प्रति आकर्षण और प्रेम, रहस्यमयी सत्ता की अनुभूति, प्रति दिन के दैनिक जीवन का विश्लेषण, राष्ट्रीय और जातीय समस्यायें प्रचुर मात्रा मे उपस्थित हैं।" (डा० रामरतन भटनागर)

आधुनिक-काल का रहस्यवाद भी हमें 'छायावाद' के रूप में मिलता है परन्तु उस पर अगरेजी रोमॉटिक (Mystic Literature) साहित्य और बगला साहित्य का प्रभाव है। रहस्य छायावाद में है परन्तु धार्मिक भावना के साथ नही। धर्म का आज के युग मे अभाव है, दर्शन का नही। दर्शन का सम्बन्ध केवल दृश्य जगत तक ही सीमित रह जाता है, आध्यात्मिक क्षेत्र तक उसे ले जाना आज के लेखक उचित नहीं समझते। कविवर 'निराला' मे दार्शनिक-चिंतन और मैथिली-शरण गुप्त मे 'धार्मिक-भावना' का समावेश मिलता है परन्तु उसमें भी कबीर और तुलसीदास जी जैसी भावनाओं का सम्पूर्ण एकीकरण नहीं

मिलता। सासारिकता (Matterialisticism) का समावेश उनके साहित्य मे पग-पग पर मिलता है।

नवीन युग मे मानव-जीवन पर जितना साहित्य लिखा गया है उतना धर्म और दर्शन पर नही। मानव का विश्लेषण आज के लेखक के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण बन गया है, इसलिए उसने जीवन के विविध पहलुओं पर जी खोलकर विचार किया है। उपन्यास, कहानी और जीवनियों में तो प्रधान विषय ही मानव-जीवन है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो और कहानियो मे समाज का सुन्दर चित्रण किया है। प्राचीन साहित्य मे इस प्रकार के काव्य तो हैं ही नहीं।

आज के युग ने बुद्धि को प्रधानता दी है। नवीन साहित्य बुद्धि का आश्रय लेकर चलता है और प्राचीन साहित्य भावना का। भावना-प्रधान साहित्य मे रस प्रधान होता है और बुद्धि-प्रधान साहित्य मे वास्तविकता, जड़ता और चमत्कार। आज का साहित्य धार्मिक क्षेत्र में गौण है परन्तु मानवता के वह अमर सिद्धान्त उसमें वर्तमान हैं जिनका दर्शन भी हमे प्राचीन साहित्य में नहीं मिलता।

सक्षिप्त विचार—

१ भूमिका-पुराना और नया साहित्य क्या है ?
२. प्राचीन साहित्य मे वीरता, भक्ति और शृंगार है।
३ नवीन साहित्य में जीवन की प्रगतियाँ, देश-भक्ति, राष्ट्रीयता और प्रेम के नवीन दृष्टिकोण हैं।
४ रहस्यात्मकता का नवीन दृष्टिकोण।
५ नवीन साहित्य मे जीवन की अनेक-रूपता के दर्शन मिलते हैं।
६ नवीन साहित्य में जीवन का अमर सदेश है।

कुछ साहित्यिक निबन्धों की रूप-रेखायें

हिन्दी में नाटक और रंग-मंच

१ हिन्दी में रग-मच के योग्य नाटक नहीं लिखे गये, इसीलिये रग-मच का भी पर्याप्त उत्थान नहीं हो सका।

२. हिन्दी नाटक का इतिहास और हिदी नाटको की विशेषतायें।

३. हिन्दी रग-मंच का इतिहास।

४ रग-मच न होने के कारण अनुवादों द्वारा ही हिन्दी मे नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ।

५ हिन्दी नाटकों के लिए स्वतत्र रग-मच को आवश्यकता है।

६ हिन्दी रंग-मच किस प्रकार का होना चाहिए और उसकी विशेष आवश्यकतायें क्या हैं?

७ वर्तमान नाटककारों का नाटक और र ग मच दोनो की ओर ध्यान है अथवा नहीं।

८ उपसंहार।

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओ का क्रमिक विकास

१ भारतेन्दु काल — 'कवि वचन सुधा' हरिश्चन्द्रजी ने और 'बनारस अख़बार' शिव प्रसाद जी ने प्रकाशित किया।

२ स वत् १९२८ में 'अल्मोडा अख़बार' १९२९ में 'दीप्ति प्रकाश' और 'विहारबधु', १९३१ मे 'सदादर्श', १९३३ में 'भारतबधु' और 'काशी पत्रिका', १९३४ में 'हिन्दी प्रदीप', १९४० में 'धर्म दिवाकर', 'शुभचितक', 'मार्तण्ड' और 'हिन्दुस्तान' तथा १९५१ मे 'दिवाकर', 'भारतेन्दु' इत्यादि प्रकाशित हुए।

३ 'विहारबधु', 'भारत मित्र', 'उचित वक्ता', 'आर्यदर्पण', 'ब्राह्मण' 'हिन्दी प्रदीप' और 'हिन्दुस्तान' ने हिन्दी की उस काल में बहुत सेवा की।

४ फिर प्रयाग से महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका प्रकाशित की, जिसका वर्तमान हिन्दी खड़ी-बोली के परिमार्जन में विशेष हाथ रहा है।

५. इसके पश्चात् 'विशाल भारत' कलकत्ता, 'सुधा' लखनऊ, 'कल्याण' गोरखपुर, 'माधुरी' लखनऊ' 'चाँद' प्रयाग, 'हंस' बनारस, 'विश्वमित्र' कलकत्ता, 'शाँति' लाहौर इत्यादि पत्रिकायें प्रकाशित हुई और इन्होंने हिन्दी भाषा के उत्थान में बहुत सहयोग दिया।

६ साप्ताहिक पत्रों मे 'प्रताप' कानपुर, 'मिलाप' लाहौर, 'विश्वबन्धु' लाहौर, 'विश्वमित्र' कलकत्ता, 'अर्जुन' दिल्ली, 'आर्यमित्र' आगरा, 'दिवाकर' आगरा, 'स्वतंत्र' झाँसी 'नव-युग' दिल्ली इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं।

७. आज के युग में अनेकों पत्र-पत्रिकाओ के पुष्पों स हिन्दी साहित्य की वाटिका खिली हुई है। गूढ़-साहित्य, राजनीति, इतिहास, कथा-कहानी, सिनेमा तथा जासूसी पत्र-पत्रिकायें अनेकों की सख्या में निकल रही हैं। सरकारी पत्र पत्रिकायें भी हैं और उनमें अच्छा साहित्य प्रकाशित हो रहा है।

८ हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का भविष्य बहुत उज्ज्वल है।

भारत-राष्ट्र की राष्ट्र-भाषा

१. भारत की राष्ट्र-भाषा बनने वाली भाषा सब से अधिक बोली तथा समझी जाने वाली भाषा होनी चाहिए।

२ वह प्राचीन राष्ट्रभाषा की उत्तराधिकारिणी होनी चाहिए और अन्य प्रांतों की भाषा के भी निकट की ही होनी चाहिये।

३ उस भाषा में प्राचीन साहित्य की सुसंस्कृत परम्परा होनी चाहिये। उसका अपना साहित्य भी उन्नत और विशाल होना चाहिए।

४ वह भाषा देश की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाली होनी चाहिए।

५ उस भाषा के पास सुन्दर और सुव्यवस्थित शब्दकोष होना चाहिये।

६ उस भाषा की लिपि सब प्रकार से पूर्ण और भाव व्यक्त करने में समृद्ध होनी चाहिये।

७ हिन्दी में यह ऊपर दिये गये सभी गुण वर्तमान हैं और भारत की सब प्रांतीय भाषाओं में केवल यही एक भाषा ऐसी है जिसमें यह सब गुण वर्तमान हैं।

देवनागरी लिपि की महानता

१ भारत की प्राचीन प्रचलित 'खरोष्टी' और 'ब्राह्मी' लिपियों में से यह 'ब्राह्मी' लिपि से निकली है। ब्रह्मीलिपि अधिक वैज्ञानिक थी और क्लिष्ट भी कम थी। संस्कृत और हिन्दी के अतिरिक्त प्राकृत, मराठी, नैपाली और गढ़वाली का भी उदगम ही है।

२ देवनागरी की वर्णमाला का उच्चारण और क्रम संसार की अन्य सब वर्ण मालाओं में श्रेष्ठ समझा जाता है। देवनागरी के वर्णों का उच्चारण पृथक् और शब्द के अन्दर एक सा ही होता है। रोमन और फारसी इत्यादि लिपि के वर्णों में यह विशेषता नहीं पाई जाती।

३ देवनागरी में पहिले स्वर और बाद में व्यंजन आते हैं। स्वरों और व्यजनों का यह क्रम बहुत सुन्दर है। कंठ, तालु, मूर्धा, दंत और फिर ओष्ठ से बोले जाने वाले व्यजन आते हैं। इतना सुन्दर वैज्ञानिक क्रम संसार की किसी अन्य लिपि में नहीं मिलता।

४ इस प्रकार उच्चारण और क्रम के विचार से यह संसार की सर्वश्रेष्ठ भाषा है।

५ देवनागरी लिपि संस्कृत से ली गई है। इस लिपि में संस्कृत की सभी ध्वनियों का समावेश सुगमता पूर्वक हो जाता है। आज कल फारसी और अंग्रेज़ी के सम्पर्क में आ जाने

से कुछ नई ध्वनिया हिन्दी मे आ गई हैं। हिन्दी लिपि ने उन्हे अपनाने मे बहुत स्वतंत्रता से काम लिया है और कुछ नवीन सकेत बनाकर उन्हे अपने मे पचा लिया है। जैसे ज ज़, क क़, फ फ़ इत्यादि।

६ उपसहार।

हिन्दी मे जीवनी-साहित्य का विकास

नोट—हिन्दी मे लिखी गई जीवनियों को निम्नलिखित श्रेणियों में बाटकर इस विषय पर सुन्दर निबन्ध लिखा जा सकता ह—

१ आत्म कथायें (महात्मा गाधी इत्यादि की आत्म कथायें)

२ राजनैतिक जीवनिया (प० जवाहर लाल, नेताजी सुभाष, महात्मा गाधी इत्यादि की अनेकों जीवनियां लेखकों ने लिखी है।)

३ ऐतिहासिक जीवनिया (महाराणा प्रताप, रानी झासी, शिवाजी इत्यादि की जीवनिया।)

४ धार्मिक जीवनिया (स्वामी दयानन्द इत्यादि की जीवनियां)

५. राम, कृष्ण इत्यादि की जीवन कथायें।

६ साहित्य के प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवनिया (सूरदास, तुलसीदास, बिहारी, हरिश्चन्द, महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, जयशकर प्रसाद, प्रेमचन्द इत्यादि की जीवनिया)

७ फुटकर जीवनिया।

८ हिन्दी साहित्य म अभी तक कुछ विशेष व्यक्तियों की ही जीवनिया लिखी गई हैं। जीवनियां कहानी अथवा उपन्यासों के रूप मे काव्य की अ ग बनकर नहीं आई। जब तक जीवनिया स्वतंत्र रूप से काव्य का रूप नहीं बन कर आयेंगी उस समय तक ललित कला क्षेत्र में इस साहित्य को ऊचा स्थान नहीं मिल सकता।

हिन्दी में भ्रमर-गीत साहित्य का प्रसार

१ 'भ्रमरगीत' की कथा, भ्रमर गीत से कवि का अभिप्राय और इसका उद्गम स्थान (श्रीमद्भागवत)

२. सर्व प्रथम सूर ने 'भ्रमर गीत' की कल्पना को हिन्दी साहित्य में स्थान दिया।

३ सूरदास और नन्ददास का भ्रमरगीत' लेखकों मे विशेष स्थान है।

४ सूर की विशेषतायें, नददास की विशेषतायें।

५ 'भ्रमर-गीत' पर रीति-कालीन कवियो द्वारा रचनायें।

६ आधुनिक काल में सत्यनारायण, रत्नाकर, 'हरिऔध' तथा मैथिलीशरण गुप्त द्वारा की गई रचनाये।

७. उपसंहार

मीरा की काव्य-साधना

१ मीरा के जीवन, भक्ति-साधना, निर्भीक-विचार, और तन्मयता पर संक्षिप्त विचार।

२ मीरा का साहित्य, उसमें कृष्ण-भक्ति और गृहस्थ जीवन के प्रति उदासीनता।

३ मीरा की कविता मे भक्ति, प्रेम और दर्शन का सुन्दर सम्मिश्रण है और फिर उससे रहस्य-वाद के एक नवीन दृष्टिकोण का उदय।

४ मीरा की कविता में संत शब्दावली का प्रयोग और भक्ति की अबाध धारा का प्रवाह।

५ मीरा की काव्यात्मकता, संगीतात्मकता, माधुर्य और नृत्यप्रधान तत्वों की उसमें विशेषता ?

६ मीरा की कविता में पांडित्य नहीं स्वाभाविक राग और रस का सामंजस्य है, माधुर्य है और कमनीयता है।

७ उपसंहार।

हिन्दी मे गीत-काव्य की परम्परा

१ सस्कृत मे गीत काव्य-धारा। (गीत गोविन्द का व्यापक प्रभाव)

२ विद्यापति पर गीत गोविंद का प्रभाव और उनकी गीत-काव्य-धारा।

३ सूर और तुलसी की गीतकाव्य-धारा जिसमे भक्ति का प्रचार हुआ। राम साहित्य की अपेक्षा सूर साहित्य में गीतों का प्रचार अधिक हुआ। मीरा और सूर के गीत आज भी गायकों की अमर सम्पत्ति बने हुए हैं।

४ वर्तमान युग में गीतो की एक नई प्रणाली चली है जिसका श्रेय विशेष रूप से जयशकर 'प्रसाद' और महादेवी वर्मा को पहुँचता है परन्तु गीत लिखने में नरेन्द्र शर्म्मा, बच्चन, पन्त और मैथिली-शरण गुप्त ने भी कुछ कम हिंदी साहित्य को नहीं दिया है। आधुनिक गीत-प्रणाली पर अंग्रेज़ी साहित्य का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। (Mystic) रोमाटिक युग के शैले और कीट्स इत्यादि का इन पर अधिक प्रभाव है। इन कवियों के गीतों को गाने मे गायकों को उस सुगमता का अनुभव नहीं होता, जिसका अनुभव सूर और मीरा के गीतों को गाकर होता है, फिर भी आज के युग में वह बहुत प्रचलित हो चले हैं और सिनेमा क्षेत्र मे इनका प्रयोग विशेषता के साथ हो रहा है। सिनेमा क्षेत्र में 'प्रदीप' 'नरेन्द्र शर्म्मा', 'दीपक', हरीकृष्ण 'प्रेमी' इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

गीतात्मक काव्य लिखने के लिये कुछ विशेष गुण—

(क) सगीतात्मक और कोमल पदावली का प्रयोग।

(ख) आत्म-निवेदन इत्यादि की विशेष भावना का समावेश।

(ग) भावों का संक्षिप्त सतुलन।

(घ) जीवन की रागात्मक वृत्तियों को छूने वाले भावों से ओत-प्रोत होना।

५ उपसंहार।

हिंदी साहित्य की विशेषतायें

१ हिंदी साहित्य में भारत की प्राय सभी प्रचलित धार्मिक धाराओं का प्रतिपादन और आध्यात्मिक साधनाओं का स्पष्टीकरण मिलता है।

२. हिन्दी साहित्य मे हिंदू जातीयता और भारत-राष्ट्रीयता प्रधान भावनायें मिलती हैं।

३ हिंदी साहित्य का उदय स्वतन्त्रता में, मध्यकाल परतन्त्रता मे और वर्तमान परतन्त्रता से जन्म लेकर स्वतन्त्रता के युग प्रस्फुटित हो रहा है।

४. हिंदी साहित्य मे भारतीय जनता के हृदय का स्पष्टीकरण रहा है। जब २ जैसी २ भी परिस्थितियाँ रही हैं उनका स्पष्ट चित्रण हमें हिन्दी साहित्य में मिलता है।

५ हिंदी साहित्य हिंदू-संस्कृति की देन है। इसके बहिरंग पर फारसी और अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव पड़ा है, उसकी आत्मा पर नहीं।

६. हिन्दी साहित्य भारत, भारतीय सभ्यता, भारतीय संस्कृति, भारतीय दर्शन, भारतीय समाज, जातियों और भारतीय प्रकृति का प्रतिबिम्ब है, प्रतीक है या यह भी कह सकते है कि इसमें इन सभी का सामंजस्य है, विचार है।

७. उपसंहार।

गोदान पर एक दृष्टि

१ गोदान मु० प्रेमचन्द जी का अन्तिम उपन्यास है और इसी लिये उनकी सुन्दरतम कलाकृति भी इसे हम कह सकते हैं।

२ उनकी शैली, उनकी भाषा, उनके विचार और उनकी मनोवैज्ञानिकता का पूरा ज्ञान हमे इस उपन्यास द्वारा प्राप्त होता है।

४. इस उपन्यास में शहरी और ग्रामीण दोनों ही पात्रों को रख कर दोनों चरित्रों पर उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है।

५ गोदान की समस्यायें उस समय के समाज की समस्यायें हैं और उनका स्पष्टीकरण जैसा सुन्दर गोदान में हुआ है वैसा सम्भवत: उस काल के किसी समाज सुधारक की समाज सेवा सम्बन्धी पुस्तक में भी नहीं हुआ।

६ गोदान में प्रेमचन्द ने मनोवैज्ञानिक-चित्रण खूब दिये हैं और अनेकों पात्रों को जन्म दिया है। 'गोबर' का चित्रण बहुत सुन्दर और स्वाभाविक हुआ है। प्रधानता इस में ग्राम का ही दी गई है शहर को नहीं।

७ उपसंहार।

केशव का पाण्डित्य

१ केशव को हिन्दी में कठिन 'काव्य का प्रेत' कहा जाता है। इनके विषय में अनेकों किंवदन्तियां भी प्रसिद्ध हैं। यह बात प्रसिद्ध है कि रीति-काल में जब राजा लोग किसी कवि को विदाई नहीं देना चाहते थे तो उस से केशव की कविता का अर्थ पूछ लेते थे। अर्थात् केशव की कविता इतनी क्लिष्ट है कि उसका अर्थ लगाना पण्डितों के लिये भी कठिन था।

२ केशव चमत्कारवादी कवि थे। हिन्दी में सर्व प्रथम रीति-ग्रन्थ आपने ही लिखे हैं परन्तु रीति-काल का प्रवर्तक होने का सौभाग्य आपको इसलिये प्राप्त नहीं हो सका कि आपने अपने रीति-ग्रंथ में जिस चमत्कारवादी परंपरा को अपनाया है वह हिंदी के आने वाले अन्य रीति ग्रंथ लेखकों को मान्य नहीं हुआ।

३. केशव की रामचंद्रिका हिन्दी साहित्य की वह निधि है जिसे कहते हैं कि उन्होंने एक ही दिन में लिखकर समाप्त किया था। इस

ग्रंथ मे रामायण की कथा का गान है परन्तु भक्ति-भावना को लेकर नहीं, कोरी साहित्यात्मकता को लेकर। प्रबन्धात्मकता का इस मे अभाव है और ऐसा प्रतीत होता है कि समय समय पर लिखे गये पदों को इस ग्रंथ मे उन्होंने सग्रहीत कर दिया है।

केशव ने अपने काव्य मे श्लेष अलंकारों की ऐसी भरमार रखी है कि एक एक शब्द से अनेकों अर्थ निकलते है। कहीं-कहीं पर तो यह अर्थ इतने व्यर्थ के भी हो जाते है कि ग्रथ के भाव से इनका दूसरा अर्थ मेल ही नहीं खाता। वहाँ पर पडित उन अर्थों को समझकर चमत्कार के रूप में आनद लाभ कर सकते हैं परन्तु भावुक हृदय के लिये तो उसमे आ द के लिये कोई स्थान नहीं।

केशव के पाँडित्य को हिन्दी के प्राय सभी विद्वानो ने माना है। यह सत्य है कि उनका दृष्टिकोण हिन्दी मे प्रचलित नहीं हो पाया परन्तु वह एक प्राचीन दृष्टिकोण लेकर हिन्दी मे आये और उसमे उनके अपनेपन की स्पष्ट झलक वर्तमान है।

उपसहार।

जयशकर प्रसाद की सर्वाङ्गीणता

काव्य-कला के सब क्षेत्रों मे बा० जयशकर प्रसाद जी का समान अधिकार था। आपने हिन्दी साहित्य के सब अग-प्रत्यगो की वृद्धि की और सभी क्षेत्रों मे पूर्ण कुशलता पूर्वक मार्ग-प्रदर्शन भी किया।

आपके काल मे काव्य-कला के प्रधान अ ग नाटक, कविता-काव्य, उपन्यास, कहानी और निबन्ध समझे जाते थे। इन सभी प्रकार का साहित्य बा० जयशँकर प्रसादजी ने सृजन किया है।

जीवन के सभी अ गो पर जयशकर प्रसाद जी ने प्रकाश डाला है। आपने अपने काव्यों मे विशेष रूप से बौद्ध-कालीन सस्कृति पर ही लिखा है परन्तु अन्य कालो को भी सर्वथा भुलाया नहीं

है। आपके उपन्यासो मे आधुनिक-काल का भी चित्रण व्यापक रूप मे मिलता है।

४ जयशंकर प्रसाद जी के काव्य में कवि होने के नाते कल्पना प्रधान रहती है और ऐतिहासिक नाटको मे भी कल्पना पर विशेष बल दिया गया है।

५ कविता-क्षेत्र मे आपने मुक्तक और प्रबन्ध दोनो ही काव्य सफलता पूर्वक लिखे हैं। 'कामायनी' इस युग की एक विचित्र देन है और उस जैसा दूसरा काव्य अभी तक हिन्दी साहित्य मे नहीं लिखा गया।

६. आपके नाटकों से आपके ऐतिहासिक ज्ञान का पता चलता है। साथ ही आप हिन्दी के प्रथम महान नाटककार हे जिनकी समता के लिये आज भी हमारे पास कोई लेखक नही हे। यह सच है कि आपके नाटक रंगमंच के योग्य नहीं हैं परन्तु फिर भी उनका साहित्यिक महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं होता।

७ समय की प्रचलित खड़ी बोली को जयशंकर प्रसाद जी ने एक नया रूप दिया, हिंदी को एक नई शैली दी और काव्य को एक नवीन दृष्टिकोण दिया।

८ उपसंहार।

इस प्रकार हमने देखा कि 'प्रसाद' जी जहा तक सर्वांगीणता का सम्बन्ध है, गोस्वामी तुलसीदास से भी आगे बढ़ जाते हैं। क्योंकि गोस्वामी तुलसीदास का जहाँ अपने समय की सब शैलियों पर समान अधिकार था वहा बा० जयशंकर प्रसाद जी ने अपनी नवीन शैली का निर्माण किया है और साथ-साथ काव्य के उन सब अंगों को पुष्ट किया है जिनका नाम-निशान तक भी तुलसीदास जी के समय में वर्तमान नहीं था।

हिन्दी साहित्य मे महावीर प्रसाद द्विवेदी का स्थान

१. हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल को भाषा-साहित्य के पडितो ने तीन कालों मे विभाजित किया है। भारतेन्दु-काल, द्विवेदी-काल और वर्तमान-काल। इस प्रकार महावीर प्रसाद द्विवेदी जी एक काल के सम्पूर्ण रूप मे कर्णधार हैं।

२. जिस काल मे आपने हिन्दी-साहित्य की सेवा की है उस समय साहित्य तो क्या भाषा में भी सुधार की नितांत आवश्यकता थी। आपने —

१ भाषा को शुद्ध किया।
२ भाषा की व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियो को दूर किया।
३ भाषा मे विराम, कौमा इत्यादि चिन्हों को अंग्रेजी से ले कर रखा।
४. लिपि के दोषों और सकीर्णता को दूर किया।
५ भाषा के शब्दों का तरोडना-मरोडना बन्द किया।
६ भाषा मे तद्भव शब्दों के स्थान पर तत्सम शब्दों का प्रयोग किया।
७. सरस्वती पत्रिका में लेख लिखे और लिखवाये।

३ हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम उच्च कोटि के साहित्यिक लेख आपने लिखे और अंग्रेज़ी से अनुवाद किये।

४ हिन्दी भाषा के प्रचार मे आपने वह कार्य किया जो ईसाई धर्म के प्रचार मे ईसा ने, इस्लाम धर्म के प्रचार मे मुहम्मद साहेब ने और बौद्ध धर्म के प्रचार मे बुद्ध भगवान ने किया था। अदालतों मे हिन्दी प्रयोग करने का आपने आन्दोलन किया और इसी प्रकार के अन्य आन्दोलन भी किये।

५ आपने हिन्दी साहित्य की ओर अधिक पढ़े-लिखे विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया, उनसे लेख लिखवाये और स्वय भी लिखे

स्कूलो में भी हिन्दी का प्रचार करने में आपने अपना सर्वस्व लगा दिया।

६ इस प्रकार आपने हिन्दी को बल दिया, विद्वान लेखक दिये, भाषा दी और वह भी विशुद्ध भाषा, शब्दकोष दिया, विराम इत्यादि भाषा के सतुलन के लिये चिन्ह दिये और सरस्वती पत्रिका दी। इन सभी कारणों मे द्विवेदी जी का स्थान हिन्दी साहित्य मे बहुत ऊँचा है।

हिन्दी-साहित्य की सेवा मे स्त्रियो का स्थान

१. खेद का विषय है कि नारी जो कि पुरुष की अपेक्षा अधिक भावुक होती है, उसका हिन्दी-साहित्य में स्थान खोजते समय हमें आँखें पसार कर देखना होता है। वीरगाथा-काल में कवियित्री का नाम भी नहीं मिलता।

२ भक्ति-काल में एक चमकती हुई तारिका हमारे सम्मुख आती है मीरा। मीरा का साहित्य हिन्दी-साहित्य की वह निधि है कि जिसकी समानता अन्य किसी के साहित्य से नहीं की जासकती। मीरा के कुछ पद तो भारत के गायकों के कठ-हार बन गये हैं।

३ आधुनिक काल में आकर हमें हिन्दी साहित्य में स्त्रियों का अभाव दिखाई नहीं देता। इसका एक कारण तो सब से बड़ा यह है कि मुसलमान काल में स्त्री शिक्षा का एक प्रकार से लोप सा ही हो गया था। शिक्षा न रहने पर नारी-सुलभ भावुकता भी क्या कर सकती थी। आज उससे मुक्त होकर साहित्य का सृजन किया है।

४ वर्तमान युग में भी स्त्रियों ने केवल कविता क्षेत्र में ही विशेष प्रगति की है। महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान के नाम इस काल में विशेष उल्लेखनीय हैं।

५ विशेष रूप से हिन्दी साहित्य जिसका आभारी है वह केवल दो ही कवियित्रियाँ हैं एक मीरा और दूसरी महादेवी वर्मा। इन दोनों ने हिन्दी साहित्य-सागर का अमूल्य रत्नो से भरा है।

६. मीरा की कविता में भक्ति और योग की साधना है और महादेवी वर्मा के काव्य मे आत्म-चिंतन और रहस्यवाद का वह रूप जिसमे छायावाद की झलक मिलती है। महादेवी के साहित्य में सगुण की उपासना न मिलकर निर्गुण का चिंतन है।

हिन्दी साहित्य मे प्रबन्ध-काव्य

१. प्रबन्ध-काव्य किसे कहते हैं? उसके क्या गुण और क्या दोष आचार्यों ने बतलाये हैं। आचार्यों की निर्धारित की हुई पारिभाषा पर लिखे गये कितने प्रबन्ध काव्य हिन्दी मे उपलब्ध है?

२ पृथ्वीराज रासो, पद्मावत, रामचरित-मानस, सूर-सागर, रामचन्द्रिका, साकेत, यशोधरा और कामायनी हिन्दी के प्रधान प्रबन्ध काव्य हैं।

३. आधुनिक प्रबन्ध लेखकों ने प्राचीन प्रबन्ध काव्य की परिभाषाओं मे क्या क्या उलट फेर कर दिये हैं?

४. हिन्दी के कौन कौन कवि सफल प्रबन्ध-काव्य लिख सके है।

५. उपसहार।

आधुनिक साहित्य मे मनोविज्ञान

१. आज का साहित्य धर्म के आधार पर न चलकर, चलता है मनोविज्ञान के आधार पर। जिस लेखक के पास मनोविज्ञान का अभाव है वह आज सफल लेखक नहीं बन सकता।

२. समाज का चित्रण आज के साहित्य का प्रधान विषय है और यह बिना मनोविज्ञान के होना असमव है। इस लिये आज के लेखक को पहले मनोवैज्ञानिक होना होता है और फिर साहित्यिक।

३ मध्ययुग में मानस इत्यादि मे मनोविज्ञान है अवश्य, और वह शरत जैसे उपन्यासकारों के मनोविज्ञान की अपेक्षा अधिक गहरा है परन्तु इस उन्नीसवीं सदी के हिन्दी लेखकों के मनोविज्ञान तक नहीं पहुँच सकता।
४ भक्ति-काल मे 'मानस' और 'सूर-सागर' मे संघर्ष और विषर्ष के मार्मिक चित्रण हैं। यह शेक्सपीयर इत्यादि के मनोवैज्ञानिक सघात और विघातात्मक चित्रणों से उत्तम हैं। रीति-काल में मनोविज्ञान का बिल्कुल अभाव दिखलाई देता है।
५ छायावादी कवियों मे अन्तर वैज्ञानिकता है परन्तु मानव की प्रवृत्तियों का विवेचन नहीं। वहाँ तो कवियों की रगीन कल्पना मात्र है।
६ हमे मनोवैज्ञानिकता के दर्शन हिन्दी उपन्यासों और कथाओं मे होते हैं और इसका प्रारम्भ मु० प्रेमचन्द से होता है। परन्तु वह मनोविज्ञान भी ऊपरी और छिछला था।
७ 'बंकिम' और 'रवीन्द्र बाबू' के उपन्यासों का आधार मनोविज्ञान है। बंकिम का 'विषवृक्ष' और रवीन्द्र की 'चोखेरबाली' मनोविज्ञान के धरातल पर अवलम्बित हैं।
८ आज का उपन्यास-साहित्य मनोविज्ञान के धरातल पर खड़ा है और स्थिरता के साथ आगे बढ़ रहा है। शरत के साहित्य का हिन्दी में प्रचार होने पर भी उसका प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर नहीं पड़ सका।
९ उपसंहार।

हिन्दी साहित्य में विद्यापति

१ विद्यापति मैथिल कवि थे। उन्होंने हिन्दी मे गीत-गोविद का अनुकरण किया और उसी पद्धति पर साहित्य रचना की।
२ विद्यापति एक रसिक कवि थे। उन्होंने भक्ति भावना में बहकर कृष्ण और राधिका के ऊपर पद्य नहीं लिखे। वह शैव्य थे और

ंगार-रस की कविता करते थे। इसलिये इनके पदों में भक्ति की खोज करना भूल ही है।

३ विद्यापति को मैथिल-कोकिल भी कहते हैं। यह केवल इसलिये कहते हैं कि इनकी कविता के गाने में कोकिल के कठ की मधुरता और सरसता पाई जाती है।

४ मैथिल भाषा हिन्दी और बगला के बीच की भाषा है इसलिये बगला वाले विद्यापति को बगला का कवि कहने का भी प्रयत्न करते हैं परन्तु शास्त्रीय जाँच-पड़ताल से उन्हें बगला का कवि नहीं कहा जा सकता। पूर्वी हिन्दी की 'क्रियाओं' के आधार पर वह भाषा हिन्दी के निकट है।

५ विद्यापति ने अपन्हुति, व्यतिरेक और रूपकातिशयोक्ति अलकारों का अपनी कविता मे आधिक्य के साथ प्रयोग किया है।

६ विद्यापति ने प्रार्थना और नचारी के पद भी लिखे हैं परन्तु वह सब काव्य-प्रणाली के रूप में लिखे है भक्ति-भावना से प्रेरित होकर नहीं लिखे।

७ गीत-काव्य की परम्परा मे यह हिन्दी के सर्वप्रथम कवि हैं और उनका स्थान हिन्दी मे एकाकी है।

८ उपसहार।

देव का आचार्यत्व

१. देव ने रस, अलकार, नायक-नायिका भेद इत्यादि सभी पर सुन्दर रचना की है। संचारी भावों में देव ने एक नया चौबीसवा संचारी भाव भी खोजकर निकाला है।

२. देव ने राग-रागनियों और पिगल पर भी लिखा है। देव की 'काव्य-रसायन' पुस्तक से उनके आचार्यत्व का ज्ञान होता है

३ देव की कविता में कहीं पर शिथिलता नहीं है। कविताओं में आभूषण सहित नायिकाओं का चित्रण किया है।

४ देव की शुद्ध ब्रजभाषा में कोमलता और सरलता दोनों गुण हैं। श्रुति-कटु शब्द इनकी रचनाओ म खोजे को भी नहीं मिलता। भाषा की उत्तमता इनका प्रधान गुण है।

५ अनुप्रास और यमक इनकी रचनाओं में भरे पडे हैं। सुन्दर लोकोक्तियाँ आपने लिखी हैं। नायक-नायिकाओं के वर्णन इतने सुन्दर हैं कि तस्वीर खड़ी हो जाती हैं।

६. एक-एक छन्द मे अनेकानेक अलंकार मिलते हैं। मानुषी प्रकृति का निरीक्षण आपका बहुत सुन्दर है।

७ भाव-भेद, रस-भेद, राग-भेद, अलकार, पिगल इत्यादि सभी से आप आचार्यों की श्रेणी मे आ जाते हैं। कविता की सरसता और उक्त गुणों के कारण हम कह सकते हैं कि यह कवि और आचार्य दोनों ही थे।

८ देव की कविता में भावों की उड़ान है, चमत्कार है, भाषा में रसाद्रता है, वेग है, काव्य मे सिद्धान्त-निरूपण है, क्या नहीं है देव मे। वह केशव इत्यादि की भाँति आचार्य हैं और बिहारी की भाँति कवि।

सेनापति का प्रकृति-चित्रण

१ सेनापति भक्ति-काल और रीति-काल के सधि-काल के कवि हैं। इसलिये उनके काव्य मे रीति तथा भक्ति दोनों ही भावनाओं का समावेश मिलता है। उनके साहित्य में धार्मिक और शृंगार और अलंकार-प्रियता की उभयपक्षी मनोवृत्तियां परिलक्षित होती हैं। रामभक्ति सम्बन्धी कविताओं में भक्ति और श्लेष वर्णन, शृंगार वर्णन और ऋतु-वर्णन सम्बन्धी रचनाओं मे शृंगारिकता मिलती है।

२ सेनापति का ऋतु-वर्णन चार प्रकार का है—

(१) उद्दीपन-रूप से।

(२) श्लेष आदि अलंकार दिखाने के लिये।

(३) मानवीय-करण करके।

(४) आलम्बन-रूप से।

३. उद्दीपन-रूप में मानवी और दैवी दोनों चित्रण मिलते हैं। संयोग पक्ष वियोग-पक्ष और श्लेषों की सुन्दर रचना सेनापति ने की है। प्रकृति के मानवीकरण में प्रकृति के साथ मानव की भी प्रधानता कवि ने रखी है। प्रकृति को मानव का रूप कवि ने दे दिया है। उसे दूल्हा बनाया है, दुलहिन बनाया है इत्यादि। आलम्बन रूप में हमें सेनापति के सूक्ष्म-निरीक्षण और बिम्ब-ग्रहण तथा संश्लिष्ट-योजना की शक्ति का परिचय मिलता है।

४ सेनापति के ऋतु-वर्णन की तीन विशेषताएं हैं—

(१) सेनापति के वर्णनों में उद्दीपन रूप मिलता है परन्तु आलम्बन-रूपों का भी नितांत अभाव नहीं है।

(२) सेनापति के वर्णनों में बिम्बग्रहण और संश्लिष्ट योजना मिलती है। केवल परिदृश्य-प्रदर्शन मात्र का प्रयास ही नहीं दीखता।

(३) इन वर्णनों में कल्पना और अलंकार दोनों का सौंदर्य कवि ने समान रूप से संचित कर रखा है।

५. सेनापति की रचना में रीति-कालीनता होते हुए भी इसमें जो प्रकृति-चित्रण मिलता है वह अन्य कवि ने नहीं किया। प्रधान रूप से प्रकृति-चित्रण-क्षेत्र में सेनापति का विशेष स्थान है।

यशोधरा पर एक दृष्टि

१. बा० मैथिली शरण जी के आख्यान-काव्यों में यशोधरा का स्थान साकेत के बाद आता है। इस रचना में प्रगीत मुक्तकों का प्रयोग

कवि ने किया है, जिसके कारण रचना मे कुछ दोष आ गये हैं और कुछ गुण भी ।

२. जिस प्रकार 'साकेत' मे विरहणी उर्मिला की तपस्या का गुण-गान है, उसी प्रकार इसमे यशोधरा को प्रधान पात्र मान कर कवि ने काव्य का निर्माण किया है। प्राचीन साहित्यिकों द्वारा भुलाये गये इन दो महान पात्रो के चरित्रो को लेकर 'साकेत' और 'यशोधरा' काव्यों की रचना करना बाबू मैथिलीशरण की विशेषता है।

३ कथा में नाटकीय सौंदर्य है और कवि ने बहुत सहृदयता से काम लिया है। प्रबन्ध-काव्य होने पर भी इसमे नाटक के गुण वर्तमान हैं ।

४ इस प्रबन्ध-काव्य मे भावात्मकता है, घटनाओं तथा कथा का क्रमिक विकास है अवश्य, परन्तु गीतों की भाव प्रवणता से कहीं-कहीं पर घटना-सघटन का क्रम टूट जाता है । इस लिये इसमे आख्यान काव्य की सफलता और विफलता दोनों ही वर्तमान हैं ।

५ विरहणी यशोधरा का चरित्र-चित्रण काव्य में प्रधान है परन्तु साथ ही सिद्धार्थ (गौतम बुध) के चरित्र को भी उसी सहानुभूति के साथ कवि ने चित्रित किया है, जिस सहानुभूति के साथ 'साकेत' में लक्ष्मण के चरित्र को ।

६ "अबला-जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी—
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ।

उक्त दो पंक्तियों में यशोधरा काव्य का सार आ जाता है। कवि ने अबला नारी के प्रति सवेदना प्रकट की है ।

७ काव्य में वियोग पक्ष प्रधान है और सयोग पक्ष का नितात अभाव है। मातृत्व और पत्नीत्व के दोनों पार्श्वों को यशोधरा में चित्रित किया गया है। इन दो पार्श्वों द्वारा नारी जीवन की महानता कवि ने सिद्ध की है ।

८. यशोधरा के विरह-वर्णन में प्राचीन शैली का चमत्कार है। षड्-ऋतु-वर्णन, विरह की अन्तर्दशाओं का चित्रण, प्रकृति-मानव सापेक्ष सब दृष्टिगत हैं। किसी नवीन उद्भावना या उल्लास का प्रयोग कवि ने नहीं किया। वियोग-वर्णन के सहायक प्रकृति-चित्रण सब प्राचीन हैं।

९. वियोग की भाव-व्यजना मे कवि ने अतुकांत कविता का भी सुन्दर प्रयोग किया है।

१० उपसंहार।

रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटक

१. रामकुमार वर्मा के नाटकों पर शा, इब्सन, मेटरलिक इत्यादि के नाटकों का प्रभाव है परन्तु उनके मनोंभावो की अभिव्यक्ति भारतीय है।

२. आपने नाटकों में मनोवैज्ञानिक सघर्षों का सूक्ष्म विवेचन किया है और साथ ही हिन्दी साहित्य मे एक नवीन दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया है।

३ निराशा जनक परिस्थियितों के चित्रण में आप विशेष सफल हुए हैं। अधिकाशत नाटक आपने दुखाँत लिखे हैं।

४ आप के 'रेशमी-टाई', 'पुरुष या स्त्री', और 'अठारह जुलाई की शाम" नाटकों से वर्मा जी की आदर्शवादी कलाकारिता टपकती है। इन से आपकी सास्कृतिक और साहित्यिक उद्देश्य की चरम भावना का भी पता चलता है।

५. आपके सभी नाटको मे वस्तु-निर्माण विरह से उत्पन्न होता है और नाटकों का उद्घाटन एक कौतूहल के साथ होता है।

६ इनके चरित्र-चित्रण स्वभाविक, सौंदर्य युक्त और आकर्षक होते हैं। उनमे प्रौढ़ता का अभाव नहीं रहता।

७. हृदय को अधिक से अधिक छूने वाली परिस्थिति पैदा करने वाले पात्रों का चयन रामकुमार जी अपने नाटकों मे करते हैं।

८ पात्रों की मानसिक परिस्थितियो के अनुसार ही घटनाओं की क्रिया और प्रतिक्रिया के रूप में सवादों का प्रयोग रामकुमार जी की विशेषता है। भाषा के कलात्मक सौंदर्य के साथ अनुभूति-पूर्ण हृदय-ग्राही और स्वाभाविक वाक्यों का प्रयोग आपकी रचनाओं मे मिलता है। आपने प्राय सुशिक्षित पात्रों का ही समावेश अपने नाटकों में किया है।

९ हास्य और व्यग्य की पुट भी इनके नाटकों मे यत्र-तत्र देखने को मिलता है, परन्तु बहुत कम। इससे नाटक का गाम्भीर्य नहीं टूटता और दर्शक का मन हलका होने के स्थान पर ऊबने लगता है।

१०, आप के नाटक र ग-मच पर सफलता से अभिनीत किये जा सकते हैं।

११, हिन्दी के एकाकी नाटक लेखकों मे आप का स्थान बहुत ऊ चा है और आपने जो रचनायें हिन्दी को प्रदान की हैं उनका महत्व भी बहुत अधिक है।

———

काव्य-कला-सम्बंधी निबंध

ललित-कला और काव्य

विषय पर दृष्टि डालते समय हमें समझ लेना होगा कि कला क्या है ? सूक्ष्म रूप से उपयोगिता और सुन्दरता जिस वस्तु में हो वह कला है । बढ़ई, लुहार, कुम्हार, जुलाहे इत्यादि का कार्य उपयोगी कला के अन्तर्गत आता है और वास्तु-कला, मूर्ति-कला, चित्र-कला, संगीत-कला और काव्य-कला ललित-कला के अन्तर्गत आते हैं । उपयोगी कलायें मानव की आवश्यकता-पूर्ति के लिए होती हैं और ललित-कला मानव के अलौकिक आनन्द प्राप्ति के लिए । यह दोनो ही मानव के विकास के लिये परमावश्यक हैं । ललित-कला की परिभाषा बाबू श्यामसुन्दर दास जी ने इस प्रकार दी है, "ललित कला वह वस्तु या वह कारीगरी है जिसका अनुभव इन्द्रियों की मध्यस्थता द्वारा मन को होता है और जो उन बाह्यार्थों से भिन्न है जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान-इन्द्रियाँ प्राप्त करती हैं । इस लिए हम कह सकते हैं कि ललित-कलायें मानसिक दृष्टि में सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण हैं ।"

मनुष्य सौंदर्योपासक-प्राणी है, जब वह जीवन की आवश्यकताओं के स्तर से ऊपर उठता है तो उसका रुझान सौंदर्य-प्रधान ललित-कलाओं की ओर होता है । कोई संगीत की तरफ झुकता है तो कोई चित्र-कला की ओर, कोई मूर्ति-कला पर रीझता है तो कोई साहित्य पर । ललित-कलाओं के दो भेद किए जा सकते हैं एक नेत्रगम्य (जैसे भवन-निर्माण, मूर्ति-कला और चित्र कला तथा दृश्य-काव्य) और दूसरा

श्रवणेन्द्रिय-गम्य (जैसे श्रव्य काव्य और संगीत) इन दोनों भेदों में संगीत और काव्य उत्तम ललित-कला हैं और वास्तु, चित्र तथा मूर्ति-कलायें मध्यम श्रेणी की। जिस ललित कला में मूर्त-आधार जितना कम है वह कला उतनी ही उच्चकोटि की है। इस प्रकार काव्य का स्थान सब ललित-कलाओं में सबसे ऊँचा ठहरता है।

यहां हम क्रमश पांचों ललित कलाओं पर विचार करेंगे। वास्तु-कला का मूर्त आधार ईंट पत्थर और लोहा है। यह सभी निर्जीव वस्तु हैं। इनमें जीवन की वह मादकता कहां जो कविता अथवा संगीत में पाई जाती है। कोई सुन्दर से सुन्दर भवन देखा, और समझ लिया कि यह कुतुबमीनार है, ताजमहल है, मस्जिद है, मन्दिर है इत्यादि वहाँ विचार के लिये, चिन्तन के लिये या भावना के लिये बहुत कम स्थान है। इसी लिये पाँचों ललित-कलाओं में वास्तु कला का स्थान सबसे छोटा है।

मूर्ति-कला में मूर्त आधार पत्थर या अन्य प्रकार की कोई वस्तु है। मूर्तिकार अपनी छैनी से उसे काट छाँट कर उसमें कलात्मकता पैदा करता है, मूर्ति बनाता है। परन्तु इसमें वह गति उत्पन्न नहीं कर सकता। मूर्ति बनाने में मूर्तिकार वास्तुकार की अपेक्षा मानसिक भावनाओं के चित्रित करने में अधिक समर्थ है। वह अपनी मूर्ति में जानदार होने का भ्रम उत्पन्न कर देता है और कभी-कभी यह भ्रम वास्तविकता से अधिक कला-पूर्ण हो जाता है चाहे उसकी उपयोगिता कुछ भी न हो। जहां तक उपयोगिता का सम्बन्ध है वहाँ तक वास्तु-कला मूर्ति कला की अपेक्षा अधिक ऊंचा आसन ग्रहण करती है परन्तु ललित कलाओं के क्षेत्र में मूर्ति कला का स्थान वास्तु-कला की अपेक्षा उच्चतम है।

चित्र-कला का मूर्त-आधार कपड़ा, कागज़ इत्यादि हैं। चित्रकार अपनी तूलिका द्वारा उन पर चित्र अंकित करता है। एक मूर्तिकार

पत्थर का स्थूल शरीर सम्मुख रखता है और चित्रकार केवल चित्र द्वारा ही वह सब कुछ दर्शक के सम्मुख रखना चाहता है। इस लिए मूर्त आधार चित्रकार के सम्मुख मूर्तिकार की अपेक्षा कम रहता है। यहीं पर चित्रकार अपनी कला-कुशलता में मूर्तिकार से आगे निकल जाता है। वह चित्रपट पर अपनी कल्पना द्वारा वह चित्र प्रस्तुत करता है कि दर्शक के सम्मुख वह दृश्य उपस्थित हो जाता है जिसे वह आँखों से प्रत्यक्ष रूप में देखता है। चित्रकार केवल चित्र का बाहिरी आकार ही दर्शक के सम्मुख प्रस्तुत नहीं करता, वरन वह अपने चित्र की प्रत्येक रेखा में वह आत्मा फूंकता है कि जिस से चित्र सजीव होकर बोलना प्रारम्भ कर देता है और स्वयं कह उठता है कि मैं अमुक समय का अमुक देश का और अमुक सभ्यता का, चित्र हूं। सफल चित्रकार मनुष्य अथवा प्रकृति की भाव-भंगी का प्रतिरूप, दर्शक की आँखों के सम्मुख प्रस्तुत कर देता है और उसमें होता है उसके अपने मानसिक भावों का सजीव चित्र।

नेत्रगम्य कलाओं के विषय में विचार करने के पश्चात् अब हम श्रव्य गम्य कलाओं पर विचार करेंगे। संगीत का आधार नाद है जोकि मानव कण्ठ और यन्त्रों द्वारा उत्पन्न होता है। यह नाद कुछ सिद्धांतों के आधार पर सात स्वरों में बाँट कर उत्पन्न किया जाता है। एक गायक इसी नाद द्वारा अपने मानसिक भावों को श्रोता के सम्मुख प्रस्तुत करता है। यह प्रभाव बहुत व्यापक होता है और यहां तक कि अच्छा गायक जीव-जन्तुओं को भी अपने संगीत के वशीभूत कर लेता है। कहते हैं राग-विद्या में इतनी शक्ति भी रही है कि उसने अपने वश में प्रकृति की शक्तियों को भी कभी कर लिया था। दीपक राग, मेघ-राग के विषय में तानसेन इत्यादि की अनेकों किंवदंतियाँ प्रचलित भी हैं। यदि इन्हें केवल 'किंवदंतियाँ' भी मान लें तो इतना तो सत्य ही है कि संगीत में रुलाने और हँसाने की शक्ति वर्तमान है। वह मानव को क्रोध में उन्मत्त बना सकता है और साथ ही फिर शांत

स्थान मन होने से यह स्पष्ट है कि उसका प्रभाव भी अन्य कलाओं की अपेक्षा मानव पर अधिक गहरा होगा। काव्य का भंडार प्रतिक्षण और प्रतिपल वृद्धि की ही ओर चलता जाता है। उसका विनाश नहीं होता वह तो कजूस की तिजोरी है जो उसमे कुछ डालना सीखा है निकालना नहीं। मूर्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, चित्र फट जाते हैं परन्तु साहित्य जो एक बार ससार मे आ चुका फिर जाने वाला नहीं। मानव सृष्टि के आरम्भ से मानव ने जो अनुभव किया, देखा, सोचा और कल्पनायें कीं वह सब उनके साहित्य में धरोहर की तरह सुरक्षित रखा है। मानव के लिये यह महाजन की तिजोरी कितनी मूल्यवान हो सकती है इससे इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

ललित-कला और काव्य के विषय में सक्षिप्त विचार—

१ कला की उपयोगिता और उसका सौंदर्य।

२ कला और उसके विभाग।

३ ललित-कलाओं में मूल आधार।

४ वास्त-कला, मूर्ति-कला, चित्र-कला, सगीत-कला और काव्य-कला।

५ ललित-कलाओं का ज्ञान।

६ काव्य-कला की अन्य सब कलाओं पर प्रधानता और उसके कारण।

काव्य क्या है ?

साहित्य—साहित्य मानव के विचारों, भावनाओं और सकल्पों की ससार के प्रति भाषामय अभिव्यक्ति है। साहित्य वह है जिसमें श्रेय और हित दोनों निहित हों। शब्द और अर्थ, विचार और भाव दोनों का समन्वय जिस काव्य मे हो वही साहित्य है। साहित्य को अंग्रेजी मे लिट्रेचर (Literature) और अरबी मे 'अदब' कहते हैं। काव्य का स्थान साहित्य में बहुत ऊचा है। साहित्य का हृदय और मस्तिष्क भी हम काव्य को कह सकते हैं।

काव्य के पक्ष—काव्य के दो पक्ष होते हैं, अनुभूति-पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष जिसे भाव-पक्ष और कला-पक्ष भी कहते हैं। काव्य में रागात्मकता, कल्पना, बुद्धि और शैली का सामजस्य होता है। कवि अपने काव्य में रागात्मकता को प्रधानता देता है क्योंकि उसके काव्य की आधार-शिला अनुभूति है। कवि कल्पना द्वारा नये चित्र उपस्थित करता है और शैली द्वारा इन सबकी अभिव्यक्ति करता है। शैली और रागात्मकता के सतुलन के लिये कवि बुद्धि का प्रयोग करता है और इस प्रकार वह सफल काव्य का निर्माण कर पाता है।

काव्य की परिभाषा और आत्मा—भरत मुनि और विश्वनाथ जी ने रस को काव्य की आत्मा माना है और दण्डी तथा मम्मट आचार्यों ने अलकार को। हिन्दी में आचार्य केशव ने दूसरे मत का प्रतिपादन किया है परन्तु वह प्रणाली हिन्दी में मान्य नहीं हुई। 'काव्य-प्रकाश' के कर्ता मम्मटाचार्य ने 'गुण युक्त और दोष रहित रचना' को काव्य कहा है चाहे उसमें अलकार न हों। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी रागात्मक तत्व को प्रधानता देकर लिखा है, "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्ता-वस्था ज्ञान दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिये मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं।" इस प्रकार हम काव्य की इस प्रकार परिभाषा करते हैं—"काव्य वह सरस रचना है जिसमें गुणों की प्रधानता और दोषों का अभाव हो। आवश्यकतानुसार ध्वनि और चमत्कार का भी प्रयोग उत्तम काव्य में होना चाहिये। रस वास्तव में काव्य की आत्मा है।"

काव्य के अंग—काव्य के आचार्यों और लेखकों ने अनेकों भेद किये हैं। कवि अथवा लेखक अपनी अनुभूति के स्पष्टीकरण के लिये जिस मार्ग को भी अपनाता है बस वही काव्य का एक अंग बन जाता है। काव्य के प्रधानतया दो भेद माने गये हैं, विषय सम्बन्धी

(Subjective) जिसे गीतात्मक (Lyric) भी कह सकते हैं और दूसरा विषय सम्बन्धी (Objective) जिसे प्रकथनात्मक (Narrative) कहते हैं। महाकाव्य, खडकाव्य और मुक्तक रचनायें प्रकथनात्मक रचनायें हैं। जिस प्रकार पद्य-क्षेत्र में महाकाव्य, खडकाव्य और मुक्तक गीत आते हैं उसी प्रकार गद्य क्षेत्र मे उपन्यास कहानी, और गद्य-काव्य लिखे जाते हैं। गद्य का क्षेत्र पद्य की अपेक्षा अधिक व्यापक है इस लिये गद्य में उपन्यास, कहानी और गद्यगीत के अतिरिक्त हमे निबन्ध, जीवनी इत्यादि इसके अन्य विभाग भी मिलते हैं। पद्य-क्षेत्र मे इस प्रकार की रचनायें नहीं की जा सकतीं। काव्य के क्षेत्र मे गद्य और पद्य सब समान रूप से आते हैं। महाकाव्य, खडकाव्य, गद्य-गीत, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, जीवनी और समालोचना के अतिरिक्त काव्य का एक और प्रधान विभाग नाटक रह जाता है। नाटक में गद्य और पद्य दोनो का सामजस्य मिलता है। प्राचीन नाटकों मे कविता की प्रधानता थी तो वर्तमान नाटकों में गद्य की। काव्य के ऊपर दिये गये भेदों के अतिरिक्त दो और भी भेद किये जाते हैं। भारतीय शास्त्रज्ञो ने काव्य के भेद श्रव्य काव्य और दृश्य-काव्य किये हैं। श्रव्य-काव्य के अन्तर्गत सभी काव्य विभाग आ जाते हैं। दृश्य-काव्य के अन्तर्गत केवल नाटक जिसे रूपक भी कहते है, आता है। नाटक 'दृश्य' और 'श्रव्य' दोनो के अन्तर्गत समान-रूप से आता है क्योंकि इसका आनन्द पढ़कर और रगमच पर देखकर दोनो ही प्रकार से प्राप्त होता है।

व्यक्ति-प्रधान और विषय-प्रधान जो ऊपर काव्य के दो भेद पश्चिमी विद्वानों ने निर्धारित किये हैं वह भी सदोश ही हैं क्योंकि दोनों के बीच कोई निश्चित रखा खींचना कठिन है। भावना, व्यक्ति और विषय को पृथक्-पृथक् करना कठिन कार्य है। इनका मेल इतना घनिष्ट है कि पृथक्-पृथक् करने का प्रयास विडम्बना-मात्र है। कोई गीत-

काव्य ऐसा नहीं हो सकता कि जिसका वाह्य ससार से कोई सम्बन्ध ही न हो और महाकाव्य कोई ऐसा नहीं लिखा जा सकता कि जिसमें कवि की आर्त आत्मा की भावनाओं की अभिव्यक्ति पाई ही न जाती हो। इस प्रकार सीमा निर्धारित करने मे केवल भाव की प्रधानता को ही महत्व दिया जाता है।

काव्य के आकार विषयक भेद और उनकी विशेषतायें—आकार के आधार पर श्रव्य-काव्य के तीन भेद किये जाते है। गद्य, पद्य और मिश्रित (चम्पू)। दृश्य-काव्य मे नाटक या रूपक आता हैं। पद्य में जहाँ सगीतात्मकता की विशेषता रहती है वहाँ गद्य में चरित्र चित्रण और स्पष्टीकरण अधिक उत्तम रूप से किया जा सकता है। आकर्षण दोनों में किसी प्रकार कम नही होता। पद्य का आनन्द-लाभ जहां सब पाठक नहीं ले सकते वहाँ गद्य में कहानी ने आज के युग में इतनी प्रधानता प्राप्त कर ली है कि वह काव्य का सर्वप्रिय अग बन गई है। इसका सबसे प्रधान कारण यही है कि कहानी और गद्य जीवन के अधिक निकठ तक पहुँच सकते हैं। कविता जहा जीवन के गूढ़ रहस्य के उद्घाटन मे अधिक सफल हो सकती है वहाँ उपन्यास और कहानी जीवन की साधारण नित्य के व्यवहार मे आने वाली समस्याओं का स्पष्टीकरण इतने रोचक ढग से कर सकते हैं कि पाठक उनमे अपनेपन का अनुभव करने लगता है।

प्रबन्ध-काव्य—प्रबन्ध-काव्य में तारतम्यता पाई जाती है, कथा लडी-बद्ध रहती है, क्रम कहीं नही टूटता—जैसे कामायनी।

मुक्तक-काव्य—मुक्तक-काव्य तारतम्यता, क्रमबद्धता और लडी-बद्धता से मुक्त होकर चलता है, स्वच्छ द, अबाध और उन्मुक्त धाराओं मे। बिहारी सतसई, पल्लव, गु जन, यामा अनामिका, निशानिमत्रण इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

महाकाव्य—महाकाव्य प्रबन्ध काव्य का भेद है, इसका विशाल आकार भावों की उदारता और जीवन की अनेक रूपता को लिये हुये रहता है। रामायण, कामायनी इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

खण्ड-काव्य—खंड-काव्य भी प्रबन्ध-काव्य का भेद है और इसमें जीवन के एक खण्ड विशेष पर कवि प्रकाश डालता है। जयद्रथ वध, पचवटी इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

उपन्यास, कहानी, निबन्ध—उपन्यास, कहानी और निबन्ध के विषयों पर हमारी इसी पुस्तक में पृथक् सम्पूर्ण निबन्ध दिये गये हैं।

इस प्रकार हमने काव्य का सूक्ष्म रूप से निरीक्षण करके देखा कि काव्य साहित्य का वह प्रधान अंग है जिसके अन्तर्गत गद्य और पद्य की प्रबन्ध तथा मुक्तक सभी रचनायें आ जाती हैं। इन सभी रचनाओं की आत्मा 'रस' है और अलंकार, ध्वनि तथा चमत्कार उसके आकर्षण। आकर्षण और रस यही दोनों वस्तु काव्य को साहित्य का प्रधान अंग बनाये हुए हैं और यही काव्य की विशेषतायें हैं। साहित्य के अन्तर्गत जहा इतिहास, भूगोल, गणित इत्यादि सब आते हैं वहां काव्य के अन्तर्गत केवल ललित साहित्य ही आता है।

काव्य के विषय में सक्षिप्त विचार—

१ साहित्य क्या है और काव्य का उससे क्या सम्बन्ध है ?
२ काव्य के प्रधान कौन कौन से अङ्ग है ?
३ काव्य की परिभाषा और उसकी आत्मा ?
४ काव्य के प्रधान अंग और उनकी परिभाषायें तथा क्षेत्र।
५ काव्य के आकार विषयक भेद और उनकी विशेषतायें।
६ उपसंहार।

साहित्य-कला की उपयोगिता

मानसिक दृष्टि में सौंदर्य का प्रत्यक्षीकरण कराना कला का क्षेत्र है। उपयोगिता और फिर सौंदर्य प्रधान उपयोगिता बस यही कला की विशेषता है। कोनैन खाकर ज्वर उतर जाता है परन्तु कोनैन खाने का नाम सुनकर भी ज्वर सा चढ़ जाता है। इस लिये कोनैन उपयोगी होते हुए भी अपने अन्दर सौंदर्य का समावेश नहीं रखती। इसके विपरीत एक वीर सैनिक युद्ध-क्षेत्र में सनसनाती हुई गोलियों के समक्ष जा रहा है रण-वाद्यों को सुनता हुआ मस्त हाथी की तरह और मन में तनिक भी भयभीत नहीं होता। वह रण-वाद्य अपने अन्दर एक बल रखता है और वह बल है उस कला का, उस रणवाद्य का।

इस प्रकार कला और उपयोगिता दो पृथक्-पृथक् वस्तुएँ नहीं हैं जैसा कि कुछ कला के पुजारी या जिन्हें व्यभिचारी कहा जाये, मानते आये हैं। हिन्दी साहित्य के रीति काल में इस भावना ने विशेष जोर पकड़ा था। शेष सभी कलायें कला-उपयोगिता को लेकर चली हैं, केवल कल्पनाओं पर आधरित होकर नहीं चली। कल्पना भी यदि सत्य को ठुकराकर चलेगी तो अपना महत्व खो बैठेगी, न उसमें सौंदर्य ही रहेगा और न वह मिठास ही।

संक्षिप्त रूप से हिन्दी के इतिहास पर भी हम दृष्टि डाल सकते हैं। वीरगाथा काल का साहित्य पहिले उपयोगी था बादमें कलात्मक, इसी प्रकार भक्ति काल का साहित्य पहिले उपयोगी था उसके पश्चात कलात्मक परन्तु रीतिकाल में यह दृष्टिकोण बदल गया। बदल गया इस लिये क्यों कि पराधीनता के काल में ऐश और आरामतलबी का साम्राज्य छा गया और भक्ति के प्रतीकों को शृंगार का आश्रय बना कर कवियों ने प्रयोग किया। कवि जीवन विहीन होकर कला के हाथों मे खेलने वाले वह कल पुर्जे बन गये जो सूई के नकवे में से केवल

एक ही नम्बर का सूत निकाल सकते थे। कवियो की स्वाभाविकता नष्ट हो गई, उनकी स्वाधीनता नष्ट हो गई, उनकी कल्पना नष्ट होगई और वहाँ पर रह क्या गया केवल एक प्रणाली के ही अनुसार निर्जीव दो का मदारी की तरह इधर उधर नचाना।

यह था कला का पतन-काल। यह कला मे उत्थान नहीं था। कला अपने उत्थान मे देश का, समाज का, जाति का और सब के साथ विश्व के उत्थान का सदेश लेकर चलती है। उसमे सकीर्णता नही होती, उसमे होती है व्यापकता, प्रस्फुटन, एक विशाल चितन, एक महान आदर्श जो सुन्दर होने के साथ ही साथ उपयोगी भी होता है। कला की उपयोगिता मे सौंदर्य का होना अनिवार्य है।

कला जीवन का ही एक अग है इस से पृथक् कोई वस्तु नहीं। उदाहरण के लिये दो युवतियों को लीजिये। दोनों एक ही अवस्था की हैं और यौवन के पूर्ण वेग मे यह रही हैं परन्तु एक में भोलापन है और दूसरी में चाचल्य। भोली बालिका फटे वस्त्र पहिने है परन्तु उसका यौवन फूटा पड रहा है, उसने लिपस्टिक का प्रयोग नहीं किया हुआ है परतु उसके कपोलों की लालिमा गुलाब के पुष्प को भी लजा रही है और दूसरी बालिका ने बाहरी आवरणों से अपने शरीर को सजाया हुआ है। अब यदि दोनों किसी कवि के सम्मुख जायें तो उस फटे वस्त्र वाली बालिका को ही वह अपनी कविता की नायिका स्वरूप स्वीकार करेगा। क्योंकि उसके स्वाभाविक सौंदर्य में कला के लिये स्वाभाविक निमत्रण है। यह निमत्रण बनावट मे कहाँ? कला जीवन की बनावट पर नहीं जाती वह तो आकर्षित होती है जीवन की निर्मलता पर, जीवन की पवित्रता पर और सच तो यह है कि वह जीवन की वास्तविकता को प्रेम करती है।

आज का युग क्या चाहता है? क्या है आज के युग की पुकार? यह कहता है वास्तविकता की ओर चलो, बनावट से मानव ऊब चुका

है। भारत का कलाकार भी आज वास्तविकता की खोज कर रहा है और उसी मे उसे मिली है अपनी कला की उपयोगिता। कला जीवन के लिये है, कला समाज के लिये है, कला देश के लिये है। यह सत्य कला पर विचार करते समय कभी नहीं भुलाना चाहिये।

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार मु० प्रेम चन्द ने कला का जो दृष्टिकोण ससार के सम्मुख रखा है वह हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि विश्व साहित्य में बहुत कम कलाकार रख सके हैं। खेद का विषय है कि उस महान् कलाकार के विचारों को समाज उस समय उचित आदर न दे सका और उसकी रचनाओं का अन्य भाषाओं में प्रकाशन न होसका, उसे उचित सम्मान और स्थान न मिल सका परन्तु वह हिन्दी साहित्य में कला का वह रूप प्रस्तुत कर गया कि जिसकी छाप कविता, कहानी, नाटक, सभी पर पड़े बिना न रह सकी। इस उपयोगिता ने ही प्रगतिवाद का रूप ग्रहण किया और रूस के साहित्य तथा विचारावलि का भी इस पर प्रभाव पड़ा।

समय बदल गया, युग बदल गया। मूर्ति-कला में नगी तस्वीर बनाने का समय निकल गया। चित्र-कला मे भी नगी नारियों के स्तन-मात्र दिखलाने से आज काम नहीं चलता। सगीत में अभी भी विरह कथा का बोल-बाला है,परन्तु यह तो जीवन की चिर-सगिनी है और उपयोगिता में इसका स्थान किसी प्रकार अन्य भावनाओं से पीछे नहीं रहता। आज भिखारियों के चित्रों को लोग पसद करते हैं, किसानों के चित्रों में सौंदर्य दिखलाई देता है, किसान काव्यों के विषय बनकर काव्यकार के मस्तिष्क में आते हैं, श्रमजीवी के परिश्रम से प्रभावित होकर कवि रचना लिखते हैं और उनसे प्रभावित होकर समय करवट लेता जा रहा है। यह समय की प्रगति है जो रुक नहीं सकती और रुकनी भी नहीं चाहिये क्योंकि यह जीवन में क र्मण्यता का पाठ पढ़ाती है, अकर्मण्यता का नहीं, प्रगति की ओर ले जाती है रूढिवाद

की ओर नहीं, कुछ करना सिखाती है, आलस्य में पडे-पडे जीवन व्यतीत करना नहीं। जीवन मे यह उपयोगिता लाना चाहती है केवल सौंदर्य और वह भी वासनामय सौंदर्य मात्र नहीं। आज का युग इस प्रकार की कला के उत्थान मे प्रयत्न-शील है और आज के कलाकार जीवन के इस उपयोगिता वादी मर्म को भली प्रकार समझ चुके हैं। वह व्यर्थ की झूठी प्रयोजन-विहीन कलात्मकता में फसे रह कर अपनी कल्पना-शील, चिंतन-शील, अनुभव-शील, भावना-शील मनोवृत्तियो को कुंठित करना नहीं चाहते, वह चाहते हैं उपयोगिता के साथ एक प्रगति और इस मार्ग मे उन्हे सफलता भी कम नहीं मिल रही है। हिन्दी के वर्तमान लेखक इस प्रकार का साहित्य सृजन करने मे बहुत प्रयत्न-शील हैं।

समय-समय पर कला के पुजारियों ने कला के अपने-अपने विचारो के आधार पर अर्थ लगा कर कला की परिभाषायें निर्धारित की हैं वह कहते हैं—

कला-कला के लिये है।
कला-जीवन के लिये है।
कला-उपयोगिता के लिये है।
कला-जीवन की वास्तविकता से पलायन के लिये है।
कला-सेवा के लिये है।
कला-आत्मानद का दूसरा नाम है।
कला-आत्माभिव्यक्ति के लिये है।
कला-विनोद और विश्राम के लिये है।
कला में सृजनात्मकता होनी आवश्यक है।

हम कला में इन सभी गुणों को देख कर प्रसन्न हो सकते हैं यदि उसमें उपयोगिता का अभाव न हो क्योंकि उपयोगिता कला का प्रधान गुण होना चाहिये।

आज साहित्य-कला पर हमारे देश का भविष्य आधारित है। हमारे बच्चों का जीवन उसी साहित्य के कर कमलों मे पलकर सार के सम्मुख आयेगा। जिस प्रकार का वह साहित्य होगा उसी प्रकार के हमारे आने वाले बालकों के चरित्र भी होंगे। यदि हमारे साहित्य में उपयोगिता का अभाव हो गया तो हमारे बच्चों के जीवनो मे उपयोगिता कहा से आयेगी? वे बच्चे होंगे हमारे साहित्य की छाया, प्रतिविम्ब। इस लिये अच्छे कलात्मक साहित्य मे उपयोगिता का होना उतना ही आवश्यक है जितना दूध मे घी का होना अथवा उसमे मिठास का होना।

साहित्य-कला की उपयोगिता—

१ कला मे उपयोगिता और सौंदर्य का सम्मिश्रण होनी चाहिये तभी वह अधिक उपयोगी भी हो सकती है।

२. कला का निर्माण भी उपयोगिता के ही आधार पर हुआ है और होना भी चाहिये। जब जब कला ने उपयोगिता को ठुकराया है उपयोगिता ने कला को ठुकरा दिया है।

३ देश, समाज, और विश्व के हित के लिये उपयोगी कला को ही कलाकारों को अपनाना चाहिये। इसी मे देश का कल्याण है।

४ हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि सहित्यकारो ने उपयोगिता को कभी नहीं भुलाया।

५ रीति-काल काव्य-कला का पतन काल था।

६. आज का साहित्य कला मे स्वाभाविकता चाहता है, जीवन चाहता है और चाहता है दैनिक जीवन की रागात्मक प्रवृत्तिया।

७ साहित्य पर देश और जाति का भविष्य अवलम्बित है।

८ उपसंहार।

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है

साहित्यकार समाज का एक प्राणी है। जो कुछ वह लिखता है अपने चारों ओर के वातावरण से प्रभावित होकर लिखता है। समाज के व्यवहार, धर्म कर्म वातावरण, नीति और रीति रिवाज किसी न किसी रूप में उसके काव्य में आये बिना नहीं रहते। आदि कवि वाल्मीकि ने भी आदि काव्य रामायण में अपने समय की राज्य कुटुम्ब की व्यवस्था को लेकर उसे आदर्श रूप दिया है। गोस्वामी तुलसी दास जी ने रामचरित मानस में भी यही किया है। साहित्य के इतिहासों पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि समाज का साहित्य से कितना घनिष्ट सम्बन्ध है। शेक्सपीयर के नाटकों मे रानी विक्टोरिया के समय के समाज का प्रतिबिम्ब है और बर्नाडशा के साहित्य में आज के युग का। प्रेमचन्द के उपन्यासों में १६३० और उससे पहिले भारत के सामाजिक आन्दोलनों के बिम्ब हैं और इसी प्रकार मैथिलीशरण के काव्य में भी। काव्यकार क्योंकि समाज का एक अ ग है इसलिये वह समाज से बाहर जाकर कोई चमत्कार पूर्ण रचना नहीं कर सकता और यदि करता भी है तो वह समाज में अपनाई नहीं जा सकती क्यों कि उस में अपनेपन का अभाव रहता है।

साहित्य में समाज का दो प्रकार का प्रतिबिम्ब मिलता है एक विपक्षी और दूसरा पक्षी। जो समाज का विपक्षी साहित्य होता है वह समाज की कटु आलोचना करके उसकी कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न करता है। वह समाज की पुरातन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करता है और यही विद्रोह की भावना लेकर एक विस्फोट की भाँति आता है। उसमें मंडन न होकर खंडन की प्रवृत्ति होती है। वह निर्माण न करके विनाशकारी प्रवृत्तियों से अधिक प्रेरित रहता है। वर्तमान प्रगति वादी साहित्य इस प्रकार के साहित्य का प्रतीक है। यह साहित्य एक

नया समाज चाहता है, नये रीति-रिवाज चाहता है। धर्म के बखेड़ों से मानव को मुक्त कर देना चाहता है, जाति-पाति के बंधनों को तोड़ देना चाहता है, ऊंच-नीच, छोटा बड़ा यह सब कुछ यह कुछ नहीं देखना चाहता। यह समाज की किसी भी मान्यता को नहीं मानता इसकी मान्यतायें नवीन हैं, इसका सामाजिक ढांचा नवीन है, इसकी कल्पनायें नवीन हैं, और इसकी विचार धारा नवीन है। इस साहित्य में हमें समाज का धुंधला सा प्रतिबिम्ब दिखलाई देता है परन्तु आने वाले समाज की यह साहित्य आधार शिला होता है। इस प्रकार के साहित्य को हम समाज-गत न कह कर व्यक्ति गत कहेंगे।

दूसरा साहित्य वह है जो समाज की मान्यताओं को मानते हुए सुधारात्मक प्रवृत्तियाँ लेकर चलता है। वह समाज को जैसा देखता है वैसा का वैसा ही चित्रित भी करता है। वह सामाजिक व्यवस्था की कटु आलोचना नहीं करता और न क्रांति दृष्टा ही होता है। कहीं कहीं पर यह समाज की त्रुटियो की उपेक्षा भी करता है। समाज की नीति, धर्म, मर्यादा इत्यादि का यह खंडन नहीं करता। यह समाज की स्वीकृति का साहित्य है जिसमें समाज का स्पष्ट प्रतिबिम्ब रहता है। यह साहित्य अपने समय की परिस्थितियों से संतुष्ट रहता है, समय की वाहवाह इसके साथ रहती है और समाज के प्रति असंतोष की भावना इसमें नहीं रहती। इस साहित्य में गति कम होती है और भविष्य के प्रति विचार भी कम होता है। यह अपने ही काल से संतुष्ट रहता है। यह साहित्य पूर्ण रूप से समाज-गत होता है और इसमें व्यक्ति की प्रधानता न होकर समाज की प्रधानता रहती है।

ऊपर हमने साहित्य को व्यक्ति-गत और समाज-गत दो भागों में विभक्त किया है पर दोनों को प्रेरणा समाज से ही प्राप्त होती है उद्गम एक होकर भी मूल दोनों के पृथक् पृथक् हो जाते हैं। समाज-गत साहित्य में प्रतिक्रिया मिलती है। वह समाज को ज्यों का त्यों स्वीकार

ही नहीं करता वरन उसकी रुढ़ियों को छिन्न भिन्न होता हुआ भी नहीं देख सकता। सामाजिक रुढ़ियों के प्रति उसके अन्दर एक मोह रहता है, एक प्रेम रहता है और आकर्षण भी। इसके ठीक विपरीत व्यक्तिगत साहित्य समाज में उथल-पुथल कर देना चाहता है, वह चाहता है परिवर्तन, एक क्रांतिकारी परिवर्तन। वह वर्तमान पर दृष्टि न डाल कर भविष्य पर ही देखता है। वह ज्यों का त्यों रहने का आदि नहीं, वह तो प्रगति चाहता है धर्म मे, समाज मे, रीति-रिवाजों में और यहाँ तक कि राजनीति मे भी। जहा पहिले प्रकार का साहित्य समाज मे स्थिरता चाहता है वहाँ दूसरे प्रकार का साहित्य उसमे ताजगी लाने का प्रयत्न करता है और समय के पुरानेपन के कारण उसमें जो सड़न पैदा हो गई है उसे काट कर फेंक देना चाहता है।

भक्ति काल, रीति-काल, और वर्तमान-काल के सुधार-वादी साहित्य समाज की मान्यताओं को मान कर चले हैं। कुछ सुधारात्मक प्रवृत्तियो के अतिरिक्त कोई क्रांति की भावनायें उनमे नहीं मिलती। अपने अपने काल का प्रतिबिम्ब उन साहित्यो मे स्पष्ट रूप से वर्तमान है। उनमें पूर्ण रूप से स्वीकृति की भावना है, विद्रोह की नही। यही कारण था कि इन साहित्यों के सृजन कर्त्ता अपने समय मे पूजे गये, सम्मानित हुए और उनकी रचनाओं को समाज ने अपना कहकर अपनाया। सन्त' साहित्य ने समाज की कुरीतियों के विरुद्ध विद्रोह किया, एक क्रांति पैदा करने का प्रयत्न किया, इसी लिये समाज ने उनकी उपेक्षा की और उन्हे वह सम्मान न मिल सका जो भक्त कवियो को प्राप्त हुआ। आज के युग के प्रगतिशील लेखक समाज के कटु आलोचक हैं। वह समाज के रीतिरिवाजों पर गहरी चोट करते हैं और उसकी मान्यताओं को नहीं मानते। सुधारवादियों में भी क्राँति की लहर दौड़ रही है। समाज की रुढ़ियों को ज्यों का त्यों मानकर चलने वाले साहित्य को संघर्ष के अन्दर से होकर नहीं निकलना होता और दूसरे वर्ग को

प्रौढ़ता प्राप्त करने के लिये समाज से टक्कर लेनी होती है। पहिले प्रकार के साहित्य के मार्ग में सब सुविधायें हैं और दूसरे प्रकार के साहित्य के मार्ग मे सब असुविधायें ही असुविधायें हैं।

समाज का प्रतिबिम्ब साहित्य मे दो प्रकार से आता है। एक प्रत्यक्ष रूप से और दूसरा अप्रत्यक्ष रूप से। जिस साहित्य मे प्रत्यक्ष रूप से समाज का प्रतिबिम्ब होता है वहाँ पर समाज को आधार रूप से लेकर लेखक चलता है और जहाँ अप्रत्यक्ष रूप से समाज का प्रतिबिम्ब आता है वहा साहित्य में समाज आधार स्वरूप न आकर गौण रूप से आता है, परन्तु कोई भी साहित्य ऐसा नहीं लिखा जा सकता कि जिसे लेखक समाज से नितात अछूता ही रख सके। हम ऊपर कह भी चुके हैं कि लेखक समाज का एक अंग मात्र ह और वह कोई भी रचना ऐसी नहीं लिख सकता कि जिसमे उसके अपने व्यक्तित्व की कही न कहीं पर झलक न आ जाये और यदि कहीं पर भी उसके साहित्य मे अपनी झलक आजाती है तो वह झलक उसकी अपनी न होकर समाज की ही होती है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे कोई भी कवि अथवा लेखक ऐसा नहीं है कि जिसके साहित्य में उसके समय की छाप न मिलती हो। यही दशा ससार के सभी साहित्यों की है। इससे सिद्ध हुआ कि साहित्य समाज से दूर रहकर अपना स्वतत्र रूप से निर्माण नहीं कर सकता। कला कला के लिये चिल्लाने वाले कलाकार भी समाज से अपने को पृथक् करके नहीं चल सकते। उनके साहित्य मे भी किसी न किसी रूप मे समाज की झलक आ ही जाती है।

विषय का संक्षिप्त विवेचन—

१ कलाकार समाज का प्राणी है इस लिये उसके साहित्य मे समाज का प्रतिबिम्ब आना अनिवार्य है।

२. ससार के सभी देशों के साहित्यिक इतिहासों पर दृष्टि डालने से पता

चलता है कि इन देशों का समाज जब जब जैसी जैसी धाराओं में बहा है उसका उनके साहित्य पर आवश्यम्भावी प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ है ।

३ साहित्य समाज-गत और व्यक्ति-गत दो प्रकार का होता है परन्तु व्यक्तिगत साहित्य पर भी अप्रत्यक्ष रूप से समाज का प्रभाव रहता है, क्यों कि दोनों के मूल में समाज ही है ।

४. उपसहार ।

कविता क्या है ?

साहित्य-दर्पणकार ने रसात्मक वाक्य को काव्य माना है । रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्दों के समूह को रस गगाधर के रचयिता ने काव्य कहा है । काव्य के अन्तर्गत गद्य और पद्य दोनों ही आ जाते हैं । यहाँ हम केवल कविता विषय पर ही विचार करेंगे । जिस पद्यमयी रचना को पढ़कर चित्त अह्लादित हो उठे, अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हो, मन सासारिक दु ख को भूल कर आनन्द विभोर हो उठे उसे कविता कहते हैं । इस विषय पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार देखिये —

"कविता वह साधन है जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक सबध की रक्षा और निर्वाह होता है । राग से यहाँ अभिप्राय प्रवृत्ति और निवृत्ति के मूल में रहने वाली अन्त करण की वृत्ति से है । जिस प्रकार निश्चय के लिये प्रमाण की आवश्यकता होती है उसी प्रकार प्रवृत्ति या निवृत्ति के लिये भी कुछ विषयों का बाह्य या मानस प्रत्यक्ष अपेक्षित होता है । यही हमारे रागों या मनोवेगों के—जिन्हें साहित्य मे भाव कहते हैं—विषय है ।

रागों या वेगस्वरूप मनोवृत्तियों का सृष्टि के साथ उचित सामञ्जस्य स्थापित करके कविता मानव-जीवन के व्यापकत्व की अनुभूति उत्पन्न करने का प्रयास करती है। यदि इन प्रवृत्तियों को समेटकर मनुष्य अन्तःकरण के मूल रागात्मक अंश को सृष्टि से किनारे कर ले तो फिर उसके जड़ हो जाने में क्या सन्देह है ? यदि वह लहलहाते हुए खेतों और जंगलों, हरी घास के बीच घूम-घूमकर बहते हुए नालों, काली चट्टानों पर चाँदी की तरह ढलते हुए झरनों, को देख क्षण भर लीन न हुआ, तो उसके जीवन में रह क्या गया ? नाना रूपों के साथ मनुष्य की रागात्मिका प्रकृति का सामञ्जस्य ही कविता का लक्ष्य है। वह जिस प्रकार प्रेम, क्रोध, करुणा, घृणा आदि मनोवेगों या भावों पर सान चढ़ाकर उन्हें तीक्ष्ण करती है उसी प्रकार जगत् के नाना रूपों और व्यापारों के साथ उनका उचित सम्बन्ध स्थापित करने का भी उद्योग करती है।

कविता हमारे मनोभावों को उच्छ्वसित करके हमारे जीवन में एक नया जीवन डाल देती है। हम सृष्टि के सौंदर्य को देखकर मोहित होने लगते हैं, कोई अनुचित या निष्ठुर काम हमें असह्य होने लगता है, हमें जान पड़ता है कि हमारा जीवन कई गुना अधिक होकर समस्त संसार में व्याप्त हो गया है। कविता की प्रेरणा से कार्य में प्रवृत्ति बढ़ जाती है। केवल विवेचना के बल से हम किसी कार्य में बहुत कम प्रवृत्त होते हैं। केवल इस बात को जानकर ही हम किसी काम के करने या न करने के लिए प्रायः तैयार नहीं होते कि वह काम अच्छा है या बुरा, लाभदायक है या हानिकारक। जब उसकी या उसके परिणाम की कोई ऐसी बात हमारे सामने उपस्थित हो जाती है तो हमें आह्लाद, क्रोध, करुणा आदि से विचलित कर देती है। तभी हम उस काम को करने या न करने के लिए प्रस्तुत होते हैं। केवल बुद्धि हमें काम करने के लिये उत्तेजित नहीं करती। काम करने के

लिये मन ही हमको उत्साहित करता है। अत कार्य-प्रवृत्ति के लिये कविता मन मे वेग उत्पन्न करती है।

कविता के द्वारा हम ससार के सुख, दु:ख, आनन्द और क्लेश आदि यथार्थ रूप से अनुभव करने में अभ्यस्त होते है जिससे हृदय की स्तब्धता हटती है और मनुष्यता आती है।

मनोरजन करना कविता का वह प्रधान गुण है जिससे वह मनुष्य के चित्त को अपना प्रभाव जमाने के लिये वश में किये रहती है, उसे इधर उधर जाने नहीं देती। यही कारण है कि नीति और धर्म सम्बन्धी उपदेश चित्त पर वैसा असर नहीं करते, जैसा कि काव्य या उपन्यास से निकली हुई शिक्षा असर करती है। केवल यही कह कर कि 'परोपकार करो', 'सदा सच बोलो', 'चोरी करना महापाप है' हम यह आशा कदापि नही कर सकते कि कोई अपकारी मनुष्य परोपकारी हो जायगा, झूठा सच्चा हो जायेगा, और चोर चोरी करना छोड देगा। क्योंकि पहले तो मनुष्य का चित्त ऐसी सूखी शिक्षाएँ ग्रहण करने के लिये उद्यत ही नही होता, दूसरे मानव-जीवन पर उनका कोई प्रभाव अ कित न देखकर वह उनकी कुछ परवा नहीं करता। परन्तु कविता अपनी मनोरंजक शक्ति के द्वारा पढने या सुनने वाले का चित्त उचटने नहीं देती, उसके हृदय के मर्मस्थानों को स्पर्श करती है और सृष्टि में उक्त कर्मों के स्थान और सम्बन्ध की सूचना देकर मानव-जीवन पर उनके प्रभाव और परिणाम विस्तृत रूप से अ कित करके दिखलाती है।

परन्तु केवल मन को अनुरजित करना और उसे सुख पहुँचाना ही कविता का धर्म नहीं है। कविता केवल विलास की सामग्री नहीं। क्या हम कह सकते है कि वाल्मीकि का आदि-काव्य, कालीदास का मेघदूत, तुलसीदास का रामचरित-मानस या सूरदास का सूरसागर विलास की सामग्री हैं? यदि इन ग्रंथों से मनोरंजन होता है तो चरित्र-

संशोधन भी अवश्य होता है । खेद के साथ कहना पड़ता है कि हिन्दी भाषा के अनेक कवियों ने शृ गाररस की उन्मादकारिणी उक्तियों से साहित्य को इतना भर दिया है कि कविता भी विलास की एक सामग्री समझी जाने लगी है ।

चरित्र-चित्रण द्वारा जितनी सुगमता से शिक्षा दी जा सकती है, उतनी सुगमता से किसी और उपाय द्वारा नहीं । आदि-काव्य रामायण मे जब हम भगवान् रामचन्द्र के प्रतिज्ञा-पालन, सत्य-व्रताचरण और पितृभक्ति आदि की छटा देखते हैं, भरत के सर्वोच्च स्वार्थत्याग और सर्वा गपूर्ण सात्विक चरित्र का अलौकिक तेज देखते हैं, तब हमारा हृदय श्रद्धा, भक्ति और आश्चर्य से स्तम्भित हो जाता है। इसके विरुद्ध जब हम रावण की दुष्टता और उद्दडता का चित्र देखते हैं, तब समझते है कि दुष्टता क्या चीज है और उसका प्रभाव और परिणाम सृष्टि मे क्या है ? अब देखिये, कविता द्वारा कितना उपकार होता है । उसका काम, भक्ति, श्रद्धा, दया, करुणा, क्रोध, और प्रेम आदि मनोवेगों को तीव्र और परिमार्जित करना तथा सृष्टि की वस्तुओ और व्यापारो से उनका उचित और उपयुक्त सम्बन्ध स्थिर करना है ।

कविता मनुष्य के हृदय को उन्नत करती है और ऐसे-ऐसे उत्कृष्ट और अलौकिक पदार्थों का परिचय कराती है, जिनके द्वारा यह लोक देवलोक और मनुष्य देवता हो सकता है ।

कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि स सार की सभ्य और असभ्य सभी जातियो मे पाई जाती है । चाहे इतिहास न हो, विज्ञान न हो, दर्शन न हो, पर कविता अवश्य होगी । इसका क्या कारण है ? बात यह है कि मनुष्य अपने ही व्यापारों का ऐसा घना मण्डल बाँधता चला आ रहा है, जिसके भीतर फँसकर वह शेष सृष्टि के साथ अपने हृदय का सम्बन्ध कभी-कभी नहीं रख सकता । इस बात

से मनुष्य की मनुष्यता जाती रहने का डर रहता है। अतएव मानुषी प्रकृति को जागृति रखने के लिये कविता मनुष्य-जाति के स ग लग गई है। कविता यही प्रयत्न करती है कि शेष प्रकृति से मनुष्य की दृष्टि फिरने न पावे।

कविता सृष्टि-सौंदर्य का अनुभव कराती है और मनुष्य को सुन्दर वस्तुओ में अनुरक्त और कुत्सित वस्तुओ से विरक्त कराती है। कविता जिस प्रकार विकसित कमल, रमणी के मुख आदि का सौंदर्य चित्त मे अ कित कराती है, उसी प्रकार औदार्य, वीरता, त्याग, दया इत्यादि का सौंदर्य भी दिखाती है। जिन वृत्तियों का प्राय बुरा रूप ही हम ससार में देखा करते हैं, उनका सुन्दर रूप भी वह अलग कर के दिखाती है। दशवदन-निधन-कारी राम के क्रोध के सौंदर्य पर कौन मोहित न होगा? जो कविता रमणी के रूप सौंदर्य से हमे आह्लादित करती है, वही उसके अन्त करण की सुन्दरता और कोमलता आदि की मनोहारिणी छाया दिखाकर मुग्ध भी करती है। बाह्य सौंदर्य के अवलोकन से हमारी आत्मा को जिस प्रकार सतोष होता है, उसी प्रकार मानसिक सौंदर्य से भी। जिस प्रकार वन, नदी, पर्वत, झरने आदि से हम आह्लादित होते हैं, उसी प्रकार मानसिक अत करण मे प्रेम, स्वार्थत्याग, दया, दाक्षिण्य, करुणा, भक्ति आदि उदात्त वृत्तियों को प्रतिष्ठित देख हम आनन्दित होते है। कविता सौंदर्य और सात्विकशीलता या कर्त्तव्य-परायणता में भेद नहीं देखना चाहती। इसी से उत्कर्ष-साधन के लिये कवियों ने प्राय रूप-सौंदर्य और अन्त करण के सौंदर्य का मेल कराया है।

जो लोग स्वार्थवश व्यर्थ की प्रश सा और खुशामद करके वाणी का दुरुपयोग करते है, वे सरस्वती का गला घोंटते हैं। ऐसी तुच्छ वृत्तिवालों को कविता न करनी चाहिये। कविता उच्चाशय, उदार और नि स्वार्थ हृदय की उपज है। सत्कवि मनुष्य-मात्र के हृदय में सौंदर्य

का प्रवाह बहाने वाला है। उसकी दृष्टि में राजा और रंक सब समान हैं। वह उन्हे मनुष्य के सिवा और कुछ नहीं समझता।

कविता की भाषा—कविता का सम्बन्ध संगीत से है इसलिये कविता की भाषा में माधुर्य और प्रसाद गुणों का होना आवश्यक है। कविता में कर्ण कटु शब्दों का प्रयोग अखरता और सरस शब्द उच्चारण में अच्छे प्रतीत होते हैं। स्वराघात का ध्यान रखते हुए भाषा का कविता में प्रयोग किया जाना चाहिये। ऐसा न होने पर कविता गायक और पाठक दोनों की ही प्रिय नहीं बन सकती। भाषा कविता का शरीर है। आत्मा के सौंदर्य के साथ साथ शरीर सौंदर्य की भी आवश्यकता होती है। पाठक अथवा श्रोता का प्रथम आकर्षण कविता के बाह्यरूप के ही कारण होता है और फिर वह कविता की अन्तरात्मा तक पहुँचता है। साधारणतया सभी पाठक कविता की अन्तरात्मा तक पहुँच भी नहीं पाते हैं और यदि उनके सामने बाह्यरूप से कुरूप कविता आये तो वह उसके पठन पाठन से भी वंचित रह जाते हैं। कविता को यदि हम एक नारी का रूप मान लें तब भी उसका प्रथम आकर्षण उसका रूप, उसका सौंदर्य ही रहेगा। नारी का स्वभाव, उसका शील, उसका कर्तव्य यह सब बाद की वस्तु हैं जिन्हें पह-चानने और जानने मे समय लगता है, कठिनाई होती है और कभी कभी असफलता भी हो जाती है। यही दशा कविता भी की है। इसलिये कविता के अर्थ और भावों के साथ साथ उसकी भाषा में सौंदर्य आना भी आवश्यक है।

कविता के गुण—गुणों का सम्बन्ध विशेष रूप से रसों से रहता है, कविता में रसों का होना जितना आवश्यक है उतना ही गुणो का भी है। प्रसाद, ओज, माधुर्य इत्यादि गुण कविता में रसो के साथ भावों के अनु-सार ही कवि रख सकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि

कविता म जैसा रस चल रहा में उस में उसी प्रकार की भाषा और गुण कवि को प्रयोग करना चाहिये। गुण और रसों में विभिन्नता हो जाने से काव्य का सौंदर्य नष्ट हो जाने की सम्भावना रहती है। इस लिये लेखक को रस और गुण का सामंजस्य करके अपनी रचना को उच्च बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

रस—रस कविता की आत्मा है। रीति-कालीन कवियों ने कविता में अलकारों को प्रधानता दी है परन्तु आज के युग मे उनका सिद्धांत मान्य नहीं है आज के युग के आचार्य रस को काव्य की आत्मा मानते हैं और अलंकारों को काव्य के सौंदर्य की सामग्री मात्र। अब यह विवाद समाप्त हो चुका है। आज अलकार वर्ण्य विषय न रह कर केवल सौंदर्य बढ़ाने के साधन मात्र रह गये हैं। रस विहीन काव्य नीरस होने से काव्य ही नहीं रहता। न उसमे कोई सौंदर्य होता है और न हृदय-ग्राहिता। इसलिये कविता मे रस का होना नितान्त आवश्यक है। कविता में कुछ न कुछ पुराने शब्द भी आ जाते हैं। उनका थोड़ा बहुत बना रहना अच्छा भी है। वे आधुनिक और पुरातन कविता के बीच सम्बन्ध-सूत्र का काम देते हैं। अँगरेज़ी कविता में भी ऐसे शब्दों का अभाव नहीं है जिनका व्यवहार बहुत पुराना ज़माने से कविता में होता आया है। 'Main' Sawain' (मेन, स्वेन' आदि शब्द ऐसे ही हैं। अ गरेज़ी कविता समझने के लिए इनसे परिचित होना आवश्यक है। पर ऐसे शब्द बहुत थोड़े आने चाहिएँ, वे भी ऐसे जो भद्दे और गँवारू न हों। कविता मे कही गई बातें चित्र रूप मे हमारे सामने आती हैं, सकेत रूप में नहीं आतीं।

श्रुति सुखदता, भाव-सौंदर्य और नाद-सौंदर्य के संयोग से कविता की सृष्टि होती है। श्रुतिकटु मानकर कुछ अक्षरों का परित्याग, वृत्त-विधान और अन्त्यानुप्रास का बन्धन, इसी नाद-सौन्दर्य के निबाहने के लिए हैं। बिना इसके कविता करना, अथवा इसी को सर्वस्व मानकर कविता

करने की कोशिश करना, निष्फल है। नाद-सौंदर्य के साथ भाव-सौंदर्य भी होना चाहिए। कुछ लोग अंत्यानुप्रास की बिलकुल आवश्यकता नहीं समझते। छन्द और तुक दोनों ही नाद-सौंदर्य के उद्देश्य से रखे गये हैं। फिर क्यों एक निकाला जाय और दूसरा नहीं? नाद-सौंदर्य कविता के स्थायित्व का वर्द्धक है, उसके बल से कविता ग्रन्थाश्रय-विहीन होने पर भी किसी न किसी अंश में लोगो के मुख मे बनी रहती है। यह कविता की आत्मा नहीं तो शरीर अवश्य है।

अलंकार—कविता मे भाषा को खूब जोरदार बनाना पड़ता है। उसकी सब शक्तियो से काम लेना पड़ता है। वस्तु या व्यापार का चित्र चटकीला करने और रस-परिपाक के लिए कभी वस्तु के रूप और गुण को वैसाही और वस्तुओ के साहचर्य द्वारा और मनोरंजक बनाने के लिए उसके समान रूप और धर्मवाली और और वस्तुओं को सामने लाकर रखना पड़ता है। इस तरह की भिन्न-भिन्न वर्णन-प्रणालियों का नाम अलंकार हैं। इनका उपयोग काव्य मे प्रसंगानुसार विशेष रूप से होता है। इनसे वस्तु वर्णन में बहुत सहायता मिलती है। कही कहीं तो इनके बिना कविता का काम ही नहीं चल सकता। किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि अलंकार ही कविता है। जहाँ किसी प्रकार की रसव्यंजना होगी, वहीं किसी वर्णन-प्रणाली को अलंकारिता प्राप्त हो सकती है। जिस प्रकार कुरूपा स्त्री अलंकार धारण करने से सुन्दर नहीं हो सकती उसी प्रकार अस्वाभाविक, भद्दे और क्षुद्र भावों को अलंकार स्थापना सुन्दर और मनोहर नहीं बना सकती।

कविता के विषय में संक्षिप्त विचार—

१. कविता की परिभाषा, जीवन से सम्बन्ध और उपदेशात्मकता।
२ कविता की भाषा, कविता के गुण और कविता मे रस।
३. श्रुति सुखदता और अलंकार।

रूपक (नाटक) की रूपरेखा

रूपक दृश्य काव्य है। यह श्रव्य काव्यो की अपेक्षा अधिक प्रभावत्पादक है क्योंकि इसमे कल्पना को दृश्यों का प्रत्यक्ष आश्रय मिलता है। नाटक में स्थापत्य, चित्र कला, सगीत, नृत्य और काव्य इन सभी कलाओं का सामजस्य मिलता है। भरत मुनि ने कहा है योग, कर्म सारे शास्त्र, सारे शिल्प और विविध कार्यों मे कोई ऐसा नही है जो नाटक में न पाया जाये। नाटक मे केवल वर्णन मात्र ही नही होता वरन उनका प्रदर्शन भी नेत्रों के सम्मुख आता है। शास्त्रीय भाषा मे नाटक को रूपक कहते हैं। नाटक में रस का सचार काव्य और अभिनय दोनों के ही द्वारा होता है इस लिये अन्य काव्यों की अपेक्षा नाटक रस-प्रवाह में सब से अधिक सफल हुआ है। नाटक अनुकरण का दूसरा नाम है। हम नाटक में दूसरों की आत्माभिव्यक्ति कर लेते हैं और इस प्रकार रसास्वादन करते हैं। नाटक में पारस्परिक परिचय प्राप्त होता है और अनुकरण द्वारा हम दूसरों के जीवन मे अपनी पैठ कर लेते हैं।

नाटक के प्रधान तत्व—नाटक के कथानक में पात्रों की विशेषता रहती है। चरित्र-चित्रण नाटककार अपने मुख से कहकर न करके अभिनय और अन्य पात्रों द्वारा कराता है। कथानक भी कथनीय कथनों द्वारा ही प्रस्फुटित होता है पात्रों की भाव-भगी और क्रिया कलाप भी इसमें सहायक होते हैं। नाटक लिखने का कुछ न कुछ उद्देश्य भी अवश्य रहता है। उसका सम्बन्ध धर्म, समाज, जाति, अथवा इतिहास किसी से भी हो सकता है। इस प्रकार इन सभी कार्यों की पूर्ति के लिये नाटक में कथावस्तु, पात्र, चरित्र-चित्रण, अभिनय और उसके उद्देश्य का होना नितांत आवश्यक है। नाट्य शास्त्र में नाटक के चार तत्व माने हैं—वस्तु, पात्र, रस और अभिनय

कुछ आचार्य वृत्ति को पांचवाँ तत्व मानते हैं। वृत्ति वास्तव में क्रिया प्रधान शैली है जोकि अभिनय के अंतर्गत भी आसकती है।

कथा-वस्तु—नाटक का कथानक 'वस्तु' कहलाता है। अंग्रेजी में इसे प्लाट (Plot) कहते हैं। यह मुख्य और गौण दो प्रकार का होता है जिसका सम्बन्ध प्रधान और गौण पात्रों तथा समस्याओं से रहता है। रामायण में रामायण की प्रधान कथा है परन्तु इसके अंतर्गत, सुग्रीव, विभीषण इत्यादि की भी कथायें आ जाती हैं। वह अपने में सम्पूर्ण हैं परन्तु फिर भी काव्य मे उनका स्थान गौण ही है। कथा वस्तु विशेषरूप से पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक अथवा काल्पनिक होती है। इसमें से किन्हीं भी दो के सम्मिश्रण से एक नवीन प्रकार की कथावस्तु भी बन सकती है। कथा वस्तु की पाँच श्रेणियां या अवस्थायें नाट्य शास्त्र मे मानी हैं। (१) प्रारम्भ—इसमें किसी फल के लिये इच्छा होती है। (२) यत्न—इच्छापूर्ति का प्रयत्न इसके अँतर्गत आता है। (३) प्राप्तयाशा—इच्छित फल की प्राप्ति की आशा इसमें होती है। (४) नियताप्ति—इस दशा में प्राप्ति के विषय में कुछ निश्चय हो जाता है। (५) फलागम—क्योंकि नाटक को सुखांत माना है इस लिये अंत में फल प्राप्ति आवश्यक है। योरुपीय नाट्य शास्त्रों में भी यह पाँच अवस्थायें Exposition, Incident, Rising action, Crisis, Denoument, Catastrophe के नामों से प्रसिद्ध है। इन्हीं अवस्थाओं द्वारा नाटक का उतार चढ़ाव होता है।

अर्थ प्रकृतिया—अर्थ प्रकृतियां कथा वस्तु के वह चमत्कार पूर्ण अंग हैं जो कथा-वस्तु को कार्य की ओर ले जाते हैं। यह 'बीज', 'बिन्दु', 'पताका', 'प्रकरी', और कार्य पाँच होती मे।

सधिया—सधियों में अवस्थाओं और अर्थ प्रकृतियों का मेल कराया जाता है। यह सधिया एक एक अवस्था की समाप्ति तक चलती

हैं और प्रकृतियों से मेल कराती हैं। सँख्यायें अर्थ प्रकृतियो की ही भांति यह भी पांच हैं—'मुख', 'प्रतिमुख', 'गर्भ' 'विमर्श' और 'निर्वहण'।

अर्थोपेक्षक—नाटक मे कुछ सामग्री ऐसी होती है जिसका दर्शक को केवल पात्रों द्वारा केवल सूचना भर दिलाई जाती है उसे सूच्य कहते हैं और सूच्य की सूचना देने के साधन अर्थोपेक्षक कहलाते हैं। यह भी पाँच ही होते है। (१) विष्कम्भक—इसमें पहिले हो जाने वाली या बाद में होने वाली घटना की सूचना दी जाती है। केवल दो अप्रधान पात्रों के कथनोपकथन द्वारा ऐसा कराया जाता है। नाटक के प्रारम्भ अथवा दो अ कों के बीच में यह आ सकता है। शुद्ध और सकर इसके दो प्रकार हैं। (२) चूलिका—पर्दे के पीछे से जिस कथा भाग की सूचना दी जाती है वह चूलिका कहलाती है। (३) अङ्कास्य-अङ्क के अ त मे मच छोड कर जाने वाले पात्रों से आगामी अ क की जो सूचना दिलाई जाती है वह अ कास्य कहलाता है। (४)अकावतार—अ कावतार मे बिना पात्रों के बदले हुए ही पिछले ही अ क की कथा को आगे चलाया जाता है। पहिले ही अ क के पात्र बाहर जाकर फिर लौट आते हैं। (५) प्रवेशक—प्रवेशक घटनाओ की सूचना देने के लिये होता हैं।

कथनोपकथन—कथनोपकथन चार प्रकार का होता है। (१) सर्वश्राव्य—जो सब के सुनने के लिये होता है। (२) अश्राव्य—जो अन्य पात्रों के सुनने के लिये नहीं होता। (३) नियतश्राव्य—जो कि कुछ नियत पात्रों के सुनने के लिये होता है और (४) आकाश भाषित—जिसमें कि आकाश की ओर मु ह करके किसी कल्पित व्यक्ति से बात की जाती है।

पात्र—नाटक में पात्रों की विशेषता रहती है और नाटक के सभी तत्त्व पात्रों के ही आश्रित रहकर चलते हैं। कथा का प्रधान पात्र

नायक कहलाता है और उसे परखने की कसौठी यह है कि कथा का फल जिस पात्र से सम्बन्धित हो बस वही नायक है। श्रोता, द्रष्टा और पाठक नायक के ही उत्थान और पतन मे अधिक रूचि रखते हैं। हमारे नाट्य शास्त्रो मे नायक को सभी उच्च और उदार गुणो से सम्पन्न माना है। वह विनय-शील, त्यागी, कर्तव्य-परायण, कार्यकुशल, वीर, पराक्रमी, उच्चवशज, साहसी, स्वाभिमानी, कलाकार, सुन्दर, इत्यादि गुण वाला होना चाहिये। आज का नाटककार अपने नायक को सर्व-गुण सम्पन्न तो चाहता है परन्तु वह उच्चवशज भी हो इसकी ओर विशेष जोर नहीं देता। वह तो कीचड से कमल खोजने का प्रयत्न करता है और मिट्टी से हीरा निकालता है। आज का नाटककार नायक को मानव मानकर चलता हैं, इस लिये उसके चरित्र मे कमजोरियाँ भी आ सकती हैं। नायक कुछ विशेष गुण सम्पन्न होता है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह साँसारिक कमजोरियों से मुक्त है। नाट्य शास्त्र ने नायक चार प्रकार के माने हैं। (१) धीरोदात्त—यह नायक शोक और क्रोध में अविचलित नहीं होता,गम्भीरता, क्षमा मान, आत्म-श्लाघा न करने वाला, अहकार-शून्य होना, दृढ-व्रत होना यह इसके प्रधान गुण हैं। महाराज रामचन्द्र धीरोदात्त—के आदर्श हैं। (२) धीर-ललित—यह नायक सरल स्वभाव वाला, सुख-सतोषी, कलावित् और निश्चित होता है। शकुंतला के महाराज दुष्यन्त इसके उदाहरण है। (३) धीरप्रशात—यह नायक ब्राह्मण या वैश्य होता है। क्षत्रिय नहीं क्योंकि सतोष इसका प्रधान गुण है, 'मालती माधव' का माधव इसका उदाहरण है। (४) धीरोद्धत—यह नायक मायावी और आत्म-प्रशंसापरायण होता है। धोखा और चपलता इसकी नस नस मे भरा रहता है। अहंकार और दर्प इसके गुण हैं। रावण इसका उदाहरण है।

नायकों के शृंगारिक दृष्टिकोण को सामने रखकर उन्हे चार भेदों में विभाजित किया गया है। (१) अनुकूल—ऐसा नायक एक पत्नीव्रत होता है जैसे श्री रामचन्द्र (२) दाक्षिण-जो नायक कई रानियाँ रखकर भी प्रधान महिषी का आदर करता है और यथासम्भव सब को प्रसन्न रखता हो। उदाहरण स्वरूप श्री कृष्ण को ले सकते हैं (३) शठ-यह नायक अन्य स्त्रियों से भी प्रेम प्रकट अवश्य करता है परन्तु निर्लज्जा के साथ नहीं। (४) धृष्ट—यह नायक खुले रूप में दुराचार करता है और निर्लज्ज भी होता है। वह अपनी स्त्री का दिल दुखाने में भी नहीं चूकता।

विदूषक— स्कृत नाटकों मे रहस्योद्घाटन के लिये विदूषक का प्रयोग किया जाता था। अंगरेजी नाटकों में इस प्रकार के पात्र को क्लाउन कहा जाता है। यह पात्र नाटक के गम्भीर वातावरण में हास्य की पुट लाता है। नायक का यह विश्वासपात्र पात्र होता है। सस्कृत नाटकों मे उसका ब्राह्मण होना आवश्यक था। नायक के प्रेम कार्य में यह विशेष सलाहकार रहता है।

अन्य पात्र—नायक और विदूषक के अतिरिक्त प्रति नायक, नायिका, प्रतिनायिका यह तीन अन्य प्रधान पात्र होते हैं। नायक का कार्य बिना प्रतिनायक के सम्पन्न हो ही नहीं सकता और नायिका का इसी प्रकार प्रतिनायिका के बिना। इस लिये ये पात्र भी नाटक में उतने ही आवश्यक हैं।

चरित्र-चित्रण—नाटक में चरित्र-चित्रण उपन्यास की भांति विश्लेषणात्मक ढग से न होकर परोक्ष या अभिनयात्मक ढग से होता है। नाटक के पात्र एक दूसरे के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं और कभी कभी पात्र स्वयं अपने चरित्र का भी उद्घाटन करते हैं। स्वगत कथन अस्वाभाविक अवश्य लगता है परन्तु वह चरित्र पर प्रकाश डालने के लिये कहीं कहीं पर आवश्यक हो जाता है।

रस सिद्धान्त—रस सिद्धांत की विवेचना हमारे यहा नाटकों से ही आरम्भ होता है। प्रत्येक नाटक मे कोई न कोई रस अगी रूप से ले लिया जाता है, और अ ग रूप से दूसरे रस भी उसमे आते हैं। पश्चिमी नाटककारों ने इसकी अपेक्षा उद्देश्य को प्रधानता दी है। जैसे हमारे नाटककार किसी प्रधान रस को लेकर रचना करते है। वैसे पाश्चात्य नाटककार किसी विशेष उद्देश्य को व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप से लेकर चलते हैं। यह उद्देश्य आतरिक और बाह्य स घर्षों से सम्बन्ध रखते हैं।

दुखात और सुखात नाटक—भारतीय साहित्य की आदर्श-वादिता थपौती है। इसी के आधार स्वरूप सस्कृत साहित्य में दुखात नाटकों का समावेश नही किया गया। अच्छे काम करने वाले का अ त दुखमय दिखाकर समाज मे अच्छे कार्मों के प्रति अभिरुचि नहीं हो सकती। यही कारण था कि नाटक मे घोर करुण-रस का प्रवाह होने पर भी नाटककार उन्हे अ त मे सुखात ही कर देते थे। पाश्चात्य साहित्य में आदर्शवादिता का अभाव और यथार्थवादिता की प्रधानता मिलती है। दुखात नाटक मे दर्शक की सहानुभूति पात्रो के साथ स्वाभाविक रूप से हो जाती है। इस स्वाभाविक आकर्षण को भारतीय कलाकारो ने कला की कमजोरी मान कर उसे नही अपनाया। साथ ही भारतवासी जीवन का आदर करते थे और मच पर मानव को इस प्रकार नष्ट होता हुआ देखकर आनन्द का अनुभव नहीं कर सकते थे। यही कारण है कि भारतीय नाटककारो ने दुखात नाटक न लिखकर सुखात नाटक ही लिखे हैं। आज के युग में दुखात नाटक का लिखा जाना भी प्रारम्भ हो गया है।

अभिनय—अभिनय नाटक का प्रधान अ ग है। भरत मुनि ने अभिनय की विपद विवेचना की हैं। अभिनय के चार प्रधान प्रकार हैं। (१) आंगिक—आंगिक अभिनय का सम्बन्ध पात्रों के रगमच

पर अंग संचालन-विधि से है। वह किस प्रकार चलता है, उठता है, बैठता है, हाथ चलाता है, पैर चलाता है, नेत्र घुमाता है, भौंहे चलाता है, मुस्कराता है इत्यादि। (२) वाचिक—इसके अंतर्गत वाणी और स्वर का सम्बन्ध है। वाणी द्वारा आंगिक अभिनय को स्पष्टता मिलती है। भरत मुनि ने वाणी के अभिनय मे स्वर-शास्त्र, व्याकरण तथा छन्द-शास्त्र को लिया है। इसके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न श्रेणी के पात्रों से भिन्न भिन्न स्वराघात के साथ भाषा बुलवाई जाती है। (३) आहार्य अभिनय—इसका सम्बन्ध पात्रों के विभिन्न प्रकार के आभूषणों, वस्त्रों और उनके रंगो का विवेचन किया जाता है। पात्रों के वर्णों का भी सम्बन्ध आहार्य अभिनय से ही है। (४) सात्विक-अभिनय—स्तम्भ, स्वेद, रोमाच, कम्पन और अश्रप्रभृति द्वारा अवस्थानुकरण को सात्विक अभिनय कहते हैं।

वृत्तियां—नाटक में चार वृत्तिया होती हैं। (१) कौशिकी-वृत्ति—इसका सम्बन्ध शृंगार और हास्य से है। (२) सात्वती-वृत्ति—इसका सम्बन्ध शौर्य, दान, दया और दाक्षिण्य इत्यादि से है। (३) आरभटी वृत्ति—माया, इन्द्रजाल, सग्राम, क्रोध, सघर्ष आघात प्रतिघात इत्यादि इसके अन्तर्गत आते हैं। (४) भारती वृत्ति—इसका सम्बन्ध स्त्रियों से न होकर पुरुष नटों से रहता है। साहित्य-दर्पणकार का मत है कि यह सभी रसों में प्रयोग की जाती है। इसका सम्बन्ध केवल शब्दों से है।

रूपकों के भेद—नाटक शब्द से रूपक शब्द अधिक व्यापक है। इसलिए भारतीय नाट्य शास्त्रज्ञों ने रूपक शब्दका ही प्रयोग किया है। रूपक रस प्रधान होते हैं और उपरूपक भाव प्रधान। रूपक दस प्रकार के होते हैं (१) नाटक—नाटक मे पाँच सधिया, चार वृत्तियाँ और चौंसठ सध्य माने गये हैं। पाच से दस तक अक इसमें होते हैं। इसका विषय कल्पित नहीं होता और नायक धीरोदात्त होता है।

उदाहरण में भवभूति के उत्तर रामचरित नाटक को ले सकते हैं। (२) प्रकरण—इसकी वस्तु नाटक की सी होती है परन्तु इसका विषय कल्पित होता है। शृंगार रस की इसमे प्रधानता रहती है। (३) भाण—यह एक अंक और एक पात्र होता है। इसमे धूर्त पात्र हास्य प्रधान अभिनय करके दर्शकों को हँसाता है (४) व्यायोग—यह वीर रस प्रधान एक अंकीय नाटक होता है। इसमें स्त्री पात्र का अभाव रहता है।(५) समवकार—१२ तक इसके नायक हो सकते हैं। देव या दानवों की इसमें कथा रहती है (६) डिम—इसमे चार अंक और १६ नायक होते हैं। रौद्र रस का इसमे प्राधान्य रहता है। (७) ईहा मृग—इसमें धीरोदात्त नायक और एक प्रति नायक रहता है। इसमे चार अंक होते हैं और कथा में प्रेम प्रधान रहता है। (८) अङ्क—यह एक अंक का करुण रस प्रधान नाटक होता है। (९) वीथी—यह शृंगार रस का कल्पित एक अंक का नाटक होता है। (१०) प्रहसन—इसमें हास्य रस की प्रधानता रहती है उपरूपकों के यह अट्ठारह भेद हैं। नाटिका त्रोटक, गोष्ठी सट्टक, नाट्य रासक, प्रस्थानक, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, सलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश और भाणिका।

रंगमच—अभिनेयत्व नाटक का प्राधान गुण है और इसके लिए रंगमंच की आवश्यकता है। हिन्दी का रंगमच अपूर्ण और अधूरा है। भरतमुनि ने तीन प्रकार की नाट्य शालायें बतलाई हैं। चतुरस्त्र, विकृष्ट और त्र्यस्य। वर्तमान युग मे रंगमच बहुत समुन्नत दशा को प्राप्त हो चुका है। बिजली ने रंगमच मे कुछ ऐसी विशेताएँ पैदा कर दी हैं कि दर्शक देख कर चकित हो जाता है। नवीन आविष्कारो ने रङ्गमंच के उत्थान मे बहुत सहयोग दिया है। जो नाटक रङ्गमच पर

सफल नहीं हो सकते वह अधूरे हैं और उन्हे वह सम्मान प्राप्त नहीं हो सकता जो रङ्गमच पर सफल उतरने वाले नाटकों को प्राप्त होगा।

इस प्रकार हमने रूपक शीर्षक के अंतर्गत नाटक के प्रधान तत्वों, नाटक की कथावस्तु, सधियाँ, अर्थप्रकृतियाँ, कथनोपकथन, पात्र, चरित्र-चित्रण, रस सिद्धांत, वृत्तियाँ और रङ्गमच पर विचार किया। यह नाटक के प्रधान तत्व हैं और उत्तम नाटककार इन सब का सामंजस्य करके अपने ग्रथ की रचना करता है।

रूपक पर संक्षिप्त विचार—

१ रूपक की परिभाषा।

२ नाटक के प्रधान तत्त्व और कथा वस्तु।

३ रूपक की अर्थ प्रकृतिया और सधियाँ।

४ रूपक के पात्र, कथनोपकथन और चरित्र चित्रण।

५. अभिनय, रस तथा सिद्धान्त।

६ वृत्तियाँ और नाटक के भेद तथा उप भेद।

७ रगमच तथा उपसहार।

उपन्यास क्या है?

उपन्यास की परिभाषा विद्वानों ने कई प्रकार से की है। कविता की परिभाषा आज तक नहीं हो सकी। जितने विद्वान् हैं उतनी ही परिभाषाएँ हैं। किन्हीं दो विद्वानों की रायें नहीं मिलतीं। उपन्यास के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। इसकी कोई ऐसी परिभाषा नहीं है जिस पर सभी लोग सहमत हों। उपन्यास के विषय में मु० प्रेमचन्द इस प्रकार लिखते हैं—

"मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूं। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।

किन्हीं भी दो आदमियों की सूरतें नहीं मिलतीं, उसी भाँति आदमियों के चरित्र भी नहीं मिलते। यही चरित्र-सम्बन्धी समानता और विभिन्नता—अभिन्नत्व मे भिन्नत्व और विभिन्नत्व में अभिन्नत्व दिखाना उपन्यास का मुख्य कर्त्तव्य है। हमारा चरित्राध्ययन जितना ही सूक्ष्म—जितना ही विस्तृत होगा, उतनी ही सफलता से हम चरित्रो का चित्रण कर सकेंगे।

अब यहाँ प्रश्न होता है कि उपन्यासकार को चरित्रो का चित्रण करके उनको पाठक के सामने रख देना चाहिए—उसमे अपनी तरफ से काट-छाँट, कमी-बेशी कुछ न करनी चाहिए, या किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए चरित्रों मे कुछ परिवर्तन भी कर देना चाहिए?

यहीं से उपन्यासकारों के दो वर्ग हो जाते हैं। एक आदर्शवादी वर्ग और दूसरा यथार्थवादी वर्ग।

यथार्थवादी चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ नग्न-रूप में रख देता है। उसे इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम अच्छा होता है या कुचरित्रता का परिणाम बुरा—उसके चरित्र अपनी कमज़ोरियाँ या खूबियाँ दिखाते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त करते हैं। ससार में सदैव नेकी का फल नेक और बदी का फल बद नहीं होता, बल्कि इसके विपरीत हुआ करता है। नेक आदमी धक्के खाते हैं, यातनाएँ सहते हैं, मुसीबतें झेलते हैं, और अपमानित होते हैं। नको नेकी का फल उलटा मिलता है। बुरे आदमी चैन करते हैं, नामवर होते हैं, यशस्वी बनते हैं। उनको बदी का फल उलटा मिलता है। यथार्थवाद अनुभव की बेड़ियों में जकड़ा होता है और क्योंकि ससार में बुरे चरित्रों की ही प्रधानता है—यहाँ तक कि उज्जवल से उज्जवल चरित्र मे भी कुछ न कुछ दाग-धब्बे रहते हैं, इसलिए यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यथार्थवाद हमको

निराशावादी बना देता है, मानव-चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है और हमको अपने चारों की बुराई नज़र आने लगती है।

इसमे सदेह नहीं कि समाज की कुप्रथा को ओर उसका ध्यान दिलाने के लिए यथार्थवाद* अत्यन्त उपयुक्त है, क्योंकि इसके बिना, बहुत सम्भव है, हम उस बुराई को दिखाने में अत्युक्ति से काम लें और चित्र को उससे कहीं काला दिखायें जितना वह वास्तव में है। लेकिन जब वह दुबर्लताओं का चित्रण करने मे शिष्टता की सीमाओं से आगे बढ़ जाता है, तो आपत्तिजनक हो जाता है। फिर, मानव-स्वभाव की विशेषता यह भी है कि वह जिस छल और क्षुद्रता और कपट से घिरा हुआ है, उसी की पुनरावृत्ति उसके चित्त को प्रसन्न नहीं कर सकती। वह थोड़ी देर के लिए ऐसे ससार में उड़कर पहुँच जाना चहता है, जहाँ उसके चित्त को ऐसे कुत्सित भावों से नजात मिले—वह भूल जाये कि मैं चिन्ताओं के बधन मे पड़ा हुआ हूँ, जहाँ उसे सज्जन, सहृदय, उदार प्राणियों के दर्शन हों, जहाँ छल और कपट, विरोध और वैमनस्य का ऐसा प्राधान्य न हो। उसके दिल मे ख्याल होता है कि जब हमें किस्से-कहानियो में भी उन्हीं लोगों से साबक़ा है जिनके साथ आठों पहर व्यवहार करना पड़ता है, तब फिर ऐसी पुस्तक पढ़ें ही क्यों?

यथार्थवाद यदि हमारी आँखें खोल देता है, तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्श-वाद में यह गुण है वहाँ इस बात की भी शका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धातों की मूर्तिमात्र हों और जिनमें जीवन न हो। किसी देवता की कामना करना मुश्किल नहीं है, लेकिन उस देवता मे प्राण-प्रतिष्ठा करनी मुश्किल है।

इसलिए वही उपन्यास उच्च कोटि के समझे जाते हैं जहां यथार्थ और आदर्श दोनों का समावेश हो गया है। उसे आप आदर्शोन्मुख

यथार्थवाद कह सकते हैं। आदर्श को सजीव बनाने ही के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है।

चरित्र को उत्कृष्ट और आदर्श बनाने के लिए यह जरूरी नहीं कि वह निर्दोष हो,—महान् से महान् पुरुषों मे भी कुछ न कुछ कमजोरियाँ होती हैं—चरित्र को सजीव बनाने के लिए उसकी कमजोरियाँ का दिग्दर्शन कराने से कोई हानि नहीं होती बल्कि, यही कमजोरियाँ उस चरित्र को मनुष्य बना देती हैं। निर्दोष-चरित्र तो देवता हो जायगा और हम उसे समझ ही न सकेंगे। उस चरित्र का हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता, केवल मनोरंजन मात्र हो सकता है। साहित्य का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन के साथ आत्म-परिष्कार भी है। साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है। यह तो भाटो और मदारियो, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार हमार पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हम में सद्भावों को भरता है और हमारी दृष्टि को फैलाता है।"

इस प्रकार मु० प्रेमचन्द जी ने उपन्यासो के दो भेद किये एक यथार्थवादी और दूसरा आदर्शवादी। इन दो भेदों के अतिरिक्त भी उपन्यासों के अनेकों भेद और उपभेद होते हैं।

कथा प्रधान उपन्यास—कथा प्रधान उपन्यास मे लेखक का ध्यान विशेष रूप से उपन्यास की कथा और घटना चक्रों पर रहता है। वह पाठक को कथा के सौंदर्य में फँसाकर रखता है और उसी सौंदर्य से अपने उपन्यास को रोचक बनाने का प्रयत्न करता है। कथा का तारतम्य कही पर टूटने नहीं देता। जासूसी उपन्यासों मे विशेष रूप से यह सौंदर्य मिलता है। इन उपन्यासो मे घटनाओं का जमाव इतना रोचक और सुव्यवस्थित होता है कि पाठक एक बार कथा प्रारम्भ करके फिर समाप्त करने से पूर्व छोड़ नहीं सकता। इस प्रकार के उपन्यास निम्न कोटि के

उपन्यास ही रहते हैं। इन उपन्यासों मे घटनाओं की जादूगरी के लिये ही प्रधान स्थान रहता है। जीवन पर इन उपन्यासों का कोई प्रभाव नहीं पडता और यदि पडता भी है तो वह उपन्यास-व्यसन के ही रूप मे पडता है। क्योकि जीवन के अन्दर इनके विषय की ना तो पैठ ही होती है और ना जीवन के रहस्य के विषय मे वह कुछ कहते ही हैं।

चरित्र-चित्रण--प्रधान उपन्यास —चरित्र चित्रण प्रधान उपन्यासों मे कथा और घटनाओ पर विशेष जोर न देकर चरित्र चित्रण पर विशेष यत्न दिया जाता है। इन उपन्यासों में जीवन की समस्याओं को लेकर लेखक चलता है और उन्हीं के आधार पर चरित्रों का निर्माण करता है। उसके पात्र समाज के चरित्रों के प्रतीक बनकर चलते हैं और इस रूप में वह न केवल देश और समाज का ही वरन मानवजाति का प्रतिनिधित्व करते हैं। लेखक अपने पात्रों में वह जीवन भरता है जिनकी मानव और समाज को आवश्यकता होती है, और साथ-साथ उन्हे उन पात्रों के साथ रखता है जिनके कारण समाज दूषित है, कलुषित है और निंदित है। चरित्र-चित्रण-प्रधान उपन्यासकार के सम्मुख एक बडा भारी उत्तरदायित्व रहता है और चरित्र चित्रण मे जितनी स्वतन्त्रता एक उपन्यासकार को है उतनी अन्य किसी भी साहित्यकार को नहीं है। नाटककार, निबन्धकार, काव्यकार, कवि कोई इतनी स्वतन्त्रता से अपने पात्रों का चित्रण नहीं कर सकता जितना एक उपन्यासकार। इसलिये उपन्यासकार का चरित्र-चित्रण सब से पूर्ण रहता है। इस कोटि के उपन्यास सब से उत्तम कोटि के उपन्यास कहलाते हैं।

सामाजिक उपन्यास—सामाजिक उपन्यासों में समाज के यथार्थवादी और आदर्शवादी चरित्र उपन्यासकार प्रस्तुत करता है। देश और समाज के हित के लिये ऐसे उपन्यासकार हितकर

सिद्ध होते हैं और ऐसे उपन्यासकारों को समाज मे प्रसिद्धि भी अधिक मिलती है। इस प्रकार के उपन्यासों में क्योंकि समाज को अपने चित्र देखने को मिलते हैं इसलिये उसे सब से अधिक प्रिय इसी प्रकार की रचनायें होती हैं। चरित्र-चित्रण भी लेखक कई प्रकार से करते हैं। एक तो केवल उनकी ऊपरी परिस्थितियों को लेकर वर्णनात्मक रूप से करते हैं और दूसरे मनोवैज्ञानिक रूप से करते हैं। मु० प्रेमचन्द के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता न मिलकर वर्णनात्मकता अधिक मिलती । आज के उपन्यासकारों में मनो-वैज्ञानिकता दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है।

ऐतिहासिक उपन्यास—ऐतिहासिक उपन्यास कथा प्रधान भी हो सकते हैं और चरित्र-चित्रण प्रधान भी। इन उपन्यासों में पात्र औरकथा इतिहास में से ली जाती हैं। ऐतिहासिक कहने का अर्थ यह नहीं हो । कि उनमें इतिहास के आधार पर कोरी कथा मात्र का वर्णन होता है। उपन्याससकार अपनी कल्पना के आधार पर इसमें रोचकता पैदा करने के लिये उलट-फेर भी कर सकता है, परन्तु वह उलट-फेर इतना अधिक नहीं होना चाहिये कि जिससे प्रधान तथ्यों का अनुमान गलत लगने लगे। काल और प्रधान घटनाओ को ऐसे उपन्यासों में भुला कर नहीं चला जा सकता। हिन्दी में वृन्दावन लाल वर्मा ने इस प्रकार के सुन्दर उपन्यास लिखे हैं।

इस प्रकार हमने उपन्यास-साहित्य पर विचार किया और उप-न्यास को किन किन वर्गों में बाँटा जा सकता है उन पर भी विचार किया। चरित्र-चित्रण का उपन्यास में अन्य सभी प्रकार के साहित्य से अधिक क्षेत्र है,इस लिये जीवन की जितनी सुन्दर विवेचना उपन्यास में हो सकती है उतनी न प्रबन्ध काव्य में हो सकती है और नाही नाटक में मुक्तक कविता, निबन्ध और कहानी के तो क्षेत्र ही बहुत सीमित होते

है। इसलिये मानव जीवन की विवेचना का उपन्यास सब से अच्छा और सुन्दर माध्यम है।

उपन्यास के विषय मे सक्षिप्त विचार—

१. परभिापा।
२ आदर्शवादी और यथार्थवादी उपन्यास।
३ कथा-प्रधान और चरित्र प्रधान उपन्यास।
४. सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास।
५ उपसहार।

कहानी की रूपरेखा

मु० प्रेमचन्द के शब्दों में "आख्यायिका केवल घटना है।" आंशिक रूप मे यह सत्य भी है और जिस दृष्टिकोण से मुंशी प्रेमचन्द ने कहानिया लिखी हैं वहा यह पूर्ण रूप से सत्य थी परन्तु आज बहुत सी कहानियों में हमें घटना मिलती ही नहीं केवल पात्र या परिस्थिति का विश्लेषणात्मक चित्रांकन ही मिलता है। वह भी कहानिया हैं और बहुत कला-पूर्ण कहानियां हैं। प्रेमचन्द जी ने स्वयं भी लिखा है, "वर्तमान आख्यायिका (या उपन्यास) का आधार ही मनोविज्ञान है। घटनायें या पात्र तो उसी मनोवैज्ञानिक सत्य को स्थिर करने के निमित्त ही लाये जाते हैं। उनका स्थान बिलकुल गौण है। उदाहरणतः मेरी 'सुजान भगत', 'मुक्ति-मार्ग', 'पंच परमेश्वर', 'शतरज के खिलाड़ी' इत्यादि कहानियों में एक न एक मनोवैज्ञानिक रहस्य को खोलने की चेष्टा की गई है।" इस प्रकार प्रेमचन्द जी के विचारानुकूल यदि हम कहानी की परिभाषा दें तो यों कह सकते हैं कि कहानी एक घटना है जिसका स्थान मानव के मन मे भी हो सकता है और जीवन की बाह्य परिस्थिति में भी।

आज की कहानी नानी घेवते की कहानी न होकर कला-पूर्ण मनोवैज्ञानिक रहस्य का उद्घाटन है। किन्तु जब कहानी मनोवैज्ञानिकता से फिसल कर मनोरंजन के क्षेत्र में आजाती है तो इसकी परिभाषा हमें फिर बदलनी पड़ती है। यह सर्वदा नहीं होता कि सभी कहानियां किसी लक्ष्य, धर्म अथवा नीति और समस्या को ही लेकर लिखी जायें। कितनी ही रचनायें लेखक की कल्पना पर आधारित रहकर उसकी कला के चमत्कार स्वरूप ही प्रस्फुटित होती हैं। उनमे सौंदर्य होता है, चमत्कार होता है, आकर्षण होता है, हृदय-ग्राहिता होती है परन्तु समस्या या मनोवैज्ञानिकता नहीं होती और इस प्रकार की कुछ कहानियां संसार-साहित्य मे उच्च कोटि की कहानियाँ हैं। उदाहरण-स्वरूप हम 'गिफ़्ट ऑफ मैगी' को ले सकते हैं। कहानी का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और साथ ही उसकी टैकनीक भी एक प्रकार की नहीं होती। वह अनेकों प्रकार की होती है। जिस प्रकार प्रबन्ध काव्य, और नाटक से उपन्यास का क्षेत्र अधिक व्यापक है उसी प्रकार निबन्ध, मुक्तक कविता और गद्य-गीत इत्यादि से कहानी का क्षेत्र अधिक व्यापक है।

कहानी म मानव अमानव सभी प्रकार के पात्र लिये जासकते हैं। हिन्दी के प्राचीन साहित्य में वर्तमान कहानी का प्रारम्भिक रूप भी देखने को नहीं मिलता क्योंकि कहानी और उपन्यास संस्कृत साहित्य की देन नहीं हैं। फिर भी संस्कृत साहित्य मे कुछ कुछ कहानी के आकार की रचनायें अवश्य मिलती हैं जिनमे गम्भीर विषयों को सरल बना कर समझाने का विद्वानों ने प्रयत्न किया है। जाबालि और नचिकेता के उपाख्यान इसी प्रकार की रचनायें हैं। ऋग्वेद की अपाला की कथा और ब्राह्मणों की वामदेव और रोहित की कथाओं में भी कहानी का ही रूप मिलता है। संस्कृत साहित्य के पश्चात् हमें बौद्ध भिक्षुओं की जातक कथायें मिलती हैं। यह कथायें मध्य एशिया,

योरोप, अरब, मिश्र इत्यादि प्रदेशों तक बौद्ध भिक्षुओं द्वारा पहुँचीं। ३०० ई० पूर्व डेमी ट्रीमिस ने यूनान में इनका संग्रह किया और बाद में यही सग्रह "ईपस की कहानियाँ" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। योरोप के सत्तारहवी शताब्दी के साहित्य पर इन कहानियों का प्रभाव मिलता है। जातक कथायें पाली और प्राकृत भाषा में लिखी गई थीं। अपभ्रंश और पैशाचिक भाषाओ मे भी इन बौद्ध कथाओं के आधार पर कथाओं की रचना हुई। गुणाढ्य की 'बृहत कथा' ६०० ई० पू० में लिखी गई। यह ग्रथ अब नहीं मिलता परन्तु सस्कृत "वृहत कथा मंजरी" और "कथा सरित्सार" मे इसकी कथायें मिलती है। यह कथायें आरम्भ में उपदेशात्मक प्रकृति को लेकर लिखी गईं परन्तु धीरे धीरे यह मनोरंजकता की ओर बढती गई। "दशकुमार चरित्र" की रचना तक इन कथाओं मे धार्मिक प्रवृत्ति धीरे धीरे कम होकर उनमें सांसारिकता आगई।

आज की कहानी का इस प्राचीन कहानी साहित्य से कोई सम्बन्ध नहीं और नाही यह साहित्य उस प्राचीन साहित्य की देन ही है। आज के युग का कथा-साहित्य पूर्ण रूप से पश्चिम की उपज है। १६ वीं शताब्दी से पूर्व कहानी अपने वर्तमान रूप में नही थी परन्तु उपन्यास और नाटक इत्यादि में कथा के तत्व वर्तमान थे। कहानी ने नाटक से कथनोपकथन और नाटकीयता ली और उपन्यास से चरित्र-चित्रण। काव्य मे कहानी ने प्रकृति-चित्रण और रसात्मकता ली। इस प्रकार वर्तमान कहानी ने नाटक, काव्य और उपन्यास तीनों के तत्वों का अपने में सामजस्य करके पाठकों का मनोरंजन किया। तीनों तत्वों की प्रधानता होने के कारण ही आज कहानी साहित्य ने जो सर्वप्रियता प्राप्त की है वह साहित्य का कोई भी अन्य अंग प्राप्त नहीं कर सका।

कहानी में एक भाव, एक घटना, एक स्थान और एक चरित्र-चित्रण होने की आवश्यकता होती है परन्तु यह सभी प्रतिबन्ध निभाने

कभी कभी लेखक के लिये कठिन हो जाते हैं। कथानक से इन सब का सम्बन्ध है। कहानी यदि एक उद्देश्य या दृष्टिकोण को लेकर चलती है तो उसमें आद्योपांत भाव की एकता भी रहेगी। कहानी का बीज-वस्तु एक और स्पष्ट होना चाहिये। लेखक को लिखते लिखते बीज-वस्तु से बहक कर इधर उधर नहीं निकल जाना चाहिये। कथा का कथानक बीज-वस्तु पर ही केन्द्रित रहकर चलना चाहिये, कथा के तीन अंग होते हैं। आरम्भ, कथानक और अंत, परन्तु इन सब का विभाजन करके ही लेखक लेखनी उठाये यह आवश्यक नहीं। कथा सर्वदा सुसंगठित रहनी चाहिये। कथा में जहाँ तक हो सके एक ही घटना रखी जाये और यदि एक से अधिक रखनी अनिवार्य हो जायें तो उनका पारस्परिक सूत्र सुदृढ़ होना चाहिये। कथा में पात्र जितने कम हों उतना अच्छा है। व्यर्थ के पात्र तो होने ही नहीं चाहिये। कथा-वस्तु स्वाभाविक, सरल और मनोरंजक होनी चाहिये, जिससे पाठक उसे पढ़ने में उकता न जाये। कथा सांकेतिक हो तो और भी अच्छा है। कथा का प्रवाह टूटना नहीं चाहिये और नाही उसमें बाधा पड़नी चाहिये। कहानी अप्रतिपादित वस्तु की ओर कलात्मक रूप से संकेत करने वाली होनी चाहिये। उसे इतिवृत्तात्मक कथा-मूलक निबन्ध की भाँति नहीं लिखा जा सकता। कला होने के नाते इसमें सांकेतिक प्रवृत्ति का आना बहुत आवश्यक है।

वर्तमान कहानियों में चरित्रों का निर्माण मनोविज्ञान के आधार पर होता है। केवल समस्या मूलक कहानियों में ही हमें चरित्र-चित्रण मिलता है कथा प्रधान कहानियों में नहीं। पात्र-प्रधान कहानियों में पात्रों का विश्लेषण अनिवार्य हो जाता है। चरित्र-चित्रण उपन्यास का विषय अवश्य है परन्तु चरित्र का 'निर्माण' कथा में ही होता है और सका विकास और विश्लेषण उपन्यास में हो पाते हैं। पात्र-प्रधान कहानी में चरित्र-चित्रण प्रधान है और मनोवैज्ञानिक कहानियों में

समस्या का उद्‌घाटन, परन्तु समस्या के उद्‌घाटन मे चरित्र-चित्रण कुछ कुछ अंशों में अवश्य आ जाता है। यहां तक हम कथानक, पात्र और चरित्र-चित्रण पर विचार कर चुके। अब हमें शैली पर विचार करना है।

शैली का सम्बन्ध कला के विषय और लख, की प्रणाली से विशेष होता है। शैली विषय और लेखक की प्रणाली तथा भाषा तीनो के सामंजस्य से बनती है। वस्तु-प्रधान, कथनोपकथन प्रधान, दृश्य-चित्रण-प्रधान तथा सम्बोधन-प्रधान शैलियों द्वारा कहानियाँ लिखी जाती हैं। कुछ कहानियाँ केवल कथनोपकथन के आधार पर चलती है। जयशंकर प्रसाद जी की कहानियाँ इसी श्रेणी के अतर्गत आती हैं। कुछ कहानियों मे कथनोपकथन तथा वस्तु वर्ण-दोनों का सामंजस्य करके कहानीकार चलता है और इस सम्मिलन को बहुत कला-पूर्ण ढग से निभाता है। कुछ लेखक अपनी शैली मे सम्बोधन पर विशेष जोर देते है तो उनकी शैली सम्बोधन-प्रधान कहलाती है। कुछ शैलियाँ विचारों के आधार पर बनती हैं। कुछ लेखक की भाषा के आधार पर बनती है और कुछ व्यक्ति-प्रधान शैलियाँ होती हैं। "प्रबन्ध सागर" के भूमिका भाग में हमने शैलियों पर प्रकाश डाला है। उसे पढ़ने पर भी विद्यार्थियों को इस विषय का ज्ञान हो जायेगा और वह स्वय भी विभाजन करके नवीन शैलियों के नाम-करण कर सकते है।

इस प्रकार कहानी वह साहित्य-कला है जो आज के हर पाठक को सर्वप्रिय है और विशेष रूप से भावुक प्रेमियों की। साहित्य का यह अंग अन्य सभी अगों की अपेक्षा अधिक वृद्धि कर रहा है और करेगा भी क्योंकि जीवन की समस्याओं का सब से अधिक मनोरंजक रूप में केवल यही कला स्पष्टीकरण कर सकती है।

कहानी के विषय में संक्षिप्त विचार —

१. कहानी पर मु० प्रेमचन्द के विचार और उनकी परिभाषा ।
२. कहानी का प्राचीनतम रूप ।
३. आधुनिक कहानी की रूप-रेखा और उसकी शैलियाँ ।
४. उपसंहार ।

समालोचना और साहित्य

समालोचक साहित्यकार का पथप्रदर्शक होता है और आलोचना साहित्य का निर्धारित मार्ग । आलोचना के विषय मे पहिले एक बात समझ लेनी चाहिये कि इस विषय पर लेखनी उठाने का साहस केवल विषय के पंडितों को ही करना चाहिये अन्यथा वह आलोचना पथभ्रष्ट करने वाले मूर्ख गाइड का कार्य करेगी जिससे लेखक, रचना और विशेष रूप से साहित्य की हानि होगी । आलोचना करने का अधिकार केवल उस व्यक्ति को ही है जो विषय का भली प्रकार ज्ञाता हो, विषय के ऊँच-नीच को समझता हो, उसके पक्ष और विपक्ष पर अपनी राय प्रकट कर सके ।

आलोचना-क्षेत्र में जो कुछ भी कार्य हुआ है वह गद्य युग मे ही समझा जा सकता है। वैसे संस्कृत साहित्य में भी हमे बड़े-बड़े ग्रंथों के भाष्य मिलते हैं और उनकी सुन्दर टीकायें भी हुई हैं परन्तु उस काल की और वर्तमान काल की टीका प्रणाली मे महान अंतर है । प्राचीन आलोचना को हम समालोचना कहें भाष्य कहें, टीका कहें, प्रशंसा कहें या और भी इसी प्रकार का कोई शब्द खोजा जा सकता है परन्तु यह मानना होगा कि आचार्यों ने सभी ग्रथों के केवल एक ही पहलू पर विचार किया है दूसरे पर नहीं । यदि प्रशंसा करने पर तुल गये हैं तो राई को पर्वत कर दिया है और यदि बुराई पर उतर आये हैं तो पर्वत को राई बना दिया है । संस्कृत-साहित्य से लगाकर हिन्दी

साहित्य के महावीर प्रसाद द्विवेदी युग तक हमें यह प्रणाली देखने को मिलती है। प० पद्मसिंह शर्मा की बिहारी सतसई की टीका को देखने से यह पता चलता है कि शर्मा जी ग्रंथ हाथ में लेकर इस बात पर तुल गये हैं कि उन्हे ग्रंथ की प्रशंसा ही करनी है यदि ग्रंथ में कहीं पर ज्योतिष का कोई शब्द आ गया है तो उन्होंने ग्रंथकार को ज्योतिषी मान लिया है और यदि वैद्यक का शब्द आगया है तो वैद्यराज इसी प्रकार एक-एक शब्द से शर्मा जी ने बिहारी को न जाने कितनी उन विद्याओं का प्रकांड पंडित ठहराया है जिन्हे एक-एक को सीखने में मनुष्य का जीवन चला जाता है और उनका अध्ययन समाप्त नही होता।

ख़ैर! यह थी प्राचीन प्रणाली। आज का आलोचक या समालोचक इस दृष्टिकोण से यदि चलेगा तो वह लेखक का तो मार्ग अवरुद्ध करेगा ही अपना भी मार्ग अवरुद्ध कर लेगा। आज केवल तारीफ करने वाली आलोचना काम नहीं देती। समालोचक को विषय का विश्लेषण करना होता है। विषय के अच्छे-अच्छे तत्वों को एक ओर निकालना होता है और न्यूनता प्रदर्शित करने वाले तत्वों को एक तरफ। फिर समालोचक को यह भी प्रदर्शित करना होता है कि लेखक के उन तत्वों में कमी रह जाने का कारण क्या है और जिन तत्वों में सौंदर्य आया है, उनमें सौंदर्य लेखक की किस विशेषता के कारण आया। आज के समालोचक को रचना के साथ साथ लेखक को भी समझना होता है समालोचक का कर्तव्य केवल अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा भर कहकर समाप्त नहीं होता। यदि वह किसी चीज को बुरा कहने का साहस करता है तो उसे अच्छी वस्तु का उदाहरण देना होता है, उसके अनुकूल परिस्थितियों का संकेत करना होता है और लेखक के सम्मुख एक सुझाव रखना होता है जिससे वह भविष्य में इस प्रकार की भूल अपनी रचनाओं में न करे। ऐसा करने का साहस साधारण समालोचक नहीं कर सकता।

समालोचना पर साहित्य का भविष्य आधारित है। यदि आलोचनायें उचित हैं और उनका मार्ग-प्रदर्शन ठीक है तो कोई कारण नहीं कि साहित्य का भविष्य उज्वल होगा और यदि आलोचनाओं में स्वार्थ और द्वेष की बदबू आती है तो समझ लो कि उन आलोचनाओं से प्रभावित होने वाला साहित्य भी सड़ जायेगा और एक न एक दिन उससे भी बदबू आने लगेगी। यदि अच्छे लेखक को प्रोत्साहन न मिला तो वह लिखना बन्द कर देगा और यदि खराब लेखक की प्रशंसा हुई। उसे प्रोत्साहन मिला तो वह अपनी त्रुटियों का साहित्य में ज्यों का त्यों रख कर गले सड़े साहित्य से साहित्य भंडार को भर देगा और कोई कारण नहीं है कि फिर उसके सम्पर्क में आकर अच्छे साहित्य में भी सड़न पैदा न हो जाये। अच्छे लेखक उसका अनुकरण करना प्रारम्भ कर देंगे और इस प्रकार एक ऐसी गलत प्रणाली का साहित्य में आविष्कार होगा कि आवे का आवा ही खराब हो जायेगा और फिर कुम्हार के उस आवे में से जो वर्तन भी निकालेगा वह या तो टूटा हुआ होगा या कच्चा होगा। परिपक्वता नहीं आ पायेगी और साहित्य में एक ऐसा कमज़ोर उथलापन आ जायेगा। वह साहित्य उच्च कोटि के साहित्यों में गिना जाना बन्द हो जायेगा। वह अन्य साहित्यों से दौड़ में पछड़ कर पीछे रह जायेगा और इस सब का दोष जायेगा समालोचकों के सिर पर।

समालोचना स्वयं भी एक साहित्य है। यह न केवल साहित्य के समझने में सहायक के रूप में ही प्रशंसनीय है वरन स्वतन्त्र रूप से भी अपने में अपनापन रखता है। कहानी, उपन्यास, इत्यादि के पढ़ने में जिस प्रकार पाठक आनंद-लाभ करते हैं उसी प्रकार अच्छी समालोचना के पढ़ने पर भी पंडितों के सिर झूम जाते हैं और वह लेखक के प्रति वाह वाह कहे बिना नहीं रहते। समालोचना उथला विषय नहीं है, गूढ़ विषय है, खोज का विषय है जिसमें लेखक को मस्तिष्क और भावुकता

दोनों से काम लेना होता है। लेख की खोज करते हुए भी समालोचक को लेखक के प्रति भावुकता को नहीं खो देना होता। समालोचक चाहे डाक्टर की भाँति लेखों को काट-छांट कर फेंक दें परन्तु उसका उद्देश्य सर्वदा लेखक का सुधार करना ही होना चाहिये। नश्तर मारने वाला भी डाक्टर हमें प्रिय लगता है और वह समाज का सबसे बड़ा हितैषी है। इसी प्रकार समालोचक भी साहित्य का सबसे बड़ा हितैषी होता है। डाक्टरों की भाति इनके भी दो भेद हैं। एक वह जो मीठी तथा पैनी छुरी से काम लेता है और एक वह जो भावुकता को पास तक नहीं फटकने देता। वह यदि कोनैन देना चाहता है तो खांड चढ़ी हुई गोलियाँ नहीं देता, बस साधारण ही दे डालता है।

इस प्रकार समालोचना साहित्य का प्राण है, स्फूर्ति है। मार्ग दर्शक है। न्यूनता-निवारण-विधि है, सहयोग है, प्रोत्साहन है, क्या नहीं है आलोचना, यदि वह वास्तव में ग ने कर्त्तव्य को समझकर लिखी गई है। एक बच्चे का बनना और बिगड़ना जिस प्रकार एक शिक्षक पर आधारित है उसी प्रकार एक लेखक का बनना और बिगड़ना उसके समालोचक पर आधारित है।

समालोचना और साहित्य पर संक्षिप्त विचार —

१ प्राचीन साहित्य में समालोचना और उसके प्रकार।

२ समालोचक का कर्त्तव्य और उसका उत्तरदायित्व।

३ उचित समालोचना से लाभ और गलत समालोचना से हानि।

४ समालोचना की आवश्यकता।

५ उपसंहार।

काव्य में रस और अलंकार

साहित्य के आचार्यों में काव्य के विषय में दो प्रधान विचार मिलते हैं। एक चमत्कारवादी विचार-धारा और दूसरी रसवादी विचार-धारा। रीति-काल में विशेष रूप से जिस धारा का ज़ोर रहा वह अलं-

कारवादी विचार धारा है। शेष सभी कालों में रसवादी धारा का प्राधान्य मिलता है। अलकारवादी विचार-धारा के दो प्रवाह हिन्दी साहित्य में आये, एक केशव द्वारा, जिसमें मम्मट और उद्‌घट का अनुकरण किया गया था। इस चमत्कारवादी काव्य धारा में प्रवाहित होने वाले कवि कविता को अलकारो के लिये मानते हैं। वहाँ वाह-वाह का बोल बाला-रहता है और हृदय को छूने वाले तत्वों का अभाव। केशव की तमाम रामचद्रिका को पढ़ जाने पर भी कहीं एक पक्ति ऐसी नहीं मिलेगी जिसे पढ़कर पाठक एक क्षण के लिये हृदय थाम कर बैठ जाये, हाँ, यह अवश्य है कि यदि पडित है तो वह शब्दों की उछल-कूद पर वाह वाह हर पद पर कह सकता है। चमत्कार प्रधान कविता लिखने वाले कवियो मे बिहारी को हम अपवाद स्वरूप ले सकते हैं क्योंकि उसकी कविता में चमत्कार की प्रधानता होते हुए भी रस का नितात अभाव हो ऐसी बात नहीं है।

'अलकार' का अर्थ है 'सौन्दर्य वर्धक आभूषण'। आभूषण किसी भी वस्तु का बाह्यरूप बन सकते हैं अतरंग नहीं। बाह्यरूप कितना भी सुन्दर क्यो न हो जब तक उसमें प्राण न हो, जीवन का रस न हो तब तक वह बाह्य रूप व्यर्थ ही रहता है। 'रस' का सम्बन्ध काव्य के बाह्यरूप से न होकर उसकी आत्मा से होता है। काव्य की आत्मा में जीवन-स्फूर्ति लाना, मादकता लाना, हृदय ग्राहिता लाना, यह सब रस का कार्य है। यदि 'अलकार' काव्य मे आकर्षण पैदा करता है तो 'रस' काव्य को जीवन प्रदान करता है। जिस प्रकार एक पत्थर की सुन्दर मूर्ति को आभूषण से लादने पर भी वह चल नहीं सकती चाहे सगकार ने उसे कितना ही सुन्दर क्यो न बनाया हो और उसका अङ्ग-अङ्ग आभूषणों से लदा हुआ क्यों न हो। उसी प्रकार काव्य भी बिना रस के उसी सुन्दर प्रस्तर-मूर्ति के समान है यदि उसमे रस का सचार नहीं है। रस का सचार काव्य की प्रधान आवश्यकता है

के भी काव्य शोभा नहीं क्यो कि श्रृंगार सौंदर्य वर्धक होता है और सौंदर्य के बिना काव्य-कला निरर्थक है।

रस नौ हैं 'श्रृंगार', 'हास्य', 'करुणा', 'रौद्र', 'वीर', 'भयानक', 'वीभत्स', 'अद्भुत' और 'शांत' और इनके नौ ही स्थायी भाव हैं जो हृदय में हर समय वर्तमान रहते हैं। नाट्य शास्त्र मे आठ 'रस' माने जाते हैं क्योंकि वहाँ 'शांत रस' के लिये कोई स्थान नहीं। कुछ विद्वान 'स्नेह' को स्थायीभाव मान कर 'वात्सल्य' को एक दसवां रस मानते हैं। कुछ विद्वान 'अनुराग' को स्थानीय भाव मानकर 'भक्ति' को ग्यारहवाँ रस मानते हैं परन्तु परम्परा गत प्रचलित रस नौ ही हैं, क्योंकि 'अनुराग' और 'स्नेह' को पंडित 'रति' के अंतर्गत लेकर भक्ति और वात्सल्य को भी श्रृंगार के ही अंतर्गत ले लेते हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि काव्य के लिये अलंकार और रस उसके बाह्यरूप और आत्मा के समान ही कला को जीवित रखने के लिये दोनों ही नितांत आवश्यक है। रस विहीन काव्य काव्य नहीं है और अलंकार-विहीन काव्य सुन्दर नही है। सुन्दर न होने पर भी काव्य अपने आसन से गिर जाता है और उसके पठन पाठन में जो अलौकिक आनंद आना चाहिये वह नहीं आ पाता। अंत में रस और अलंकार के विषय को समाप्त करते हुए हम विद्यार्थियों को यह और बतलावें कि भरत मुनि और विश्वनाथ जी ने रस को काव्य की आत्मा माना है और यही मत आज के विद्वान भी मानते हैं। दण्डी मम्मट आदि का अलंकार को काव्य की आत्मा मानने वाला मत आज के काव्यकारों के लिये मान्य नहीं है।

काव्य में रस और अलंकार संक्षिप्त रूप में—

१. अलंकार के लिये काव्य की रचना नहीं होनी चाहिये। काव्य की सौंदर्य वर्धकता के लिये अलंकारों का प्रयोग होना चाहिये।

२ रस काव्य की आत्मा है। बिना रस काव्य निर्जीव पत्थर के पुतले के समान है।

३ रस स्थायीभाव के रूप में हृदय में हर समय वर्तमान रहता है जो परिस्थिति पाकर पनपता है।

४. उपसहार।

काव्य की कसौटी

कोई काव्य हीन है अथवा उत्कृष्ट इसकी कसौटी काव्य के गुण और दोष हैं। इस लिये उस कसौटी का निर्णय करने से पूर्व यह आवश्यक है कि काव्य के उन गुण और दोषो का निर्णय किया जाये कि जिनके आधार पर काव्य का हीनत्व और उत्कृष्टत्व निर्धारित करना है। आज के समालोचक और प्राचीन विचारको के मत मे अनेकानेक दृष्टिकोणाँतर हो गये हैं। प्राचीनतम विचारक अथवा यो कहिये कि काव्याचार्य अलकार को काव्य की कसौटी मानते थे। इस विचार के प्रवर्तको के रूप में हम मम्मटाचार्य और आचार्य उद्‌भट को ले सकते हैं। उस समय अलकार के अतर्गत केवल शब्दालकार और अर्थालकार ही नहीं आते थे वरन काव्य के गुण, दोष, रीती इत्यादि सभी विचार इन चमत्कार वादी आचार्यों के विचार से अलकार के ही अ तर्गत आ जाते थे।

धीरे २ अलकार का यह स्थूल विचार खड खड होकर रसवाद, रीतिवाद, वक्रोक्तिवाद, ध्वनिवाद इत्यादि के क्षेत्र मे अवतीर्ण हुआ और आगामी आचार्यों ने समय समय पर अपने विचार प्रकट किये। इन सब वादों के आचार्यों ने अपने अपने वाद को काव्य की कसौटी माना है। परन्तु यदि हम विश्लेषणात्मक रूप से विचार करें तो उन में से एक भी वाद काव्यत्व की सर्वाङ्गीणता के विचार से सुन्दर काव्य की कसौटी नही बन सकता। यह सभी वाद काव्य के आंगिक निरीक्षण

मे ही सफल हो सकते हैं विषय की सम्पूर्ण रूप से विवेचना नहीं कर सकते। पण्डित राज जगन्नाथ ने "रमणीय अर्थ" वाले काव्य को सुन्दर काव्य कहा है। विश्वनाथ ने "रस" को काव्य की कसौटी माना है। आचार्य उद्‌भट ने "अलकार" को काव्य की आत्मा माना है। आचार्य कुंतल के विचार से 'वक्रोक्ति' प्रधान काव्य सर्वोत्तम काव्य है। आचार्य वामन ने "रीति" को ही काव्य का सर्वोत्तम गुण कहा है। इस प्रकार प्राचीनतावलम्बियों ने काव्य की यह पाच कसौटियाँ निर्धारित की हैं। साहित्य के मर्मज्ञों ने इन्हीं पांच विचारों के मताधीन ध्वनि सम्प्रदाय, रस सम्प्रदाय, अलकार सम्प्रदाय, वक्रोक्ति सम्प्रदाय, और रीति सम्प्रदाय का निर्माण किया और यह पाचों धाराएं समय समय पर अपनी अपनी विशेषता के साथ हिन्दी साहित्य मे प्रवाहित होती आ रही हैं।

ऊपर दी गई पाचों धाराओ के आचार्यों ने अपना मतनिर्धारित करने में हठ से काम लिया है समन्वय की भावना से नहीं। किसी भी विचार के निर्धारित करने मे जब हठ से काम लिया जायेगा तो सत्य को तिलांजलि देनी होगी। यही कारण है कि किसी तथ्य निरूपण में कभी भी हठ से कम नहीं लेना चाहिए। जब हम काव्य की कसौटी पर विचार करते हैं तो हमे विचारना चाहिये कि हमारा विचार किसी भी ऐसी वस्तु पर केन्द्रित न हो कि जिसका सम्बन्ध काव्य के किसी आंशिक रूप से हो। आज का विचारक काव्य के किसी गुण को काव्य की कसौटी न मान कर पाठक या रसिक हृदय व्यक्ति के हृदय को काव्य की कसौटी मानता है। रसिक हृदय रचना पढ़कर एक दम कह सकता है कि अमुक काव्य किस श्रेणी का है? जो रचना पाठक के हृदय को जितने निकट से छूने में सफल होती है वह रचना उतनी ही श्रेष्ठ है। इस प्रकार सुसकृत-रासिक पाठक या श्रोता का हृदय ही उत्तम काव्य की कसौटी हुआ। सभी रसिक हृदय व्यक्तियों में भी

अंतर होता है और फिर ससार के सभी व्यक्ति सुसस्कृत था रसिक भी नहीं हो सकते। इस लिए यह कसौटी भी सबके लिए मान्य नही हो सकती।

वास्तव मे काव्य के परखने के लिये किसी निश्चित कसौटी को निर्धारित करना एक समस्या है। काव्य-समीक्षा के लिये किसी निश्चित सिद्धात का निरूपण करना कठिन है। किसी भी काव्य को परखने के लिए ऊपर दिये गये वादो को भी ध्यान मे रखना चाहिये। यह सत्य है कि उनमें से पूर्ण एक भी नहीं है परन्तु आशिक रूप से सभी का अच्छे साहित्य मे किसी न किसी रूप मे समावेश रहा है। रीति, वक्रोक्ति और अलकार यह काव्य के गुण और शैलियाँ भी कही जा सकती है। गुण और शैली दोनों का ही काव्य मे महत्व है। जिस सीमा तक इनका काव्य मे महत्व है उसी सीमा तक यह काव्य की कसौटियां भी हैं। यह तीनो ही काव्य के गुण हैं सम्पूर्ण काव्य के नही, किसी किसी काव्य में इनमें से एक की प्रधानता भी हो सकती है और किसी मे दो की।

'रीति' 'वक्रोक्ति' और 'अलकार' के बाद रह जाते है ध्वनि और 'रस'। कुछ आचार्य 'ध्वनि' को काव्य मानते हैं और कुछ रस को परन्तु हम इन पाचों के समन्वय को काव्य कहते हैं। ध्वनि' और 'रस' काव्य के वह प्रधान गुण हैं कि जिन्हे आचार्य आत्मा कह कर पुकारते हैं। काव्य मे भाव, विभाव, अनुभाव और सचारी भाव यह सभी खोजने पडते हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं कि अच्छे काव्य मे यह सभी प्रचुर मात्रा मे मिल सकें। किसी काव्य मे किसी विशेष गुण का आधिक्य होता है तो दूसरे मे किसी दूसरे का।

ऊपर काव्य के अन्तर्गत जिन जिन तत्वों का हमने विवेचन किया है उनमे बौद्धिक तत्व पर विचार नहीं किया गया। आज के युग मे मनोविज्ञान का स्थान साहित्य मे प्रधान है। केवल रस और ध्वनि के

ही आधार पर कोई साहित्य सर्वगुण सम्पन्न नहीं हो सकता। आज का समालोचक साहित्य के अन्य तत्वों पर विचार करने से पूर्व मनोवैज्ञानिक तत्व को खोजता है। 'रस' का सम्बन्ध हृदय से है। मनोविज्ञान का सम्बन्ध मस्तिष्क से है। इस प्रकार मानव में हृदय और मस्तिष्क यही दो प्रधान स्थान प्रतीत होते हैं जिनका साहित्य से सम्बन्ध है। किसी काव्य में हृदय तत्व की प्रधानता रहती है तो किसी में बुद्धि तत्व की। दोनों ही प्रकार के साहित्य उच्च कोटि के साहित्य हो सकते हैं। हिन्दी के भक्ति साहित्य में हृदय पक्ष प्रधान है तो संत साहित्य में बुद्धि पक्ष। जिस साहित्य में दोनों पक्षों का सामंजस्य हो वह सबसे सुन्दर काव्य हो सकता है। इस प्रकार हमने काव्य का विवेचन करके उसके पांच वादों पर विचार किया और अंत में काव्य के हृदय पक्ष और बुद्धि पक्ष पर दृष्टि डाली। अब प्रश्न रह जाता है उत्तम काव्य की कसौटी के निर्धारित करने का। इसलिये काव्य कसौटी पाठक का हृदय और उसकी बुद्धि ही ठहरते हैं। इन्हीं दो मानव के पक्षों पर उत्तम काव्य का माप दण्ड निर्धारित किया जा सकता है।

विषय पर संक्षिप्त विचार—

१ काव्य के प्रधान गुण कौन कौन से हैं ?
२ रीति वाद, वक्रोक्तिवाद, अलंकार वाद, ध्वनि वाद और रसवाद का स्पष्टीकरण।
३. अच्छे काव्य में सभी गुणों के समन्वय की आवश्यकता है।
४ अच्छे काव्य में हृदय-पक्ष और बुद्धि-पक्ष दोनों अथवा एक की भी प्रधानता रह सकती है।
५ उपसंहार।

कुछ काव्य-कला सम्बन्धी निबन्धों की रूप-रेखायें

आधुनिक साहित्य में रस का स्थान

१ रस और प्रज्ञात्मकता, ज्ञान और राग के पारस्परिक सम्बन्ध।

२ प्राचीन साहित्य-शास्त्रों में की गई रस-विवेचना और उसका सक्षिप्त विचार।

३ आधुनिक कविता व्यजनात्मकता (Objective) की ओर से आत्म व्यंजनात्मकता (Subjective) की ओर बढ रही है।

४ आत्मव्यजनात्मक कविता पर बगला और अग्रेजी साहित्य का प्रभाव है जिसमे रस-सृष्टि पर ध्यान नहीं दिया गया। यह सब भाव प्रधान कवितायें हैं।

५ आज का साहित्य कोरा रस-प्रधान साहित्य नहीं है उस पर बुद्धि-वाद का पूर्ण प्रभाव है, और बिना मनोविज्ञान के आज जिस साहित्य का निर्माण किया जायगा वह सम्मान को प्राप्त नहीं हो सकता।

६ प्राचीन रस के दृष्टिकोणों में भी अन्तर होता जा रहा है। वीर रस केवल भूषण और सूदन की मार-काट तक ही सीमित नहीं रह सकता। आत्मबलिदान और आत्मपीडन की भावनाओं को लेकर आज वीर रस पूर्ण कवितायें लिखी जाती हैं। 'वीभत्स' मे केवल रक्त, मास, मज्जा इत्यादि का नाम लेने भर से काम नहीं चल जाता। शृ गार का क्षेत्र केवल 'परकीया' और 'सामान्या' तक ही सीमित नही रहा। शृंगार और दाम्पत्य का अन्तर कवियों ने आज स्पष्ट कर दिया है। आज के कवियों का सम्मान केवल रस सिद्धान्त के रीतिकालीन विश्लेषणों तक ही सीमित नही है। उसमें विभिन्न भावों का चमत्कार और सौंदर्य भर कर मुक्तक कविताओं की रचना की जाती है।

७ आज के मुक्तक-कविता-क्षेत्र में रस परिपाक के लिये कम सम्भावना है। छोटे २ गीतो मे अनुभाव विभाव इत्यादि भरकर रस

उत्पादन की चेष्टा नहीं की जाती। आलम्बन, उद्दीपन, विभाव, अनुभव इत्यादि सभी को यदि उस छोटी सी कविता मे ठूंसकर रस पैदा करने का प्रयत्न किया जाय तो न रस ही उत्पन्न होगा और न भावों की ही तीव्रता और सौंदर्य उसमें आ पायेगा।

८ आज के बदलते हुए दृष्टिकोण मे रसो के वर्तमान प्रयोगों को देखना होगा और उनका अन्तर समझना होगा। रस के साथ भावों का समावेश और आत्माभिव्यक्ति का मनोवैज्ञानिक पुट का आना आवश्यक है। इस प्रकार वर्तमान परिस्थिति मे रस का जो रूप बन गया है उस पर नवीन प्रकार से विचार करने की आवश्यकता है और इस बात की भी आवश्यकता है कि समय और आवश्यकता के अनुसार उन्हे परिवर्तित और परिवर्धित किया जाये।

काव्य मे करुणा रस का स्थान

१ काव्य शास्त्र के आचार्यों ने 'शृंगार' और 'करुण रस' को रस-राज माना है। भवभूति ने करुण-रस को स्वतन्त्र मानकर अन्य रसों को इसका विकार मात्र माना है।

२ शृंगार रस जीवन की सबसे अधिक परिस्थितियो को छूता है। यह सब रसों से अधिक व्यापक है। इसमे सबसे अधिक सचारी भाव आते हैं। इसलिये इसे रसराज कहा जाता है परन्तु स्थाई प्रभाव और मनोवृत्तियों के परिष्कार को यदि काव्य मे हम प्रधानता दें तो 'शृंगार' को रस राज न कहकर हमें 'करुण रस' को ही रस राज कहना होगा।

३. करुण रस की अनुभूति का विश्लेषण। करुण रस मे अपने दुःख के साथ ही साथ पर दुःख की भावना का प्राधान्य रहता है और पर दुःख मे भी आत्मा उसी प्रकार द्रवित हो उठती है जिस प्रकार अपने दुःख मे।

४. ' मनुष्य के अन्त करण मे सात्विकता की ज्योति जगाने वाली करुणा है।" राम चन्द्रशुक्ल। जैन और बौद्ध धर्म मे करुणा रस को प्रधानता दी गई है। मानव के हृदय पर किसी भी मनोवृत्ति का इतना उद्वेग पूर्ण और स्थाई प्रभाव नहीं पड़ता जितना करुणा का पड़ता है।

५ करुणा के कई भेद किये जा सकते हैं, जैसे स्त्री-विछोह, पति-विछोह, पुत्र-विछोह इत्यादि। पति विछोह मे पाद्मावत में नागमती की क्या दशा होती है इससे हिन्दी साहित्य के पाठक पूर्ण परिचित है। पुत्र-विछोह में दशरथ का प्राणात हो जाता है। यह दो प्रधान करुण रस के कारण हैं। इनके अतिरिक्त धन सम्पत्ति को लुट जाने पर भी करुणा का उदय होता है परन्तु यह कारण कवि हृदन पर विशेष प्रभाव नहीं डालता।

६. करुणा की प्रवृत्ति मानव की श्रेष्ठतम प्रवृत्ति है जिसका प्रभाव भावुक हृदय पर होना अनिवार्य है। वैभव को देख कर चाहे हम उसकी ओर आकर्षित न हों परन्तु किसी को यदि वास्तव में करुणाजनक परिस्थिति में देखते हैं तो चाहे हम उसे सहायता पहुँचाने के योग्य भी न हो परन्तु हमारा हृदय अवश्य पिघलने लगेगा।

७. हिन्दी साहित्य मे सम्पूर्ण रूप से किसी कवि ने करुण रस प्रधान ही रचना की हो ऐसी बात न होते हुए भी प्राचीन साहित्य मे सूर और नन्ददास के भ्रमरगीत तथा जायसी का नागमती विरह वर्णन विशेष उल्लेखनीय हैं। आधुनिक कविता-साहित्य में करुण रस पर प्रबन्धात्मक और मुक्तक दोनों प्रकार की उच्चकोटि की रचनाये मिलती हैं। मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, पंत, महादेवी वर्मा, बच्चन इत्यादि कवियों ने उच्चकोटि की करुण रस प्रधान कवितायें की हैं।

मानव को आशावादी होने का पाठ पढ़ाता है। मानव जीवन से नैराश्य को नष्ट कर देने के लिये कल्पना नितांत आवश्यकता है। इस प्रकार कल्पना काव्य का वह प्रधान गुण है कि जिसके बिना काव्य की भित्ति खड़ी ही नहीं की जा सकती और यदि हो भी जायेगी तो उसमें सौंदर्य और चमत्कार का अभाव रहेगा और यह दोनों काव्य के प्रधान गुण हैं।

काव्य में शैली की विशेषता

१ परिभाषा—शैली अंग्रेजी शब्द (Style) का पर्यायवाची है। मन के विचार, बुद्धि के चिंतन और हृदय की अनुभूतियों के काव्य में स्पष्टीकरण के ढंग को शैली कहते हैं।

२. यह स्पष्टीकरण अतः भाषा के कारण, भावनाओं के कारण, चिंतन के कारण और व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण होता है। इस लिये शैलियों का विभाजन भी इन्हीं विशेषताओं के आधार पर किया जाता है।

३. विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक और तर्क प्रधान चार प्रधान साहित्य की शैलिया मानी जाती हैं और इन चारों में अपनी अपनी विशेषतायें होती हैं। इन सभी शैलियों के मूल में मानव की दो प्रधान प्रवृत्तिया कार्य करती हैं। (१) चिंताधर्मी प्रवृत्ति और (२) अनुभूति धर्मी प्रवृत्ति।

४ भाषा सम्बन्धी शैलिया भाषा के गुणों और दोषों के आधार पर बनती हैं जो माधुर्य, ओज, प्रसाद इत्यादि गुणों से युक्त होती हैं।

५. व्यक्ति प्रधान शैली में लेखक का व्यक्तित्व झलकता है। उसकी व्यक्तिगत विशेषतायें उसके लेख की भाषा और उसके भावों में इस प्रकार प्रयुक्त होती हैं कि उस लेख को पढ़ते ही पाठक कह उठता है कि अमुक रचना अमुक व्यक्ति की है।

६. कुछ आचार्य रसो के आधार पर भी नवीन शैलियो का निर्माण करते हैं। आधुनिक मनोवैज्ञानिक लेखक अपनी शैली पृथक ही मानते हैं।

७ इस प्रकार काव्य के आकार मे शैली को यदि हम काव्य की देह नही कह सकते हैं। तो उसकी वेश-भूषा अवश्य कह सकते है। काव्य की सजावट, काव्य का भाव, काव्य का विषय इन सभी का शैली से घनिष्टतम सम्बन्ध है। शैली काव्य में आकर्षण पैदा करती है और पाठक के मन मे काव्य को पढ़ने की रुचि पैदा करना भी काव्य-शैली का ही गुण है। शैली विहीन काव्य बेपैंदी के लोटे के समान है जिसका कोई स्थायित्व नही।

साहित्य किस लिये ?

१. साहित्य किस उद्देश्य से लिखा जाता है इसके विषय में अनेकों मत प्रचलित हैं और सभी मतधारी तर्क द्वारा अपने पक्ष को पुष्ट करते हैं। मनोवैज्ञानिक साहित्य को 'अहं' के स्पष्टीकरण का माध्यम समझता है। उसकी दृष्टि मे 'आत्म प्रकाशन' ही साहित्य का चरम लक्ष है। आशावादी साहित्य द्वारा भविष्य के सुखमय होने का स्वप्न देखता है। आदर्शवादी—समस्त ससार में प्यार और सहिष्णुता की कल्पना करता है। नीतिवादी साहित्य द्वारा मन और आत्मा का परिष्करण करना चाहता है। कलावादी साहित्य का उद्देश्य केवल 'कला' को मानता है।

२ साहित्य के प्रधान अग उसकी भाषा, भाव और कल्पना हैं। भाषा काव्य का साधन है साध्य नहीं। परन्तु साहित्यकार के लिये यह उतनी ही आवश्यक है जितनी कि किसी भवन निर्माता को भवन बनाने की सामग्री, या मूर्तिकार के लिये पत्थर अथवा चित्रकार के लिये उसी की तूलिका, उसका कागज और उसका

कपड़ा। भाषा के पीछे दौड़ने वाले काव्य शैली को काव्य का सर्व-स्व मान लेते हैं।

३. विचारों या भावों का कलात्मक स्पष्टीकरण काव्य कहलाता है। उपयोगात्मक या व्यवसाई ढग से लिखी गई रचना काव्य की कोटि मे नहीं आती। साहित्य में कल्पना का स्थान अवश्य है परन्तु वह निरर्थक नहीं होनी चाहिये।

४ काव्य का विवेचन करते समय सार्थकता को ध्यान में रखना नितांत आवश्यक है। वह काव्य जो सार्थक नही काव्य कहलाने का भी अधिकारी नहीं हो सकता। काव्य किसी बात को कलात्मक ढग से कहने का नाम है। कलात्मक ढग से कही गई बात का प्रभाव उपदेशात्मक बातो की अपेक्षा अधिक होता है। इस लिये समाज के उत्थान और पतन मे जो हाथ साहित्य का रहता है वह अन्य किसी वस्तु का नहीं रहता। साहित्य समाज की नीव-शिला है और इसी के धरातल पर समाज के चरित्र का निर्माण होता है।

५ काव्य का प्रवाह रस, नीति और बुद्धिवाद तीन धाराओं मे हुआ है। तीनों के पृथक पृथक् दृष्टिकोण हैं परन्तु सर्वोच्च साहित्य वही है जिसमे तीनों का समन्वय मिले

६. साहित्य विवेचन मे हमें दो प्रधान वाद दृष्टिगोचर होते हैं एक आनन्दवादी और दूसरा उपयोगितावादी। आनन्दवादी एक प्रकार से व्यक्ति प्रधान है और उपयोगितावादी समाज प्रधान। समाज प्रधान जनता का अपना साहित्य होता है इसी लिये उसके प्रचार और व्यापकत्व में भी सहयोग मिलता है। व्यक्ति-प्रधान साहित्य विशेष रूप से मनोवैज्ञानिक और सीमित होता है, इस लिये इसकी पहुँच उतनी व्यापक नहीं हो पाती।

७ इस प्रकार साहित्य को हम केवल मनोरजन के लिये नहीं मान सकते। साहित्य का बहुत बड़ा उपयोग है और साहित्यकार के

ऊपर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। साहित्यकार का सृजन पकौड़ी और मिठाई बनाने वाले के समान नहीं है। उसका प्रभाव व्यापक है, स्थाई है। इसलिये उस काव्य मे भी व्यापक और स्थाई गुणों का वर्तमान होना आवश्यक है। काव्य का प्रभाव पाठकों के आचरण पर पड़ता है, मस्तिष्क पर पड़ता है और उनके जीवन पर पड़ता है इसलिये साहित्यकार को कोई अधिकार नहीं है कि वह पाठकों के जीवन से खिलवाड़ करे। साहित्य समाज का पथ निर्देशक बनकर आना चाहिये, पथ भ्रष्टा नहीं।

साहित्य-क्षेत्र मे गद्य और पद्य

१. प्राय सभी देशों का प्राचीनतम साहित्य पद्य में मिलता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि काव्य का प्रारम्भ पद्य से होता है।

२ प्राचीन काल मे न पुस्तकों का साधन था और न छापेखानों का। विविध वैज्ञानिक दिशाओं मे ज्ञान का विस्तार भी आज जैसा नहीं था। विद्या का गुण समझा जाता था कि 'विद्या कंठ" अर्थात् जो कुछ ज्ञान कंठस्थ है बस वही तुम्हारी विद्या है। एक काल वह रहा है जब काव्य-ग्रंथ पिता पु को कंठस्थ करा देता था और फिर पुत्र अपने पुत्र को। इसी प्रकार काव्य स्थाई रहता था।

३ उस काल में काव्य सूत्र रूप मे सुरक्षित रखा जाता था। बड़े बड़े उपन्यासों को कंठस्थ करना एक समस्या थी और फिर पद्य की अपेक्षा गद्य को कंठस्थ करना भी कठिन कार्य था। इसीलिये उस काल मे पद्य की रचना हुई भी तो भी वह काव्य का रूप नहीं बन सकी।

४. आधुनिक काल में जब कागज़ और छापेखानों का आविष्कार हो गया और मोटे से मोटे साहित्यिक ग्रन्थों के भी सुरक्षित रखने का

साधन बन गया तो साहित्यिक क्षेत्र मे पद्य का स्थान गद्य ने लेना ारम्भ कर दिया। भारतेन्दु-युग से पूर्व हिन्दी साहित्य मे गद्य लिखी अवश्य गई परन्तु साहित्य के दृष्टिकोण से उसका कोई विशेष महत्त्व नहीं

५ पद्य का स्थान गद्य ने लेना प्रारम्भ कर दिया और काव्य का क्षेत्र भी व्यापक होने लगा। जहाँ साहित्य में कविता और नाटक ही लिखे जाते थे वहा उपन्यास, कहानी, गद्य-गीत, जीवनियाँ और समालोचनाओं का अपार साहित्य लिखा जाने लगा।

६ पद्य मे जहाँ रागात्मक वृत्तिप्रधान रहती है वहा गद्य में व्यापक चरित्र-चित्रण और विस्तार के साथ वर्णन करने की शक्ति वर्तमान है। आज गद्य और पद्य दोनों में अपार साहित्य का सृजन हो रहा है और पद्य का स्थान गद्य ने ले लिया है। गद्य मे यह विशेषता है कि इसके अन्तर्गत हर विषय का स्पष्टीकरण हो सकता है। पद्य में सभी विषयों पर रचना नहीं की जा सकती। पद्य के लिये कुछ विशेष ही विषय चुनने होते हैं।

काव्य के प्रमुख अंग

१ काव्य के दो मुख्य अंग हैं (१) दृश्य-काव्य और (२) श्रव्य-काव्य।

२ दृश्य काव्य के अन्तर्गत नाटक आता है। नाटक रूपक का ही पर्यायवाची शब्द हो गया है। नाट्य शास्त्र के पडितो ने दस प्रकार के रूपक और अठारह कार के उपरूपक माने हैं। नाटक रग मंच पर पात्रों द्वारा खेला जाता है और इस प्रकार वह दृष्टि के सम्मुख अपना प्रदर्शन करके दर्शकों को प्रभावित करता है।

३ नाटक को दृश्यकाव्य माना अवश्य गया है परन्तु श्रव्यकाव्य के भी गुण होते हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार बाबू जयशंकर

प्रसाद के नाटक दृश्य काव्य के अन्तर्गत रखने की अपेक्षा श्रव्य-काव्य के अन्तर्गत बहुत सुगमता से रखा जा सकता है ।

४. श्रव्यकाव्य के अन्तर्गत महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, गद्य काव्य, जीवनियां, इत्यादि आते हैं ।

५ उपसंहार—काव्य के प्राचीन अङ्गों मे आज वृद्धि होगई है । पहिले केवल भांति भांति की कविताओं को ही काव्य कहा जाता था परन्तु आज गद्य का साहित्य मे स्थान बन जाने से काव्य के अन्तर्गत उपन्यास, कहानी, निबन्ध इत्यादि भी आगये है । इस प्रकार काव्य के अङ्गों मे बराबर वृद्धि होती जा रही है और काव्य हर प्रकार से उन्नतिशील है ।

धार्मिक और दार्शनिक निबंध

हिन्दू धर्म और उसके धर्म-ग्रन्थ

वर्तमान हिन्दू धर्म प्राचीन आर्यत्व का अवशेष है। जिस समय आर्य भारत मे आये तो यहाँ पर द्राविड लोग रहते थे। आर्यों ने उन मे कुछ को तो अपना दास बना कर शूद्र नामकरण कर दिया और उनमें से कुछ दक्षिण भारत को भाग गये। उत्तर भारत पर आर्यों का धीरे धीरे साम्राज्य स्थापित होगया और आर्य-धर्म भारत का प्रधान धर्म बन गया।

आर्य ऋषि-मुनियों ने अपने धर्म-ग्रन्थों का निर्माण किया। वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण, उपपुराण इत्यादि आर्यों के प्रधान ग्रथ सस्कृत भाषा में लिखे गये। इनके अतिरिक्त गीता, ब्राह्मण-ग्रन्थ, तन्त्र-ग्रन्थ, षठ् दर्शन और उनकी टीकायें इत्यादि भी बहुत से ग्रथ हैं। इन ग्रन्थों में रामायण, महाभारत और पुराणों को छोड़कर शेष ग्रथों में कर्मकांड और आध्यात्मिक चिंतन दिया गया है।

मध्य-युग में आकर यही आर्य धर्म हिन्दू धर्म कहलाया और इसमे अनेकों प्रकार के विचारक जन्म लेकर आये। अनेकों वादों का हिन्दू धर्म में उदय हुआ। नये नये आचार्यों ने अपने नये नये दृष्टिकोण जनता के सामने रखे और धर्म भी विविध धाराओं में बहने लगा। एकेश्वरवाद, सर्वेश्वरवाद, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत-वाद यह प्रधान प्रवृत्तिया धर्म के क्षेत्र में आगई। इस प्रकार आर्यों की प्राचीन और नवीन अनेकों धार्मिक प्रवृत्तियों के साथ अनेकों ग्रन्थ लिखे

गये परन्तु जिन्हें हिन्दुओं के प्रतीक-धर्मग्रन्थ कह सकते हैं वह केवल रामायण, महाभारत और पुराण ही हैं। हिन्दुओं के धार्मिक विश्वासों का सम्बन्ध केवल इन्हीं ग्रन्थों से है।

हिन्दू शब्द आर्यों को मुसलमानो ने दिया जिसका अर्थ है 'काफिर'। यह अपमान सूचक, शब्द था परन्तु धीरे धीरे रूढि हो गया और व्यापक भी। इसी शब्द के आधार पर हमारा धर्म हिन्दू धर्म हुआ, जिस समय से इस धर्म और सस्कृति के साथ हिन्दू शब्द का सम्मिलन हुआ है उस समय से इस धर्म को परतन्त्र परिस्थितियों मे रहना पडा है। देश के परतन्त्र होने पर भी पूर्वजों ने धर्म का ढाचा इतना सुदृढ बना दिया था कि घोर आपत्तिकाल मे भी धर्म की बराबर रक्षा होती रही और धर्मवीरो ने प्राणो की आहूतिया समय समय पर दे दे कर भी धर्म की रक्षा की। हिन्दू धर्म के लालों ने हिन्दू धर्म की रक्षा क लिये हसते हसते बलिदान दिये है। गुरु गोविन्दसिंह के बच्चे, बन्दा वैरागी, हकीकतराय, स्वामी श्रद्धानन्द इत्यादि के अमर बलिदान हिन्दू धर्म के इतिहास मे स्वर्ण अक्षरो से लिखे हुए हैं। उनकी अमर कहानिया आज भी धर्म परायण शिक्षित नारिया अपने बच्चों को सुनाकर उनमें धार्मिक भावनाओ का समावेश करती हैं।

हिन्दू धर्म चार प्रधान वर्णों में विभाजित है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। प्रारम्भ में इन चारो वर्णों का निर्माण जन्म के आधार पर न होकर कर्म के आधार पर हुआ था परन्तु धीरे २ धर्म मे विचारको का स्थान कर्मकाडी रूढ़िवादियो ने ले लिया और कर्म का स्थान भी जन्म ने लेना प्रारम्भ कर दिया। धीरे धीरे इन चारों वर्गों का भी विभाजन होना प्रारम्भ होगया और हिन्दुओ मे अनेकों जातियो का उदय हुआ। अनेकों प्रकार के ब्राह्मण बन गये, अनेकों प्रकार के वैश्य हो गये और इसी प्रकार शूद्रो मे भी विभाजन हो गया। हिन्दू धर्म के

साथ ही साथ हमें भारत मे कुछ अर्ध हिन्दू जातिया भी मिलती हैं जिन्हे हम भुला कर नही चल सकते। उदाहरण के लिये सिख सम्प्रदाय और जैनियों को ही ले सकते है। इन के धर्म ग्रथ पृथक अवश्य हैं परन्तु रीति रिवाजो मे यह हिन्दुओ की ही भाँति गौ की रक्षा करना अपना धर्म समझते है, हिन्दू त्यौहारो को मनाते हैं और सिर पर चुटिया भी रखते हैं।

हिन्दू धर्म मे जातियो का उदय हुआ। इस से समाज और धर्म छिन्न-भिन्न होता गया। जाति विद्वेश की मात्रा बढी और पारस्परिक घृणा को प्राश्रय मिला। जाति के उत्थान मे यह सहायक न होकर बाधक हुई। अनानुपिक पवृत्तियाँ इनमे जागृत हो गईं और मानवता तथा सभ्यता का धीरे धीरे ह्रास होने लगा। जाति प्रथा का एक लाभ अवश्य हुआ कि इसने किसी न किसी रूप में आर्यत्व की शुद्धरक्षा को स्थाई रखने मे सहायता दी।

हिन्दू धर्म आज तक जीवित है किस आधार पर? केवल अपने धर्म ग्रन्थो के आधार पर वह जीवित है। इन्हीं ग्रन्थों ने धर्म को जीवन प्रदान किया है और हिन्दू सस्कृति को मर्म की थाती के रूप में सुरक्षित रखा है। यों जितने भी ग्रथ हम ऊपर गिना चुके हैं सभी महत्वपूर्ण हैं परन्तु यहा हम विशेष रूप से रामयाण और महाभारत पर ही विचार करेंगे क्योंकि सस्कृत ग्रथ धीरे धीरे केवल पडितों के धन बन गये और साधारण जनता का उन तक पहुंचना असम्भव हो गया। जनता ने गीता, रामायण और महाभारत की कथाओं पर ही सतोष किया और जो इनसे बढ़े उन्होने पुराणों तक अपनी पहुंच की। इससे अधिक नहीं।

रामायण—रामायण की रचना महाकवि वाल्मीकि ने की और, गोस्वामी तुलसीदास ने उसको भाषा मे लिखा। तुलसी कृत रामायण ने जनता मे वह सम्मान प्राप्त किया जो सम्भवत. आर्यों के आदि

काल मे वेदो ने प्राप्त किया होगा। आज रामचरित मानस हिन्दू धर्म का प्राण है। रामायण आपत्ति काल में सुदृढ रहना सिखाता है और कर्तव्य परायणता तो उसमें कूट कूट कर भरी है। रामायण मे राम-राज्य का इतना सुन्दर चित्र ससार के सामने रखा है कि आज के युग का महान राजनीतिज्ञ गाधी भी उससे प्रभावित हुआ और उसने भारत का कल्याण भविष्य मे रामराज्य की स्थापना में ही सोचा। रामायण, व्यक्ति के लिये है, समाज के लिये है, धर्म के लिये है, और देश के लिये है। रामायण मे जितनी भी प्रवृत्तिया मिलती है वह सभी व्यापक हैं, सब काल के लिये हैं। जीवन की साधारण प्रवृत्तियों मे कभी कोई अ तर नही होता।

महाभारत-गीता—गीता हिन्दू धर्म का वह महान उपदेश है कि जिसका सम्मान न केवल भारतवर्ष मे ही है वरन अन्य देशो मे उसे बडे चाव से पढा जाता है। लोकमान्य तिलक ने गीता के ही आदेश पर चलकर भारत में असहयोग आन्दोलन को जन्म दिया और बाद में महात्मा गाधी ने उसे अपनाया। गीता का महान उपदेश—

अधिकार खोकर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है।
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दड देना धर्म है॥

इसी बात को लेकर लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से टक्कर ली और भारत को स्वतन्त्र कराया। हिन्दू धर्म ग्र थो मे कितनी महान शक्ति है इस से हम इसका अनु-मान कर सकते है। हिन्दू धर्म ग्रन्थ, हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति के प्राण हैं, जीवन हैं, और इन्हीं के बल पर वह युग युग तक अपने को स्थाई रख सकेगा।

विषय पर संक्षिप्त विचार—

१ प्रस्तावना—आर्यधर्म का प्रसार।
२ आर्यों के प्रधान ग्रथ और उनका प्रभाव।

३ मुसलमान काल मे हिन्दू धर्म का विविध रूपों मे फैलना।
४ आधुनिक राजनीति पर रामायण और गीता का प्रभाव।
५. उपसहार।

हिन्दू धर्म और विज्ञान

धर्म और विज्ञान दोनो परस्पर विरोधी विचार जन्य हैं। धर्म का उद्गम श्रद्धा है तो विज्ञान का तर्क एक अनुभूति आश्रित है तो दूसरा बुद्धिगम्य। धर्म का जन्म हृदय सेहोता है तो विज्ञान का मस्तिष्क में। धर्म रूढियो पर आश्रित है और विज्ञान प्रगतिवाद पर, खोज पर, नवीन दृष्टिकोण पर। एक प्राचीन है और दूसरा नवीन। दोनों मे सामजस्य स्थापित करना कठिन है परन्तु यह सामजस्य स्थापित करने का प्रयत्न ब्रह्मसमाज तथा आर्य समाज के प्रवर्तकों ने किया है। अब विचारणीय बात यह है कि क्या वास्तव मे धर्म का विचार से कोई सम्बन्ध नही और विज्ञान श्रद्धाशून्य है? हृदयवाद के लिये वहाँ कोई स्थान नहीं। हिन्दू धर्म के मूल तत्वो पर जब हम विचार करके देखते है तो हमें पता चलता है कि हिन्दू धर्म श्रद्धाश्रित न होकर तर्क और सत्य पर आश्रित है। उपनिषदों मे सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग पर ऋषियों ने विशेष बल दिया है।

धर्म का क्षेत्र दर्शन है। इस दर्शन में धर्म विचार करता है कि मानव और मानव का जीवन क्या है, अन्य जीव-जन्तुओं का जीवन क्या है? जीवन मे परिवर्तन का क्या स्थान है, जीवन क्या है और कैसे है, मृत्यु क्या है, जीवित और मृतक मे क्या अन्तर है, चेतना किसे कहते है, इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किया दुख, सुख क्या सत्य है या असत्य, मन क्या है, यह ससार मिथ्या है या सत्य—यह सभी प्रश्न दार्शनिक के प्रश्न हैं। धर्म की भी मूल समस्याये यही हैं। इन्हीं समस्याओं को धर्म ने सुलझाया है। और विज्ञान भी इन्हीं की वैज्ञानिक खोज में लगा हुआ है। अन्तर केवल दृष्टिकोण का है।

हिन्दू धर्म के अनुसार प्रकृति की शक्तिया प्रकाश ताप, स्थल, जल-वायु इत्यादि देवता कहलाती हैं। इनकी शक्तियाँ महान हैं। प्राण द्वारा मानव का इन महान शक्तियो से सम्पर्क स्थापित होता है। आर्य जाति ने इन महान शक्तियों की उपासना के लिये ही सब कर्मकाड की योजना की है, योगी प्राण शक्ति का सग्रह करके नाशकारी विकारों से आत्मा को मुक्त करता है और ऊर्ध्ववीर्य बनकर अमृत तत्व अर्थात अमरत्व को प्राप्त करता है। जीवन धर्माचार्यों और वैज्ञानिकों दोनो के लिये पहेली है, समस्या है। मृत्य के सम्बन्ध म दोनो की परिभाषायें मिलती जुलती ही हैं। ऊर्जित-प्राण होना जीवन है और अघ प्राण होना मृत्यु है। यह विचार दोनों को मान्य है।

जहा दर्शन और विज्ञान की खोज समाप्त होकर यह कह देती है कि बस इस से अधिक कुछ नही वहाँ से हिन्दू धर्म का प्रथम चरण प्रारम्भ होता है। धर्म जीवन मे सहृदयता और आशा का पाठ पढाता है। केवल निराश होकर बैठ रहने के लिये धर्म नहीं है। जीवन के रहस्य को सूक्ष्मरूप से समझने वाले जीवनदर्शी प्राचीन ऋषि-मुनियों ने इसी लिये धर्म में माया को प्राधान्य नहीं दिया, इसी लिये शकराचार्य का यह उपदेश नहीं दिया कि जीवन मिथ्या है, भ्रम, बुद-बुद के समान है, पहेली है। क्योंकि ऐसा ज्ञान होने के पश्चात् तो जीवन ही अकर्मण्य हो जाये। अगरेज़ी विचारक कवि भी इस विषय में कहना है—

"शोक भरे शब्दो मे मुझ से कहो न जीवन सपना है।"

मानव को जीवन मे श्रद्धा रखनी चाहिये। जीवन के प्रति अविश्वास रख कर मरने की अपेक्षा आत्मप्रतारणा के साथ जीना अच्छा है। आज पाश्चात्य वैज्ञानिक अपनी निरतर खोज के पश्चात् कहते हैं कि ससार अनत है परन्तु हिन्दू धर्म ने इस ज्ञान को पहिले ही जान लिया था। भगवान के विराट रूप की कल्पना मे ससार की अनतता

का आभास ऋषि-मुनियो ने दिया है। काग्भुशुण्ड जी भगवान राम के मुख मे जाकर कहते हैं।

उदर माझ जनु अडन राया, देखहु बहु ब्रह्मांड निकाया।
एक एक ब्रह्माड मैह रहउ बरसु सत एक।
यह विधि मैं देखत फिरेऊँ अडकटाइ अनेक ॥

जीवन की अनश्वरता का जो निर्णय आज के वैज्ञानिक अपनी सपूर्ण खोजों के पश्चात् कर चुके हैं वह निर्णय हमारे धार्मिक ऋषि मुनि न जाने कितने वर्ष पूर्व कर चुके हैं। इस अनन्त विश्व के एक साधारण अश को मनुष्य ग्रहण करता है अपनी बुद्धि के बल से और यह भी सब नहीं कर सकते। शेषनाग पर विष्णु के शयन करने से आचार्यों के अ ' हैं कि शेष अनन्त विश्व का प्रतीक होकर विष्णु को वर्तमान ससार के रूप मे सभाले हुए है।

इस प्रकार जीवन की सभी रहस्यात्मक प्रवृत्तियो पर हिन्दू धर्म के विचारकों ने विचार किया है, खोज की है। अध्ययन किया है और निरीक्षण करके जिन निर्णयो पर पहु चे है वहीं पर आज के वैज्ञानिक पहु च रहे हैं। क्षेत्र दोनो के पृथक पृथक नही हा साधन अवश्य दो है वैज्ञानिक वास्तविक वस्तुओं के विश्लेषण और निरीक्षण द्वारा किसी निर्णय पर पहुंचता है और धर्माचार्य का साधन है उसकी अनुभूति उसका आत्मबल और उसकी तपस्या।

धर्म के क्षेत्र मे किसी न किसी रूप मे रूढिवाद का आना अनिवार्य है परन्तु हिन्दू धर्म में त ' और चिन्तन के लिये पूर्ण स्थान है। उन पर हम कह चुके हैं कि ब्रह्म समाज और आर्य समाज का तो निर्माण ही तर्क पर हुआ है। इन दोनों ही धाराओं पर वैदिक काल का प्रभाव है। वेदों मे जिस विषय को भी लिया गया है तर्क द्वारा ही उसका प्रतिपादन किया गया है ब्रह्म वाक्य बनाकर या अन्ध विश्वास के साथ नहीं। हिन्दू धर्म अधविश्वासी धर्म न होने के

कारण आज के वैज्ञानिक युग मे भी सुगमता पूर्वक चल सकता है। और इसे अपने को बदलती हुई परिस्थितियो मे भी समुन्नत करने में किसी कठिनाई का अनुभव नही करना होगा।

विषय क सम्बन्ध मे संक्षिप्त विचार—

१ धर्म क्या है? विज्ञान क्या है? दोनो के पृथक पृथक क्षेत्र कौन कौन से हैं।
२ जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध में धर्म और विज्ञान का विचार।
३ धर्म श्रद्धा-मूलक है और विज्ञान तर्क मूलक।
४ हिन्दू धर्म अपने अध्यात्मवाद से जीवन के विषय में जो निर्णय अनेको वर्ष पूर्व दे चुका उसे आज के वैज्ञानिको को अपने एक्स पैरीमैंटों (Experiments) के पश्चात् मानना पडा है।
५ उपसहार।

हिन्दू-धर्म और राजनीति

हिन्दू धर्म प्राचीन आर्य धर्म का अवशेष है। अथवा रूपान्तर भी इसे कह सकते है। प्रारम्भ में आर्य जाति ने जब अपने को चार वर्णों मे विभाजित किया तो ब्राह्मण को मस्तिष्क का रूप दिया, क्षत्रिय बाहु, वैश्य उदर और शूद्र जघाओ के रूप मे ग्रहण किये गये। मानव शरीर में यह चारों ही भाग एक दूसरे के सहयोगी हैं और महत्व के विचार से कोई भी कम नही गिना जा सकता। परन्तु मस्तिष्क के सकेत पर क्योंकि सब को कार्य सचालन करना होता है इस लिए प्रधानता मस्तिष्क की हुई। भुजायें क्योंकि रक्षा का भार अपने ऊपर लेती हैं इस लिये दूसरा स्थान उनका हुआ इसी प्रकार तीसरा वैश्य और चौथा शूद्र हुआ।

जब तक वर्णाश्रम जातियो में बट कर खण्ड-खण्ड नहीं हो गया तब तक यह ढाचा ज्यो का त्यों चलता रहा। राजा का प्रधान मन्त्री

ब्राह्मण होता था और देश की प्राय: सभी समस्याओं का सुलझाना इसी का कर्तव्य था। इसी के सकेत पर राजा कार्य करता था। राजा वीर और साहसी होता था। हिन्दू धर्म ने राजा, प्रजा, मन्त्री सभी के कर्मों को निर्धारित किया है और भारत मे एक समय वह था जब धर्म राज्य होता था।

विश्व के इतिहास पर यदि हम दृष्टि डालें तो पता चलता है कि योरोप मे राजाओ पर उस काल में पोप का प्रभुत्व था। वह धर्म प्रधान युग था और राजनीति धर्म के अन्तर्गत रहती थी। परन्तु धीरे धीरे यह प्रणाली लुप्त होती चली गई और निरकुश राजाओं ने धर्म कर्म सभी को तिलाँजलि देकर भोग-विलास मे जीवन व्यतीत करने प्रारम्भ कर दिये। ऐसी कठिन परिस्थितियो मे धर्माचार्यों ने कूटनीति का भी कार्य किया। आचार्य चाणक्य इसके ज्वलन्त उदाहरण है। नन्द वश धर्मान्ध हो चुका था। नन्द का सर्वनाश करके चन्द्रगुप्त को राजा बनाना चाणक्य का ही काम था। इस प्रकार इस काल तथा धर्म का राजनीति के क्षेत्र मे बहुत बड़ा हाथ था।

भारत की राजनीति ने पलटा खाया। देश पराधीन हो गया। राजनीति एक प्रकार से समाप्त ही हो गई। कहीं कही पर कभी कभी कोई चिंगारी सी अवश्य चमक जाती थी परन्तु वह धर्म के विस्तार के लिये पर्याप्त क्षेत्र नहीं था। राजनैतिक पराधीनताके पश्चात् हिन्दू जनता निराश्रित होगई, असहाय होगई। ऐसी कठिन परि-स्थिति मे जब राजनीति जनता को आश्वासन नहीं दे सकी, सहारा नहीं दे सकी तो धर्माचार्यो ने हिन्दू धर्म के बुझते हुए दीपक को स्नेह घृत मे भर दिया।

हिन्दु धर्म ने कर्तव्य सिखलाया, आत्म बल दिया, बलि दान की शक्ति दी, जीवन की अनश्वरता का उपदेश दिया, आत्मा को अमर कहकर जनता को मृत्यु के भय से दूर किया। हिन्दुओं को दृढ करके

कर्तव्यपरायण बनाया । सस्कृति की रक्षा का उपदेश दिया और आज के युग मे हिन्दु धर्म का जो अवशेष दिखलाई दे रहा है यह सब उन्ही भक्त मार्गी आचार्यों की कृपा है जिन्होंने इस कठिन काल मे इस वृक्ष को अपना जीवन प्राण देकर सूखने से बचाया ।

आज के युग मे धर्म धर्म के स्थान पर है और राजनीति राजनीति के स्थान पर । धर्म का सम्बन्ध आत्मा की शुद्धि से है, और आचरण की सम्यक्ता से है और ईश्वर के चिंतन से है । यह तीनों ही व्यक्तिगत विषय है सामाजिक नहीं, राजनैतिक नहीं । वैसे सूक्ष्मरूप से व्यक्ति समाज का एक अंग है इसलिये व्यक्ति का विषय ही आज समाज का विषय है और प्रजातंत्र विधान मे समाज की समस्या ही राष्ट्र की समस्या है, देश का विषय है परन्तु सीधे रूप मे धर्म राजनीति के क्षेत्र मे नहीं आता । आज राजनीति को पृथक रूप से अपना सचालन करना है और धर्म को पृथक रूप से । प्राचीन काल मे जिस प्रकार धर्म की राजनीति पर प्रधानता रहती थी उसी प्रकार आज राजनीति [का बोल-बाला है । धर्म, समाज, साहित्य सभी को राजनीति की ओर ताकना पड़ता है ।

धर्म का महत्त्व इस प्रकार आज के युग मे निश्चित रूप से कम होता जा रहा है । राज्य की ओर से प्रश्रय कम मिलता है और आज पाश्चात्य प्रभाव के कारण लोगो की आस्था भी धर्म मे बहुत कम रह गई है । जहाँ तक ईश्वर का नाम और मंदिर दर्शन का सम्बन्ध है वहाँ तक तो बहुत से व्यक्ति पहुच भी जाते हैं परन्तु कर्मकाण्ड के लिये तो आज एक प्रतिशत भी व्यक्ति तैयार नहीं । जन्म, विवाह और मृत्यु बस तीन ही समय कर्मकाण्ड के दर्शन होते हैं ।

इस प्रकार आज की राजनीति में ध का कोई हाथ नहीं, कोई महत्त्व नहीं । इतना महत्त्व अवश्य है कि वर्तमान राजनीति के कर्णधार पूरे हिंदू थे और हिन्दू धर्म पर उन्हे पूरी आस्था थी । उन्होंन

अपने राज्य-सचालन के जो मार्ग सोचे वह भी उन्होने हिन्दू धर्म ग्रंथो के ही आधार पर विचार कर बनाये। लोकमान्य तिलक और महात्मा गाँधी को गीता पर महान आस्था थी और उनके जीवन-कालीन राजनैतिक सघर्षों मे गीता की प्रधान विचारावलि रही है। महात्मा गाँधी के राम-राज्य की कल्पना भी उनकी धामिक कल्पना थी। परन्तु खेद है कि गाँधी जी की अकाल-मृत्यु के कारण वह राम-राज्य की कल्पना फली-भूत न हो सकी।

आज कांग्रेस का प्रधान पद राजऋषि टंडन के हाथों में आया है। टंडन जी धामिक व्यक्ति है। उनसे आशा की जा सकती है कि वह राजनीति मे हिन्दू धर्म के गुणों का प्रयोग अवश्य करने का प्रयत्न करेंगे।

विषय के विषय में सक्षिप्त विचार—

१. हिन्दू धर्म और राजनीति, वर्णाश्रम की स्थापना।
२. राजनीति पर धर्म को प्रधानता।
३ पराधीनता काल मे राजनीति का लोप और धर्म का आश्वासन।
४ वर्तमान राजनीति मे धर्म का गौण स्थान। धर्म पर राजनीति की प्रधानता।
५. उपसहार।

हिन्दू धर्म के गुण और अवगुण

हिन्दू धर्म के गुण और अवगुणो पर विचार करन से पूर्व हमें यह जान लेना है कि वास्तव में हिन्दू धर्म है क्या ? धर्म के विषय में वेदव्यास का मत है कि "धर्म, शक्ति प्रजा और समाज को धारण करती है। अधर्म है अनाचार और उच्छृंखलता और धर्म है श्रेष्ट सामाजिक आचार-विचार।" ऋगवेद मे भी सत्य पथ पर चलने के

लिये आचार सुधार की आवश्यकता बतलाई है। इस प्रकार धर्म आचारमूलक है अनाचारमूलक नहीं। हिन्दू धर्म में मनु के विचार से धर्म पालन के लिये ऋषि-ऋण, देव-ऋण और पितृ-ऋण का चुकाना परमावश्यक है। ऋषि-ऋण के अन्तर्गत ज्ञानप्राप्ति, देव-ऋण के अन्तर्गत हवन पुण्यकर्म इत्यादि और पितृ-ऋण के अन्तर्गत पिता के प्रति कर्त्तव्य पालन आता है।

हिन्दू धर्म में जीवन को व्यवस्थित करने के लिये जिस प्रकार समाज को चार वर्णों में विभाजित किया है उसी प्रकार मानव जीवन को भी चार आश्रमों में विभाजित किया है ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और सन्यास। प्रत्येक व्यक्ति के लिए इन चारों आश्रमों का पालन करना आवश्यक है। धर्म समाज की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा मानव इस लोक में अपने जीवन को सुधार कर परलोक को सुधारता है। वास्तव में धर्म का सम्बन्ध मानव जीवन से है।

हिन्दू धर्म ने समाज और मानव जीवन की जो व्यवस्थायें प्रारम्भ में निर्धारित कीं उनके बंधन ज्यों के त्यो बने हुए नहीं रह सके। समय और व्यक्ति के अन्तर से इन सब में अन्तर आने प्रारंभ हो गये। वर्ण-व्यवस्था जातियो में बदलती चली गई और आश्रम धर्मों का उचित पालन होना बन्द हो गया। सन्यासियों ने विवाह करने शुरू कर दिये और ब्रह्मचारियो ने विषय-भोग। इसका प्रभाव समाज पर पड़ा। समाज और अव्यवस्थित होने लगा। आचार्यों ने इस प्रकार अनाचरण करने वाले व्यक्तियो के लिये सामाजिक दण्ड निर्धारित करके इन प्रवृत्तियों को रोकने के प्रयत्न किया। फलस्वरूप वर्णों से बहिष्कृत व्यक्तियो ने अपने अपने जातियों का संगठन करन प्रारंभ कर दिया और इस प्रकार अनेकों जातियों के जन्म हुये। एक एक वर्ण के अनेकानेक उप-शाखायें बनती चली गईं। इस जाति भिन्नता के कारण समाज का संगठन टूट गया। समाज की

शक्ति क्षीण होती चली गई और इतने भेद और उपभेद पैदा हो गये कि सगठन का सूत्र एकदम समाप्त होगया । यह विच्छेदात्मक प्रकृति इतनी बलवती हुई कि इसका प्रभाव भारत मे आने वाले मुसलमान धर्म पर भी पड़े बिना न रहा । भारत के मुसलमानों मे भी जातिया आज मिलती हैं यह मुसलमान धर्म पर हिंदूधर्म की गहरी छाप है । इस्लाम धर्म का सगठन भी भारत मे आकर छिन्न-भिन्न हो गया ।

हिन्दू धर्म की इस विच्छेदात्मक प्रवृत्ति का खडन स्वामी दयानन्द ने किया और सगठन की एक बार भारत मे ऐसी लहर चलाई कि सभी वर्णों को मिलाकर ॐ० के झडे के नीचे खडा कर दिया । इस भावना को महात्मा गाँधी ने अपने हरिजन आदोलन द्वारा विशाल रूप देकर उसे राजनीति का अग बना दिया और ऐसा व्यापक बना दिया कि वर्तमान राजनीति में उस सगठन की आवश्यकता ही नहीं रही । आज के प्रजातत्रवाद में एक पडित को भी राय मागने के लिये भगी की झोंपडी पर जाना पडता है ।

हिन्दू धर्म मध्ययुग मे आकर एक प्रकार से कर्म-काण्ड प्रधान धर्म हो गया था । धर्म विचारात्मकता की ओर से रूढिवाद की तरफ बढ रहा था । यह धर्म की स्वस्थावस्था नहीं थी । धर्म पर जन्म की प्रधानता होचुकी थी । मठो की स्थापना होने लगी थी और मठाधीशों की परिस्थिति राजा महाराजाओं जैसी होने लगी थी । इन मठाधीशों का जनता पर प्रभाव था क्योंकि जनता धर्म-भावना-प्रधान थी । यही कारण था कि इन मठाधीशो की शक्ति बहुत बढी चढी थी । मुसलमान युग में भी हमें मुसलमान मठाधीशों के ऐसे दृष्टांत मिलते है । निज़ामुद्दीन औलिया की प्रसिद्ध गाथा से इतहास के विद्यार्थी सभी परिचित हैं । प्रारम्भ मे यह मठ धर्म के केन्द्र थे, शिक्षा अध्ययन करने के लिये विश्व विख्यात विद्यालय थे, बडे बडे विचारक और योगी वहाँ पर रहते थे परन्तु यह परिस्थिति अधिक समय तक न

चल सकी। मानव जीवन मे स्वार्थ और विषयभोग की न्यूनतायें बहुत बलवती होती है। इनके प्रभाव से परिस्थिति यहाँ तक गम्भीर बनी कि वही ज्ञान के केन्द्र व्यभिचार, स्वार्थ और ऐश्वर्य के केन्द्र बन गये। कर्म-काण्ड का रूप बदलने लगा। यज्ञों पर जानवरों की बलि दी जाने लगी और कहते हैं कि कहीं कहीं पर मानव की बलि भी दी जाती थी। अनार्य जातियों के कुछ देवी देवताओं को भी हिन्दू धर्म ने अपने में मिला लिया और उनकी पूजा भी होने लगी। जैसे काली की पूजा का विधान हमें वेदों में नही मिलता।

यह परिस्थिति अधिक दिन तक न रह सकी। जैन धर्म और बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हिन्दू धर्म की इन्हीं खराबियो के कारण हुआ। यह दोनो ही धर्म एक प्रकार से हिन्दूधर्म के रूपान्तर है, सुधार हैं। हिन्दूधर्म में इस काल के अन्दर जो अवगुण या दोष भी उत्पन्न हो गये थे वह हिन्दूधर्म के मूल सिद्धाता मे निहित नही थे। धर्म सिद्धांतों के निरूपण और उनके प्रयोग में दोष आ गये थे उनके मूल मे नही। जैन और बौद्ध धर्म के नवीन विचारको ने हिन्दू धर्म के इन प्रयुक्त दोषों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया और आचरण की सत्यता पर बल देकर धर्म के एक नवीन दृष्टिकोण का निर्माण किया। हिन्दू धर्म मे कुछ प्रथायें ऐसी बनती चली गई कि जिन्हे अंग्रेजी शासन काल मे आकर सरकारी कानून द्वारा रोकने की आवश्यकता हुई। सती को प्रथा को हम इसके उदाहरण स्वरूप ले सकते हैं। ब्रह्म समाज ने इस प्रथा के विपरीत विद्रोह किया और फिर सरकार को अन्त मे नियम द्वारा बन्द करना पड़ा। इसी प्रकार अछूतों का मन्दिरों में जाना, कुओ पर चढ़ना इत्यादि पर आर्य समाज ने बल दिया, महात्मा गांधी ने आंदोलन किये और वर्तमान शासन-व्यवस्थाओं ने उन्हे मानकर कानून बना दिया।

हिन्दू धर्म के आर्य काल मे नारी का स्थान पुरुष से किसी भी प्रकार भी कम नहीं था। नारी के स्थान स्वार्थी आचार्यों ने बराबर गिराकर यहाँ तक बना दिया कि उसे विद्या और समाज के क्षेत्रो से बाहर निकाल कर घर की भित्तियो मे बन्द कर दिया और। यह थी धर्म की गिरावट। अंगरेजी शासन काल में स्त्री समाज पर पाश्चात्य नारी आंदोलनों का प्रभाव हुआ। आर्य समाज ने नारी शिक्षा पर भी बल दिया और आज उनमे भी शिक्षा बढती जा रही है। स्त्री शिक्षा के लोप मे जो प्रधान प्रभाव मालूम देता है वह मुसलमान शासन काल मे मुसलमानी धर्म का हिन्दू धर्म पर प्रभाव है। इसका प्रभाव समाज पर बुरा पड़ा क्योकि बच्चो का निर्माण जितना स्त्रियों के हाथ मे है उतना पुरुषों के हाथ में नहीं और बच्चों पर समाज और देश का भविष्य आधारित है।

इस प्रकार हमने हिन्दू धर्म के गुण और अवगुणों पर संक्षिप्त रूप से विचार किया और देखा कि धर्म के अवगुणों का सम्बन्ध हिन्दू धर्म के मूल सिद्धांतो मे नही हैं। उनके व्यवहार और जीवन में प्रयोग से है। यदि,आज भी हिन्दू धर्म के सिद्धांतों को उनके मूल रूप मे अपनाया जाये तो वह व्यक्ति और समाज के लिये लाभदायक सिद्ध होगा। हिन्दू धर्म की मूल-धारा हिन्दुओं के हृदयों मे सतत प्रवाहित रही है और वह यही मूल आत्मा है जिसके बल पर आज तक हिन्दू धर्म जीवित रह सका है।

उक्तविषय पर संक्षिप्त विचार—

१ धर्म क्या है? हिन्दू धर्म क्या है?

२. हिन्दू धर्म का प्राचीनतम रूप—आर्यकाल।

३ हिन्दू धर्म का मध्ययुग जिसमें बुद्धिवाद की ओर से धर्म रूढ़िवाद की ओर आया।

४. भारत के पराधीनता काल में धर्म पर विदेशी प्रभाव।

५ हिन्दू धर्म की मुक्त धारा सतत प्रवाहित रही।

६ यज्ञ-बलि, सती-प्रथा, जाति-भेद, अछूत-विचार, नारी का अपमान यह प्रधान हिन्दू धर्म के अवगुण थे जो धर्म-क्षेत्र मे काव्य परिवर्तन के कारण उत्पन्न होते चले गये। धीरे-धीरे इन सभी का सुधार हुआ और जब जब जैसा जैसा समय आया उस समय वैसा ही रूप धर्म ने निर्धारित किया है और इस प्रकार हिन्दू धर्म के अमरत्व का प्रबल प्रमाण सब के सम्मुख है।

७ धर्म आज जीवन की मूल प्रवृत्ति के रूप मे है जिसके ऊपर से दर्शन करने कठिन हैं। और उनके उचित प्रयोग से आज भी समाज का महान हित हो सकता है।

मध्ययुग के भक्ति आँदोलन

भारत मे इस्लामी राज्य की स्थापना होनी थी कि हिन्दू जनता के हृदयों से उत्साह, गर्व और गौरव जाता रहा। देव मन्दिर गिराये जाने लगे और पूज्य स्थानों का अपमान हुआ। यह सब जनता ने अपनी आँखो से हृदय पर पत्थर रख कर देखा और सहन किया। हिन्दू-जीवन मे घोर उदासीनता छागई। धर्म के क्षेत्र मे वज्रयानी सिद्ध-कापालिक और नागपथी जोगियों का जोर था। धर्म, कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों धराओं मे प्रभावित हो रहा था। इस काल मे इन तीनों के सामन्जस्य की आवश्यकता थी। ज्ञानक्षेत्र में कुछ विचारक आते हैं और कर्म तथा भक्ति का सम्बंध साधारण जनता से रहता है। धर्म मे भक्ति का समावेश महाभारत काल के पश्चात् पुराण काल से मिलता है कभी कुछ समुन्नत रूप मे और कुछ दबे हुए रूप मे।

वज्रयानी सिद्धों का दृष्टिकोण आत्म-कल्याण और लोक कल्याण-विधायक नहीं था। वह जनता को कार्य-क्षेत्र से हटाने पर तुले थे। स० १०७३ मे रामानुजाचार्य ने जिस सगुण भक्ति का निरूपण

किया, जनता ज्ञानमार्गियोंकी अपेक्षा उसकी ओर अधिक प्रभावित होती जा रही थी। सवत् १२५४—१३३३ मे गुजरात में मध्वाचार्य ने द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदाय चलाया। इसी काल मे जयदेव और विद्यापति के गीतों से कृष्णभक्ति का जनता में प्रचार हुआ। १५वी शताब्दी मे रामानुजाचार्य के शिष्य स्वामी रामानद ने विष्णु के राम अवतार को लेकर भक्तिमार्ग का प्रतिपादन किया। इस प्रकार वैष्णव सम्प्रदाय मे राम भक्ति शाखा का आविर्भाव हुआ। इसी काल मे श्री बल्लभाचार्य ने कृष्ण की प्रेम मूर्ति को लेकर कृष्ण भक्तिशाखा का प्रचार किया। इस प्रकार रामोपासक और कृष्णोपासक धाराओं का प्रवाह हिन्दू धर्म की मूल प्रवृत्तिया बनकर भारत के कोने-कोने में प्रवाहित हो चला।

एक ओर तो यह प्राचीन भक्तिमार्ग सगुणोपासना के आधार पर तय्यार हो रहा था, जिसमे भक्तों ने ब्रह्म के 'सत्' और 'आनद' स्वरूप का निरुपण किया था और दूसरी ओर मुसलमानों के स्थाईरूप से भारत मे बस जाने के कारण 'सामान्य-भक्तिमार्ग' का विकास हुआ। वज्रयान और नाथ सम्प्रदायों में शास्त्रज्ञ विद्वानो की कमी थी और विशेपरूप से इनका प्रभाव भी भारत की छोटी ही जातियों पर अधिक था। 'सामान्य-भक्तिमार्ग' का सीधा सम्बन्ध भी इन्हीं धाराओं से जुडा। यह लोग पूजा-अर्चा को व्यर्थ मानते थे, केवल अन्तर्मुख साधनाओं द्वारा ईश्वर इनके मत से प्राप्य था। इस धारा के साधु इ गला, पिंगला सहस्त्र कमल दल इत्यादि के उलटे सीधे नाम लेकर मूर्ख जनता पर अपना प्रभाव सिद्ध बन कर जमाते थे। हिन्दू मुसलमानों मे यह भेद नहीं मानते थे। यह धारा हृदयपक्ष-शून्य थी और इसका सम्मान अन्तस्साधना की ओर था।

इसी काल में महाराष्ट्र देश मे नामदेव ने साधना तत्व के साथ रागात्मक तत्व का समावेश करके उस भक्ति मार्ग का आभास दिया

जिसे बाद में जाकर कबीरदास ने अपनाया। कबीर ने अपने निर्गुण-पथ में जहाँ एक ओर भारतीय वेदाँत को अपनाया वहाँ दूसरी ओर सूफी प्रेम धारा को अपनाकर निर्गुण ब्रह्म को भक्ति रूप खड़ा किया इस प्रकार कबीर ने नाथपथ के जनता पर पड़ने वाले शुष्क प्रभाव को नष्ट करके उनमे किसी हद तक सरसता का सचार किया परन्तु खेद की बात यह थी कि सरसता के लिए कबीर पथ मे भी स्थान कम ही था। इस प्रकार इस पथ की अन्तस्साधना मे रागात्मक वृत्ति को मिल गई परन्तु कर्म के क्षेत्र में वही पुरानी स्थिति बनी रही। ईश्वर के धर्म स्वरुप मे लोक रजन की भावना का आविष्कार न हो सका और जनता के जीवन मे जो जागृति या सरसता आनी चाहिए थी वह न आ सकी। "यह' सामान्य भक्तिमार्ग एकेश्वरवाद का एक अनिश्चित स्वरूप लेकर खड़ा हुआ, जो कभी ब्रह्मवाद की ओर ढलता था और कभी पैगम्बरी खुदावाद की ओर।" रामचन्द्र शुक्ल यह सब होते हुए भी निर्गुण पंथियों ने अपने विचारो मे सामजस्य की भावना को विशेष स्थान दिया है। एक ओर नागपंथ योगियों से योग-भावना ग्रहणकी तो दूसरी ओर नामदेव से भक्ति भावना। रामानद जी से आद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातें लीं और साथ ही दूसरी ओर सूफी फकीरो से रागात्मकता, वैष्णव धर्मावलम्बियों से अहिंसा वाद और प्रवृत्तिवाद ग्रहण किया। इस प्रकार यह ना तो पूर्ण रूप से अद्वैतवादी ही हैं और ना एकेश्वावादी ही। दोनो का मिला जुला रूप इनमें मिलता है। बहु देवोपासना, अवतारवाद और मूर्तिपूजा का इन भक्तों ने खडन किया है। खडनात्मक प्रवृत्ति इनकी विशेष प्रवृत्ति थी जिसमे नमाज,रोजा, व्रत, कुरबानी यह सब व्यर्थ हो जाते हैं। ब्रह्म माया, जीव, सृष्टि और अनहदवाद की चर्चा इन लोगो ने पूरे, ब्रह्म ज्ञानी बनकर की है। विशुद्ध ईश्वर प्रेम और सात्विक जीवन इनकी विशेपता थी।

सगुणोपासना का भक्तों ने ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों को माना है। केवल भक्ति के क्षेत्र में उन्होंने सगुण रूप को ही प्रश्रय दिया है। सगुण भक्त अव्यक्त की ओर संकेत तो करते हैं। परन्तु उनके पीछे नहीं पड जाते।

इस प्रकार सगुण और निर्गुण दो भक्ति धारायें विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त से लेकर सत्तरहवीं शताब्दी के अन्त तक साथ-साथ चलती रहीं। निर्गुण धारा के अन्तर्गत ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा थीं। प्रेमाश्रयी शाखा में सूफी प्रेमधर्म की प्रधानता थी। यह शाखा केवल साहित्यिक क्षेत्र तक ही प्रधानता पासका। जनता में इसे कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं मिल सका। जिस प्रकार निर्गुण धारा के अन्तर्गत दो शाखायें थीं उसी प्रकार सगुण-भक्ति उपासकों के भी दो मार्ग थे। एक भक्ति शाखा और दूसरा कृष्ण भक्ति शाखा-जैसा कि हम ऊपर कह आए है। मध्ययुग में भक्ति के यही प्रधान आन्दोलन थे।

विषय पर संक्षिप्त विचार—

१. मध्ययुग की प्रारम्भिक धर्म प्रधान धारायें।
२ निर्गुण और सगुणोपासना की प्रधान धारायें।
३. निर्गुण धारा के अन्तर्गत ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी दो प्रधान धारायें बनीं।
४. सगुणधारा के अन्तर्गत रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा यह दो शाखायें बनीं।
५ उपसंहार।

हिन्दू धर्म और पुराण

वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत और पुराण हिन्दू धर्म के प्रधान धार्मिक ग्रन्थ हैं। भारतीय धार्मिक चिंतन इन्हीं प्रधान ग्रन्थों में

प्रस्फुटित हुआ है। ब्राह्मणों ने पुराण के ही आधार पर हिंदू धर्म का अवस्थान किया है। इन ग्रंथों मे हिंदू धर्म की आत्मा है हृदय है।

पुराणो मे हमे इतिहास चर्चा, शास्त्र, धर्म विचार, लोक कथाएं तथा लोक भावनाएं मिलती हैं। रामायण, महाभारत, शैली, विस्तार, भावना और प्रकार दृष्टि से पुराणों से भिन्न है। परन्तु इनके धार्मिक मूल तत्वो के आधार से अभिन्न ही हैं। पुराणो मे हमारे राजन्य और क्षत्रिय वर्ग का इतिहास छुपा रखा है। इतिहास सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर कलियुग के प्रारम्भ तक का है—एक दीर्घकाल का। यह इतिहास आर्यों, अनार्यों और उन सभी जातियो का है जिन्होने समय समय पर भारत पर आकर आक्रमण किए और फिर वह आर्यजाति में ही अन्तर्निहित हो गई। सत्य यह है कि यह कल्पना और भावना प्रधान ग्रन्थ ऐतिहासिक नाटकों अथवा उपन्यासों की भांति पिछले चार पाँच हजार वर्षों का भावात्मक इतिहास इनमे है परन्तु यह कहना असम्भव है कि उनमे कल्पना का स्थान कहा तक है।

पुराण हिन्दू धर्म, हिंदू चर्चा और हिंदू सस्कृति की निधि है। सस्कृति के अंतर्गत विशेष रूप से ब्राह्मण धर्म को समझने के लिए, पुराणो को समझ लेना अत्यंत आवश्यक है। पुराण वैष्णव-धर्म के प्राण हैं। परन्तु खेद की बात यह है कि एक काल ऐसा आया जब विद्वानों ने पुराणो को सही अर्थों में न समझ कर उनको अभिव्यंजनाओ और उसके रुपको को जनता के सम्मुख इस प्रकार रखा कि विचारकों के लिए इसके अतिरिक्त कहने को और कुछ न रहा कि यह सब व्यर्थ के बकवासी ग्रथ हैं, कपोल कल्पित है, झूठ है। हमारा धर्म वेद और उपनिषदो पर आधारित है। पुराण हमारे धर्म ग्रंथ नही है। इस विचारधारा का प्रतिपादन भारत की जनता मे 'ब्रह्मसमाज' और 'आर्य समाज' ने किया और इतने प्रबल आंदोलन किए कि एक बार को वास्तव मे पुराण जनता को निन्दनीय से प्रतीत होने लगे।

पौराणिक धर्म भक्ति और श्रद्धा प्रधान है बुद्धि प्रधान नही। बुद्धि-प्रधान विचार धारा वाले व्यक्तियो ने खडन-मडन का आश्रय लिया और पैनी धारवाली छुरी से धर्म को काटना छाटना ारम्भ कर दिया इसके फल स्वरूप अतिनैतिक चेतना और अतिनैतिक बुद्धि ने जन्म लिया और धर्म अनुभूति प्रधान न रहकर बुद्धि प्रधान बनने लगा। इस विचार धारा पर ईसाई धर्म का भी प्रभाव था। अंग्रेजी शिक्षित व्यक्ति विज्ञान की नवीन खोजो से भी प्रभावित होते जारहे थे। वैज्ञानिक दृष्टि मे विकासवाद की नीव पड चुकी थी और हृदय पर बुद्धि को प्रधानता मिलनी समाज में भी प्रारम्भ हो गई थी। ऐसी परि-स्थिति मे भला फिर पुराणों को कौन पूछता। लोगों ने पुराणो के उस महानतम महत्त्व को भी भुला दिया कि जिसके कारण उनका आज अस्तित्व मात्र भी अवशेष रह गया है। मुसलमान काल में यह पुराणो का ही बल था कि जिसने पराधीन पडी जनता के हृदयों को भी उत्साह और मगल की भावना से निरंतर भरा और उन्हे कर्त्तव्य परायण बनाया।

वेद शास्त्रो और उपनिषदों तक ही आर्य जाति की धर्म चिंता को सीमित करने वाले व्यक्ति न केवल हिन्दू धर्म के साथ ही अपकार करते हैं वरन् वह अपनी जाति अपने इतिहास, अपने गौरव और प्राचीन ज्ञान के प्रति भी अन्याय कर रहे हैं। वेद, उपनिषदों के पश्चात् क्या आर्य जाति ने चिंतन करना बन्द कर दिया था ? और यदि कुछ गया था तो क्या वह ढोंग था, गलत था, पाखड था, मूर्खता थी, पतन था—ऐसा क्यों ? यह सब कुछ होने का कोई कारण तो चाहिये ऐसा विचार करना भ्रम है। वेद और उपनिषदो मे जहा एक अत्यत छोटे वर्ग की धर्म चिंता है वहा पुराणो में जन साधारण की धर्म चेतना वर्तमान है। वेद और उपनिषदो ने प्रभावित किया है चिंतकों को, विचारकों को, परन्तु महाभारत, रामायण और पुराणों का क्षेत्र

उतना सीमित नहीं है, वह बहुत व्यापक है, विस्तृत है। पुराण भारत के जन जन की वाणी है, हृदय है, विचार है, धर्म है और नित्य के जीवन की भावना मय अनुभूतियां हैं। इसके प्रमाण स्वरूप हम भारत के देव मन्दिरो कथोपाख्यानो और काव्य-चित्रो तथा मूर्तियो को ले सकते है। इन सभी पर पुराणों की गहरी छाप है।

पुराणों को भावात्मक इतिहास मानना अधिक उचित होगा। सूर्यवश, चन्द्रवश, अग्निवश, इसी प्रकार अनेकों वशो की कथायें उनमे भरी पडी हैं। अनेकों वशों के उत्थान पतन, अनेको आर्य और अनार्य जातियों की महान सघर्ष गाथायें इनमे मिलती हैं। इन्हीं कथाओ के साथ-साथ देव कथाओं को इनमें स्थान दिया गया है। विष्णु, शिव, उमा, कार्तिकेय इत्यादि अनार्यो के देवता थे और इन्द्र, वरुण, इत्यादि आर्यों के कालातर मे अनार्यों के देवता विष्णु और शिव आर्य देवताओ मे होकर जनता में मान्य हुए। पुराणो मे देव कथायें सुन्दर रोमास की भाति आती हैं। पुराणो मे नीति को भी स्थान मिला है। व्रतचर्या, रहनसहन, तीर्थयात्रा, कला कौशल इत्यादि जीवन के विविध पहलुओं पर भी प्रकाश डाला गया है। जन्म से लेकर मरण तक की र च जीवन से सम्बन्ध रखने वाली परिस्थितियो पर पुराणो की व्याख्या मिलती है। उच्चतम आध्यात्मिक, मानसिक और लौकिक व्यवहार हमे पुराणों मे मिलता है।

भारत को दो डेढ़ हजार वर्षों की कला, साहित्य, वास्तु तथा मूर्ति-निर्माण इत्यादि सब कुछ पुराणों मे ही से मिलता है। पुराण हमारे उस काल का साहित्य है जिस काल पर न इतिहास ही मिलता है और न कोई अन्य ग्रथ ही प्राचीन काल से धर्म और साहित्य कभी दो वस्तु नहीं रहे। भक्ति काल तक प्रथा ज्यों की त्यो चली आ रही है। तुलसीकृत रामायण यदि उत्तम काव्य है तो धर्मग्रथ भी वह है। इसी प्रकार पुराण भी हमारे इतिहास हैं। आख्यान काव्य है, धर्मग्रथ

हैं और साहित्य है पुराणो में इन सभी का सामंजस्य है । सस्कृत कवि माघ, मास और कलिदास ने अपनी रचनाओ के मूल मे पौराणिक आख्यानों को लिया है । मध्ययुग मे लिखे गये सभी साहित्य पर पुराणो का गहरा प्रभाव है रामायण और सूर सागर दोनो मे पुराणो की कथायें लेकर कवियो ने काव्यो का निर्माण किया है आज के युग मे उदय शकर के नृत्य, रवीन्द्र स्कूल के चित्र पौराणिक नही तो और क्या हैं ?

इस प्रकार हमने देखा कि पुराणों मे सौंदर्य शास्त्र काव्य, इतिहास, देव कथाये, देवताओं का रोमास, जीवन सम्बन्धी विचार, नीति विचार यह सब मिलता है परन्तु इनके साथ ही साथ आध्यात्मिक चिंतन भी उनमे कम नहीं है । जनता में धार्मिक विश्वासो को दृढ करने मे जो कार्य पुराणों ने किया है वह अन्य ग्रंथ नही कर पाये । विजातीय धर्मों से टक्कर लेकर जनता को अपने कार्य से विमुख न होने देना यह पुराणों का ही काम था चाहे इस अटल सत्य को आज के नवीन धार्मिक विचारक न समझ सकें ।

विषय पर संक्षिप्त विचार —

१ हिन्दू धर्म मे पुराणो का महत्व ।
२ पुराणो मे हिन्दूधर्म का पुरातन इतिहास छुपा हुआ पड़ा है ।
३. पुराणो मे नीति है । कला है, जीवन सम्बन्धी ज्ञान है और अन्त में आध्यात्मिक तत्व की भी प्रधानता है ।
४ यह अनुभूति प्रधान ग्रंथ है बुद्धि प्रधान नहीं । काव्य है कोरा इतिहास नहीं ।
५ उपसंहार ।

जैन धर्म और बुद्ध-धर्म

छठी शताब्दी ई० पू० जब मगध के राजा अपने आस-पास के राज्यों पर विजय प्राप्त करके चक्रवर्ती राज्य की स्थापना कर रहे थे

उसी समय भारत मे कुछ ऐसे सुधारक नेताओं ने जन्म लिया जिन्होंने धर्मचक्र का प्रवर्तन करके अपने धार्मिक साम्राज्यों का स्वप्न देखा। वर्धमान महावीर और गौतम बुद्ध यह सुधारक थे। इन्ही दो महान् आत्माओं ने जैनधर्म और बुद्धधर्म को जनता मे फैलाया और हिन्दू धर्म मे पैदा हुई कुरीतियों के विपरीत शक्तिशाली आंदोलन किया।

आर्य लोग प्रकृति की विभिन्न शक्तियों मे ईश्वर के भिन्न-भिन्न रूपो की कल्पना करके उनकी पूजा करते थे। देवताओ के रूप मे उनकी आराधना होती थी। इन देवताओ की पूजा का यज्ञ-प्रधान साधन था। यज्ञों का कर्मकाण्ड जो कि पहिले बहुत सुगम था धीरे-धीरे जटिल होता चला जा रहा था। सर्वप्रथम यज्ञो मे पशुओ की बलि प्रारम्भ हुई। एक दो तीन और अन्त मे यहा तक कि एक-एक यज्ञ मे हजारो की सख्या में पशुहिंसा होने लगी। यह बलि की प्रथा यहाँ तक बलवती हुई कि पशुओं मे चल कर मानव तक आ पहुची और बेचारे इधर-उधर से आने-जाने वालो को भी उन यज्ञो से भय लगने लगा।

समाज की व्यवस्था बिगड रही थी। ऊच-नीच का भेद-भाव सीमा लाँघ कर कटुता के क्षेत्र मे अवतीर्ण हो चुका था। ब्राह्मण और क्षत्रियो ने समाज, धर्म और शासन की सब शक्तियाँ हस्तगत करके अपने को ऊचा समझना प्रारम्भ कर दिया था। वर्णाश्रम धर्म-कर्म प्रधान न रहकर जन्म-प्रधान बन गया था। शूद्रों और दासो की एक ऐसी श्रेणी का जन्म हो गया था कि जिसे इन लोगों ने मानवता के साधारण अधिकारों से भी वचित कर रखा था। स्त्रियो को पुरुषो के समान अधिकार नही रह गये थे। धर्म के क्षेत्र में ढोंग और पाखड का बोल-बाला था और क्षत्रिय तथा ब्राह्मण मिलकर जनता पर मनमाना अत्याचार कर रहे थे। ऐसे आपत्ति काल मे महावीर और गौतम-बुद्ध ने हिन्दू धर्म मे सुधार करने का सफल प्रयास किया।

महावीर—ज्ञातक गण राज्य मे जिसकी राजधानी कुण्डग्राम थी, गण मुख्य सिद्धार्थ के घर वर्धमान महावीर ने जन्म लिया। इनका बाल्य और युवाकाल समृद्ध परिस्थिति मे व्यतीत हुआ परन्तु इनकी प्रकृति प्रारम्भ से ही साँसारिक भोग-विलास से परे थी। यह 'प्रेय' मार्ग को छोड़कर 'श्रेय' मार्ग की ओर जाना चाहते थे। इसीलिये इन्होंने गृहस्थ जीवन का परित्याग करके तपस्वी जीवन को अपनाया बारह वर्ष तक घोर तपस्या की और तब ज्ञान की प्राप्ति हुई। इसके पश्चात उन्होने अपना शेष समस्त जीवन को अपने विचारो के प्रचार मे लगा दिया। आपका धार्मिक आन्दोलन जैनधर्म कहलाया। इनकी मृत्यु ७२ वर्ष की आयु मे ५२७ ई० पूर्व हुई।

जैन धर्म—वर्धमान महावीर ने जिस धर्म का प्रतिपादन किया उसके अनुसार मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है। इसके लिये मनुष्य को सत्य-अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह (धन सचय को परिमित करना) इन पांच बातों का अनुसरण करना चाहिये इन पाच विषयों का भली भाति पालन करते हुए प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन से दुराचार और अपवित्रता की भावनाओ को निकाल देना चाहिये। सदाचरण और पवित्र जीवन से ही मानव को मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है अन्यथा नही। इस धर्म में अहिंसा और तपस्या पर विशेष बल दियो गया है। ईश्वर कोई पृथक नहीं है मनुष्य ही मोक्ष में पहुँच कर ईश्वर के स्थान को प्राप्त कर लेता है।

गौतम बुद्ध—गौतम का जन्म शाक्य गण मे गणमुख्य शुद्धोधन के यहा हुआ था। इनका बालकाल बड़े लाड-प्यार मे व्यतीत हुआ परन्तु वर्धमान महावीर के ही समान इनकी प्रवृत्ति भी प्रारम्भ से 'श्रेय' मार्ग की ही ओर थी। २९ वर्ष की आयु में यह घर का परित्याग करके निकल पड़े और सात वर्ष तक तत्वज्ञान की खोज में इधर उधर भटकते फिरे। गौतम ने घोर तपस्याएं की परन्तु तपस्या म

उनकी आत्मा को शांति न मिली। इनसे परेशान होकर उन्होंने वर्तमान बुद्ध गया के पास एक पीपल के वृक्ष के नीचे वे सात दिन तक ध्यान मग्न पड़े रहे और वहीं पर उनकी आत्मा मे एक दिव्य ज्योति का प्रकाश हो हुआ। साधना सफल हुई और वह ज्ञान दशा को प्राप्त हुआ। यहीं पर 'बोध' प्राप्त करके वह बुद्ध भगवान बने।

बौद्ध धर्म—गौतम बुद्ध ने समाज के ऊच-नीच के भेदभावो का बहुत विरोध किया। केवल जन्म के कारण वह किसी को ऊंचा व नीचा मानने के लिए उद्यत नही थे। यह सच्चे अर्थों मे कर्म सुधारक थे। उनकी दृष्टि मे न कोई अछूत है और न कोई ब्राह्मण। उन्होने ब्राह्मण, क्षत्रि, वैश्य शूद्र सभी को अपना शिष्य बनाया और एक भाव से सबको दीक्षा दी। पशु हिंसा का गौतम बुद्ध ने कट्टर विरोध किया अहिंसा पर आपका विशेष बल था। केवल यज्ञो मे ही उन्होंने विरोध नहीं किया वरन पशुओ को किसी प्रकार भी कष्ट देना उनके सिद्धांतो के विपरीत था। यज्ञों म उनका तनिक भी विश्वास नहीं था वह चाहते थ चरित्रो की शुद्धता और काम क्रोध और मोह पर मानव की विजय। यज्ञो का अनुष्ठान वह व्यर्थ समझते थे। कर्म-काण्ड का गौतम बुद्ध ने विरोध किया और आचरण की साम्यता को अपने धर्म का प्रधान लक्ष्य बनाया। स्वर्ग और मोक्ष को भी आपने इसी लोक मे माना हे किसी पृथक लोक में नहीं। आपने उच्च बनने के लिये यह आठ साधन बतलाये है (१) सत्य चिंतन (२) सत्य संकल्प (३) सत्य भाषण (४) सत्य आचारण (५) सत्य रहन सहन (६) सत्य प्रयत्न (७) सत्य ध्यान (८) सत्य आनन्द। निर्वाण पद प्राप्त करने को बुद्ध भगवान् ने जीवन का चरम लक्ष्य माना है। निर्वाण मानव की वह अवस्था है जब वह ज्ञान द्वारा अज्ञान भगा देता हे। जिस प्रकार दीपक के प्रकाश से सहस्त्रों वर्षों का

अन्धकार दूर हो जाता है उसी प्रकार ज्ञान द्वारा मानव के मन की अविद्या का अन्धकार एक क्षण में लुप्त हो जाता है ।

इस प्रकार हमने जैन धर्म तथा बुद्ध धर्म पर दृष्टि डाल कर देखा कि यह कोई नवीन धर्म नहीं थे और ना ही इनका चिंतन प्राचीन हिन्दू धर्म से कुछ विशेष विपरीत ही था । इन्हे हिन्दू धर्म मे प्रतिक्रिया (Reaction) हम कह सकते हैं । इन सुधारकों ने दार्शनिक रहस्यों की छान बीन करके केवल उस काल मे धर्म के अन्तर्गत जो बुराइयाँ आ चुकी थी उन्हीं का खण्डन करके आत्मा और जीवन-पवित्रता पर बल दिया है । गौतम बुद्ध ने ईश्वर के विषय मे चिंतन ने ही नही किया क्योंकि उसके होने या न होने से आचरण पर कोई प्रभाव नहीं पडता ।

विषय पर संक्षिप्त विचार—

१ जिस काल मे यह सुधारात्मक आंदोलन प्रारम्भ हुए उस समय देश और धर्म की क्या दशा थी ?

२ वर्धमान महावीर और जैनधर्म ।

३ गौतम बुद्ध और बुद्धधर्म ।

४ उपसंहार ।

कुछ धर्मिक निबन्धों की रूप-रेखायें

शंकराचार्य और उनका दर्शन

१ जिस प्रकार धर्म में अनेकों खटकने वाली बातें आजाने पर जैन धर्म और बौद्धधर्म के सुधार की आवश्यकता प्रतीत हुई उसी प्रकार कालान्तर मे बौद्धधर्म में की अनेकों आचरण सम्बन्धी कमियाँ आने लगीं और एक बार फिर से हिदू धर्म के उत्थान का नवीन युग आया ।

२. हिन्द धर्म के आचार्यों ने स्थान स्थान पर शास्त्रार्थों मे बौद्ध भिक्षुओं को पछाड़ा और जनता मे अपने पुरातन धर्म का प्रतिपादन करके सम्मान बढ़ाया।

३. हिन्दू धर्म के इन आचार्यों मे कुमारिल भट्ट और उनके शिष्य शकराचार्य विशेष उल्लेखनीय है। शङ्कराचार्य ने अपने तर्क के बल से बौद्ध धर्म को भारत की सीमा से बाहर निकाल दिया।

४. श करांचार्य का जन्म ७८८ ई० मालाबार मे हुआ था इन्होंने वेदांत मत का प्रतिपादन करके केवल एक ब्रह्म को माना है ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य सब कुछ भ्रम है, मिथ्या है।

५ ब्रह्मज्ञान मे ही आपने मोक्षप्राप्ति मानी ह। भारत भर मे घूमकर आपने बौद्धों को शास्त्रा मे परास्त किया और एक प्रकार से धर्मक्षेत्र मे दिग्विजय प्राप्त की।

६ श करांचार्य अधिक दिन तक अपने मत का प्रचार नहीं कर सके और केवल ३२ वर्ष की आयु मे ही केदारनाथ मे मे आपका देहात होगया ?

७ यह वेदांती लोग ईश्वर की पूजा शिव के नाम से करते है। शकराचार्य ने ज्ञानमार्ग का उपदेश दिया जिस साधारण जनता समझने मे असमर्थ रही। इसलिये यह ज्ञानमार्गी मत केवल कुछ बुद्धि-प्रधान जनता तक ही सीमित रहा, साधारण जनता तक नहीं पहुच सकी।

८ उपसँहार।

स्वामी दयानन्द और उनके सिद्धांत

१ समाज के सम्मुख धर्म की व्यवस्था कर्मकाण्डी लोग व्यर्थ की रूढियो मे घुमा फिरा कर कहते थे। गौतम बुद्ध और वर्धमान महावीर के सुधारो के भी कुछ इसी प्रकार के कारण थे कालांतर

से वैदिक धर्म का रूप बदल चुका था अनेकों प्रकार के मतमतांतरों ने जन्म लेकर प्रधान धर्म की गति को रोक दिया था। बाह्याडम्बर को वास्तविकता पर प्रधानता मिल चुकी थी। धार्मिक मतों पर आपसी वैमनस्य पैदा हो गया था। जातिभेद पराकाष्ठा को पहुंच चुका था समाज में स्त्रियों का कोई स्थान न था। उनके लिये न विद्या का और न किसी प्रकार की स्वतन्त्रता बाल विवाह, बहु विवाह इत्यादि अनेको बुराइयाँ आ चुकी थीं। ऐसे काल मे स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ।

२. गुजरात प्रांत के टकारा नामक ग्राम मे आपका जन्म हुआ, जन्म तिथि अभी तक अज्ञात है इनके पिता का नाम कृष्ण जी तिवाटी था और यह राजा के कारिन्दे थे और शिव के पुजारी थे इसलिये इन्होने अपने पुत्र का नाम मूल शंकर रखा था।

३. १४ वर्ष की आयु मे इन्होने व्याकरण यजुर्वेद और कई संस्कृत ग्रन्थ पढ लिये थे। शिवरात्री को इन्होने व्रत रखा। आधी रात पर पूजन होता था। अन्य पुजारी सो गये परन्तु वह जाग रहे थे। इसी समय एक चूहा आकर शिवलिंग पर से कुछ सामग्री उठा करके ले गया बस इसी से मूलशंकर का मूर्तिपूजा से विश्वास उठ गया और उन्होंने सोचा कि जो पत्थर की मूर्ति अपनी सामग्री की भी रक्षा चूहे से नहीं कर सकती वह हमारी क्या रक्षा कर सकती है।

४. इसके कुछ दिन पश्चात् उनकी भगनी का देहान्त हो गया सब रो रहे थे परन्तु वह नहीं रोये। उसी समय से उन्हे वैराग्य होने लगा और अन्त में एक दिन उन्हें छोड़कर भागना पड़ा।

५. अनेकों स्थानो की खाक छान कर वह मथुरा पहुचे और वहाँ प्रज्ञा चक्षु श्री विरजानन्द जी से उन्होंने दीक्षा ली। जब विद्या समाप्त कर चुके तो गुरु विरजानन्द ने कहा—बेटा संसार में अज्ञानान्ध-

कार फैल रहा है, ज्ञान ज्योति से उन्हे दूर करना। यह गुरु को वचन देकर देशाटन को निकल पड़े और धूमधाम के साथ प्राणों का मोह त्यागकर पाखड खडनी पताका फैरा दी।

६ स्वामी दयानन्द ने मूर्तिपूजा का खडन, श्रद्धा-प्रथा का खडन वैदिक शिक्षा का प्रचार, अछूतों का उद्धार, सस्कृत का पुनरुद्धार, हिन्दीकी उन्नति, गो रक्षा का प्रचार, स्त्री शिक्षाका प्रचार यह सभी कुछ किया और आर्य समाज की स्थापना। आर्य समाज ने हिन्दुओं के सगठन का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। कन्याओं की शिक्षा मे इन का प्रधान सहयोग रहा है।

७ सत्यार्थ प्रकाश स्वामी दयानन्द का ग्रन्थ है जिसमे सभी धर्मों की विवेचना करके आर्यधर्म की विशेषताये प्रकट की गई हैं।

८ ३० अक्टूबर दीपावली के दिन सन् १८८८ में अजमेर मे आपका देहान्त हुआ। आपको आपके विरोधियों ने दूध मे काच पिसवा कर पिलवा दिया था।

९ उपसहार—स्वामी दयानन्द ने किसी नये मत या धर्म की स्थापना नही की। उन्होने तो अपने प्राचीन आर्यधर्म को ही जनता के सम्मुख स्पष्ट करके रखा है। स्वामी दयानन्द ने उस काल में हिन्दू जनता का जो हित किया है हिन्दू जनता उस ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकेगी।

हमारे ज्ञान प्राप्ति के साधन

१. ज्ञान प्राप्त के तीन प्रधान साधन है (१) इन्द्रिय-जन्य ज्ञान (२) तर्क-जन्य ज्ञान (३) और अनुभूति-जन्य ज्ञान।

२. इन्द्रिय-जन्य ज्ञान सबसे साधारण है और वह मोटी से मोटी बुद्धि वाले व्यक्ति को भी प्राप्त हो सकता है। आखो से देखने

कानो से सुनने, हाथो से छूने इत्यादि का ज्ञान इस श्रेणी के अन्तर्गत आयेगा।

३ तर्क जन्य ज्ञान का मूल स्रोत बुद्धि है। पश्चिम के मनीषी तर्क बुद्धि और विज्ञान का आश्रय लेकर ज्ञान की चरम सीमा को प्राप्त करना चाहते है। परन्तु पूर्वी विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं। यह तर्क और बुद्धि से ऊपर भी कुछ मानते है। जहाँ तक तर्क का क्षेत्र है उसका नाम इन्होंने दर्शन इसी लिये रखा है कि उसके द्वारा ज्ञातव्य विषय का केवल दर्शन भर ही हो सकता है उसके रहस्यो का उद्घाटन नही हो सकता।

४ किसी भी वस्तु के विषय मे सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये उस वस्तु से एकात्म स्थापित करने की आवश्यकता है और यह एकात्म स्थापित करना अनुभूति-जन्य ज्ञान के अंतर्गत आता है। हिन्दू शास्त्रों में इस प्रकार के ज्ञान को 'प्रज्ञान', 'प्रतिभा', 'आर्ष-ज्ञान', 'सिद्ध दर्शन', 'योगी प्रत्यक्ष इत्यादि नाम दिये गये हैं।

५ पश्चिमी विचारकों में जड तत्व की प्रधानता मिलती है और पूर्वीय विचारकों मे आध्यात्म तत्त्व की।

६ ज्ञान प्राप्ति के इन तीनों साधनों मे तर्क-जन्य और अनुभूति-जन्य अगाढ विषयो पर विचार करने के लिये प्रधान साधन है। विचार-णीय प्रश्न यह है कि इन दोनों मे भी किस को प्रधानता दी जाये ?

६ ऋषियों ने विद्या को 'परा' और 'अपरा' दो शब्दो मे रखा है। 'परा' के अन्तर्गत ऋगदवेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा कल्प व्याकरण, निरुक्त, छद, और ज्योतिष ज्ञान आते हैं। ऋषियों ने इसी अक्षर ज्ञान को परम ज्ञान माना है और यह भी माना है कि इसके बिना मुक्ति नहीं हो सकती। अपरा ज्ञान के अन्तर्गत आत्मानुभूति आती है।

८ 'परा' और 'अपरा' दोनों ज्ञानो मे से किसे पूर्ण कहे और किसे अपूर्ण यह प्रश्न विचारणीय है। वास्तव मे पूर्ण एक भी नही है। यह प्रश्नो के स्पष्टीकरण मात्र हैं प्रश्नो के हल नही। सभी प्रधान विचारको ने अपने अपने ज्ञान का पूर्ण माना है। ज्ञान वह है जो पकड मे आजाये और सत्यज्ञान व्यापक होते है इसी लिये पकड मे नही आते।

९. केवल सत्य साधन द्वारा ज्ञान प्राप्ति हो सकती है और जो प्रश्न असाध्य है उनका सत्य-साधन द्वारा स्पष्टीकरण हो सकता है।

१० उपसहार—पूर्वीय और पश्चिमीय ज्ञान की साधारण समीक्षा।

समाज और राजनीति में धर्म

१ मानव जीवन मे यदि ससार के इतिहास पर दृष्टि डाले तो तीन प्रधान तत्वों के आधीन विश्व का कार्य क्रम चलता आया है। कभी धर्म की प्रधानता होती है, कभी अर्थ की और कभी राजीनति की।

२ सृष्टि के प्रारम्भिक युगो मे मानव की आस्था ईश्वर मे अधिक होने के कारण प्रत्येक देश मे, समाज मे और शासनव्यवस्था मे धर्म की प्रधानता रहती थी, धर्माचार्यो का प्रभुत्व रहता था। प्रारम्भ मे यह धर्माचार्य निस्वार्थ भाव से मानव, जाति और देश के उत्थान के लिए त्यागी बनकर सेवाभाव से इस प्रधान आसन को ग्रहण करते थे और यही कारण था कि राजे महाराजे भी उनके चरण छूते थे और उनकी आज्ञा का पालन करते थे।

३ इसका फल यह हुआ कि धर्माचार्यो का महत्व बढ गया, और जनता पर उनका प्रभाव हो गया। राज गद्दियो की भांति धर्म की भी गद्दियाँ बन गई और उसमे शक्ति को सु गठित करने को

भी भावना प्रधान हो गई। प्रारम्भ मे जो राजे, महाराजे, सरदार और प्रज धर्माचार्यों का आदर करते थे वह उनके उच्च आचरण, पाडित्य और निस्वा ' सेवा के लिए करते थे। परन्तु अब उसके स्थान पर धर्म मठो मे राजाओ से भी अधिक ठाठ-बाठ थे, शृ गार था और यदि यह भी कह दिया जाय कि यह व्यभिचार के अड्ड बन गये थे तो अनुचित न होगा। भगवान के नाम पर धन भोग-विलास और ऐश्वर्य मठाधीशों को प्राप्त होता था। इन आचरणो के कारण धर्म से आस्था उठने लगी। राजपद और धर्मपद के बीच मे सघर्ष छिड गया। कुछ विश्वासी जनता ने धर्म का साथ दिया और राजाने अपनी शक्ति का उपयोग किया यह सघर्ष योरुप मे प्रधान रुप से चला और फलस्वरूप धर्म पोप की महानता नष्ट होगई।

स्वाधीन देशों मे धर्म की प्रधानता राजनैतिक क्षेत्र से समाप्त हो गई परन्तु पराधीन देशों में वह जनता के बीच बराबर चलती रही। भारत जैसे देशो मे जहा कई धर्म के व्यक्ति रहते हैं वहां शासकों ने इस अस्त्र को पारस्परिक फूट पैदा करने के लिए भी अपनाया। परन्तु मानव प्रगतिशील है और मानव के साथ समाज और शासन व्यवस्थायें चलती हैं। शासन व्यवस्थाओं मे परिवर्तन होने पर राजपद, और अन्त में साम्राज्यवाद का भी अन्त सा हो गया। जिसके फलस्वरूप भारत जैसे देश स्वतत्र हुए और यहाँ भी साम्राज्यवाद के अ तिमचरण मे धर्म ने अपना काड दिखलाया जिसके फल स्वरूप लाखो मुसलमान और हिन्दू दानव बनकर मानवों पर टूट पडे। देश का विभाजन हुआ और उसने एक ऐसी अव्यवस्था को जन्म दिया जिसे भारत और पाकिस्तान की शासन व्यवस्था आज तक नही सभाल सकी।

उपसहार—आज धर्म स्वार्थ के लिए है, पाखड के लिए है, शक्ति छीनने के लिए है—मानव उत्थान के लिए नहीं, धार्म

चल के लिए नहीं, शुद्धाचरण के लिए नहीं। वर्तमान धर्म पर प्रारम्भिक धर्माचार्यों का प्रभाव न होकर मध्ययुग के धर्माचार्यों का प्रभाव है और जनता चल रही है बुद्धिवाद की ओर। धर्म बुद्धिवाद की ओर से रूढ़िवाद की ओर चला है। इसलिए आज मानव और धर्म में टक्कर हो रही है। और जब तक धर्म अपने रूढ़िवाद को छोड़ कर बुद्धिवाद की तरफ चलना प्रारम्भ नहीं कर देगा उस समय तक यह टक्कर बराबर चलती रहेगी। यह टक्कर दोनों भावनाओं के समन्वय क्षेत्र में ही जाकर रुकेगी।

———

सामाजिक निबन्ध

भारतीय समाज की समस्या

भारत का समाज धर्म और राजनीति दोनो से प्रभावित होता है। वास्तव मे यदि हम संगठनों के प्राचीनतम रूपो पर विचार करे तो समाज मानव का सर्व प्रथम संगठन प्रतीत होता है। जब बहुत से मानव एक स्थान पर एकत्रित होकर रहने लगे तो उनकी बाहरी रक्षा के साथ-साथ उनके नित्य के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले नियमो की भी आवश्यकता हुई। इन्हीं नियमो के आधार पर समाज का निर्माण हुआ। शासन व्यवस्था का कार्यभार हलका करने के लिये एक नियमित और सुसंगठित समाज की आवश्यकता हुई।

धीरे धीरे मानव ने अपने जीवन को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए समाज-व्यवस्था, राज्य-व्यवस्था और धर्म-व्यवस्था का आधार लिया। प्रारम्भ मे राज्य-व्यवस्था और धर्म व्यवस्थाओ ने प्रबल रूप धारण किया और समाज को गौण रूप दे दिया परन्तु सामाजिक संगठन मानव जीवन के प्रतिक्षण के कार्यक्रम से सम्बन्धित होने के कारण मानव जीवन मे गौण न हो सका और यह अपनी रूढियो के आधार पर निरंतर अपने को बलवान बनाता चला गया। समाज मानव जीवन की आवश्यकता बन गई। जब तक भारत स्वतंत्र रहा उस समय तक समाज बराबर गौण रूप मे ही रहा परन्तु उसका आधार भी एक रूप मे धर्म ही होता चला गया समाज और धर्म दोनों मिलकर एक से प्रतीत होने लगे।

भारत जब पराधीनता की बेडियों मे जकडा गया और राजनैतिक शक्ति का पूर्ण रूप से ह्रास हो गया तो धर्म का राजनीति से सम्ब--

न्ध विच्छेद होकर केवल समाज से ही जुड गया और दोनो ने मिल कर एक लम्बे युग तक हिन्दूसमाज को जीवित रखने मे सहयोग दिया। समाजिक नियमो ने राजनैतिक असुविधाओं मे अपने बन्धनों को और दृढतर किया। और धर्म के आचार्यो ने समाज के ढांचे को इतना सुदृढ बनाया कि उसकके नियन्त्रण के लिए राज्य का मुंह न ताकना पडे परन्तु इस सुदृढ व्यवस्था मे से धीरे २ जीवन का ह्रास होने लगा और सामाजिक बन्ध लोहे की चार दीवारियो की भाँति ऐसे बन गए कि समाज की सुधार व्यवस्थायें इत्यादि के लिये कोई स्थान अवशेष न रहा। इस अंधकार काल मे धर्म और समाज के नाम पर अंध विश्वास का उदय हुआ और बुद्धिवाद के लिए धर्म और समाज के क्षेत्र में कोई स्थान न रह गया। धर्म और समाज के झूठे पोंगा पथियों ने अपना प्रभुत्व जमा कर समाज को अपने पाखड के ऐसे चगुल मे फँसाया कि समाज का भविष्य अ धकार पूर्ण हो गया।

समाज मे इस काल की कठिन परिस्थियों और अ धविश्वासो के कारण अनेको बुराइया पैदा होती चली गई। मुसलमान काल मे जब शासको के कुआचरण व्यवहार से समाज तग आगया तो उसने बाल-विवाह की प्रथा निकाली। लडका और लडकी पैदा हुए और उनका सम्बन्ध जोडकर विवाह कर दिया। यह किया गया समाज की मान मर्यादा की रक्षा के लिये। परन्तु इसके फलस्वरूप समाज मे एक नवीन कुरीति का प्रादुर्भाव हुआ और वह थी बाल विधवाओं की समस्या। मुसलमानो की पर्दा प्रथा का भी भारतीय समाज पर प्रभाव पडा। स्त्रियों की सुरक्षा के लिये उन्हे भी पर्दे में रखने का सामाजिक नियम बनाया गया। इस प्रकार पर्दे की कुप्रथा का जन्म भारतीय समाज में हुआ। पर्दे के साथ ही साथ भारत की नारियो मे से शिक्षा का भी लोप होता चला गया। जीवन में सुरक्षा न रहने के कारण नारी को इस प्रकार सुरक्षित रखने की आवश्यकता होने लगी

जिस प्रकार धन, माल और आभूषणों को चोरों और डाकुओं से सुरक्षित रखा जाता है। ग्रामीण जनता में आज भी नारी को 'टूम' के नाम से सम्बोधित किया जाता है और 'टूम' ग्रामीण भाषा में आभूषणों को कहते हैं। इसी प्रकार सती की प्रथा, विधवा, विवाह अनेकों जातियों के प्रतिबंध इत्यादि समाज के क्षेत्र में ऐसी बुराइयाँ उपस्थित हो गईं कि जिसके कारण मानव की प्रगति में पग पग पर बाधायें उपस्थित होने लगीं और वह जड़ होकर रह गया।

इन बुराइयों का निवारण करने के लिये समाज में राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे सुधारक पैदा हुये जिन्होंने समाज के उस संकुचित रूढ़िवाद के विपरीत विद्रोह किया और स्वयं विषपान करके समाज को अमृत प्रदान किया। उस काल से समाज ने फिर से पनपना प्रारंभ किया। महात्मा गाँधी ने भी समाज की महानतम बुराई अछूत समस्या के विरुद्ध आंदोलन किया और आज तो राजनियमों द्वारा हो उनके अधिकारों को सुरक्षित कर दिया गया। समाज के माथे का यह कलंक अब मिट रहा है धीरे धीरे सम्भवतः मिट जायेगा क्यों कि समाज की वर्तमान प्रगति में अन्धविश्वासों और व्यर्थ के ढकोसले बाजों के लिये कोई स्थान नहीं है। मानव का दृष्टिकोण विस्तृत होता जा रहा है। सीमित वातावरण में आज का मानव नहीं पालना चाहता

मानव अपने साधनों के साथ चलता है। ज्यों ज्यों दृष्टिकोण के व्यापक बनाने के साधन विस्तृत होते जायेंगे त्यों त्यों मानव का दृष्टिकोण, उसकी समस्यायें, उसके विचार, उसकी भावनायें, उसकी कल्पनायें और उसकी योजनाओं में भी विस्तार आ जायेगा। आज के युग में समाज के साथ ही धार्य धर्म के बंधन भी ढीले पड़ चुके हैं। आज राज्य-सत्ता प्राचीन राज्य सत्ता न रह कर समाज की अपनी सत्ता बन गई है। इसलिये वह सत्ता भी जो कुछ करेगी वह समाज

को स्वस्थ बनाने के लिये ही करेगी। जब तक समाज स्वस्थ नहीं होगा उस समय तक राष्ट्र सुदृढ, सुसगठित और सुव्यवस्थित नही हो सकता। जिसका कि अभाव देश, राष्ट्र और समाज तीनों के लिये हानिकारक है।

आज के समाज मे धर्म का प्रधान स्थान नही रह गया है। धार्मिक श्रृखलाओ मे बाधकर समाज को नही रखा जासकता। आज के प्रगतिशील समाज मे हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सभी एक मेज पर बैठकर खाना खा पी सकते हैं। जहा तक खान-पान का सबध है वहाँ तक सामाजिक श्रृखलायें बहुत ढीली पड चुकी है परतु जहाँ तक विवाह इत्यादि नाते-रिश्तो का सबध है वहाँ अभी भी समाज बहुत पिछडा हुआ है। अतर्जातीय विवाह होने अवश्य प्रारंभ हो गये हैं परतु अभी उनकी सख्या ना के ही बराबर है और जो हो भी जाते हैं उन्हे फिर समाज मे अपना जीवन चलाने मे काफी कठिनाइयो का सामना करना पडता है। शहरो मे इस प्रकार के बध कुछ प्रचलित हुए हैं परन्तु भारत का अधिकाश जन समूह ग्रामों मे रहता है और वहा पर अभी यह प्रथा नाम मात्र के लिये भी प्रचलित नहीं। यदि कोई इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करता भी है तो उस 'भगा ले जाना' कहकर गिरा हुआ काम समझा जाता है। समाज मे उसे घृणित दृष्टि से देखा जाता है। ग्रामों मे भी इतनी सामाजिक स्वच्छदता का आभास अवश्य मिलता है कि जातियों से जो व्यक्ति च्युत करके 'बीसे' से 'दसे' कहलाने लगे थे उनमें आपस में सम्बन्ध अवश्य स्थापित होने लगे हैं।

इस प्रकार आज समाज अपने बन्धनों को धीरे धीरे नमस्कार कर रहा है और भारत मे एक ऐसे समाज का निर्माण होने की सम्भावना है कि जिसका आधार धर्म पर न होकर राष्ट्र पर हो। मानवता के अमूल्य सिद्धांतों के आधार पर आज के समाज का निर्माण होकर

रहेगा। उसमे से ऊँच-नीच की भावना का अन्त होना अवश्यम्भावी है और वह होकर रहेगा। अपने अपने कार्य क्षेत्र के अनुसार समानता नर और नारी दोनो मे एकरूपता के साथ आयेगी। दोनो को स्वतन्त्रता रहेगी अपने अपने कार्य क्षेत्र मे, सामाजिक बन्धनो से दोनों ही मुक्त होंगे। धर्म उनके मार्ग मे कोई रुकावट उपस्थित नहीं करेगा। स्त्री और पुरुष दोनो दो मतावलम्बी होने पर भी अपना सम्बन्ध सुगमता पूर्वक सचालित कर सकेंगे। भारत मे बहु धर्म का होना ही आज भारत के समाज की प्रधान समस्या है। इस समस्या का समाधान होने मे समय लगेगा।

विषय पर संक्षिप्त विचार—

१ समाज की प्रारंभिक दशा।
२ मध्ययुग मे राजनैतिक पराधीनता के समय समाज के नियमों द्वारा भारत की जनता का सरक्षण।
३ आज के प्रगतिवाद मे बुद्धि तत्व की प्रधानता के साथ रूढ़िवाद का अन्त।
४ उपसहार।

भारतीय समाज और हिन्दी साहित्य

समाज पर साहित्य का क्या प्रभाव पड़ता है और साहित्य पर समाज का क्या प्रभाव पड़ता है इसकी निश्चित रूप रेखा बनाना कठिन कार्य है। यह प्रभाव कितना पड़ता है, क्या प्रभाव पड़ता है, किन परिस्थितियों में पड़ता है, किन परिस्थितियो मे कम और किन में अधिक पड़ता है यह बहुत महत्वपूर्ण समस्यायें हैं जिनका अनुसधान इतनी सुगमता से नहीं किया जा सकता हाँ वस्तु स्थिति की रूप रेखा अवश्य बनाई जा सकती है।

मानव समूह का नाम समाज है और लेखक तथा पाठक दोनो ही समाज के प्राणी हैं। दोनो का समाज पर प्रभाव पड़ता है और समाज का दोनो पर पड़ता है। लेखक जो कुछ भी लिखता है उसमे समाज का प्रतिविंब पड़ता है और समाज के व्यक्ति लेखको की जिन रचनाओं को अध्ययन अथवा मनोरंजन के लिये पढ़ते है उनका उन पर प्रभाव पड़ता है। इससे यह सत्य तो स्थिर हो जाता है कि दोनों का दोनो पर प्रभाव पड़ता है परन्तु यह श्राकना कठिन है कि वह किस दिशा मे, किस मात्रा में और किन विचारो के आधीन पड़ता है।

भारतीय समाज पर भौतिकता का प्रभाव उतना नहीं है जितना हृदयवाद का। हमारा समाज भाव प्रवण है, उसमे हृदय पक्ष प्रधान है और बुद्धिपक्ष गौण। इसका प्रधान कारण यह है कि समाज का सचालन आदिकाल से धर्म पक्ष के आधीन हुआ है विज्ञान के आधीन नही। हृदय-पक्ष प्रधान होने के कारण भारतीय समाज पर काव्य के अन्य अंगो की अपेक्षा कविता का अधिक प्रभाव है। नाटक साहित्य का भारतीय समाज के प्रारम्भिक युग में हमें प्राधान्य मिलता है परन्तु मध्ययुग मे आकर नाटक साहित्य का लोप सा ही हो गया। विलायती समाज पर भी कविता और नाटक साहित्य का पर्याप्त प्रभाव है परन्तु वहाँ हृदय-पक्ष की अपेक्षा बुद्धिपक्ष प्रधान होने के कारण उपन्यास और कहानियों की ओर समाज का अधिक ध्यान है। विलायती समाज मे भाव प्रवणता का अभाव और बुद्धि-प्रवणता की तीव्रता मिलती है।

भारतीय समाज मे प्राचीन काल से काव्य का महत्त्व रहा है और प्राचीन काव्यों को समाज ने धर्म ग्रथ मान कर अपनाया है। गोस्वामी तुलसीदास की रामायण ने समाज पर जो प्रभाव डाला है वह कुरान-शरीफ, बाइबिल, और वेदों से किसी प्रकार भी कम नहीं है। रामायण मे एक आदर्श समाज का चित्रण होते हुए भी समाज का सच्चा

चित्र उसमे वर्तमान है। समाज के गुणों के साथ अवगुणो का भी उसमें चित्रण है। बहु विवाह और सती प्रथा का रामायण मे समावेश है साथ ही निशादराज से रामचन्द्र का मिलन करा के और भीलनी के झूठे बेर खिला कर छुआछूत की भावना के प्रति विद्रोह भी प्रकट किया गया है। इस प्रकार समाज का साहित्य पर और साहित्य का समाज पर स्पष्ट प्रभाव मिलता है। भारतीय समाज मे प्राचीन काल से ही साहित्य की प्रतिष्ठा है। वेद, उपनिषद, पुराण, धर्मशास्त्र, महाभारत, रामायण यही सभी काव्य हैं। इन सभी मे राजनैतिक और धार्मिक प्रभावो के साथ साथ समाज का भी प्रभाव दिखलाई देता है। इन सभी ग्रन्थो मे कविता की प्रधानता होने के कारण हृदय-पक्ष की ही प्रधानता मिलती है। वेदो मे हृदय-पक्ष के साथ ही साथ बुद्धिवाद की भी कमी नही है। वेदो मे तर्क को भी पर्याप्त स्थान दिया गया है। भारतीय जनता धर्म प्रधान है इसलिये इस धर्म प्रधान काव्यो का समाज पर आज भी कम प्रभाव नहीं है।

किसी भी काव्य का समाज पर प्रभाव दो कारणो से पडता है। एक तो उनके काव्य-तत्व के कारण और दूसरे उसके विषय के कारण काव्य का विषय उपयोगिता और भावना के आधार पर प्रभावशाली होता है। कुछ काव्य उपयोगिता-प्रधान होते हैं और कुछ भावना प्रधान। दोनों मे कौनसा उच्च श्रेणी में रखा जा सकता है यह कहना कठिन है परन्तु मानव और समाज दोनों से प्रभावित होता है, कम और अधिक की मात्रा समय और परिस्थिति के अनुसार होती है। प्राचीन काव्यों मे धर्म भावना की प्रधानता हमारे मनीषियों ने रखी है और इसी भावना का समाज पर प्रभावांकन हुआ है। पुराण रस और चमत्कार दोनों की प्रधानता के कारण समाज में व्यापक स्थान पा गये। इनके काव्य तत्व और धर्म भावना दोनों ने समाज को व्यापक

रूप से प्रभावित किया है और समाज ने उन्हें आत्मसात किया है। प्राचीन ग्रन्थों ने समाज को क्या नहीं दिया है? राम जैसा कर्तव्य परायण राजा दिया है जो अपनी प्रजा के लिये सीता जैसी स्त्री का परित्याग कर सकता है, दशरथ जैसा पिता दिया है जो पुत्र स्नेह में प्राण त्याग कर सकता है, राम जैसा पुत्र दिया है जो पिता की आज्ञा पालन करने के लिये बारह वर्ष को वनवास ग्रहण करता है, भरत और लक्ष्मण जैसे भाई दिये हैं जो बड़े भाई को सेवा पिता समान करने को जीवन भर उद्यत रहे, हनुमान जैसे सेवक दिये हैं, कृष्ण सुदामा जैसे मित्र दिये हैं, वाल्मीकि जैसे तत्त्वज्ञानी ऋषि दिये हैं, परशुराम जैसे क्रोधी दिये हैं, सीता जैसी सती दी है, कृष्ण जैसे नीति परायण दिये हैं और युधिष्ठर जैसे सत्यवादी दिये हैं। इन उच्चादर्शों के साथ ही साथ समाज की कमियों को भी काव्यकारों ने अपने काव्यों मे रखकर उनको मानव समाज के लिये हितकर बनाया है। मथरा की कुटिलता, कैकेई की डाह, महाभारत में जुए में स्त्री तक को दाव पर रख देना, युधिष्ठर जैसे सत्यवादी का भी नीति के अ तर्गत झूठ बोलना, दुर्योधन का लोभ, दानी हरिश्चन्द्र का दास की भाँति बिकना इत्यादि मानव और समाज की कमियों को भी प्रचीन साहित्य मे उचित स्थान मिला है। यह मानव जीवन की न्यूनता मे साहित्य मे आकर साहित्य के सौंदर्य मे वृद्धि ही करती हैं कुछ कमी नहीं।

साहित्य ने समाज को रामभक्ति दी है, कृष्णभक्ति दी है, अवतारवाद दिया है या इसके विपरीत यह भी कह सकते है कि रामभक्ति कृष्णभक्ति और अवतारवाद ने समाज को राम और कृष्ण भक्ति का सुन्दर और सरस साहित्य दिया है। मध्ययुग के भक्ति साहित्य ने समाज को आश्वासन दिया है, साहस दिया है, धैर्य दिया, निर्भीकता दी है मगलमय कामना। समाज नैराश्य मे आशा का उदय किया है।

वीर गाथा काल के साहित्य ने समाज का उत्साह बढ़ाया है । ज्ञान दिया है । साहित्य के रसोद्रेक और उसकी रसानुभूति का समाज पर निरन्तर प्रभाव पड़ा है और पड़ रहा है परन्तु सामाजिक चित्रणोले जो साहित्यकार पाठक को उसके अपने जीवन के बीच लेजाकर खड़ा कर देता है उसमे पाठक अपनापन पाकर जिस आनन्द की अनुभूति करता है वह आनन्द उसे उत्कृष्ट से उत्कृष्ट रसोद्रेक न भी प्राप्त नहीं हो सकता । साहित्य कठोर से कठोर हृदय को कोमल बना देता है । वह चट्टान से रस का स्रोत बहा सकता है और कोमल से कोमल हृदय को कठोर बना देता है । साहित्य के पास रस है, अलकार है । अनुभूति है, ज्ञान तत्व है, कल्पना है, हृदय पक्ष है, सगुण और सदोष भाषा है, क्या नही है साहित्य के पास । मानव और अमानव जीवन से सम्बन्ध रखने वाली हर प्रकार की रचना साहित्य के क्षेत्र मे आती है, इतना व्यापक है साहित्य का क्षेत्र । क्षेत्र व्यापक होने के साथ ही साथ समाज पर साहित्य का प्रभाव भी व्यापक है ।

साहित्य भी दो प्रकार का होता है व्यक्तिगत साहित्य और समाजगत साहित्य । समाजगत साहित्य का तो आधार है ही समाज । जहाँ लेखक चलता ही समाज को लेकर है परन्तु व्यक्तिगत अथवा व्यक्ति-प्रधान साहित्य भी समाज से बाहर की कोई केवल कल्पना की आधार भूत रचना नहीं हो सकती । मानव समाज का एक अणु है इसलिये वह समाज से पृथक अपना अस्तित्व स्थापित ही नही कर सकता । उसे पगपग पर समाज की आवश्यकता होती है और उसी के सम्मिलन मे उसके जीवन और साहित्य की पूर्ति है ।

इस प्रकार हमने देखा कि साहित्य और समाज का बहुत घनिष्टतम सम्बन्ध है । प्राचीन साहित्य प्राचीन समाज का प्रतिबिम्ब है और आगामी समाज की रूपरेखा है । उसी प्रकार आज का साहित्य वर्तमान का प्रतिबिम्ब है और भविष्य की रूपरेखा है । व्यक्ति और समाज

के निर्माण मे साहित्य का बहुत बड़ा हाथ हे और उमी प्रकार साहित्य के निर्माण मे व्यक्ति और समाज का। साहित्य हमारे प्राचीन समाज का वह कोष है कि जिस वह समाज धरोहर के रूप मे वर्तमान समाज को दे गया है और यह समाज आने वाले समाज को दे जाये।

विषय पर संक्षिप्त विचार—

१ समाज साहित्य पर आधारित है और साहित्य समाज पर।

२ प्राचीन साहित्य पर दृष्टि डालकर देखने से पता चलता है कि व्यक्ति प्रधान और समाज प्रधान दोनों ही प्रकार के साहित्य में समाज का निर्माण निहित हे।

३ साहित्य ने समाज को राम, कृष्ण, सुदामा, भरत, अर्जुन, भीम, जैसे चरित्र दिये हैं।

४. साहित्य ने समाज को प्राचीन का प्रतिबिम्ब और भविष्य की रूप-रेखा दी है।

५ साहित्य ने समाज को रसोद्रेक दिया है और दी है जीवन को व्यापकता।

६ उपसहार।

हिन्दू समाज में वर्णाश्रम धर्म

यदि हम वर्णाश्रम धर्म के प्राचीनतम इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमे ज्ञात होता है कि वर्णों की व्यवस्था एक ऐसे काल में की गई थी जब उनका करना अनिवार्य था। नित्यप्रति के सघर्ष आर्यों और अनार्यों के बीच चलते थे। समाज विस्तृत होता जा रहा था। इसलिये समाज का समस्त काय भार अव्यवस्थित रूप स नहीं सभाला जा सकता था। आर्यजाति ने उस काल में वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था करके मानव जीवन को चार प्रधान भागों में विभाजित कर दिया। (१) विद्या पठन-पाठन (२) समाज की रक्षा (३) धन और अन्न उपार्जन (४) तथा इन तीनों काम करने वालों की सेवा करना।

इस प्रकार समाज विभाजित होकर अपने अपने कार्य मे जुट गई और कुछ ही दिनो मे आर्यजाति ने आशातीत उन्नति की। जीवन के सभी कार्यो का सचालन भली भाँति होने लगा और मानव समाज मे कोई भी व्यक्ति न रहा जिसका कि कुछ कर्तव्य न हो। यदि वह विद्या की ओर सलग्न है तो वह ब्राह्मण है, यदि वह वीर पराक्रमी है तो वह क्षत्रिय है, यदि वह धनोपार्जन मे रुचि रखता है तो वह वैश्य है और यदि वह इन तीनो कार्यों मे से कुछ नही कर सकता तो वह सेवा भार तो अपने ऊपर ले ही सकता है। इसी प्रकार व्यवस्थित होकर आर्य समाज ने राज्य व्यवस्था कला-कौशल, उद्योग-धधे, व्यापार- इत्यादि सभी क्षेत्रो मे ससार का प्रतिनिधित्व किया।

इस वर्णव्यवस्था का सबसे बड़ा गुण आर्य समाज के सचालकों ने यह रखा था कि इसका आधार जन्म पर न होकर कर्म पर था। वर्णों का विभाजन कर्मो के आधार पर होता था। एक शूद्र विद्या--ध्ययन करके ब्राह्मण बन सकता था और ब्राह्मण बुरे काम करके शूद्र हो सकता था। प्राचीन साहित्य मे ऐसे दृष्टान्त हैं कि जहा शिकारी ज्ञान प्राप्त करके महामुनि हो गये है और रावण जैसे ब्राह्मण आचार्य राक्षस कहलाये हैं। वर्ण व्यवस्था का यह मूल सिद्धान्त धीरे २ ह्रास को प्राप्त होता चला गया और इसी के ह्रास के साथ २ वर्णाश्रम धर्म का महत्व भी नष्ट होने लगा।

शक्ति पाकर शक्ति खोना कोई नही चाहता। फिर वह शक्ति या निबल होकर देनी पड़ती है अथवा उनसे छीनली जाती है ब्राह्मण जाति के हाथो में शक्ति आई और उन्होंने अपनी सन्तान को माया--जाल मे फस कर वर्णाश्रम धर्म के मूल सिद्धान्त को भुला दिया। ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण कहलाया चाहे उसके आचरण कैसे भी क्यों न हो? मानव मानव म स्वार्थ के वशीभूत होकर घृणा और विद्वेश की की भावना का प्राबल्य हुआ। अपनी अपनी शक्ति को सुसगठित

रखने के लिये वर्णों की सीमाओं को रूढ़िवादों के आधार पर बाँध दिया गया। वर्ण शब्द का एक प्रकार से लोप सा दिखाई देने लगा और इसके स्थान पर जाति शब्द का प्रयोग प्रचलित होगया। मानव समाज को जातियों में विभाजित किया जाने लगा और ज्यों ज्यों मानव समाज का विस्तार हुआ त्यों त्यों जातियों की सख्या भी बढ़ने लगी। इस प्रकार सख्याओं का बढना स्वाभाविक ही था क्योंकि व्यवस्था गुणों से हटकर जन्म पर आधारित हो चुकी थी, और जन्म की व्यवस्था को सीमित नहीं किया जा सकता था।

गुणों की व्यवस्था समाप्त होकर जन्म की व्यवस्था होने समाज अग प्रत्यागों के विभाजन मे आजाने से समाज का जो सबसे बड़ा अहित हुआ वह यह था कि मानव के विकास उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो गया। जाति बन्धन के प्रतिबन्धों ने मानव के बुद्धिवाद, अनुभूति और विकासवाद तीनो का गला घोंट दिया और जनता का साम्राज्य मानव पर छा गया। धन सम्पत्ति की भांति बुद्धि, गुण आचरण, यश और पाण्डित्य भी बपौती के रूप मे समाज के व्यक्तियों को प्राप्त होने लगे और उनके लिये करने का कुछ अवशेष ही न रहा। ब्राह्मण का पुत्र पण्डित है और वैश्य का सेठ, क्षत्रिय-पुत्र वीर है और शूद्र पुत्र दास। इससे अधिक बढ़ने के लिए किसी को कोई सुविधा न थी। यहाँ तक धर्म के पाखण्डो ने अपना जाल फैलाया कि शूद्र यदि वेदमन्त्र अकसमात भी सुन ले तो उसके कानो मे गर्म करवा कर सीसा भरवा दिया गया। इस वर्णाश्रम धर्म की यहाँ तक दुर्गति हुई।

इसके फलस्वरूप बौद्धधर्म और जैनधर्म का विकास हुआ। यह वर्णाश्रम धर्म ही एक प्रकार से ब्राह्मण धर्म कहलाता है और इसी के आचरणो के विरुद्ध बौद्धधर्म और जैनधर्म ने विद्रोह किया। यह सब विद्रोह हुए, अनेकों बवण्डर आये, विधर्मियों के आक्रमण

हुए, शताब्दियों तक भारतीय सत्ता पदाक्रांत होती रही परन्तु ब्राह्मण धर्म की शृखलाए ढीली नही पड़ी। यह सत्य है कि इन शृखलाओं ने प्रगतिवाद को धक्का पहुचाया परन्तु मध्ययुग में भक्ति के रूप मे हृदयवाद को इतने विशाल रूप में जन्म दिया। कि हिन्दू समाज के चारो वर्णो के नैराश्य को अपनी भावना की धारा मे प्रवाहित कर दिया। इस धारा ने भारतीय पुराने वर्णाश्रम धर्म पर कुठाराघात नही किया परन्तु धर्म क्षेत्र मे सब वर्णों को स्वाधीनता दे डाली। रामायण पढ़ने का एक शूद्र को उतना ही अधिकार प्राप्त हो गया कि जितना एक ब्राह्मण को। भक्ति की इस धारा ने भारतीय समाज के विचारो में भी एक क्रांति को जन्म दिया और उनका उस काल मे विद्रोह भी कम नहीं हुआ। भाषा में धर्म ग्रन्थों का होना और फिर इसे सभी वर्णों को उन्हे पढने का समानाधिकार देना बपौती के रूप में धर्म के ठेकेदारों के मार्ग मे कठिन व्याघा बन कर खड़ा हो गया। समाज में उनकी पोल खुलने लगी और लोगो की श्रद्धा भी धीरे-धीरे उनपर से उठने लगी। आराम मे बैठकर मठों में हलवा पूरी खाने वाले अय्याशी महन्तों और साधुओं के लिये परीक्षा का समय आ गया। इस प्रकार कर्म के क्षेत्र में चारों वर्णों को स्वाधीनता मिली। परन्तु फिर भी शूद्रों को मन्दिरों मे जाने का अधिकार नहीं था। उन्हें अपने मन्दिर पृथक बनवाने पड़े।

समाज की प्रगति फिर भी न रुक न सकी। धार्मिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता मिलने पर भी समाज का व्यापक क्षेत्र अधूरा सा रह गया जहा वर्णों को अभी तक इसी प्रकार गलत समझा जा रहा था। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज द्वारा पुरातन आर्य प्रणाली के अनुसार फिर से हिन्दू जनता के सम्मुख वर्ण व्यवस्था के गूढ़ सिद्धाँतों को रखा और देश भर में एक बड़ा भारी सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन खड़ा किया। शूद्रों को आर्यसमाज का मैम्बर बनाकर

ब्राह्मणों के साथ बिठलाया और महात्मा गांधी ने उस रहे सहे कलक को भारत के मस्तक से धोने का प्रयत्न किया परन्तु फिर भी उस प्राचीन वर्ण व्यवस्या का विगड़ा हुआ रूप जो भारत की असख्य जातियों मे व्यापक हो चुका है वह आज भी ज्यों का त्यो वर्तमान है बड़े २ विद्वानों मे आज जातीयता की सकुचित भावना मिलती है। गुप्ता गुप्ता, शर्मा-शर्मा को सिक्ख सिक्ख—इसी प्रकार जीवन मे सब सम्प्रदाय अपने अपने लोगों को सहायता देकर योग्य व्यक्तियो के मार्ग मे बाधक बनते हैं। जातीयता की भावना ने इस सकीर्ण मनोवृत्ति को जन्म दिया। और यह भारतीय समाज के उत्थान मे रुकावट है। वर्णाश्रम धर्म आज भी सिद्धात रूप मे बुरा नहीं व्यवहार रूप मे भारत के लिये हानिकारक सिद्ध हुआ है और हो रहा है परन्तु आज के समान मे यह भावना अधिक दिन तक ठहर न सकेगी। मानववाद के अटल सिद्धाँत के सम्मुख इस सकुचित भावना को लोप हो जाना होगा और वर्णों का विभाजन होगा अवश्य, परन्तु यह प्राचीन आर्य काल की ही भांति गुणों के ही आधार पर करना होगा।

वर्णाश्रम धर्म पर सक्षिप्त विचार—

१ हिन्दू वर्णाश्रम धर्म का मूलस्रोत।

२ भारतीय समाज को वर्णों मे क्यो बांटने की आवश्यकता हुई और उसका क्या फल हुआ ?

३ मध्ययुग मे वर्णाश्रम धर्म किस प्रकार जातियो मे विभाजित होता चला गया।

४ भारत के भविष्य मे इन जातियो की क्या परिस्थति होने की सम्भावना है ?

५ उपसहार।

हिन्दू समाज और नारी

हिन्दू समाज प्राचीन आर्यों का ही वर्तमान रूप है। वैदिकाल के साहित्य पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो भारमीय नारी को वहाँ खडा हुआ पाते हैं जहा स मार के इतिहास मे कहीं पर भी नारी को स्थान नहीं मिला। आर्य सभ्यता मे नारी को पुरुष का 'अर्द्धाङ्गनी' माना है। पुरुष नारी के बिना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार एक व्यक्ति अपना आधा अङ्ग नष्ट हो जाने पर होता है। आर्य सभ्यता मे यज्ञ का विशेष महत्व है। यज्ञ मे यदि पुरुषो के साथ स्त्री न बैठे तो यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हो सकता। जब महाराज रामचन्द्र ने अश्वमेध यज्ञ किया तो उन्होने सीता की स्वर्ण मूर्ति को अपने साथ स्थापित किया था।

मनु नारी के विषय मे लिखते है, 'जिस घर मे स्त्रियो का पूजन होता है उस घर मे देवता निवास करते हैं जिस घर मे स्त्रियो का अनादर होता है उस घर मे होने वाली सब क्रियायें निष्फल हो जाती हैं।' 'स्त्री अनेको कल्याणों की भाजन है, वह पूजा के योग्य है। स्त्री घर की ज्योति है प्रजापति ने प्रजोत्पत्ति के लिए स्त्री को बनाया है। स्त्री गृह की साक्षात् लक्ष्मी है।" स्त्री को जाया, माता, धात्री, कहकर हिन्दू ग्रन्थों ने सम्मानित किया है। सतति को जन्म देना, उसका पालन पोषण करना और प्रतिदिन की लोकयात्रा का का सचालन करना ही नारी का प्रधान कर्तव्य है। नारी को माता के रूप मे सर्वमान्य माना गया है।

मानव जीवन के दो प्रधान कार्यक्षेत्र है और वह दोनों ही एक दूसर से अधिक महत्व पूर्ण हैं। पहिला कार्यक्षेत्र घर जिसे अंग्रेजी मे होम (Home) कहा गया है और अंग्रेजी कवियो ने होम को मीठा घर (Sweet home) कहकर पुकारा है। 'दूसरा कार्यक्षेत्र

घर से बाहर का है। जिसमे पुरुष घर को चलाने के साधन जुटाता है। इसे अधिक स्पष्ट शब्दो मे यो भी कह सकते है कि घर कल है जिसके संचालन के लिये पुरुष बाहर से विद्युत (धन इत्यादि) जुटाता है और स्त्री एक कुशल कल-संचालिका की भाँति विद्युत की शक्ति से उस गृह रूपी कल को सचालित करती है। इस प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों का ही महत्व गृह को चलाने मे एक दूसरे से अधिक है। समाज के यह दोनों ही पुर्जे हैं। जिसमे से किसी को भी टकराने या सिर पर चढाने से समाज का महान अहित हो सकता है।

हिन्दू धर्म ने दोनों को बराबर का स्थान देकर दोनों को सम्मानित किया है परन्तु अन्य धर्मों मे ऐसा नहीं मिलता। जब तक आर्य जाति भारत म शासक बनकर रही नारी का समाज मे यही आसन रहा और वह इसी प्रकार धर्म का और समाज के कार्यो मे सम्मान प्राप्त करती रही। धीरे-धीरे आर्य जाति को अन्य जातियों के सम्पर्क मे आना पड़ा। अनेकों जातियो ने भारत पर आक्रमण किया और उनमे से बहुत से भारत मे ही बस कर यहीं की जातियों मे विलीन हो गई। अनेको आई और अनेकों गई परन्तु वह आर्य जाति के ढाचे को हिलाने मे समर्थ न हो सकी। परन्तु अन्त मे मुसलमानो ने भारत पर आक्रमण किया और इस समय तक भारत मे आर्यों की हर प्रकार की व्यवस्था का ह्रास हो चुका था। न कोई सामाजिक व्यवस्था ही अवशेष थी और ना कोई धार्मिक ही। राजनैतिक व्यवस्था का तो सर्वनाश हो ही चुका था। ऐसी परिस्थितियो मे वह भारत में आये और उनका साम्राज्य स्थापित होगया। जब शासक रूप मे मुसलमान भारत मे सुदृढ होगये तो उनकी सभ्यता का भारतीय सभ्यता पर प्रभाव पड़ा और स्त्री जाति में पर्दे की प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ। पर्दे का आना था कि नारी जीवन की अनेकों स्वतन्त्रताओं का एकदम ह्रास हो गया और धीरे-धीरे नारी घरों की चारदीवारी मे बन्द करके रखने

वाली एक पुडिया ही वन गई । यह वह काफूर की पुडिया थी कि जिसे खोलने पर उड जाने का भय प्रतीत होने लगा और पुरुष नारी के प्रति सशंकित हो गया ।

इस काल से पूर्व ही नारी की स्वतन्त्रता का भारत मे लोप हो चुका था । ब्राह्मण धर्म मे ही मठाधीशों के काल मे नारी का पद पुरुष से नीचा गिना जाने लगा था । नारी जीवन की स्वतन्त्राओ पर भी आक्षेप होने लगे पर और आचार्य तो नारियों मे शास्त्रार्थ करने भी अपनी मान हानि समझते थे । बौद्धकाल में नारी स्वातंत्र्य का एक वार फिर से उदय हो गया था और भारत से पुरुषों के साथ नारी भिक्षुक भी विदेशो में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये गये थे । इनका ब्राह्मणो ने उस काल मे घोर खंडन किया । और जनता मे उनके प्रति घोर निंदा का वातावरण उपस्थित करने का प्रयत्न किया परन्तु वह उस काल मे अधिक सफल न हो सके । बौद्ध धर्म की लहर भी भारत में व्यापक न वन सकी और अन्त मे निर्गुण और सगुण व्यक्ति के रूप मे उसी ब्राह्मण धर्म का उदय हुआ । इस ब्राह्मण धर्म में नारी का स्थान सामान्य था ।

गोस्वामी तुलसीदास जी के विषय मे यह कहा जाता है कि इन्होंने 'ढोल गवार शूद्र और नारी, यह सब ताड़न के अधिकारी' लिखकर नारी जाति का बहुत अपमान किया है । परन्तु यह इस प्रकार का विचार रखने वाले व्यक्तियो की विचार संकीर्णता मात्र ही है । गोस्वामी तुलसीदास ने ही तो सीता के महान चरित्र का चित्रण किया है । मानस मे सीता का चित्रण करने वाला भक्त कवि नारी के प्रति अश्रद्धा रखे यह भला किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? भक्ति काल मे हिन्दू समाज ने मीरा जैसी स्त्रियों को जन्म दिया । यह काल मुसलमानों का शासनकाल था इसलिये मुसलमानी प्रभाव के अन्तर्गत भारतीय नारी को जो यातनायें और असम्मान सहन करना पड़ा वह

अवश्यम्भावी था परन्तु फिर भी हिन्दू समाज के सुधारकों ने बराबर नारी के हित और उसके उत्थान पर ध्यान दिया है। राजनैतिक परिवर्तन और धार्मिक रूढिवाद के कारण जब-जब जो-जो दोष समाज के संगठन और नारी के प्रति भावना मे उत्पन्न हुए तब-तब सुधारकों ने उन्हे सशोधित किया है। गौतम-बुद्ध, राजा राममोहन राय और स्वामी श्रद्धानंद के नाम इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय हैं।

पश्चिमी देशों मे स्त्री और पुरुष के अधिकारों को लेकर जो आन्दोलन खडे हुए। उनसे वहा के गृह-जीवन का मिठास जाता रहा। भारतीय गृह जीवन की यह विशेषता रही हे कि अनेकों दोष और सामाजिक अवगुण समाज मे आजाने पर भी पश्चिम की वह लहर अंगरजी शासनकाल में भी भारतीय गृहस्थ-जीवन को प्रभावित नहीं कर सकी। पश्चिमी विद्या के साथ-साथ नारी मे तितली-जीवन का प्रादुर्भाव अवश्य हुआ परन्तु यह भावना व्यापक न बन सकी। भारतीय नारी मे धर्म की अस्था है और वह अस्था इतनी प्रबल है कि नारी स्वतंत्रता का जा उस पर नहीं चल सका। इस प्रकार भारतीय नारी के जीवन में जो भावनात्मक रस है वह तर्कवाद के चक्कर में पटकर सूख नहीं गया और भारतीय गृह आज भी स्वीट बना हुआ है। अङ्गरेजी कवि की कल्पना भारतीय हिन्दू धर्म के गृह मे अक्षराक्षर सत्य है। भारतीय नारी का गौरव अपने में मातृत्व की वह मान भावना सुरक्षित रहता है विलायती स्वतन्त्रता, सौंदर्य, श्रृंगार, विज्ञान, तर्क और लचक सब समस्त हो जाती है। हिन्दू संस्कृति मे नारी भोग का साधन न होकर मानव-निर्माण का कठोर सत्य है और नारी में से मातृत्व का विनाश हो जाने पर नारी अपनी समस्त प्रतिष्ठा को खो देती है। मानव समाज मे तो क्या नारी समाज म भी वह सम्मान को प्राप्त नही हो सकती - इस प्रकार भारतीय संस्कृति मे नारी का स्थान एकाकी है, उच्चतम है, स्नेह, ममता और प्रेम का प्रतीत है—वह मानव जीवन का रस है अमृत है और प्राण है।

विषय पर संक्षिप्त विचार—

१. आर्य काल मे हिन्दू धर्म के अ तर्गत नारी का स्थान।
२ मध्ययुग मे नारी का स्थान।
३ कालांतर मे नारी-जीवन मे आने वाली अनेकों समस्यायें।
४ विजातियो का हिन्दू धर्म की नारी-भावना पर प्रभाव।
५ विदेशों में नारी-आँदोलनों का भारत में प्रभाव।
६ उपसंहार।

बहु विवाह बाल विवाह और विधवा विवाह

विवाह एक सामाजिक बंधन है जो मानव जीवन को व्यवस्थित और सुचारू रूप से चलाने के लिये समाज ने बनाया है। विवाह के साथ धार्मिक आस्था और राजनैतिक नियमों के मिल जाने से इसका ढाँचा कुछ ऐसा बन गया है जिसकी व्याख्या भी काफी विस्तृत है। विवाह द्वारा एक पुरुष और एक नारी का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित होता है।

आर्य काल में एक पुरुष एक ही स्त्री के साथ विवाह करता था परन्तु धीरे धीरे बहु विवाह की प्रथा प्रचलित हो चली थी। आरम्भ में तो दूसरा विवाह किन्ही ऐसे कारणों के वश होता था जिसमें परिवार के नष्ट होने का भय हो अर्थात् सन्तान उत्पत्ति के लिये और फिर बाद में यह प्रचलित प्रणाली के रूप में ही समाज ने अपना लिया। यशस्वी योद्धाओं और वैभवशाली व्यक्तियों ने अपने आनंद उपभोग के लिये भी एक से अधिक विवाह करने प्रारम्भ कर दिये जिन के परिणाम स्वरूप राम को बन जाना पड़ा, भीष्म को आजन्म ब्रह्मचारी रहना पड़ा और इसी प्रकार की अनेकों घटनायें भारतीय इतिहास और प्राचीन ग्र थों में मिल सकती हैं।

दूसरा विवाह मानव की कमज़ोरियों का प्रतीक है। यह किन कारणोंवश होता है यह ऊपर दिया जा चुका। इन दो कारणों के

अतिरिक्त पहिली स्त्री के मर जाने पर भी दूसरा विवाह पुरुष करा लेते हैं। इस प्रकार का विवाह केवल पुरुषो के लिये ही वर्जित नहीं है नारी के लिये वर्जित है। नारी एक विवाह के पश्चात् दूसरे विवाह का स्वप्न भी नहीं देख सकती। हिन्दू शास्त्रो ने नारी को बहु विवाह की आज्ञा नहीं दी। नारी को सती बनाकर अग्नि कुंड मे स्वाहा कर देना उन्हों ने पसद किया परन्तु दूसरा विवाह करके अपने शेष जीवन को व्यतीत करना पसद नहीं किया।

बहु विवाह मे मानवता के सिद्धांत को ठेस लगी और नारी जाति का अपमान हुआ। यह अपमान की भावना व्यापक रूप से हिन्दू समाज में फैलती चली गई और इसके कारण अनेको कुप्रथाओं ने समाज मे जन्म लिया। सब से प्रधान वस्तु जो सामने आई वह थी सौत की डाह भावना। यह भावना हिन्दू समाज में विशेष रूप से पाई जाती है। यहां पर चाहे किसी की स्त्री जीवन पर्यान्त बीमार ही क्यों न बनी रहे परन्तु वह कभी भी यह पसद नही करेगी कि उसका पति दूसरा विवाह कर ले, किसी अन्य स्त्री को प्रेम करने लगे अथवा अपने दैनिक जीवन मे साथी बना सके। चीन के सामाजिक नियमों में स्त्री पुरुष के लिये अपनी विवशता मे दूसरी स्त्री खोज कर ले आती है और इस प्रकार वह अपने पति के जीवन को शुष्क नहीं होने देती।

कुछ जातियो मे बहु विवाह समाज के लिये लाभदायक भी सिद्ध होता है। भारत में कुछ जातिया ऐसी हैं जिनमें स्त्रियाँ पुरुषों के साथ खेतों में काम करती हैं और घर गृहस्थ के भी सब काम को सभालती हें। ऐसी जाति के व्यक्ति दो तीन विवाह कर लेते हैं और फिर उनकी सहायता मे अपने गृह-कार्य को सुचारु रूप से चला लेते हैं। अपना कार्य संचालन के लिये उसे ऐसे साझीदार मिल जाते हैं कि वह सुगमता से अपना कार्य भार सँभाल सकता है। परन्तु ऐसा बहुत कम होता है। इस प्रकार कार्य का सचालन भी कोई विरला ही कर पाता

है अन्यथा जीवन में ऐसी फूट का गृह बन जाता है कि जीवन ही नर्क तुल्य हो जाता है। बहु विवाह के कारण महाराज दशरथ को अपने प्राण त्याग देने पड़े थे। बहु विवाह समाज की वह बड़ी कुरीति है है कि जिसका जन्म आवश्यकता के कारण होकर बाद में उसे भोग-विलास और ऐश्वर्य के लिये उपयोग किया गया।

समाज ने करवट नहीं बदली। कुरीतिया कम होने के स्थान पर बराबर बढ़ती ही चली गई। बहु विवाह के पश्चात् बाल विवाह की समस्या इस क्षेत्र मे आई। बाल विवाह की समस्या का मूल कारण मुसलमानी शासन व्यवस्था की उच्छृंखलता थी। जब हिन्दू लड़कियों पर दिन दहाड़े छापे मारे जाने लगे तो उनके माता पिताओं ने उनकी धर्म रक्षा के लिये बाल विवाह की प्रथा निकाली। इस प्रथा के अनुसार लड़के और लड़कियो के पैदा होने के साथ ही सम्बन्ध स्थापित कर दिये जाते थे और इस प्रकार उन्हे उस भय से मुक्त किया जाता था। यह प्रथा हिन्द समाज के लिये और भी हानिकारक प्रसिद्ध हुई। जिस समस्या का हल समझ कर इस प्रथा का प्रचार किया गया वह समस्या तो सुलझ न सकी हा एक बाल विधवाओं की नई समस्या समाज के सम्मुख आकर खड़ी हो गई। बालक नन्हें कोमल पुष्पों के होते हैं। न जाने कितने खिले हैं और पूर्ण होने से पूर्व ही कुम्हला कर समाप्त हो जाते हैं। यह दशा इन बाल विवाहों की भी है।

हिन्दू समाज मे विधवाओं की संख्या बढ़ने लगी और बंगाल में सती के नाम पर नारी जाति के साथ घोर अत्याचार होने लगे। कुरीतियों की परिस्थिति यहा तक गम्भीर बनी कि पतियों के मृतक देहों के साथ उनकी स्त्रियों को बांध कर बल पूर्वक चिताओं पर जलाया जाने लगा। बंगाल की समाज सुधारक ब्रह्म समाज ने इसके विपरीत विद्रोह किया और अंग्रेजो ने नियम बनाकर इस प्रथा को रोका।

आर्य समाज ने विधवा-समस्या को सुलझाने मे सहयोग दिया और भारत के कोने कोने मे सुव्यवस्थित विधवा आश्रम खोल डाले। इन विधवा आश्रमों ने हिन्दू समाज का महान हित किया और अनेको घरों से तग आकर भगी हुई विधवाओ को अपनी अ क मे आश्रय दिया। इसके फलस्वरूप अनेकों विधवाओं के जीवन नष्ट होने से बच गये और समाज द्वारा वह अपने दुबारा विवाह कराकर आजीवन सुख चैन की भागी बन गई आर्य समाज का यह कार्य हिन्दू समाज के हित मे विशेष उल्लेखनीय है परन्तु खेद है कि स्वार्थी व्यक्तियो ने इस क्षेत्र को भी नहीं छोटा और इन विधवा आश्रमों मे यहाँ तक बुराइयाँ आई कि वहाँ पर विधवायें बिकने लगीं। प्रारम्भ मे तो उससे विवाह करने वालों से उन पर आश्रम द्वारा किया गया व्यय ही माँगा गया परन्तु धीरे धीरे इसकी मात्रा बढने लगी। फिर भी आर्य समाज ने इस सामाजिक समस्या को सुलझाने मे क्रियात्मिक कार्य किया।

आज का समाज जागृति की ओर बढ़ रहा है। सरकारी नियमों द्वारा बहु विवाह पर प्रतिबन्ध लगता जा रहा है। बाल विवाह के विपरीत पहिले ही शारदा बिल पास हो चुका है परन्तु विधवा विवाह आज भी पहिले की भाति सामाजिक समस्या है। यह समस्या सर्वदा समाज को ही सुलझानी होगी क्योंकि सरकार नियम द्वारा विधवा को विवाह करने की आज्ञा मात्र ही दे सकती है, विवाह करने पर बाध्य नहीं कर सकती।

विषय पर संक्षिप्त विचार--

१. विवाह क्या है ?

२. बहु विवाह आर्य काल में थे अथवा नहीं। पौराणिक काल में किस प्रकार आये ?

३. बहु विवाह के गुण और अवगुण।

४ बाल विवाह कब और क्यों प्रारम्भ हुआ और किस प्रकार इन के

कारण विधवाओं की समस्या समाज के सम्मुख आई ?

५. उपसंहार ।

कुछ सामाजिक निबन्धों की रूप रेखा

समाज और नाटक

१ नाटक का समाज से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है । उपन्यास, कविता या कहानी पाठ्य काव्य है और नाटक रंग-मंच पर आने वाले काव्य हैं । इसलिये समाज का नाटक से और नाटक का समाज से सीधा सम्बन्ध है ।

२ नाटक के आरम्भ और विकास का साहित्य ही समाज के विकास का साहित्य है । सृष्टि के प्रारम्भ में समाज के अन्तर्गत धर्म की प्रधानता थी इसलिये प्रारम्भिक नाटक भी धार्मिक ही मिलते हैं । स्वाँग, रामलीला आदि उनके प्राचीनतम रूप हैं । उनका महत्त्व उनकी लोक-प्रियता से सिद्ध होता है ।

३ संस्कृत के प्रारम्भिक नाटकों का समाज पर बहुत व्यापक प्रभाव है परन्तु धीरे-धीरे नाटक केवल शास्त्रीय क्षेत्र में ही अवतीर्ण होने लगे । स्वाँग, रामलीला इत्यादि तो समाज को मिल गए और विशुद्ध नाटकों का साहित्य में वह स्थान हो गया जिनका महत्व कुछ इने गिने पंडितों के अतिरिक्त जनता से किंचित-मात्र भी न रहा ।

४ नाटक मनोरंजन की वस्तु है । इसके द्वारा समाज का मनोरञ्जन होता है । दैनिक कार्य-व्यस्तता से ऊबकर समाज अपने थके हुए जीवन में नाटक द्वारा फिर से नई ताज़गी लाता है, प्रफुल्लता लाता है ।

५. नाटक प्रचार का सबसे बड़ा साधन है । नाटक द्वारा क्योंकि रङ्ग-मंच पर प्रत्यक्ष के समान वस्तु दिखलाई जाती है इस

लिए दर्शक समाज पर उसका प्रभाव अन्य साधनों की अपेक्षा अधिक पड़ता है। वर्तमान काल में सिनेमा द्वारा सरकार का प्रचार होता है, अनेकों वस्तुओं का विज्ञापन होता है और इस प्रकार उन्हें समाज के पास तक पहुंचाया जाता है।

६. सुधारकार्य जितनी सुगमता से नाटक द्वारा प्रतिपादित किया जा सकता है उतनी सुगमता से अन्य किसी साधन द्वारा नहीं किया जा सकता। सुधार भी प्रचार का ही एक अंग है क्यों कि प्रचार के अन्तर्गत सुधारात्मक प्रचार और व्यवहारात्मक तथा व्यापारात्मक सभी आजाते हैं। प्रचार सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक तीनों प्रकार का होता है और वह तीनो प्रकार का प्रचार सिनेमा द्वारा या नाटक द्वारा सबसे अधिक प्रभावशाली किया जा सकता है।

७. उपसंहार—नाटक जीवन की अभिव्यक्ति का सबसे सुन्दर, सरस, मनोरंजक और प्रभावशाली माध्यम है। समाज के उत्थान और पतन में समाज का बहुत बड़ा हाथ है और हो सकता है। आज के समाज में नाटक अन्य साहित्यों की अपेक्षा सबसे अधिक प्रधानता पा चुका है। वर्तमान सिनेमा भी नाटक ही हैं, नाटक से कोई पृथक् वस्तु नहीं। इसलिए नाटक पर विचार करते समय सिनेमा को भुलाकर नहीं चला जा सकता। और वर्तमान सिनेमा का जो समाज पर प्रभाव है वह प्रत्यक्ष ही है। उसमें सुधार की आवश्यकता है। समाज और सरकार दोनों को उस ओर ध्यान देना चाहिये।

हिन्दु-समाज मे विवाह-बंधन

१. यौन-व्यवहार पर प्रतिबन्ध का नाम विवाह है जिसके मूल मे परिवार की भावना निहित है। मानव जाति के प्रारम्भिक-काल मे जब विवाह की व्यवस्था नहीं थी तो सभी नर-नारी पार-

स्परिक यौन-व्यवहार के लिए स्वतन्त्र थे। आज संसार की किसी भी सभ्य अथवा असभ्य जातियों में यह नहीं है।

२ स्त्री पर सन्देह और अधिकार वात्सल्य प्रेम, भ्रातृस्नेह, पारस्परिक सद्भाव और सहयोग इत्यादि मनोवृत्तियों ने विवाह की भावना को जन्म दिया। विवाह के मूल में यह मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

३. विवाह से परिवार बना। परिवार तीन प्रकार का हो सकता है। पुरुष और स्त्री का एक विवाह मूलक, पुरुष का एक से अधिक विवाह मूलक तथा स्त्री का एक से अधिक विवाह मूलक।

४ भारतीय संस्कृति मे पहले प्रकार का परिवार सबसे अच्छा माना जाता हैं और फिर दूसरे प्रकार का परिवार आता है। तीसरे प्रकार का तो समाज और धर्म से गिरा हुआ माना जाता है। दूसरे प्रकार के विवाह पर भी कुछ प्रान्तीय सरकारो ने प्रतिबन्ध लगा दिया है।

५ परिवार के इस विधान ने सामाजिक और धार्मिक रूप ग्रहण करके अपनी महत्ता को बढ़ाया और धीरे धीरे समाज का यह सबसे आवश्यक और महत्वपूर्ण प्रतिबन्ध बनकर मानव-जीवन का नियामक बन बैठा। आज विवाह जीवन की आवश्यकता है, मानव की आवश्यकता है, समाज की आवश्यकता है और धर्म तथा राजनीति की आवश्यकता है। बिना विवाह के मनुष्य का जीवन अधूरा है और वह जीवन के वास्तविक सुख-दुखों से वंचित है।

६ व्यवस्था पूर्ण मर्यादा की प्रतिष्ठा के लिए समाज ने विवाह की प्रथा को स्वीकार किया। आज समाज का आधार परिवार है आज विवाह और परिवार की व्यवस्था पर समाज के रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा इत्यादि का भार रहता है और समाज को

इन सब प्रारम्भिक आवश्यकताओं की चिन्ता नहीं करनी होती। प्रत्येक परिवार अपने अपने बच्चों का पालन-पोषण, पढ़ाना-लिखाना और योग्य बनाने का कार्य स्वयं करता है और वात्सल्य प्रेम के कारण अपनी पूर्ण कर्त्तव्य परायणता से काम लेता है।

७. विवाह में मिलन है, व्यवस्था है, संगठन है, प्रगति है, उत्साह है और अबाध यौन संगम में उच्छृङ्खलता है, कलह है, अनुत्तरदायित्व है, कठोरता है और प्रकृति का अन्त है। समाज एक निश्चित भित्ति का आधार पाकर मानव को जीवन में उन्नति करने का अवकाश मिलता है। इसलिए संसार की जितनी भी प्रगति है उसके मूल में विवाह और पारिवारिक निश्चिन्तता है।

८. आज के नवीन युग में नारी को मुक्त करने की भावना पर बल दिया जा रहा है। यह अवस्था परिवार की अवस्था से पूर्व अवश्य रही होगी परन्तु मानव उस समय पशुओं से किसी प्रकार कम नहीं था। आज यदि मानव को पारिवारिक बन्धन से मुक्त कर दिया जाये तो वह जड़ हो जायेगा और उसकी चेतना समाप्त हो जायेगी। न उसमें प्यार रहेगा न क्रोध, न उत्साह रहेगा और न महत्त्वाकाँक्षा। मानव मुक्त होकर भलाई बुराई का ज्ञान भी त्याग देगा और स्वार्थी बन जायेगा। मानव का विकास रुक जायेगा, समाज की प्रगति नष्ट हो जायेगी और राष्ट्र पतन को प्राप्त होने लगेगा।

९. स्त्री के प्रति प्रेम और सम्मान की भावना नष्ट होकर वासना का उदय होगा और वही भावना नारी शब्द का पर्यायवाची शब्द बनकर रह जायेगी कि दुःख दर्द में कोई पानी देने वाला और नाम लेने वाला उपलब्ध न होगा। जीवन नीरस होकर रह जायेगा। यही कारण है कि हिन्दु धर्म में विवाह को इतना

महत्वपूर्ण स्थान देकर धार्मिक प्रतिबन्धो मे इस प्रकार जकड दिया है कि मानव बन्धन मे मुक्ति का आनदप्राप्त करसके। धर्म-विहीन विवाह में न तो मर्यादा ही है और न स्थायित्व ही।। वह जिस प्रकार सुगमता से रजिस्ट्रार के सम्मुख जाकर स्थापित किया जा सकता है उसी प्रकार उसी के सम्मुख जाकर समाप्त भी किया जा सकता है।

१०. उपसहार—स्त्री और पुरुष की प्रतिष्ठा विवाह मे है या तलाक में' अन्तिम प्रश्न यही सोचने का रह जाता है। विवाह की स्वतन्त्रता समाज की कमजोरी हैं, उच्छृखलता है, मानव का ह्रास है, पतन है। वहाँ उन्नति के लिए स्थान नहीं। विवाह की आस्था समाप्त होते ही वात्सल्य, भ्रातृत्व, पितृत्व, गृह इत्यादि की सब भावनायें समाप्त हो जायेंगी।

—०—०—

इतिहास सम्बन्धी निबंध

मुसलमान युग और भारत

मुसलमान युग पर विचार करने के लिये हम इस युग को दो भागों में विभाजित करते हैं। एक मुगल-काल और दूसरा इससे पूर्व का काल। मुगल साम्राज्य-काल से पूर्व-काल में हम अरब-आक्रमण-काल को न लेकर केवल दिल्ली के सुल्तानों के समय पर ही विचार करेंगे। दिल्ली के पठान सुल्तानो का प्रारम्भिक काल तो अपने को व्यवस्थित करने मे ही व्यतीत हुआ परन्तु जब उनका शासन व्यवस्थित होगया तो उनका ध्यान राज्य-व्यवस्था की अन्य आवश्यकताओं की ओर गया।

इस काल का न्याय क़ाजियो द्वारा होता था और सुल्तान पूर्ण रूप से निरकुश थे। हिन्दुओं की दशा अच्छी नहीं थी, उनके धर्म का स्थान स्थान पर अपमान होता था और उनका धन भी सुरक्षित नहीं था। हिन्दुओं को जज़िया इत्यादि कर देने होते थे जो आज की सभ्यता में मानवता से गिरे हुए कहे जायेंगे। परन्तु इस काल में बहुत से हिन्दू राजे भी थे और उनके छोटे छोटे राज्यो मे, हिन्दू सभ्यता और उसके पुजारी सुरक्षित और सुखी थे।

पठान-काल मे वास्तु-कला की भारत मे पर्याप्त उन्नति हुई। कुतुबमीनार, अल्तमश का मकबरा और जौनपुर की मस्जिद, इत्यादि उस काल की प्रसिद्ध इमारतें हैं। यह सभी इस काल की वास्तुकला के प्रतीक है। इन इमारतो के निर्माण मे भारतीय वास्तुकला और

पठान-वास्तु कला का सम्मिश्रण मिलता है। इसका प्रधान कारण यही है कि भारत में इतने बड़े भवन निर्माण करने के लिये भारतीय वास्तु कला के विशेषज्ञों की सहायता लेना आवश्यक था और वह सहायता पठान सुल्तानो ने पर्याप्त मात्रा में ली जिसके फल स्वरूप उनमें भारतीय कला की आत्मा मिलती है।

इस काल मे अमीरखुसरु जैसे कवि ने जन्म लिया जिसका स्थान आज भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण है। उसमे उर्दू भाषा का उदय हुआ जो आज पनपते-पनपते एक महत्वपूर्ण भाषा बन कर पाकिस्तान की राष्ट्र भाषा बन गई है। स्वामी रामानुजाचार्य के शिष्य रामानन्द जी का प्रादुर्भाव भी इसी काल में हुआ और इसी काल ने कबीर जैसे सत कवि और विचारक को जन्म दिया। धार्मिक क्षेत्र में गुरुनानक के प्रादुर्भाव का भी यही काल है और बगाल में चैतन्य महाप्रभु ने भी इसी काल में जन्म लिया। इस प्रकार हमने देखा कि इस काल में उस भक्ति सम्प्रदाय का जन्म हुआ जिसने आगे चलकर भारत की जनता के डूबते हुए हृदयों को भक्ति का आश्रय देकर जीवन प्रदान किया, प्राण दान दिया।

इस काल के शासन का भारतीय समाज पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। समाज को मुसलमानी प्रभाव से बचाने के लिये समाज के नियामकों ने जातियों के बन्धनों को बहुत कड़ाई के साथ जकड़ दिया। इसके फलस्वरूप दिन प्रतिदिन जातियों की संख्या बढ़ने लगी और मानव जीवन की प्रगति रुक गई। स्त्रियों में पर्दे की प्रथा का उदय हुआ और उन्हें समाज में खुले रूप से आने के अधिकारो से वंचित कर दिया गया। भारत में मुसलमान धर्म का भी प्रभाव बढ़ा और बहुत से भारतीयों ने भी इस्लाम धर्म को अपनालिया। इस्लाम धर्म को सहर्ष किसी ने नहीं अपनाया बल्कि उसका प्रसार जहाँ तक भी हुआ तलवार की धार पर ही हुआ है।

पठान-काल के पश्चात् भारत में मुगल-शासन काल आता है। यह शासन-काल अनेकों दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है। मुगल शासकों में धार्मिक सहनशीलता, मानवता, कला-प्रियता इत्यादि की कमी न थी। यह लोग पठान शासकों की अपेक्षा अधिक शिक्षित और सभ्य थे। मुगल शासकों में अकबर जैसे शासक भी हुए जिन्होंने हिन्दू और मुसलमानों को मिलाकर 'दीन इलाही' जैसे नवीन धर्म चलाने का भी प्रयत्न किया। जहांगीर जैसे शासक भी हुए जिन्होंने वीर हकीकत राय के माता पिता से उनकी दु,ख भरी कहानी सुनकर काजी को उसके परिवार सहित सरिता में डुबवा दिया। परन्तु साथ ही औरगजेब जैसे शासक भी हुए जिन्होंने मन्दिर तुड़वाकर उनके स्थान पर मस्जिदें बनवाईं और ब्राह्मणों के यज्ञोपवीतों से हमाम गर्म करवा कर स्नान किया। इस प्रकार यह काल दोनों प्रकार की भावनाओं से पूर्ण रहा है परन्तु जहाँ अकबर की धार्मिक सहिष्णुता ने मुसलमानी शासन की नींव को पुष्ट किया वहाँ औरंजेब की कट्टर मुसलमानी नीति ने उसे खोखला कर डाला। अकबर ने जज़िया जैसे करों से हिंदुओं को मुक्त करके उनके हृदयों पर विजय प्राप्त की और औरंगजेब ने मंदिरों को गिरा कर शिवाजी जैसे को अपना शत्रु बना लिया।

मुगल शासन काल में भारत की राज्यव्यवस्था बहुत सुदृढ़ थी और अकबर का सम्राज्य चारों ओर फैला हुआ था। प्रजा भी काफी सुखी थी और देश ने कला-कौशल में पर्याप्त उन्नति की। वास्तु-कला के विचार से यह काल भारतीय मुसलमान का स्वर्ण काल है। ताजमहल संसार का प्रसिद्ध भवन भी इसी काल में निर्मित हुआ है। इसके अतिरिक्त देहली और आगरे के किले, दिल्ली की जामामस्जिद और फ़तहपुर सीकरी के विशाल भवन, लाहौर में जहांगीर का मकबरा इत्यादि इस काल की प्रसिद्ध इमारतें हैं। इन इमारतों पर भारत को

गर्व है और वास्तव मे इनकी बहुत सी विशेषतायें आज के वैज्ञानिक युग मे भी जादू सी प्रतीत होती हैं।

तानसेन जैसे गायक, भक्त तुलसीदास और सूर जैसे भक्त कवि, अब्बुल फजल और फैजी जैसे इतिहासज्ञ, राजा टोडरमल जैसे अर्थ-शास्त्र के पडित, राजा मानसिह जैसे योद्धा, राजा बीरबल जैसे चतुर मतदाता इसी काल की देन हैं। भारत के राजनैतिक, आर्थिक, सास्कृतिक, धार्मिक और साहित्यिक इतिहासों मे इन व्यक्तियों ने अपना अपना सुदृढ स्थान स्थापित किया हुआ है इस काल मे ऊची से ऊंची कोटि के विद्वानों ने जन्म लिया है और ऊचे से ऊचे सुधारकों ने। विधर्मी व्यवस्था होने पर भी धर्म सुधारकों के मार्ग में अधिक रुकावटें नहीं आई। शासक पहले की भाँति निरकुश थे इसलिये कभी कभी जब वह अपनी सीमा का उलघन कर जाते थे तो समाज का अहित भी होने लगता था परन्तु उस काल मे यह निरकुशता ससार भर मे व्यापक थी, केवल भारत मे ही नहीं और धर्म के नाम पर योरोप में भी निरकुश शासकों द्वारा रक्तपात करने मे कमी नहीं छोडी जाती थी। विधर्मियों के झुंड के झुड अग्निकुडों मे स्वाहा कर दिये जाते थे। भारत मे औरगजेब के समय मे कुछ कुछ इस प्रकार की व्य-वस्था मिलती है परन्तु समस्त मुसलमान शासन काल मे नहीं।

मुसलमान शासक भारत मे आये और भारत के होगये। जब हम मुसलमान शासकों पर दृष्टि डालकर अ गरेज़ शासको पर दृष्टि डालते हैं तो हमें केवल यही अन्तर मिलता है। मुसलमानों से पूर्व जो जो भी जातियाँ भारत में आईं वह यहाँ की सभ्यता में घुलमिल कर अपना सभी कुछ खो बैठीं परन्तु मुसलमानो ने ऐसा नहीं किया। इन्होंने भारत की सभ्यता को तलवार की धार पर रख कर काटना चाहा परन्तु कटना इन्हें स्वय ही पड़ा। जो मुसलमान धर्मावलम्बी बन भी गये उनमें भी जाट मुसलमान, राजपूत मुसलमान, जुलाहे

मुसलमान इत्यादि वर्ग बन गये और मुसलमानी सिद्धान्त जड़मूल से ही नष्ट होकर भारतीय वर्गवाद के पीछे चल पड़ा। मुसलमानी रीति रिवाजों पर प्रभाव अवश्य पड़ा परन्तु उनकी बाहिरी रूपरेखा पर, अंतरात्मा पर नहीं। उनकी अंतरात्मा ज्यों की त्यों बनी रही। मुसलमानी शासक चाहे अपने को हिन्दुओं से कुछ ऊंचा समझते थे परन्तु फिर भी वह अपने को भारत का शासक समझते हुए जो कुछ वे करते थे वह भारत के ही लिये करते थे। भारत की, धन सम्पत्ति इससे बाहर नहीं जाने पाती थी और भारत निर्धन होने से बचा रहा। परन्तु अंगरेजी शासनकाल में भारत की सम्पत्ति भारत से बाहर जाने लगी जिसका प्रभाव भारत की आर्थिक स्थिति पर बहुत बुरा पड़ा।

इस प्रकार हमने तुलनात्मक रूप से देखा कि आर्थिक विचार से से मुसलमानी शासनकाल अंगरेज़ी शासनकाल से कहीं अच्छा था क्योंकि उस काल में भारत की धन सम्पत्ति सुरक्षित थी और इस काल मे भारत ने जो कुछ भी उन्नति की और जो कुछ भी उपार्जन किया वह भारत ही में रहा। मुसलमानों ने भारत मे जो कुछ भी किया अपना समझ कर ही किया।

विषय पर संक्षिप्त विचार—

१ मुसलमान-काल के दो प्रमुख भाग विभाजन।

२. दोनों कालों में, विद्या, कला, सभ्यता और समाज की उन्नति।

३. आर्थिक दृष्टि से भारत के लिये मुसलमानी-शासन काल कैसा था?

४. उपसंहार।

अंगरेज़ी शासन-काल की भारत को देन

अंगरेज भारत मे व्यापारी बनकर आये, ईस्टइंडिया कम्पनी की स्थापना की, धीरे २ अपना आधिपत्य बढ़ाया और सन् १८५७ के पश्चात्

समस्त भारत के शासक बन बैठे। अंगरेज़ी शासन-काल मे भारत की आर्थिक दशा बिगड़ी, यहाँ की सम्पत्ति अनेको रास्तो से देश से बाहर ले जाई गई परन्तु यह लेजाने की व्यवस्था महमूद गज़नवी जैसी नहीं थी। भारत की जनता पर अंगरेज ने जादू कर दिया, भारत का जूता और भारत का सिर कर दिया और जितने दिन भी भारत मे रहे बहुत ठाठ के साथ शासन किया। इस शासन काल मे अनेकों बुराइयां होते हुये भी इस शासन ने भारत को बहुत कुछ दिया है। भारत को अंग्रेजी शासन काल ने क्या क्या दिया है इसकी व्यापक व्याख्या न करके यहा संक्षिप्त रूप में विचार करेंगे।

सामाजिक सुधार—भारत समाज मे सती प्रथा प्रचलित थी। अँगरेजी शासन-काल मे सरकारी नियम द्वारा इस कुरीति को सफलता पूर्वक रोककर मानव-जाति के मस्तक से इस कलंक को दूर किया गया इसी काल मे शादी बिल पास करके समाज को बाल विवाह की कुरीति से मुक्त किया। इन दो बातों के अतिरिक्त इस काल में वैज्ञानिक प्रगति के कारण मानव जीवन प्रगतिशील बन गया और समाज के वह प्राचीन बन्धन जिनमें समाज शताब्दियों से जकड़ा पड़ा था आप से आप खुलते चले गए। समाज के सिर से छुआछूत का भूत उतरने लगा। उदाहरण स्वरुप रेलों मे यात्रा करने वाले व्यक्ति मार्ग में मोल लेकर खाना खाने लगे, स्टेशनों के नलों का पानी पीने लगे और स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थी जाति पाँति के भेद भावों से मुक्त होकर एक साथ भोजन करने लगे। होटलों का प्रचार बढ़ा और शाकाहारी तथा मांसाहारी भी एक ही रसोई का बना हुआ भोजन खाने लगे। इस प्रकार समाज अपने रूढ़िवाद को स्थिर न रख सका और प्रगति शील बनकर उन्नति के पथ पर अग्रसर हुआ। समाज ने अपने को धार्मिक प्रतिबन्धों से बहुत कुछ अंशों में मुक्त कर लिया और यहाँ तक कि विवाह सम्बन्ध भी अदालतों मे होने प्रारम्भ हो गये परन्तु यह प्रथा अभी अधिक प्रचलित नहीं हो सकी। विजातीय विवाहों की

ओर भी समाज ने पग बढ़ाया परन्तु इस क्षेत्र मे भी अभी अधिक प्रगति नही मिलती। फिर भी प्रत्येक दिशा मे प्राचीन श्रृङ्खलाएँ टूट रही हैं और नवीन प्रगतियों का उदय उसमे हो रहा है। इस काल में ब्रह्म समाज और आर्य समाज ने भी सामाजिक सुधार किये हैं और वह बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इस काल मे स्त्री शिक्षा का भी प्रसार हुआ और उन्हें समाज में भी स्वाधीनता प्राप्त हुई।

धर्म का स्थान—अ गरेजी शासन ने भारतीय धर्मों को राजनैतिक क्षेत्र मे प्रयोग करके हिन्दू और मुसलमानों की शक्ति को नियन्त्रित रखा। यों साधारणतया किसी विशेष धर्म के साथ किसी विशेष प्रकार का पक्षपात नहीं किया परन्तु जब जहाँ पर जिसकी प्रबलता देखी तब वहीं पर दूसरे पक्ष को बल देकर अपनी प्रधानता बनाये रखी। धर्म के नाम पर समभाव प्रदर्शित करते हुए भी धार्मिक कटुता को मिटाने का वास्तविक प्रयत्न कभी भी अगरेजी शासन ने नही किया। परन्तु इसी काल में खिलाफत और कॉंग्रेस ने जन्म लिया। दो आँदोलनों ने भारत में बहुत प्रबल रूप धारण किया और धार्मिक कटुता को मिटाने का सफल प्रयत्न किया। अगरेजी शासन काल मे हिन्दू और मुसलमानों का आपसी वैमनस्य दूर नहीं हुआ। साथ ही भारत में ईसाई धर्म के प्रचार को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। ईसाई धर्म का प्रचार भी भारत मे हुआ परन्तु भारत के धार्मिक रूढ़िवाद के सम्मुख वह प्रचार उच्चवर्गो मे सफलता पूर्वक नहीं हो सका। अङ्गरेजी शासन काल की यह विशेषता है कि मुसलमान-शासन काल की भांति इस काल में शासक वर्ग ने धर्म प्रचार मे तलवार का प्रयोग न करके प्रेम और सद्भावना का प्रयोग किया। ईसाई पादरियो ने बच्चों के लिए स्कूल खोले, औषधालय खोले, गिर्जे बनवाये, यह तीनो की सहायता और इसी प्रकार अनेकों प्रकार से भारतीय जनता के हृदयो मे घर करने का प्रयत्न किया।

वैज्ञानिक विस्तार—संसार की वैज्ञानिक प्रगति से अंगरेज शासकों ने भारत पिछड़ा हुआ नहीं रहने दिया। जब योरोप में रेलों का आविष्कार हुआ तो भारत मे भी रेलें चालू की गईं। यह सत्य है कि प्रारम्भ मे यह रेलवे विभाग केवल सैनिक सुविधा के लिए चालू किया गया था परन्तु धीरे धीरे इसका प्रयोग जनता के लिये किया गया और इससे भारत के व्यापार ने समुचित उन्नति की। भारत में मोटरें आईं, हवाई जहाज आये, रेडियो आया, तार और बेतार के तार का प्रयोग हुआ। यह अंगरेजी शासन-काल की देन है जिन्होंने भारत में भी एक वैज्ञानिक प्रगति का संचार किया। प्राचीनता मे नवीनता का प्रादुर्भाव हुआ और मानव जीवन मे एक नवीन स्फूर्ति आई। इस वैज्ञानिक-विकास से मानव के ज्ञान का भी विकास हुआ और इन तीव्र गति से चलने वाले यंन्त्रों की सहायता से संसार मानव के लिए गम्य हो गया। मानव-ज्ञान का विकास हुआ और भारत ने अनेकों दिशाओं मे उन्नति और प्रगति की।

ललित-कला-विकास—अंगरेजी शासन-काल मे भारतीय ललित कला के क्षेत्र में पर्याप्त विकास हुआ भुवन-कला के क्षेत्र में जो विकास मुगल-काल में दिखाई देता है वह अङ्गरेजी शासन काल मे नहीं हुआ। मूर्ति-कला क्षेत्र में भी अधिक विकास नहीं दिखलाई देता। संगीत कला का विकास रेडियो के आविष्कार के कारण पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। संगीत आज जीवन की आवश्यकता बन गया है और सभ्य समाज में तो इसका विशेष स्थान है। चित्र-कला का भी इस काल मे बहुत विकास हुआ है। सिनेमा के आविष्कार ने चित्र-कला को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया है। इस काल में भारत मे बहुत से चित्रकारों ने जन्म लिया है और इस काल के राजे महाराजाओं ने उसे बहुत अपनाया। इस काल में जो सबसे अधिक उन्नति हुई वह काव्य-कला की है। काव्य-कला क्षेत्र में नाटक, कविता, उपन्यास, कहानी,

इत्यादि सभी क्षेत्रों मे उन्नति हुई है और एक से एक सुन्दर ग्रंथ लिखा गया है काव्य का क्षेत्र भी पहिले की अपेक्षा अधिक व्यापक हो गया है।

शिक्षा—अङ्गरेजी शासन-काल मे शिक्षा का प्रचार बढ़ा। जगह जगह विद्यालय खुले और उनमे अनेकों प्रकार की शिक्षा के केन्द्र खुले कान्ट्री, साइन्स, कॉमर्स, खेती बाड़ी, टैक्नीकल, कानून, गणित, अर्थ-शास्त्र, इतिहास, भूगोल इत्यादि अनेकों दिशाओं में शिक्षा देने के लिए विद्यालय खुले और सरकार ने उन्हे पूरी पूरी सहायता दी। सैनिक-स्कूल भी खोले गए और उनमे भी बहुत लाभदायक शिक्षा दी जाती थी। इ जीनियरिंग के स्कूलो मे भुवन-निर्माण के भी केन्द्र स्थापित हुए जिनमे पढकर बहुत से विद्यार्थी निपुण बनकर भारत के लिए लाभदायक सिद्ध हुए। इस प्रकार शिक्षा के अनेको क्षेत्रो मे इस काल मे उन्नति हुई परन्तु जिस दिशा मे विशेष शिक्षा दी गई वह थी भारत के नवयुवको को अङ्गरेजी क्लर्क बनाने की शिक्षा। यह थी भारत को एक प्रकार से दास बनाने की शिक्षा जिसके फल-स्वरूप भारत आज के युग तक दास बना रहा।

इसके अतिरिक्त अँगरेजी शासन-काल मे भारत ने राजनैतिक रूप में भी प्रगति की कांग्रेस के नेतृत्व में भारत आगे बढा और उसने स्वाधीनता को समझा। भारत के जो व्यक्ति विलायतों में गए और वहाँ जाकर उन्होंने भारत की पराधीनता का अनुभव किया उसके फलस्वरूप भारत मे भी जागृति का सचार हुआ। भारत मे प्रजा-तन्त्र का अगामन अग्रेजी शासन की ही देन है। अग्रेजों ने जहाँ भारत से धन सम्पत्ति का हरण किया है वहाँ भारत को दिया भी बहुत कुछ है। भारत के वैज्ञानिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक विकास में बाधा न डालकर और उन्हे समुन्नत करने में सहयोग दिया है। अँगरेजी शासकों का दृष्टिकोण सर्वदा ही प्रगतिवादी और सुधारवादी रहा है। भारत में शासक बनकर भी उन्होंने कभी भारत

की धार्मिक भावनाओं को नहीं ठुकराया, कभी भारत की समाज का भारत मे अनादर नही किया और भारत की उन्नति मे यथायोग्य सहयोग ही दिया है। सहयोग की मात्रा इनमें मुसलमान शासकों की अपेक्षा अधिक रही। इस शासन का सबसे बड़ा अवगुण यही रहा है कि इसकी बागडोरो का सचालन इङ्गलैण्ड मे बैठकर किया गया है। यदि इसकी बागडोर का भी सचालन भारत में ही बैठकर किया गया होता तो सम्भवत भारत की स्वतंत्रता सग्राम अमरीका के स्वतन्त्रता सग्राम से किसी भी प्रकार भिन्न न होता और सम्भवत भारत की स्वतन्त्रता उन परिस्थियों में आज के भारत में रहने वाले अ गरेजो के नागरिक अधिकार अधिक सुरक्षित और स्थाई होते। कुछ काल तक आपस में जो कटुता आई सम्भवत वह भी न आती और जो इतने दिन तक हिन्दू मुसलमानो का आपसी द्वेष बना रहा वह भी न रहता। यह भी सम्भव था कि उन परिस्थितियो में भारत को विभाजित भी न होना पड़ता और इस प्रकार अँगरेजो को अपना बिस्तरा बोरिया लेकर जाने की भी आवश्यकता न होती।

विषय पर सक्षिप्त विचार—

१ भूमिका।
२. सामाजिक और धार्मिक सुधार।
३ भारत का वैज्ञानिक विस्तार।
४ भारत की ललित-कलाओं का विकास।
५. भारतीय शिक्षा का विकास।
६ उपसहार।

आज भारत राष्ट्र की आवश्यकता

शताब्दियों की पराधीनता के पश्चात् भारत राष्ट्र स्वाधीनता के विस्तृत क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ है। आज भारत-राष्ट्र के सम्मुख अनेकों समस्यायें हैं और उन्ही समस्याओं की पूर्ति भारत राष्ट्र की वर्तमान

आवश्यकतायें हैं। इसलिए भारत की वर्तमान आवश्यकताओ पर विचार करने से पूर्व एक दृष्टि इस पर डाल लेनी आवश्यक होगी कि भारत की वर्तमान क्या क्या समस्यायें हैं ?

गत महायुद्ध से पूर्व भारत पर अग्रेजो का एक लम्बा चौडा ऋण था और वह-ऋण बहुत दिनों से चलता चला आ रहा था जो कि भारत को इसके वैज्ञानिक विकास के लिये व्यापार और सुरक्षा की उन्नति के लिए अङ्गरेजों ने दिया था। भारत की सुरक्षा मे अधिक यह ऋण अग्रेजों की अपनी सुरक्षा मे व्यय हुआ था परन्तु इस विषय पर प्रश्न करने का किसी को अधिकार नहीं था। गत महायुद्ध में सार की राजनीति ने पलटा खाया, ससार बदला और बदल गया उसका राजनैतिक दृष्टिकोण भी। साम्राज्यवाद और निरकुश नरेशवाद का बोल ध.मा पडने लगा और उनकी सत्ता का भी धीरे धीरे ह्रास हुआ। प्रजा की शक्ति ने जोर पकडा और प्रजातत्र का जोर विश्व में बल पकडने लगा। प्रजातत्र के साथ साथ साम्यवाद और कान्यूनिज्म की भावनायें भी कुछ देशों में पनप रही थीं। इसलिये बडे बडे साम्राज्य बनाये रखना तो असभव सा ही प्रतीत होने लगा।

अङ्गरेजो ने बहुत कुशलता पूर्वक इस काल मे चतुर बुद्धि से काम लिया और उनकी जो कुछ भी पूँजी भारत मे लगी हुई थी वह और साथ साथ कुछ और भी यहाँ से खीचकर अपने को भारत का ऋणी बना लिया। इसके फल स्वरूप स्वतत्र होने पर भारत की दशा बहुत विचित्र थी कि जिसे अपने राज्य सचालन के लिये तथा अन्य प्रगतियों के लिये ससार के बैंक से धन ऋण स्वरूप लेने की आवश्यकता हुई। भारत-राष्ट्र आज हर प्रकार से शक्ति-शाली है, उसके पास सेना है और सङ्गठन है, देश भक्ति है और अन्य साधन हैं परतु इनके साथ ही साथ कमिया बहुत अधिक हैं और उनके कारण बल की अपेक्षा निर्बलतायें अधिक प्रतीत होती हैं।

सर्वप्रथम भारत विभाजन के कारण पाकिस्तान से आने वाले भाइयों को बसाने का कार्य है जिसे हमारी सरकार अभी तक सफलता पूर्वक समाप्त नहीं कर पाई है। यह बड़े खेद का विषय है कि सरकार जनता के रुपये को-कमेटिया बनाकर व्यर्थ के लिये अपव्यय कर रही है और वास्तविक समस्याओं का कोई सुझाव उनके सम्मुख नहीं आ रहा। आज मकान बनाने के लिये भारत-सरकार विलायती कम्पनियों को ठेके दे रही है और भारत के ठेकेदारों को उन कामों से वंचित रखा जा रहा है। यह समस्या आज तक समाप्त हो जानी चाहिये थी, जिसका विलम्ब सरकार की असफलता का द्योतक है।

दूसरी प्रधान समस्या जो भारत-राष्ट्र के सम्मुख इस समय है वह महगाई और चोरबाजारी की है। कांग्रेसी सरकार धनपति पूंजीवादियों की सरकार है जिसका संचालन वही लोग करते हैं जो महगाई और चोरबाजारी को रोकना रोकना तो चिल्लाते हैं परन्तु वास्तव में रोकना नहीं चाहते। यदि सरकार हृदय से इन समस्याओं का हल सोचकर चलना चहाती तो यह इतनी कठिन समस्याये नहीं थी कि जिनका हल सरकार आज तक न निकाल पाती। महगाई दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है और उसके साथ ही साथ चोरबाजारी भी। कंट्रोल का अंकुश लगाकर चाहे जिस वस्तु को चाहे जब भी बाजार से लुप्त कर दिया जाता है और फिर पूँजीपति एक-एक के दस-दस एक क्षण में बना डालते हैं। सरकार को चाहिये कि वह भारत-राष्ट्र के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिये शीघ्रातिशीघ्र इन समस्याओं पर विचार करे और इनके उचित हल निकाले। इसके लिये सरकार को कड़े से कड़े दण्ड नियम तोड़ने वालों को देने चाहियें और उन दण्डों का भी जनता के सम्मुख प्रदर्शन करना चाहिये। उदाहरण स्वरूप यदि देहली के घण्टाघर पर सूली लगवा कर एक भी चोर बाजारी करने वाले व्यक्ति को लटकवा दिया जाये तो दूसरे ही दिन से चोर

बाजारी करने वालों के हृदय थर्राने लग और समाज तथा राष्ट्र एक कुरीति और कलक से मुक्ति पा जाये परन्तु इसके विपरीत होता यह है कि चोरबाजारी से बचने के लिये और घूसें दी जाती हैं और एक बुराई से बचने के लिये राष्ट्र और बुराइयों में फसता जाता है। सरकार का कर्त्तव्य है कि वह शीघ्र इसका उपाय खोज कर निकाले।

तीसरी समस्या इस समय राष्ट्र के सम्मुख खाद्य-पदार्थों की है। भारत के खाद्य-पदार्थों की उपज अभी इतनी नहीं है कि भारत अपना काम अपनी उपज से चला सके। इसलिये भारत को अन्य देशो से खाद्य सामग्री लेनी होती है। यह भारत-राष्ट्र की एक बहुत बडी कमजोरी है और इस कमी का पूरा होना निकट भविष्य में नितात आवश्यक है। आज ससार का वायुम डल युद्ध के बादलो से घिरा हुआ है। भारत की विदेशी राजनीति किसी भी ससार की शक्ति से टक्कर लेने की नही है परन्तु अपनी रक्षा मे कब और क्या करना आवश्यक समझा जाये इसके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। इसलिए देश अपनी खाद्य-सामग्री के लिये अपने पर निर्भर रहे यही सर्वदा आवश्यक समझा जाता है। भारत-राष्ट्र को भी अपने पर निर्भर रहने वाला होजाना नितात आवश्यक है। भारतीय सरकार इस दिशा मे प्रयत्नशील है और आशा है कि निकट भविष्य मे ही वह इस प्रयत्न मे सफल हो जायेगी। सरकार अधिक से अधिक भूमि में कृषि करा रही है और नये से नये कृषि कराने के तरीको और साधनो को प्रयोग मे लाया जा रहा है।

चौथी समस्या भारत की उन मिलों की है कि जिनके लिये कच्चा माल पाकिस्तान से लेना होता है। यह कच्चा माल पटसन और कपास हैं। पटसन की खेती पर गत वर्ष मे भारत सरकार ने बहुत जोर दिया है और बहुत कुछ वह इस दिशा में सफल भी हो गई है परतु कपास की समस्या अभी उसके सामने है। सरकार को कपास की खेती

के लिये उद्योग करने की आवश्यकता है। भारत में पटसन और कपडे की बहुत मिले हैं और भारत का कपडा तथा पटसन का सामान दूर दूर तक विलायतों को भेजा जाता है।

भारत का व्यापार उन्नति कर रहा है। व्यापार और उद्योगधन्धों को उन्नति देने के लिये भारत की सरकार नये बिजली बनाने के कारखाने बनाने मे प्रयत्न शील है और यह कार्य बहुत बडे पैमाने पर चल रहा है जिसके लिये ससार-बैंक से भी पर्याप्त ऋण भारत सरकार ले चुकी है। अमरीका ने इस दिशा मे भारत के लिये सहयोग का हाथ बढाया है। आज भारत-राष्ट्र की सबसे बडी आवश्यकता का हल कहीं बाहर से नहीं आना है वरन् वह भारत-राष्ट्र के ही अन्दर व्यापक है, निहित है। राष्ट्र को आज यहीं पर नहीं पडे रहना है, उसे अपने को उठाकर समुन्नत राष्ट्रों के साथ कधे से कधा भिडाकर चलना है सरकार की कमियों और गलतियो को ही चीन्हने से आज राष्ट्र का भला नहीं हो सकता। राष्ट्र को बलवान बनाना है, शिक्षित बनाना है, धनवान बनाना है, प्रगतिशील बनाना है और अत मे गौरवशील बनाना है। इसके लिये राष्ट्र के हर व्यक्ति को त्याग करना होगा, स्वार्थ से किनारा करना होगा। और राष्ट्र तथा राष्ट्र की आवश्यकताओं को समझना होगा। भारत का राष्ट्र आज कोई साधारण राष्ट्र नहीं रह गया है। विश्व की आँखें भारत की ओर लगी हैं और यदि आज नया विश्व-युद्ध सामने आया तो भारत-राष्ट्र ही उस युद्ध में रेडक्रॉस बनकर ससार के घावों पर मरहम पट्टी करेगा और ससार के सम्मुख महात्मा गांधी के शाँति सदेश का अमर सिद्धात रखेगा।

विषय पर सक्षिप्त विचार—

१ भूमिका।

२ भारत राष्ट्र की समस्यायें, कठिनाइयाँ, और आवश्यकतायें।

३. भारत राष्ट्र का भविष्य और संसार की वर्तमान परिस्थितियो में उसका स्थान ।

४. उपसंहार ।

हिन्दू मुस्लिम एकता की आवश्यकता

हिन्दू मुस्लिम एकता की समस्या भारत मे आज की नहीं है, बहुत प्राचीन है। जिस समय में मुसलमान शासक थे और हिंदू शासित उस समय इसकी आवश्यकता का अनुभव कबीर जैसे तत्वज्ञानी विचारको ने किया था और साथ ही साथ इसका प्रचार भी किया था। कबीर ने अपना कबीर पथ चलाया और उसके अंतर्गत हिन्दू और मुसलमानों का आपसी भेद-भाव मिटाने का प्रयत्न किया परंतु वह अपने उद्देश्य मे अधिक सफल न हो सके। इसी भावना का आभास जायसी इत्यादि कवियों की वाणी मे भी मिलता है। मुगल सम्राट अकबर ने भी अपना दीनइलाही मत चलाकर इस भेद का अंत कर देना चाहा परन्तु वह भी सफल न हो सके और मुल्ला तथा पंडितो के सामने उनकी शक्ति सीमित ही रह गई।

अंगरेजी शासन काल मे आकर हिंदू और मुसलमानो की एकता स्थापित करने की भावना का एक प्रकार से राजशक्ति की ओर से लोप ही नहीं हो गया बल्कि आपसी विद्वेष को और प्रोत्साहन भी दिया गया, जिसके फलस्वरूप समय समय पर आपसी झगडे और मार-काट भी होती रही। इस काल मे इस भावना को जन्म देने का श्रेय खिलाफत आंदोलन और कॉंग्रेस को मिलता है। कॉंग्रेस ने इन दोनों जातियो मे मेल कराने का भरसक प्रयत्न किया परंतु अङ्गरेजी सरकार इस शक्ति को संगठित होने से रोकने के लिये बराबर मि० जिन्ना जैसे मोहरो का प्रयोग करती रही और पूर्णरूप से कभी भी उसने कांग्रेस को उसके लक्ष्य में सफल नहीं होने दिया।

मुसलमान शासनकाल मे धार्मिक और मानवीय दृष्टीकोण से इन दोनो में मेल कराने का प्रयत्न किया जा रहा था परंतु कॉंग्रेस ने इन दोनों जातियों के धर्म-कर्म सम्बधी कार्यक्रम से अपना कोई सबध नही रखा। कॉंग्रेस तो राजनीति के क्षेत्र मे दोनों को सगठित करके अङ्गरेजी सत्ता के विपरीत शक्ति सचालित करना चाहती थी। भारत को पराधीनता की बेडियों से मुक्त कराने के लिए कॉंग्रेस ने इस सगठन की आवश्यकता का अनुभव किया था। कॉंग्रेस अपने इस लक्ष्य मे बहुत दूर तक सफल हुई अवश्य परन्तु पूर्णरूप से सफल नहीं हो सकी। यही कारण था कि अङ्गरेज जाते जाते भी भारत को विभाजित कर गये और पाकिस्तान के एक नये राज्य ने जन्म ले लिया।

एक समय था जब राजनीति धर्म के सकेतों पर नाचती थी और राजनीतिज्ञ धार्मिक गुरुओं की पूजा करते थे परन्तु आज का युग ठीक इसके विपरीत चल रहा है। राजनीति के क्षेत्र मे धर्म का कोई स्थान नहीं और उसका राजनीति पर कोई प्रभाव पड सके यह तो नितात असभव ही है। पाकिस्तान का जन्म उसी प्राचीन रूढिवादी धार्मिक विचारधारा के आधीन हुआ है इसलिये उसका मुसलमानी साम्राज्य स्थापित कराने का स्वप्न तो कभी सत्य हो ही नहीं सकता हाँ इतना अवश्य है कि इससे कुछ समय के लिये भारत के वातावरण हिन्दू और मुसलमानों मे आपसी द्वेष की भावना को जन्म दे दिया है। पाकिस्तान ने अपने प्रदेश से हिंदुओं को निकाल कर भारत का नहीं अपना अहित किया है। अपनी इस भूल को कुछ दिन बाद पाकिस्तान अनुभव करेगा।

भारत में आज भी मुसलमानों की सख्या कम नहीं है और ना ही भारत की राजनीति संकीर्ण धार्मिक नीति का आधार लेकर चल रही है। भारत का शासन कांग्रेस की उसी प्राचीन नीति पर आधारित है जिस पर उसे महात्मा गांधी छोड़कर अपना बलिदान दे गये है, आज

ससार धर्म के पीछे पागल यनकर अपना हित नही कर सकता। धर्म का यदि वास्तव मे देखा जाय तो समाज से कोई सम्बन्ध नही। धर्म का सम्बंध आत्मा की शुद्धि से है और आत्मा का सम्बध व्यक्ति से है। धर्म का सम्बध इस प्रकार समाज के क्षेत्र मे आ भी सकता है परन्तु राजनीति से उसका कोई सम्बंध नही। भारत मे आज हिंदू और मुसलमान दोनो ही रहते हैं। एक स्थान पर रहने वाले दोनो समुदाय यदि आपस मे वैमनस्य धारण करके रहेगे तो भला उनका निर्वाह किस प्रकार होगा? इसलिये दोनों मे प्रेम-भावना का होना नितात आवश्यक है।

जब से भारत स्वतंत्र हुआ है प्रति वर्ष बकराईद, ताजिये और ईद आती हैं परन्तु साम्प्रदायिक दगे नही होते। इसका क्या कारण है? कारण स्पष्ट है कि सरकार आपसी सद्भावना बढ़ाने मे सहयोग देती है और जनता दिन प्रतिदिन इस सत्य को समझती जा रही है कि आपस मे प्रेम-भावना को बढ़ाने मे ही दानो का हित है। हिंदू और मुसलमान दोनो ही मानव हैं फिर भला क्यो मानव-मानव के रक्त का प्यासा बना रहे? क्यो न मानव मानव से प्रेम करे और ससार के सम्मुख यह स्पष्ट कर दे कि मानव दानव कभी भी नहीं था वह केवल राजनीति का चक्र था जिसके जाल मे फँसकर वह चद दिन के लिये पागल हो गया था। उसका मस्तिष्क उससे छीन लिया गया था और उसके हाथों मे दे दी गई थी वह निरकुश शक्ति जिसके प्रयोग मे उसे, उसके निर्माण का सदेश दिया गया था। वह निर्माण का सदेश झूठा, साबित हो चुका और उसका फल मानव स्वय अपने नेत्रों से देख चुका। आज का भारतीय उस भूल को दुहराने के लिये उद्यत नही और वह हिंदू और मुस्लिम एकता के अमूल्य रहस्य को समझ चुका है।

विषय पर संक्षिप्त विचार—

१ मुसलमान युग मे एकता की भावना।

२ अगरेजी शासन-काल मे हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना ।
३ ससार की धार्मिक प्रगति और राजनीति मे धर्म का स्थान ।
४ उपसहार ।

एकतंत्र और प्रजातंत्र शासन

सम्भवत शासन व्यवस्था का सबसे प्राचीनतम रूप एकतत्र शासन ही है। पहिले पहल राज्य सचालन का यह ढग राजा में दैवी शक्तियों का आरोप करके किया गया था। सस्कृत शास्त्रो में राजा को पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि माना है। प्रारम्भ मे अराजकता को रोकने के लिये 'राजा' मे जितनी भी शक्तियां होती हैं उन सभी को एकत्रित किया गया और इस प्रकार राष्ट्र को बलवान बनाकर मानव के हित की भावना को जन्म मिला। भारत के एकतत्र शासन का क्या प्राचीनतम रूप हैं उसकी कल्पना हम 'राम राज्य' मे कर सकते हैं परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि भारत मे प्रजातत्र शासन की व्यवस्था थी ही नहीं। सिकन्दर महान के आक्रमण-काल में वैशाली मे प्रजा-तत्र राज्य था जिसमे राजपुत्रो का निर्वाचन होता था। इसके अति-रिक्त हिन्दू शास्त्रों के विधानों के अनुसार प्राचीनतम राज्य व्यवस्था एकतत्र रूप में अवश्य मिलती है परन्तु राजा स्वेच्छाचारी नहीं होते थे और यदि राजा स्वेच्छाचारी हो जाता था तो प्रजा को अधिकार होता था कि उसे उसके पद से च्युत कर सके।

वर्तमान युग में एकतत्र का अर्थ समझा जाता है स्वेच्छाचारी एक-तत्र सत्ता अर्थात् डिक्टेटरशिप और प्रजातत्र का अर्थ है प्रजा के मत पर अवलम्बित राज्यसत्ता। यह दोनों ही विचारधारायें वर्तमान युग की हैं और इनका उदय भारत से न होकर योरुप से हुआ है। ससार के इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि ससार मे सर्वदा ही शक्ति के लिये सघर्ष बना रहा है। योरोप मे एक काल तक धार्मिक

पादरियों और सामतों के बीच सघर्ष चलता रहा। योरोप मे धर्मशक्ति का धीरे धीरे ह्रास हुआ और अपने अपने देश अपने अपने राजे शक्तिशाली बने। धर्म भावना के पश्चात् साम्राज्यवाद की भावना ने बल पकड़ा और बलशाली राजाओं ने अपने यश और गौरव के लिये अन्य देशों पर आक्रमण के लिये और अपनी निरकुश शक्ति के बल से अन्य देशों की मानवता को पैरो तले रौंद डाला।

शक्ति और माया कभी स्थाई नही रह सकते। जिस प्रकार पोप के करों से यह शक्ति राजाओं पर आकर प्रजा के दलन का साधन बनी उसी प्रकार प्रजा मे भी इस शक्ति के अपहरण की भावना उत्पन्न हुई। क्रोमवेल जैसे नेताओ ने राजाओं के विरुद्ध विद्रोह के झडे ऊ चे किये। रक्त की सरितायें प्रवाहित हो चली और जनता के नेताओ ने एक दिन वह आया कि इस शक्ति को राजाओ के हाथों से छीन लिया। इस काल मे योरुप ही नहीं एशिया तक भी दो पक्षो मे विभक्त होगये एक प्रजातन्त्र वादी और दूसरा एकतन्त्रवादी। प्रजतत्र के नाम पर दो महायुद्ध हो चुके हें। कैसर हो, हिटलर हो तोजो हो या मुसोलनी शक्ति अपहरण का ही प्रयत्न किया है। विजय आज तक प्रजातन्त्र की ही होती आ रही है। जनता की स्वतत्र प्रियता की प्रबल इच्छा को दबाना स्वेच्छाचारी एकतत्र वादियो के लिये सम्भव नहीं हो सका है।

प्रजातन्त्र मे शासन-शक्ति का सचालन प्रजा के चुने हुये व्यक्तियों द्वारा होता है। इसका जन्म इङ्गलैण्ड से हुआ और धीरे धीरे ससार भर मे फैलता गया। इब्राहीम लिंकन ने इस शासन व्यवस्था को "Govenment of the people, by the people and for the people कहा है अर्थात् जनता का शासन जनता द्वारा शासित और जनता के लिये शासित"। यह शासन नरेशों और तानाशाही के विपरीत विद्रोह था, क्रांति थी। भारत के आर्य-काल मे, यूनान मे एथेन्स

(Athens)का और स्पार्टा (Sparta)के प्राचीनतम राजतन्त्रो मे प्रजा तन्त्र का प्रारम्भिक रूप मिलता है। इसका कुछ आभास हम ऊपर भी दे चुके हैं परन्तु उस काल मे पारलियामेंट का तो नाम मात्र भो नहीं था। यह इङ्गलैण्ड की अपनी प्रणाली है जो वहाँ के इतिहासमें किसी न किस रूप में राज्य शक्ति के ऊपर अ कुश के रूप में बनी हुई थी । स्टुआर्ट काल में Divine right of kingsship राजा के दैवी अधिकार के विरुद्ध क्रॉमवैल का सफल विद्रोह हुआ।

क्रॉमवैल के वि ोह से राज्यसत्ता का तो ह्रास हुआ परन्तु क्रामवैल "डिक्टेटर" का जन्म हो गया। इस प्रकार हमे क्रॉमवैल को ससार के इतिहास में सर्व प्रथम डिक्टेटर मानते हैं। इसके पश्चात् जागृति (Ranaissance) का युग आया और जनता प्रगति की ओर बढी। इङ्गलैन्ड की पार्लियामेन्ट में व्हिग, टोरी दो दल बने जिन्होंने प्रजा-तन्त्र के विचार को और बल दिया। उन्नीसवीं शताब्दी में पारलियामेंट में सुधारों की मांग की गई और जेबी हल्के (Pocket Boroughs) शाही हल्के (king boroughs)तथा उजडे हुये हल्के Rotten Boroughs) के विरुद्ध एक जोरदार आवाज़ उठाई। सन् १८३२, १८६७, १८०२, १८८४, १६११ और १६१८ मे अनेकों सुधार हुए जिनके फलस्वरूप स्त्रिओं को भी मत देने का अधिकार मिल गया। अन्त में पार्लियामेन्ट में लेबर और कजरवेटिव पार्टी का जन्म हुआ और प्रजातन्त्र धीरे धीरे अपनी वर्तमान परिस्थिति तक पहुँच गया।

प्रजातन्त्र का प्रसार धीरे धीरे विश्वभर में होना प्रारम्भ होगया। अमेरीका, फ्रांस, और आज भारत में भी प्रजातन्त्र शासन है। चीन का प्रजातन्त्र समाप्त हो चुका। प्रजातन्त्र मे लोकसभा की बहुमत पार्टी का नेता प्रधान मन्त्री होता है और वही अपना मन्त्रिमडल बनाकर शासन व्यवस्था करता है। इङ्गलैण्ड में नरेश अभी तक वर्तमान

है परन्तु भारत और अमेरीका मे नरेश नही है उनके स्थान पर प्रेजीडैन्ट होता है। यदि किसी समय अल्पमत वाली पार्टी का नेता बहुमत मे आ जाये तो बहुमत वाली सरकार के विरुद्ध अविश्वास(Vote of no confidence) का प्रस्ताव रख सकता है। अगरेजी लोक सभा में छोटे पिट (The younger Pitt) के कहने पर नरेश को ऐसा करना पडा था। इस प्रकार के शासन मे शक्ति सर्वदा जनता के हाथों मे रहती है। वह जब चाहे तब किसी भी पार्टी को शासन सत्ता सौंप सकती है और जब चाहे उससे ले सकती है। जिस पार्टी का प्रोग्राम जनता पसन्द करती है उसी पार्टी को अपना मत देकर अधिक से अधिक सख्या मे उसके सदस्य निर्वाचित करके लोकसभा मे भेज देती है। इससे बहुमत वाली पार्टी को हर समय मे जनता का ध्यान रखकर कार्य करना होता है। प्रजातन्त्र शासन व्यवस्था मे धनी और निर्धन, स्त्री और पुरुष हर वयस्क व्यक्ति को मताधिकार होता है। मानवता के अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होते हैं। इस शासन व्यवस्था मे अदालतों को स्वतंत्र रखा जाता है। उनको सरकारी प्रभाव से मुक्त रखने का प्रयत्न किया जाता है।

आज ससार मे एकतन्त्र शासन की प्रधानता नहीं है। गत महायुद्ध से पूर्व एकतन्त्र और प्रजातन्त्र शासन ससार मे समान स्थान रखते थे जापान, इटली तथा जर्मनी में एकतन्त्र सत्ता थी और इङ्गलैण्ड तथा अमेरीका इत्यादि मे प्रजातन्त्र सत्ता। गत महायुद्ध ने एकतन्त्र वाद को बहुत कुछ अशों में समाप्त सा ही कर दिया। आज के युग में प्रजातन्त्र और कॉम्यूनिज्म का बोलबाला है। समस्त ससार दो दलों मे विभक्त है। ससार की प्रधान शक्तियों ने दो अखाड़े जमाये हुए हैं। आपस मे खुलकर मुठभेड करने का अवसर अभी तक नहीं आया है परन्तु कोरिया का युद्ध क्षेत्र इन्ही दो शक्तियों का पारस्परिक शक्ति तुलन है। समस्या वास्तव में कोरिया की नहीं है समस्या है

अमेरिका और रूस की। प्रजातन्त्रवाद मे आज दो पृथक पृथक वर्ग हैं। पूर्जीवादी वर्ग और दूसरा मध्यवर्ग। भारत को हम पूंजीवादी देशों में नहीं गिन सकते। भारत की दशा इस समय बहुत विचित्र है। कॉंग्रेस सरकार के आचरण पूंजी वादियो जैसे हैं परन्तु यह प्रदर्शित यह नहीं करना चाहती। भारत में काम्यूनिज्म साम्यवाद और हिन्दू मुसलमानियत की समस्यायें आज वर्तमान हैं। ऐसी परिस्थिति में भारत प्रजातन्त्र शासन की व्यवस्था को चला रहा है। अब देखना यह है कि यदि इस युग में कोई दूसरा महायुद्ध हुआ तो उस मे विजय किसकी होगी। महायुद्ध की सम्भावना कम नहीं है। ससार पर आज भी महायुद्ध के बादल चारों ओर से घिरे हुए हैं। प्रजातन्त्र का भविष्य इस वार क्या होगा इसके विषय में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता परन्तु इसकी प्रगति में एक ऐसी व्यवस्था अवश्य है जिसका एक दम अन्त हो जाना सम्भव नही है।

विषय पर सक्षिप्त विचार—

१. प्रस्तावना।

२ एकतंत्र और प्रजातत्र का उदय, प्राचीन भारत, यूनान और स्पार्टा मे प्रजातत्र का प्राचीनतम रूप।

३. वर्तमान-प्रजातन्त्र का इङ्गलैण्ड से आरम्भ और उसका विकास।

४ आज ससार में एकतत्र और प्रजातन्त्र का स्थान।

५. गत महायुद्ध के पश्चात् प्रजातंत्र के सम्मुख कम्यूनिज्म की नई समस्या।

६ प्रजातन्त्र का भविष्य।

गांधीवाद और साम्यवाद

आज का युग वादों का युग है जिसमें गाँधीवाद, प्रजातन्त्रवाद, साम्यवाद, मार्क्सवाद, पूंजीवाद, कम्यूनिज्मवाद, एकतन्त्रवाद इत्यादि धाराओं में ससार की शासन व्यवस्थायें चल रही हैं। जिस प्रकार

ससार के प्राचीन इतिहास मे धार्मिक सघर्षों के कारण मानव सुख चैन से नही सो सकता था और मध्ययुग मे साम्राज्यवादियो की उथल-पुथल ने विश्वशाति को सकट मे डाल दिया था, उसी प्रकार आज के युग मे भी वादो का सघर्ष चल रहा है। धर्म की व्यवस्था सघर्ष के लिये न होकर शाति के लिये हुई थी परन्तु परिणाम स्वरूप कितना रक्तपात ससार मे हुआ उन सब का उल्लेख करना यहाँ कठिन है। ठीक उसी प्रकार आज यह वाद भी अपने अपने मूल में मानव-जीवन की शाँति के ही उच्चतम उद्देश्य की पूर्ति का सिद्धाँत लेकर चलने का प्रदर्शन करते है परन्तु उसका फल पारस्परिक विषमता, द्वेश, कलह और सघर्ष के अतिरिक्त और कुछ भी दिखलाई नहीं दे रहा।

इन वादों का जन्म कुछ देश और कालो की परिस्थितियो के फल-स्वरुप हुआ है। दो वाद ना तो एक देश मे पनपे ही हैं और यदि दो वादों ने एक देश मे जन्म भी लिया है तो काल और परिस्थितियों का परिवर्तन होना अनिवार्य है। जब जब इन वादो ने किसी देश मे जन्म लिया है तो उस समय उनका जन्म किसी भी प्राचीन-व्यवस्था मे सुधार के रूप मे ही हुआ है। वह वाद सुधारात्मक होने से उस देश के नेताओं ने यह समझ लिया कि बस क्योकि उस वाद ने उनके देश की समस्याओ का हल निकाल दिया इस लिये वही वाद समस्त ससार की समस्याओ का हल है, उसी मार्ग पर चलकर ससार को शाँति प्राप्त हो सकती है। बस यहीं से शाँति के स्थान पर 'घर्ष की भावना का उदय होता है। आज ससार में जो कुछ भी सघर्षात्मक वातावरण मिल रहा है वह केवल इसी लिये कि दो वादो मे पारस्परिक तनाव है और प्रत्येक वाद अपने को ससार भर के मानवों की समस्याओं का हल समझता है। रूस कॉम्यूनिज्म को मानव समाज के लिये हितकर समझकर ससार भर मे प्रचारित और प्रसारित करना चाहता है और

अङ्गरेज तथा अमरीकन प्रजातन्त्रवाद को मानव समाज की समस्याओं का हल समझते हैं।

भारत की परिस्थिति इन तीनो ही देशों से भिन्न रही है। अमरीका अंगरेजो के प्रभाव से मुक्त होकर प्रगति की ओर अग्रसर हुआ और रूस को अपने ही जार से सघर्ष लेना पडा, परन्तु भारत को विदेशी शासन से सघर्ष लेना था और उस सघर्ष में उसने जिस नीति को अपनाया उसे आज के राजनीतिज्ञ गाँधीवाद के नाम से पुकारते हैं। गाँधी वाद मे महात्मागाँधी के विचार और उनके सिद्धाँतों का दिग्दर्शन है। गाँधीवाद के मूल मे अहिसा की भावना मिलती है और इसी अहिंसा के आधार पर गाँधी जी ने अपने वाद का निर्माण किया है। अहिसा की आत्मिक शक्ति द्वारा ही महात्मा गाधी ने संसार की प्रबलतम शक्ति से टक्कर ली। वह राजनीति मे मन, कर्म और वचन की अहिसा का समावेश करना चाहते थे और यही उन्होने जीवन भर किया। उनकी राजनीति मे छल के लिये स्थान नहीं था, कूटनीति के लिये स्थान नहीं था। उनका मत था कि हिसा मानव को कायरता की ओर ले जाती है और अहिंसा प्रबलता की ओर, आत्म शक्ति की ओर। उनका दृढ विश्वास था कि स्वराज्य केवल अहिसा की आत्मिक शक्ति द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

गाँधीवाद का प्रधान गुण यह है कि वह बुराई करने वाले का शत्रु नही वह उस मूल बुराई का शत्रु है। पापी को पाप से मुक्त करके गाधीवाद उसे सही मार्ग पर लाने का प्रयत्न करता है। अङ्गरेजों से सघर्ष लेते हुए भी अङ्गरेज जाति के प्रति महात्मा गाँधी के मन में कभी कटुता नहीं आई। गाँधीवाद मे विश्व प्रेम की भावना निहित है। अहिंसा पूर्वक असहयोग करना ही गाधीवाद का प्रधान अस्त्र है जिसके सम्मुख न तोप चल सकती हैं और न किसी प्रकार की शारीरिक और भौतिक शक्ति।

गाँधीवाद मे राजनैतिक और आध्यात्मिक तत्वो का समन्वय मिलता है बस यही इस वाद की विशेषता है। आज ससार में जितने भी वाद प्रचलित हैं वह आध्यात्मिक तत्व से मुक्त होकर कोरे राजनीति के क्षेत्र मे अवतीर्ण हो चुके हैं। आत्मा से उनका सम्बन्ध विच्छेद होकर केवल बाह्य ससार तक ही सीमित हो गया है। भगवान से प्रेरित होकर आत्मा की शुद्धि करना गाँधीवादी के लिये नितांत आवश्यक है। गाधीवाद मे साँप्रदायिकता के लिये कोई स्थान नहीं। इसी समस्या का हल करने में महात्मा गाधी ने अपने जीवन का बलिदान दे दिया।

गाँधीवाद में घरेलू धधो का पक्षपात और बडी बडी कलों के प्रति उदासीनता मिलती है। गाधी जी का मत था कि मशीनें मानव-जीवन को बेकारी की ओर घसीटती हैं। गाँधी जी ने कहा भी है, "लाखों जीवित मशीनों को बेकार बनाकर निर्जीव मशीनो का प्रयोग करना मानव-जाति के प्रति अनर्थ करना है।" इसी लिये गाँधी जी ने चर्खा स घ की स्थापना करके खद्दर को प्रोत्साहन दिया। गाँधी जी हस्तकला और ग्रामोन्नति के पक्षपाती थे। वह भारत की आर्थिक उन्नति के मूल में ग्रामोद्योग को मानते थे।

गाँधीवाद में साम्राज्यवाद और पू जीवाद के विपरीत भावना प्रबल रूप से मिलती है। गाँधी जी पू जीपतियों द्वारा भोग विलास और जनता के धन का अपव्यय करना सहन नहीं कर सकते थे। इस प्रकार के आचरणों को वह 'चोरी' कहते थे। गाँधीवाद पू जीवाद को मिटाना नहीं चाहता था परन्तु उनको केवल कोपाध्यक्ष के रूप मे देखना चाहता था।

शिक्षा के क्षेत्र में गाँधीवाद के अ तर्गत मौलिक शिक्षा (Basic Eductation) आती है। मौलिक शिक्षा द्वारा गाँधी जी भारत से अविद्या और दरिद्रता को भगाना चाहते थे। साथ ही गांधीवाद मे

छुआ-छूत और पारस्परिक घृणा के लिये कहीं पर भी स्थान नहीं है। गांधी जी ने हरिजन आन्दोलन किया और उसके द्वारा हिन्दू जाति को खड खड होने से बचाया। गाधीवाद ने पाश्चात्य सभ्यता का विरोध और भारतीय सभ्यता के मूल मे भारत और भारतीय समाज की मुक्ति का समावेश किया है। गांधीवाद मे राजनीति, धर्म, समाज सभी कुछ आ जाते हैं। भारत के सभी क्षेत्रो पर गांधीवाद का प्रभाव हुआ है।

साम्यवाद या मार्क्सवाद किसी न किसी रूप मे आज स सार भर में फैला हुआ है। इटली जर्मनी और जापान मे इसका घोर विरोध हुआ परन्तु इसकी प्रगति को वह न रोक सके। साम्यवाद समाजवाद की तीव्र प्रगति का दूसरा नाम है। भारत मे भी आज इसका प्रभाव स्थान स्थान पर दिखाई देता है। समभावना गांधीवाद में भी मिलती है परन्तु अन्तर केवल इतना ही है कि गांधीवाद का मूल स्रोत अहिंसा से जन्म लेकर चलता है और साम्यवाद में बोलशेविज्म और हिंसा को भी अपनाया जासकता है। समाजवाद मे शासक का कर्तव्य है कि वह राष्ट्र की सम्पत्ति का सम विभाजन करे और राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ काम पर लगाये। साम्यवाद में व्यक्ति का राष्ट्र में एकीभाव होना आवश्यक है। साम्यवाद में प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यतानुकूल कार्य दिया जाता है। इस व्यवस्था मे कोई निठल्ला नहीं बैठ सकता। राष्ट्र का कर्तव्य है कि वह अपने राष्ट्र के किसी भी व्यक्ति को भूखा, नगा या किसी अभाव को अनुभव करता हुआ न देखे। कार्लमार्क्स ने सर्वप्रथम पूंजीवाद के विरुद्ध इस वाद को जन्म दिया। मार्क्स ने संसार भर के श्रमजीवी समुदायों को संगठित करने का प्रयत्न किया। साम्यवाद पूजीपतियों और निठल्लों का कट्टर शत्रु है और हड़ताल इसका प्रधान अस्त्र है। साम्यवाद के इस हड़ताल वाले प्रधान अस्त्र को कुछ अवसरो पर गांधीवाद ने भी अपनाया है और उससे गांधीवादी आन्दोलनों को बल भी मिलता है। भारत में

साम्यवादी नेताओं ने गान्धीवादी अस्त्रो को भी अपनाया है और उसके द्वारा अपने आन्दोलनों मे बल प्राप्त किया है। इस वाद का प्रधान प्रचार ससार में लेनिन और ट्राटस्की द्वारा किया गया। पूंजीपति सत्ताओ ने इस शक्ति को रोकने का भरसक प्रयत्न किया है परन्तु वह इसे रोकने में बराबर असफल रही है और वही सघर्ष आज भी चल रहा है। साम्यवाद की समस्या मानव जीवन के मूल मे निहित है इस लिये इसका हल इतनी सुगमता से नहीं हो सकता। योरोप में रूस के अतिरिक्त अन्य देशों मे भी साम्यवाद का प्रचार हुआ। प्रारम्भ में इटली मे मुसोलनी और चीन में च्यांगकाई शेक ने इसे कुचल दिया परन्तु आज चीन में साम्यवाद का आधिपत्य है। फ्राँस मे १९३९ के महायुद्ध के पश्चात् साम्यवाद का लीडर मानशरव्लम एक बार वहाँ का शासक बन गया।

कुछ व्यक्ति साम्यवाद को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। उनका मत है कि साम्यवाद के मूल में ईर्ष्या और द्वेश की भावना निहित है। प्रतिशोध लेने के लिये यह पागल मनो-वृत्ति से काम लेते है। इसमें सदेह नहीं कि साम्यवाद श्रेणी-युद्ध को जन्म देकर मानव को संघर्ष की ओर अग्रसर करता है। गाधीवाद सघर्ष से मानव को खींचकर शान्ति की ओर लेजाता है, तृप्ति की ओर ले जाता है और साम्यवाद मानव मे आवश्यकताओं का उदय करके उसे सघर्ष मूलक बनाता है। साम्यवाद मानव की स्वतन्त्र प्रवृत्तियो के मार्ग में बाधक है और इस प्रकार वह मानव की और अन्त में स सार की प्रगति मे बाधक बन जाता है। मानव मानव न रहकर एक मशीन का पुर्जा बन जाता है और अपनी स्वतन्त्र सत्ता का सर्वनाश करके रोटी और कपडे के ही चक्कर में फँस जाता है। वहाँ आत्मा निष्ठुर हो जाती है, मस्तिष्क स्वार्थी हो जाता है और बल द्वारा अपहरण की भावना से प्रेरित होकर मानव युद्ध और सघर्ष की ओर अग्रसर हो जाता है। साम्यवाद

की भावना अपने पूर्ण विकास पर पहुँच कर एकतन्त्रवाद का ही दूसरा रूप बन जाती है। इस प्रकार गाँधीवाद और साम्यवाद के मूल तत्वों में आकाश पाताल का अन्तर है। यहाँ दोनो के मूल तत्वो का स्पष्टीकरण हमने इस लिये किया है कि विद्यार्थी दोनों को न समझ कर एकता की भावना का कभी कभी समावेश दोनो में करने लगते हैं। गाधीवाद बुद्धि पक्ष के साथ हृदय पक्ष का सामजस्य करके चलता है और साम्यवाद कोरा बुद्धि-पक्ष वादी है। गाँधीवाद मे प्राचीन के प्रति सद्भावना, सहानुभूति और सम्मान है तथा साम्यवाद मे प्राचीनता के प्रति घृणा, असम्मान और उपेक्षा है। साम्यवाद कलवादी है और गांधीवाद मानववादी बस यही दोनों का मूल अन्तर है। आने वाले भविष्य मे जनता की रुचि साम्यवाद की ओर है इसमें कोई सन्देह नहीं परन्तु भारत की वर्तमान परिस्थितियों में साम्यवाद कहाँ तक उसकी समस्यायों का हल निकाल सकता है यह प्रश्न विचारणीय है। पराधीनता के गहन गर्त से भारत को उभार कर जो वाद वर्तमान परिस्थिति तक लाया है वही भारत की समस्याओं का सही हल खोज सकता है क्योंकि भारत राष्ट्र की गिरावटों के मूल तत्वो को उसी ने भली प्रकार अध्ययन किया और समझा है।

विषय पर संक्षिप्त विचार—

१. प्रस्तावना—भारत में गांधीवाद और साम्यवाद।
२ गाधीवाद का धर्म, समाज और राजनीति के क्षेत्र में महत्व।
३. साम्यवाद का जन्म और प्रसार।
४ उपसहार—गाँधीवाद और साम्यवाद का तुलनात्मक दृष्टिकोण।

भारत की वर्तमान शासन-व्यवस्था

भारत की वर्तमान शासन पद्धति का प्राचीनतम रूप हमे सन् १६१६ के शासन विधान से प्राप्त होता है। इस शासन विधान के

अनुसार भारत को प्रांतों में विभाजित करके प्रत्येक प्रांत का प्रधान अधिकारी लेफ्टिनेंट गवर्नर हुआ और गवर्नर जनरल को वायसराय की उपाधि मिली। इसी समय प्रांतों में कौंसिलों की स्थापना प्रजा के चुने हुए मैम्बरों द्वारा हुई जो केवल देश की अन्दरूनी समस्याओं पर प्रश्नोत्तर कर सकते थे। इस समय तक बर्मा भारत के अन्तर्गत था। सन् १९३५ के शासन विधान से बर्मा भारत से पृथक् हो गया। भारत ११ गवरनरी प्रांत तथा ६ कमिश्नरी प्रांतों में विभक्त होगया। इनके अतिरिक्त देशी राज्यों में राजे अपना निरंकुश राज्य करते थे और उनपर विदेशी नीति के अतिरिक्त और कोई अंकुश नहीं था। १५ अगस्त १९४७ में भारत स्वतन्त्र हुआ और सिन्ध, सीमाप्रांत और बिलोचिस्तान का कमिश्नरी प्रांत पाकिस्तान में चला गया।

केन्द्र—आज भारत का विधान तय्यार हो चुका है। जनता के चुने हुए मैंबरों द्वारा स्थापित विधान-सभा ने इस विधानको तैयार किया है। इसी विधान के अनुसार अब भारत को भविष्य में चलना है। भारत एक बहुत बड़ा देश है। योरोप के कई २ राष्ट्रों के बराबर इसका एक एक प्रांत है। केन्द्र से ही समस्त भारत की शासन व्यवस्था संभालना कठिन है। इस लिए प्रांतों का होना नितांत आवश्यक है। भारत स्व-तन्त्र होने के पश्चात् रियासतों की समस्या का बहुत कुछ हल सरदार पटेल ने कर दिया है। आज भारत में निरकुश शासन सत्ता का अन्त हो चुका है। आज भारत की शासन व्यवस्था के प्रधान के रूप में बाबू राजेन्द्र प्रसाद हैं। वह केन्द्र की सरकार के प्रधान हैं और केन्द्रीय सभा तथा मन्त्री मण्डल की सहायता से भारत का शासन दण्ड सभाल रहे हैं। प्रांत और रियासतें सभी उनके नियन्त्रणाधीन हैं। सेना कार्य का सचालन करने के लिए उनके पास कमाण्डरइन चीफ श्री करियप्पा हैं। यह भारत की सेना के प्रधानाधिकारी हैं। केन्द्र का खर्चा चलाने के लिए उनके लिये, सेना का सचलन करने और राष्ट्र

की सुरक्षा के लिए केन्द्र के पास इनकमटैक्स, नमक, मुद्रा, विदेश, व्यापार, आयात नियात, डाक, तार, टैलीफोन, बेतार का तार, रेडियो समुद्रतट इत्यादि हैं जिनकी आय से उसका कार्य सचालन होता है।

प्राँतीय शासन—प्राँतीय शासन मे केन्द्र का प्रतिनिधि प्राँत का गवर्नर होता है जो प्राँत का कार्य सचालन प्राँतीय असेम्बली तथा उसकी बहुमत वाली पार्टी के चुने हुए मन्त्रिमण्डल की सहायता से करता है गवर्नर ६ मास तक आर्डिनेस की सहायता से भी किसी कठिन परिस्थिति में शासन कर सकता है। प्रत्येक प्रात कमिश्नरी में विभक्त हुआ है। इन कमिश्नरियों का अधिकारी कमिश्नर होता है। यह कमिश्नर प्रातीय गवर्नर तथा करिमनर स्वय ही होता है। ऐसे प्राँतों का कलक्टर डिप्टी कमिशनर कहलाता है। प्राँत की सुरक्षा अर्थात् पुलिस विभाग प्राँतीय सरकारों के आधीन रहता है। इसके सचालन के लिए भूमि कर इत्यादि भी प्रांतीय सरकारें ही लगाती हैं। आवश्यकता पडने पर केन्द्रीय सरकार से भी इन्हें सहायता मिलती है। प्राँत को सम्पन्न बनाने का सब भार गवर्नर और वहाँ की लोक सभा पर रहता है और यह दोनों अपने यहाँ होने वाली त्रुटियों के केन्द्र के सम्मुख उत्तरदायी रहते है।

कमिश्नरी—कमिश्नरी का शासन कमिश्नर के अधीन रहता है और वह गवर्नर के आधीन रहकर अपनी कमिश्नरी की शासन व्यवस्था को सभालता है। कमिश्नर अपनी कमिश्नरी का प्रधान उत्तरदायी है और वहाँ की सब विशेष घटनाओं से उसे परिचित रहना पडता है। शाँति सुरक्षा सपन्नता इत्यादि सभी समस्याओं पर उसे ध्यान देना होता है। वह अपने सहकारियों की सहायता से राज्यकार्य का सचालन करता है। उसकी कमिश्नरी में रहने वाली जनता मे कोई उपद्रव न हो, चोरी डकैती न हो, अकाल न पडे, व्यापार उन्नति करे, कला की उन्नति हो, शिक्षा में वृद्धि हो, आयात निर्यात की कठिनाइयाँ

न आयें, केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध गलत अफवाहें न फैलें, मानव की स्वतन्त्रता समाज के विचार से पनपे, इन समस्याओं पर कमिश्नर को ध्यान देना होता है। कमिश्नर का कार्य बहुत विस्तृत होता है। वह अपने कार्य का संचालन कलक्टरों की सहायता से संचालित करता है। एक दो प्रांत तीन चार कमिश्नरी वाले हैं और कुछ प्रांतों में छै कमिश्नरी भी हैं।

कलक्टर—कलक्टर अपने जिले का सबसे बड़ा अधिकारी होता है। एक गवर्नर का प्रांत में और एक कमिश्नर का कमिश्नरी में जो स्थान है वह वही स्थान एक कलक्टर का अपने जिले में, वह शासन व्यवस्था को अपने अधिकारियों द्वारा संभालता है। कलक्टर से नीचे पुलिस विभाग के अतिरिक्त डिप्टी कलेक्टर होते हैं जो एक एक तहसील के प्रधान अधिकारी होते हैं। यह डिप्टी कलेक्टर भी अपनी अपनी तहसील में वही स्थान रखते हैं जो कलक्टर का ज़िले में होता है। लगभग पांच छै तहसीलों का जिला और सौ सौ गाँवों की एक तहसील होती है। जिलों का लगान एकत्रित करना और जिले के सरकारी कोष का निरीक्षण करना कलक्टर के ही आधीन है। कलक्टर प्रथम श्रेणी का मैजिस्ट्रेट होता है और फौजदारी के मुकदमे भी देखता है। दीवानी के मुकदमों की देख-रेख के लिये जज होते हैं जो किसी भी प्रकार कलक्टर के आधीन नहीं होते। उनका कार्यक्षेत्र न्याय है और प्रजातन्त्र शासन में उनकी स्वतन्त्र सत्ता है। ज़िले की पुलिस कलक्टर के आधीन रहती है।

तहसील—तहसील जिले का एक भाग है जिसके अन्दर लगभग १०० गाँव रहते हैं। इसका प्रधान अधिकारी डिप्टी कलेक्टर होता है और माल के मामलात का प्रबन्ध करने के लिये तहसीलदार नियुक्त होते हैं। तहसीलदार अपनी तहसीलों का कार्य कानूनगो और पटवारियों की सहायता से सँभालते हैं। इस प्रकार माल से

सम्बन्ध रखने वाला भारत सरकार का छोटे से छोटा यन्त्र पटवारी है और इसी प्रकार प्रबन्ध से सम्बन्ध रखने वाला छोटे से छोटा यन्त्र चौकीदार है जिसका सम्बन्ध इलाके पुलिस स्टेशन से रहता है गांव मे रात को पहरा देना और यदि कोई उपद्रव हो जाए तो उसकी सूचना पुलिस के थाने तक पहुँचाना उसका काम है। वह गाँव मे मरने और पैदा होने का भी ब्योरा रखता है और यदि गाँव मे कोई उपद्रव की सम्भावना होती है तो उसकी भी सूचना पुलिस थाने तक पहुंचाता है।

इस प्रकार हमने देखा कि भारत के शासन को चलाने के लिए सब से छोटे यूनिट चौकीदार और पटवारी ठहरते है जिनका सम्बन्ध सुरक्षा और माल से है। इन्ही के आधार पर तहसील का कार्य सचालन होता है। तहसील परगनो मे विभाजित रहती है और परगने गावों मे। शहरों का शासन सचालने के लिए म्युनिसिपल कमेटियां हैं जो प्रबन्ध को छोड़ कर अन्य सभी शहर की कार्य व्यवस्थाओं पर ध्यान रखती हैं। इस प्रकार राष्ट्र का शासन सचालित होता है।

विषय पर सक्षिप्त विचार—

१ केन्द्र की शासन व्यवस्था और भारत का प्रान्तों मे विभाजन।
२ प्रातों की शासन व्यवस्था और प्रात का कमिश्नरियों मे विभाजन।
३ कमिश्नरियों की शासन व्यवस्था और उनका जिलों मे विभाजन।
४ जिलो का तहसीलो, परगनो और गावों में विभाजन।
५ उपसहार।

कांग्रेस का इतिहास और उसका भविष्य

कॉंग्रेस के जन्मदाता मि० ह्यूम साहब ने २८ दिसम्बर सन १८८५ को बम्बई में कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन किया। श्री उमेशचन्द्र बैनर्जी अधिवेशन के प्रधान थे। अधिवेशन में पास हुआ कि कि कॉंग्रेस को (१) देश-हितैषी नेताओं मे प्रेम-भाव बढ़ाना (२) देश को

जातिगत, वशगत, धर्मगत और प्रातगत भेद-भावों से मुक्त करना (३) महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं पर मत सग्रह करना (४) देश-हित की बातें सोचना और देश में राष्ट्रीयता की भावना भरना—इन समस्याओं पर विचार करके कार्य करना चाहिये। कांग्रेस के २८ दिसम्बर सन् १८८६ के दूसरे अधिवेशन का सभापतित्व दादा भाई नौरोजी ने किया। इस अधिवेशन में ८८० प्रतिनिधियो ने भाग लिया। फिर कांग्रेस का विकास इतनी तीव्र गति से हुआ कि अंग्रेजी सरकार को भी इस संस्था से चिंता होने लगी। १८९२ मे पार्लियामेंट मे नया इंडिया कौंसिल एक्ट पास हुआ जिसके अनुसार व्यवस्थापिका सभा में जनता के प्रतिनिधि भी आने लगे।

लार्ड कर्जन के दमन-नीति-काल मे काँग्रेस का कार्य तीव्र गति से आगे बढा। विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार हुआ। जनता की बढ़ती हुई उमगों को ज्यों-ज्यो कुचला गया त्यों-त्यो जागृति की ज्वाला प्रबल होती गई। इसी समय बंगाल का विभाजन भी हुआ जिसके फल स्वरूप बंगाल मे बहुत बडा असतोष फैला और नवयुवको ने मिलकर सरकार के विरुद्ध क्रातिकारी-दलों की स्थापना की। अहमदा-बाद मे लार्ड मिन्टो पर बम फैंका गया। सरकारी दमन चक्र और भी तीव्रगति से चला। लोकमान्य तिलक को पकडकर छै साल के लिये देश निकाला दे दिया गया। युगान्तर और वन्देमातरम के सपादकों को पकड कर उन पर अभियोग चलाये गये। जहाँ एक ओर यह गर्म-दल था वहाँ दूसरी ओर काँग्रेस के नर्म-दल के नेता सरकार के वैधानिक कार्य-क्रम मे घुस चुके थे। नर्म-दल के नेताओं ने इग्लैंड जाकर भारत मन्त्री मारले को भारत की वास्तविक दशा का ज्ञान कराया। इसके फलस्वरूप मिन्टो-मार्ले सुधार हुआ जिसके अनुसार (१) गवर्नर जनरल की कौंसल मे शासन सभा के सदस्यों के अति-रिक्त और ६० सदस्य रखे गये (२) पजाब और बर्मा की कौंसिलों के

सदस्यों की सख्या ३० निर्धारित हुई तथा अन्य प्रांतों मे ५० सदस्य रक्खे गये। (३) हर कौंसिल में सरकारी कर्मचारी, सरकारी सदस्य और निर्वाचित सदस्य थे। इस समय कॉंग्रेस गरम और नरम दो दलो में विभक्त थी। गरम दल के नेता लोकमान्यतिलक और नरम दल के नेता दादा भाई नौरोजी थे। सर फीरोजशाह महता ने इस समय दोनो पृथक्-पृथक् होजाने का नारा लगा कर कॅाग्रेस को दो भागों में विभक्त कर देना चाहा परन्तु उन्हे सफलता न मिली। कुछ समय के लिये गरम दल के सदस्यों ने कॉंग्रेस से हाथ खेंच लिया।

सूरत कांग्रेस में आपसी मत-भेद के कारण मिस्टर जिन्हा ने कॉंग्रेस को त्याग कर मुसलमानों का मुस्लिम लीग के नाम से राजनैतिक सगठन किया। लीग का प्रधान उद्देश्य काग्रेस का विरोध और मुसलमानों का सगठन करना था। इसी समय १६१४ का महायुद्ध प्रारम्भ हुआ और काग्रेस के नरम दल ने युद्ध सम्बधी कार्यों में सरकार को पर्याप्त सहायता दी। १६१६ के काग्रेस अधिवेशन मे नरम और गरम दल मिलकर फिर एक हो गये और उन्होंने अपनी निम्नलिखित राजनैतिक मांगें सरकार के सामने रक्खीं—(१) प्रांतों की व्यवस्थापिका सभाओं में अस्सी प्रतिशत सदस्यों की बढोत्री की जाये (२) प्रांतीय कौंसिलो के प्रस्ताव शासकों को मान्य होने अनिवार्य हों (३) शासन सभा के सब सदस्य भारतीय होने चाहियें। (४) हिन्दू और मुसलमानों का निर्वाचन पृथक्-पृथक् हो।

इसी समय लोकमान्य तिलक ने होमरूल लीग को स्थापित करके औपनिवेशिक स्वतंत्रता के एक नवीन आंदोलन को जन्म दिया। एनीबेसेन्ट के 'न्यूइण्डिया' और तिलक जी के 'केसरी' पत्र से बडी बडी जमानतें माँग कर सरकार ने आंदोलन को दबाने का प्रयत्न किया और साथ ही अंगरेजी मंत्रिमडल ने सम्राट की ओर से भारत में उत्तरदायी सरकार स्थापित कराने की घोषणा की जिसके फलस्वरूप

आंदोलन कुछ हल्का पड गया। भारत मन्त्री माटेग्यू और चेम्स फोर्ड ने एक सुधार योजना तय्यार की परन्तु ज्यों ही युद्ध समाप्त हुआ त्यों ही मान्टेग्यू और चेम्सफोर्ड सुधार की स्कीम भी समाप्त हो गई। सुधार न होने के साथ ही रौलट एक्ट भारत मे लागू हुआ जिसके द्वारा क्रातिकारियों को नितात निर्दयता के साथ कुचलने का सरकार ने निर्णय किया।

रौलट एक्ट के विरुद्ध सर्व प्रथम ६ अप्रेल सन् १९१९ को दिल्ली में महात्मा गाधी ने सत्याग्रह की घोषणा की जिसके फलस्वरूप जलूसों पर गोलियाँ चलीं और पजाब मे डाक्टर किचलू और डाक्टर सत्यपाल को पकड लिया गया और जलियाँवाले बाग मे गोलीकाड हुआ। इन कांडों से खिलाफत की ज्वाला दबने के स्थान पर और भी प्रबल रूप धारण कर गई। भारत की जनता के हृदय मे अगरेजी राज्य के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। लोकमान्य तिलक की असहयोग भावना को महात्मा गाँधी ने जनता मे व्यापक बना दिया। कौंसिलो और विदेशी वस्त्रो के बहिष्कार का आदोलन प्रारम्भ हुआ। यह असहयोग अहिसात्मक था। सरकार इससे घबरा उठी और उसने पकड-धकड प्रारम्भ करदी। गाधी जी अहिसा पर दृढ रहना चाहते थे परन्तु धीरे धीरे आदोलन मे हिसा ने जन्म लिया और उसके कारण महात्मा गाधी ने अपना आदोलन वापिस ले लिया। आदोलन स्थगित होते ही सरकार ने साम्प्रदायिक दगों को प्रोत्साहन दिया और वह देश व्यापक बन गये। इसी समय प्रिंस आफ वेल्स भारत आये जिनका स्वागत स्थान-स्थान पर हडतालो द्वारा किया गया। इस पर सरकार ने महात्मा गाँधी को जेल भेज दिया।

इसके पश्चात् प० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता मे लाहोर मे कॉग्रेस का महत्वपूर्ण अधिवेशन हुआ। कांग्रेस ने इस अधिवेशन में पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। २६ जनवरी १९३० को समस्त

भारत मे स्वाधीनता दिवस मनाया गया। इसी समय साइमन कमीशन भारत आया जिसका स्वागत बाइकाट द्वारा हुआ और महात्मा गाधी ने अपना नवीन आदोलन छेड दिया। कॉग्रेसी सदस्यों ने कौंसिलो से अस्तीफे दे दिये। यह आदोलन नमक कानून को लक्ष्य करके प्रारम्भ हुआ। १२ मार्च को ७६ साथियो के साथ महात्मा गाँधी डाडी की ओर बढ गये। यह आदोलन देश व्यापक हुआ और समस्त भारत में नमक कानून तोडा गया। सरकार ने अपनी पूर्ण दमन नीति से काम लिया परन्तु आदोलन न दब सका। लाखों भारतीय जेलो में ठूस दिये गये परन्तु, जेल जाने वालो की सख्या न घटी। महात्मा गाँधी, जवाहरलाल, मोतीलाल और देश के अन्य नेता पकड लिये गये। इसके पश्चात् गाधी इर्विन पैक्ट हुआ जिसके अनुसार सब राजनैतिक कैदी मुक्त कर दिये गये। कांग्रेस के इतिहास में यह आँदोलन बहुत महत्वपूर्ण है।

इरविन के पश्चात् विलिंगटन ने काग्रेस को गैर कानूनी सस्था घोषित कर दिया परन्तु कॉंग्रेस के अधिवेशन उस काल में भी दिल्ली और कलकत्ते मे हुए जिनके सभापति सेठ रणछोरदास और श्रीमती-नेलीसेन गुप्त थीं। इसके पश्चात सरकार ने हिन्दुओ की शक्ति कम करने के लिये हरिजनों को हिंदुओं से पृथक करना चाहा परन्तु महात्मा गांधी ने इसके विरोध मे २८ सितम्बर सन् १९३२ को आमरण उपवास किया। मालवीय जी और सर तेजबहादुर सप्रू भारत मन्त्री रैमजे से मिले और उन्होंने प्रयत्न करके सरकार की इस विभाजन-नीति को रद्द कराया। महात्मा गाधी ने उपवास समाप्त करके हरिजन आदोलन प्रारम्भ किया और भारत के कोने २ में इस आवाज को पहुँचाया।

१९३५ में काग्रेस ने असेम्बलियों के चुनाव में भाग लिया और बहुमत के साथ असेम्बलियो में पहुंचे। कॉंग्रेसियों की दैनिक जीवन

म हस्तक्षेप न करने की मांग सरकार द्वारा न माने जाने पर बहुमत होने पर भी कांग्रेसी सदस्यों ने पद ग्रहण नहीं किये। इसके पश्चात् लखनऊ, फैजपुर और त्रिपुरी के अधिवेशन हुए। त्रिपुरी मे सुभासचन्द्र-बोस को महात्मा गांधी का विरोध होने के कारण त्यागपत्र देना पड़ा। इसी समय काग्रेस मे सुभास बाबू ने फार्वडब्लाक की स्थापना की। किसानों और मजदूर वर्ग को साथ लेकर चलना इस ब्लाक का मूल्य उद्देश्य था।

इसी समय योरुपीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्ध सम्बन्धी सरकार की नीति में सहायता देने मे मतभेद होने पर कांग्रेसी सदस्यों ने असैम्बलियों से स्तीफे दे दिये। रामगढ़ में काग्रेस अधिवेशन हुआ और यह प्रस्ताव रखा गया कि यदि सरकार पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा करदे तो काग्रेस सहायता करने के लिये उद्यत हो सकती है। क्रिप्स अपनी योजना लेकर भारत आया परन्तु कोई समझौता न हो सका। महात्मा जी ने खुले शब्दों में 'भारत छोड़ो' का नारा लगाया। बम्बई अधिवेशन मे यही नारा प्रस्तावित हुआ और सर्व सम्मति मे पास हो गया। 'करो या मरो' का मन्त्र भारत की जनता म महात्मा गांधी ने फूक दिया। सरकार ने अपना दमन चक्र सभाला और भारत के सब नेता बन्दकर दिये गये। ६ अगस्त् को यह समचार भारत की जनता मे फैलना था कि एक देश व्यापक आदोलन उठ खड़ा हुआ। सरकार इस आदोलन का सामना न कर सकी। सुभास बाबू सरकार की आखों में धूल झोंक कर भारत से बाहर निकल गये और उन्होंने विदेशो के स्वतन्त्र वायु मण्डल मे जय-हिंद का नारा लगाकर सैनिक-संगठन किया।

युद्ध समाप्त होने पर जब नेताओ को छोड़ा गया देश मे एक बार फिर से वही तानगी आ गई जो इनके जेल जाने के समय थी। सरकार और नेताओं मे फिर बात चीत प्रारम्भ हो गई और अन्त में

दो दिसम्बर का वह समय आगया जब भारत ने अपनी शताब्दियों की खोई हुई स्वतन्त्रता को फिर से प्राप्त कर लिया। पंडित जवाहर-लाल भारत के प्रधान मन्त्री बने।

आज भारत का शासन प्रबन्ध कांग्रेस के हाथों में है। जब से कांग्रेस ने शासन संभाला है उस समय से कांग्रेस का सम्पर्क जनता से समाप्त होता जा रहा है। कांग्रेस की प्रजातन्त्रात्मक प्रवृत्ति समाप्त होती जा रही है और यही कारण है कि जनता के हृदय से उसके प्रति सद्भावना की समाप्ति होती जा रही है। इसमें कई कारण हैं। प्रथम तो जिस अव्यवस्थित परिस्थिति में उस ने शासन व्यवस्था संभाली उसे ठीक करने में समय लगता है दूसरे सरकार ने अपने को इतनी विविध दिशाओं में फंसा लिया कि उनका हल करना उसके लिये कठिन हो रहा है। भारत की प्रधान समस्याओं का हल करने में वह असफल सिद्ध हो चुकी है और भारत में महंगाई, चोरबाजारी, अन्न की कमी, बेरोजगारी, यह दिन प्रति दिन घटने के स्थान पर बढ़ती ही जा रही है। शरणार्थियों को बसाने की समस्या का भी अभी तक कोई हल नहीं हो सका है। घूसखोरी और रिश्वत का बाजार गर्म है और सरकारी महकमों के कार्य-कर्ताओं पर से सरकार का भय उठ चुका है। शासन की बागडोरें एक ऐसे वातावरण में चल रही हैं कि जहां नियन्त्रण का अभाव है। कांग्रेस आज अपने नेताओं के कारण जीवित है संस्था के कारण नहीं। बस इसी से कांग्रेस के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है। कांग्रेस की वर्तमान परिस्थिति भी उसी समय तक रह सकती है जब तक दूसरी कोई राजनैतिक संस्था बलवती नहीं हो जाती है। कांग्रेस के अतिरिक्त सोशलिस्ट और कॉम्यूनिस्ट दो पार्टियां भारत में हैं। मद्रास, बम्बई और बंगाल में इनका प्रभाव है और हो सकता है कि आगामी चुनावों में कांग्रेस सरकार को वहाँ मुंह की खानी पड़े। पंजाब,

स भी सरकार के विरुद्ध जनता के हृदयों में पर्याप्त क्षोभ की भावना है और इसलिये आगामी चुनाव में वहाँ भी सरकार को करारी टक्कर लेनी होगी। काँग्रेस का भविष्य उज्ज्वल नहीं प्रतीत होता क्योंकि काँग्रेस आज अंगरेज़ी शासन काल की अमन सभा के ही समान हो गई है। आज काँग्रेस का मैम्बर बनना कोई भयकी वस्तु नहीं इसलिये स्वार्थी लोग उसमें घुस गये हैं। जन-सेवा की भावना का उसमें से लोप होकर अधिकार की भावना भर गई है। आज कांग्रेस समाज और आन्दोलन के नाते भी असफल है और सरकार के नाते भी। आज आवश्यकता इस बात की है कि कांग्रेस के नेता अधिकार की बात छोड़ कर जनता में घुस जायें और जनता की दैनिक कठिनाइयों को समझकर उनके हल निकालने का प्रयत्न करें। आज उनके हाथ मे सत्ता है और सत्ता के रहते हुए भी यदि वह जनता को अपना न सके तो उनका और उनके कांग्रेस का भविष्य अंधकार पूर्ण ही है। हमे भय है कि कहीं चीन जैसी दशा भारत की न हो।

इन असफलताओं के साथ ही साथ काँग्रेस सरकार कुछ दिशाओ में सफल भी है और इन दिशाओं मे उसने वह कार्य किया है जो पुरानी व्यवस्थित सरकारें भी करने में सफल नहीं हो पाई। भारत की रियासतों का जो हल काँग्रेस सरकार ने निकाला वह अगरेजी सरकार भी नहीं निकाल सकी। साथ ही भारत अपनी विदेशी नीति में पूर्ण रूप से सफल है। पूर्ण सम्मान के साथ भारत ने संसार की राजनीति में अपना स्थान सुदृढ कर लिया है और आज वह समय आ गया है कि जब ससार की राजनीति भारत को भुला कर नहीं चल सकती।

विषय पर संक्षिप्त विचार—

१. काँग्रेस का प्रारम्भ और उसके प्रधान उद्देश्य।

२ महात्मा गाँधी का नेतृत्व।

३ तिम महायुद्ध और भारत की स्वतन्त्रता।
४. कॉंग्रेस का राज्य-सत्ता सँभालना।
५. उपसंहार—कांग्रेस का भविष्य।

भारत की रियासतें

मुगलिया-काल से भारत मे सामंतशाही चली आ रही थी। भारत मे एक छत्र मुगलिया राज्य होने पर भी मनसब वर्तमान थे और मनसबदारों को अपने अपने मनसबों मे अङ्गरजी काल के रियासती राजाओं और नवाबों से किसी भी प्रकार कम अधिकार नहीं थे। अंग्रेज़ी शासन भारत में पूर्ण रूप से छा गया तो भारत के राजे महाराजे और नवाबों ने ब्रिटिश सरकार की पराधीनता स्वीकार कर ली। उन्हे एक दम समाप्त कर देना उस समय सरकार बर्तानिया के लिए कठिन था और ज प्रयास उन्होंने किया भी तो महारानी झाँसी जैसी वीराङ्गनाओं को अपना शत्रु बना लिया। प्रारम्भ मे तो अंग्रेजी सरकार इन रियासतों के विरुद्ध थी परन्तु बाद मे उन्होंने भारत की शक्ति विभाजन का इन्हें साधन बना कर ज्यों का त्यों ही रहने दिया। इस प्रकार अंग्रेज़ी शासन काल मे भारत दो बड़े भागो में विभक्त था एक ब्रिटिश भारत जो सीधा अंग्रेजी पार्लियामेन्ट से शासित होता था और दूसरा भारत का रियासती विभाग जिसकी विदेशी नीति पर पूर्ण रूप से और देसी नीति पर आंशिक रूप से अंग्रेज़ों का शासन था। इन रियासतों की सख्या ५६२ थी जिनमे काश्मीर, हदराबाद और पटियाला जैसी बड़ी २ रियासतें भी थीं और काठियावाड़ जैसी छोटी २ भी। सन् १९४१ की जन सख्या के अनुसार भारत की २४ प्रतिशत आबादी रियासतों में रहती थी। भारत विभाजन के पश्चात रियासतों की जन सख्या २७ प्रतिशत हो गई। इन रियासतो मे १६ रियासतो की सख्या १० लाख से अधिक, चार की साढे सात लाख से अधिक,

तेरह की साढे छै लाख से अधिक और बाकी जो १४० रियासतें थीं उनकी जन ख्या पच्चीस लाख से पचास लाख तक थी।

ब्रिटिश भारत में जब स्वतन्त्रता का आँदोलन छिड़ा और जागृति ने पर फैलाये तो रियासतें अपने भोग-विलास मे मग्न थी। राजे और नवाब ऐश से प्रजा का शोषण करके जीवन व्यतीत कर रहे थे और विलायतो में जाकर भारत के किसानो की गाढी कमाई को नष्ट करते थे। जहाँ तक इन शासकों के ऐश का सम्बन्ध था ब्रिटिश सरकार उसमे कोई हस्ताक्षेप नहीं करती थी परन्तु उनमे कहीं पर भी कुछ जागृति का अ श दिखाई देने लगता था तो सरकार के कान खड़े हो जाते थे। प्रजा के धन से स्वय ऐश करना और सरकारी अफसरों को ऐश कराना बस यही इन राजे महाराजो का काम था। ब्रिटिश भारत मे जनतन्त्र पनप रहा था और सरकारी दमन नीति उसे रोकने मे असफल होती जा रही थी परन्तु रियासतो मे जनतन्त्र वाद को बुरी तरह कुचला जाता था। राजाओं के साथ सधि-बन्धनों का बहाना करके ब्रिटिश सरकारी अफसर वहाँ पर होने वाले अत्याचारो के प्रति जान बूझ कर उदासीनता प्रकट कर देते थे। यह सब सधिया भारतीय जनता तक ही सम्बन्धित थीं अपने तक नहीं। किसी एक साधारण अगरेज के विपरीत भी दुर्व्यवहार करने पर राजा और नवाब को दण्डित किया जा सकता था। इस पकार अग्रेजी कूटनीति का आश्रय पाकर अंग्रेजी शासन काल मे भारत का यह रियासती वर्ग पनपता रहा और मनमानी ऐश करता रहा।

अंग्रेजों ने जिस कूटनीति से भारत मे राज्य किया उस कूट-नीति को भारत को औपनिवेशिक स्वतन्त्रता देते समय भी तिलाजलि नहीं दी। भारत को भारत और पाकिस्तान में विभाजित करने के साथ ही साथ रियासतो की समस्या को ज्यो का त्यों उलझा हुआ छोड दिया। अग्रेज सर्वोच्च सत्ता (Paramount Power) रियासतों के

शासको को सौंपकर स्वय तमाशा देखने के लिए एक तरफ जाकर बैठ गए। निरकु श राजे और नवाव अपनी २ रियासतों के सर्वाधिकार पूर्ण शासक बन बैठे और उन्होंने भारत राष्ट्र से पृथक होकर स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने के स्वप्न देखे । फलस्वरूप हैदराबाद की पुलिस कार्यवाही (Police Action) और काश्मीर युद्ध सामने आये ।

अंग्रेजो का स्वप्न सत्य न हो सका। भारत विभाजन करके दो भागों में तो बाँटा ही जा चुका था। अब यदि यह सब रियासत भी स्वतंत्र हो जातीं तो भारत राष्ट्र किसी भी प्रकार एक महत्व पूर्ण राष्ट्र नहीं रह सकता था भारत की उन्नति सदा के लिए रुक जाती और भारत एक साधारण सी सत्ता के रूप में ही रह जाता। भारत के नेताओ ने इस विषम परिस्थिति का हल बहुत कुशलता पूर्वक किया रियासतों की समस्या का जितना सुन्दर हल सरदार पटेल ने निकाला उतना सुन्दर हल भारत राष्ट्र में कभी नहीं आया था। नवाब भोपाल की निरकुशता को महाराजा पटियाला और महाराजा बीकानेर ने रोक दिया। ५ जुलाई सन् १९४७ को भारत सरकार ने रियासती समस्या का हल करने के लिए रियासती सचिवालय(State Department) की स्थापना की और सरदार पटेल इसके अध्यक्ष बने। फिर सब राजाओं के साथ इस विभाग ने अस्थाई समझौते (Stand still-) agreement) किये जिसके अनुसार ब्रिटिश सरकार की भाँति रक्षा, विदेश और यातायात पर केन्द्रीय सरकार का अधिकार हो गया। इस समझौते के अनुसार सब रियासतें भारत के आधीन हो गईं। यह रियासती सचिवालय का इस दिशा में पहला पग था। इसके पश्चात् छोटी छोटी रियासतों को मिलाकर सघ बनाये गये और कुछ रियासतों को उनके निकटस्थ स्वतन्त्र राज्य में मिला दिया गया। सौराष्ट्र, विंध्यप्रदेश, मध्य-भारत, राजस्थान, पटियाला

और विंध्य प्रदेश यह रियासतों के मुख्य संघ बने। इन संघों में एकतंत्र शासन समाप्त करके लोकप्रिय मंत्रीमंडलों की स्थापना हुई। यह संघ एक प्रकार से भारत के अन्य प्रान्तों के ही समान बन गये और गवर्नरों के स्थान पर राजप्रमुखों की नियुक्ति हो गई। राजाओं को निजी व्यय के लिये कुछ वार्षिक धन-राशि निश्चित कर दी गई।

हैदराबाद इन रियासतों में सब से बड़ी रियासत थी और पाकिस्तान का उस पर दांत था। इस रियासत में लोकमत हिन्दुओं का ही अधिक है परन्तु इसमें मुसलमानी नवाब होने के कारण पाकिस्तान इस पर अपना कुछ अधिकार समझता था। हैदराबाद की जन-संख्या १ करोड़ सात लाख के लगभग है। हैदराबाद चारों ओर से भारत से घिरा हुआ है। उसकी स्वतंत्र सत्ता तो हो ही नहीं सकती थी। पहिले तो निजाम ने भी अन्य भारत की रियासतों की भाँति एक वर्ष के लिये अस्थाई समझौता कर लिया। एक सुविधा हैदराबाद को अन्य रियासतों से अधिक मिल गई थी कि उसे विदेशों में अपने हाई कमिश्नर नियुक्त करने का अधिकार मिल गया था। परन्तु कुछ ही दिन बाद हैदराबाद में मीर लायकअली और कासिम रिजवी ने मिलकर निजाम को अपने चंगुल में फँसा लिया और इन्होंने हैदराबाद को स्वतंत्र सत्ता घोषित करके भारत को युद्ध की धमकी देनी प्रारम्भ कर दी। इसके फलस्वरूप भारत सरकार को पुलिस कार्य-वाही करनी पड़ी और हैदराबाद विलायतों से अस्त्र-शस्त्र मंगाकर भी भारत की सेनाओं के सम्मुख आत्म समर्पण के अतिरिक्त और कुछ न कर सका। १४ सितम्बर से १७ सितम्बर सन् १९४८ तक साढ़े तीन दिन में निजाम ने घुटने टेक दिये। अब हैदराबाद का भविष्य बहुत उज्वल है और वहाँ पर भी लोकप्रिय मंत्रीमंडल बन जायेगा।

काश्मीर में मुसलमान जनसंख्या का प्राधान्य है और महाराज हरिसिंह राज्य कर रहे थे। काश्मीर की सीमा अफगानिस्तान, पाकि-

स्तान, रूस, चीन और तिब्बत से मिलती है। इस लिये इस देश का राजनैतिक विचार से बहुत महत्त्व है। १५ अगस्त सन् १६४७ को हरिसिंह ने काश्मीर के स्वतन्त्र होने की घोषणा की। इस स्थिति से लाभ उठाने के लिये २० अक्टूबर सन् १६४७ को पाकिस्तान ने हजारों सशस्त्र कबायलियों को काश्मीर की सीमा में घुसा दिया। जब उन लुटेरों का वेग महाराज हरिसिंह पर न रुका तो उसने नैशनल कान्फ्रेंस के नेता शेख अब्दुल्ला को मुक्त किया और दोनों ने मिलकर भारत से सहायता मांगी। भारत ने अपनी सेनायें भेजकर पाकिस्तानी सेनाओं को पीछे हटा दिया और साथ ही पाकिस्तान के अत्याचार के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र में भी एक अर्जी भेज दी। पहिले तो पाकिस्तान ने मना ही कर दिया कि उसकी सेनाएं काश्मीर में नहीं हैं परन्तु अन्त में उसे स्वीकार करना पड़ा। संयुक्त राष्ट्र सभा के कमीशन के प्रयत्नों के फलस्वरूप १ जनवरी सन् १६४६ को युद्ध तो बन्द हो गया परन्तु कोई निश्चित निर्णय आज तक नहीं हो पाया है।

इस प्रकार हमने देखा कि कॉंग्रेस की नवनिर्मित सरकार ने भारत की रियासतों के प्रश्न को बहुत कुशलता पूर्वक हल कर लिया। हमारा मत है कि जिस समय संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मुख भारत सरकार ने काश्मीर का मामला भेजा यदि वह न भेजती तो आज तक वह स्वयं ही हल हो गया होता। हमारी सरकार की इस दबने वाली नीति ने ही पाकिस्तान को आज भी उसकी अनेकों हठ धर्मियों पर आरूढ़ किया हुआ है। सरकार को इस प्रकार दब कर अपनी समस्याओं का हल नहीं करना चाहिये।

विषय पर संक्षिप्त विचार—

१ प्रस्तावना।

२ अंग्रेजी शासन काल में रियासतों की परिस्थिति।

३ भारत विभाजन के समय रियासतों की समस्या।
४ कांग्रेस सरकार द्वारा रियासतों की समस्या का हल।
५ हैदराबाद और काश्मीर।
६ उपसंहार।

ज़मींदारी देश का अभिशाप है

शासन व्यवस्था की सुगमता, निरकुशता और एकतन्त्रता का नाम जमींदारी है। जमींदारी न केवल भारत मे वल्कि ससार के अन्य देशों मे भी बहुत प्राचीनकाल से चलती आती है। प्रारम्भ मे जब सभी देशों मे शासन व्यवस्था का ढाँचा बाँधा गया तो चक्रवर्ती राजा, राजा और उनके नीचे जमींदार होते थे। इनके अतिरिक्त अन्य सब जाति वाले रिश्राया कहलाते थे। उस काल मे पूजी जिसे आज अर्थ शास्त्र मे Capital कहते हैं इसका उदय नही हुआ था। क्योंकि वदल (Exchange)सोने चादी मे अथवा रुपये पैसे म न होकर अनाज मे ही हो जाता था, जमींदार अपनी ज़मींदारीमें वही स्थान रखता था जो राजा अपने राज्य मे। इस काल में न तो जनता का सगठन ही था और न उसमें सगठन की शक्ति ही। सगठन के साधन भी उस समय म उपलब्ध नही थे। शक्ति के आधार पर शासन चलता था और सेना अथवा गिरोह वनाकर उसको नियन्त्रित रखा जाता था। निरकुशता इसका प्रधान गुण था। प्रारम्भ मे जब तक इस प्रकार की व्यवस्था सीमित रही और साधन असीमित उस समय तक कोई कठिनाई सामने नहीं आई और आवश्यकतानुसार जमीदारी अथवा राज्यों का विस्तार भी होता गया परन्तु ज्यों ज्यों व्यवस्था असीमित और साधन सीमित होते चले गये त्यों त्यों मानव समाज मे सघर्ष उत्पन्न होना प्रारम्भ हो गया और इस सघर्ष ने निरकुशता अथवा निठल्लेपन के विपरीत विद्रोह किया।

जमींदारी उन्मूलन भी इसी घर्ष जन्य विद्रोह का फल है। भारतवर्ष में जमींदारी प्रथा मुसलमान काल मे हिन्दू-काल की ही भाँति चलती रही। राजे, नवाब, मसवदार, जागीरदार, जमींदार यह सभी जमीदारी के छोटे बडे रूप हैं, अंगरेजी शासनकाल मे भी ज़मींदारी प्रथा ज्यो की त्यों चलती रही। भारत के पृथक पृथक प्रातो मे इसका रूप पृथक पृथक रहा। कहीं पर जागीरदारी प्रथा रही और कहीं पर छोटी छोटी जमींदारी। जमींदारी प्रथा के फलस्वरूप देश मे जमींदारों का एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया जो सरकार का इस समय हितैषी रहा और भोग विलास के अतिरिक्त उसके जीवन का और कोई लक्ष्य नहीं था। जमींदारी का प्रबन्ध उनके कारिन्दों के हाथों में रहा जो कि एक ऐसा वर्ग बना जिसने स्वार्थ के वशीभूत होकर मानवता को बिल्कुल ही हाथो से खो दिया।

इस प्रकार शासक का सीधा सम्बन्ध जनता से न होकर जमींदारों और उनके कारिन्दों से हो गया। सरकारी अफसरों को जमीदारों और उनके कारिन्दों द्वारा डालियाँ मिलती रहीं, रिश्वतें मिलती रहीं और शिकार के लिये नि त्रण मिलते रहे। उनके आवभगत में दावतें होती रहीं, नृत्य और मदिरा का बोलबाला रहा और इस प्रकार जमीदारों की निरकुशता को खुला मैदान अ गरेजी शासनकाल मे मिला। कुछ काल के लिये ब्रिटिश साम्राज्य के साथ भारत के जमींदार भी खूब पनपे, खूब ऐश की और बेचारी जनता उनकी निरकुशता की चक्की में पिसती रही, दली जाती रही। परन्तु यह परिस्थिति अधिक दिनों तक न चल सकी। पू जी का प्रसार हुआ, दस्तकारी बढी, मिलें खुलीं, मिल मजदूरों का संगठन हुआ और ससार की व्यापक लहर में भारत में भी अपने हाथ पैर फैलाये। किसानों में भी जागृति हुई और उन्होंने भी यह अनुभव करना प्रारभ किया कि क्यों उनके गाढ़े पसीने की कमाई को इस प्रकार कुछ न करने वाला निठल्ला जमीदार समाज

आ जाये ? जनता में जागृति हुई, समाज का ढाचा बदने लगा, जनता का ढाँचा बदलने लगा, सरकार का ढाचा बदलने लगा और अन्त में वह समय आ गया जब भारत से अंगरेजी सरकार सर्वदा के लिये चली गई और जमींदार जा रहे हैं।

आज भारत में प्रजातत्र राज्य है और सरकार भी विदेशी नहीं है, परन्तु फिर भी जो ढाचा इस सरकार को मिला है वह पुराना है, वही अंगरेजी सरकार के समय का है। वर्तमान सरकार में प्रगति अवश्य है परन्तु वह धीरे धीरे चलने वाली है, सोच समझ कर फूक फूक कर पग रखने वाली है। वर्तमान युग चाहता है विद्युत की गति, प्रगति जिसमें कही रुकावट न हो, बंधन न हो, प्रतिबन्ध न हो, मुक्त हो हर प्रकार से। इसी भावना के आधार पर ज़मींदारी उन्मूलन की लहर आज देश भर में व्यापक हो चुकी है। यह लहर आज की जनता की पुकार है, वास्तविक है कृत्रिम नहीं है और यही कारण है कि इसके फलीभूत होने में कुछ समय लग सकता है परन्तु यह नितान्त असम्भव है कि यह हो ही नहीं। आज का युग निठल्लेपन को सहन नहीं कर सकता और आने वाले युग में किसी को भी बिना कुछ किये खाने और पहिनने का अधिकार नहीं होगा। भूमि उसकी होगी जो उसे जोतेगा, बोयेगा और उसमें अनाज उत्पन्न करेगा। केवल दूसरों की मेहनत पर चौधरी बनकर खाने के लिये भूमि का उपयोग नहीं किया जा सकता।

ज़मींदरी उन्मूलन से देश की सम्पत्ति में वृद्धि होगी। प्रत्येक किसान जब अपनी जोती जाने वाली भूमि को यह समझ कर जोते बोयेगा कि वह उसकी अपनी है तो वह उसमे अपना खून पसीना एक करके उसे अधिक से अधिक उपजाऊ बनाने का प्रयत्न करेगा और इस प्रकार देश की भूमि अधिक से अधिक उपजाऊ बनकर अधिक से अधिक उत्पत्ति दे सकेगी। इसका दूसरा महानतम लाभ यह होगा कि

देश के समाज में से एक ऐसे शोषक वर्ग का अंत हो जायेगा जो उत्पत्ति मूलक न होकर अनुत्पतिमूलक है, देश का मान न होकर देश का कलंक है। इस वर्ग ने आज तक देश की उत्पत्ति के साथ देश की भूमि के साथ और देश की जनता के साथ खिलवाड की है। विदेशों मे जा जा कर देश के गरीब किसानो की गाढ़ी कमाई को फूका है, नष्ट किया है। जमीदारी उन्मूलन से शासन का सीधा सम्बन्ध शासित से होगा। यह इसका तीसरा लाभ है कि मध्यवर्ग बीच से निकल जाने पर जनता और सरकार दो पृथक पृथक वस्तु न रहकर एक ही हो जायेंगे और एक दूसरी की कठिनाई और सुगमता, हानि और लाभ एक दूसरे को समझने मे समय नहीं लगेगा। आज सरकार जनता की है इसलिये जनता और सरकार का सीधा सम्बन्ध होना नितांत आवश्यक है। मध्यवर्ग का लोप हो जाने पर यह सम्बन्ध आप से आप दृढ हो जायेगा। जमीदारी उन्मूलन का चौथा लाभ जो सबसे महान है वह यह होगा कि जनता में समानता की भावना और स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। समाज से ऊंच-नींच, छोटा-बडा यह भावना नष्ट होकर सब समतल पर आ जायेंगे, देश की निर्धनता दूर होगी और वह वर्ग जिसके पास तन ढापने के लिये कपडा और पेट भरने के लिये अन्न भी अगरेजी सरकार के शासन काल में उपलब्ध नहीं हुआ वह सम्पन्न हो जायेगा उभर जायेगा, और मानवता के मस्तक पर लगा हुआ यह अभिशाप एक दिन वह आयेगा जब दूर होकर रहेगा।

जमींदारी उन्मूलन से जहाँ इतने लाभ हैं वहाँ एक हानि भी है और वह यह कि देश की पूंजी कुछ काल के लिये ऐसे व्यक्तियों के हाथ में चली जायेगी जो उसे उत्पादक कार्यों मे लगाना आज नहीं जानते। पिछला काश्तकार वही है (किसान) जिसमे अभी विद्या का अभाव है। वह यह भी नहीं जानता कि कमाई हुई सम्पत्ति को सुरक्षित रूप मे डाकखाने या बैंक में रखा जाता है। वह उसे घरों में गाड़कर

अनुत्पादक बना देते हैं। आज भारत को इस कठनाई का सामना करना पड रहा है। सरकार की वर्तमान नीति से रुपया व्यापारी समाज के हाथों से खिचकर ऐसे ही वर्ग के हाथों मे पहुच गया है। आज अन्न, रुई, शक्कर, गुड इत्यादि किसानो की पैदा हुई चीजो का दर बहुत ऊ चा है, इसलिये रुपया उनके पास खिचता जा रहा है और उस रुपये का आवागमन (Circulation) रुक गया है। इस प्रकार देश के व्यापार में इस समय बहुत हानि पहुँच रही है। परन्तु यह रुकावट स्थाई नहीं है। ज्यों ज्यो इस वर्ग मे विद्या का प्रसार होगा त्यो त्यों परिस्थिति ठीक होती जायेगी और देश की जागृति के साथ साथ उनमे भी जागृति का सचार होकर वह धन आवागमन के क्षेत्र मे बिना प्रयास ही निकल आयेगा।

इस प्रकार आज मींदारी उन्मूलन देश के लिये लाभदायक ही है। आज के युग मे जमीदारी देश के लिये अभिशाप है, घोर अभिशाप।

विषय पर सक्षिप्त विचार—

१. जमीदारी का प्राचीन इतिहास।
२ अङ्गरेजी शासन काल मे ज़मींदारी।
३ ज़मीदारी प्रथा की हानियाँ और जमीदारी उन्मूलन के लाभ।
४ उपसहार।

भारत और पाकिस्तान

जो देश विज्ञान की दृष्टि से जितना पिछड़ा हुआ रहेगा वहाँ रूढ़िवाद और धार्मिक दृष्टिकोण का प्रभाव उतने ही दिनो तक बना रहेगा। ससार एक युग से राजनीति को धर्म के क्षेत्र से मुक्त करता चला आ रहा है। धर्म का सम्बन्ध जब आत्मा से है तो फिर क्यों यह हमारे सामाजिक और राजनैतिक जीवन में उथल-पुथल पैदा करने

की चेष्टा करता है ? स्वतत्र देशों मे यह भावना जितनी बलवती बन सकी। उतनी परतत्र देशों म न बन सकी। उदाहरण स्वरूप भारत को ही ले सकते हैं कि अ गरेज ने अपने देश की राजनीति में तो रोमन कैथोलिक और प्रोस्टैस्टैन्टों के झगडे को निकाल कर बाहर खडा कर दिया परन्तु भारत में हिन्दू और मुसलमानियत का बीजा-रोपण वह बराबर करते रहे। इसका प्रधान कारण यही था कि धार्मिक दृष्टिकोण से सुसगठित भारत पर Divide and Rule वाला सिद्धाँत लागू नहीं किया जा सकता था। क्रिप्स जैसे नेता ने प्रेरणा देकर, जो इ गलैड मे जनता का एक काल मे प्रधान नेता रहा है, भारत मे जनता के अहित मे पाकिस्तान की भावना का एक प्रकार से सूत्रपात्र किया और जिन्हा की खडनात्मक प्रवृत्ति को बल देकर देश का अहित किया। मि० जिन्हा का विचार था कि पजाब, बगाल और सिंध मे मुसलमानों का बहुमत होने के कारण पाकिस्तान बनने में कठिनाई न होगी और फिर बाहर की मुसलमान शक्तियों का सगठन करके भारत पर सुगमता से आक्रमण हो सकेगा। परन्तु यह स्वप्न स्वप्न ही रह गया। आज का युग कहाँ और किस ओर जा रहा है इसे समझने में मि० जिन्हा असफल रहे। हा अ गरेज और अमरीकी राजनीतिज्ञ अपनी चाल मे अवश्य सफल हो गये और भारत को दो खड होजाना पडा।

आज के युग मे राज्य विस्तार से धर्म विस्तार की कल्पना करना मूर्खता ही है। आज धर्म का शासन-व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं। पाकिस्तान के बन जाने से कुछ विचारकों का मत है कि भारत की उन्नति में बाधा पहुंची परन्तु हमारा मत इसके सर्वथा विरुद्ध है। पाकिस्तान बन जाने से ही भारत की सरकार को अपने कार्य-क्रम पर चलने की स्वच्छदता प्राप्त हुई। यदि यह न होता तो भारत की परिस्थिति सर्वदा के लिये डोवाडोल हो जाती और सम्भव था कि

अछूतों का वर्ग जो आज हिन्दुओ का ही एक अग है सर्वदा के लिये इससे पृथक् होकर शासन के प्रलोभन में जाकर मुसलमानो से मिल जाता और इस प्रकार हिन्दू ही क्या भारतीय सभ्यता विनाश को प्राप्त हो जाती। पाकिस्तान के बन जाने से मुसलमान धर्म पाकिस्तान तक सीमित हो गया और भारत में मुसलमानों का जो स्थान आज के समाज में हो गया है वह शोचनीय है। यदि भारत खण्ड-खण्ड न होता तो भारत के मुसलमानों का सामाजिक स्तर कभी न गिरने पाता। आज भारत की सरकार हर सम्भव प्रयत्न से मुसलमानों को सहयोग दे रही है और देगी परन्तु एक आत्मग्लानि की भावना उनके अपने हृदयों में ऐसी व्याप्त हो चुकी है कि जिसके कारण वह सिर ऊचा करके कभी नहीं चल सकते। पाकिस्तान बन जाने से इस्लाम का प्रसार रुक गया, समाप्त हो गया और निकट भविष्य में उसके प्रसार की भी कोई सम्भावना नही दिखलाई देती।

पाकिस्तान बन जाने से भारत को एक सब से अधिक हानि जो हुई वह यह है कि भारत का एक बहुत बड़ा भूभाग जो दूसरे भागो को भी खाद्य सामग्री प्रदान करता था वह उसके हाथो से निकल गया। चावल, कपास, गेहू, चना और पटसन इन पाँचो चीजो की भारत में पाकिस्तान बन जाने के कारण कमी हो गई। भारत सरकार प्रयत्न कर रही है कि इस कमी को शीघ्रातिशीघ्र पूरा कर ले और जहा तक पटसन का सम्बन्ध है वहा तक भारत ने कुछ अ शो में पूरी भी कर ली है। जहाँ भारत को इन चीज़ो की कमी हो गई है वहाँ भारत के पास कोयला एक ऐसी वस्तु है कि उसके रोक देने पर पाकिस्तान के सब काम चौपट हो जाते है। पाकिस्तान में जाने वाली नहरों का पानी भारत में होकर जाने वाली नदियों से जाता है। यदि भारत आज चाहे तो नदियों में बाँध लगाकर पाकिस्तान की सब उपजाऊ भूमि को ऊसर बना सकता है।

भारत से मुसलमान कारीगरों के चले जाने से कल-कारखानो के कामो मे भारत को काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा। भारत की कृषि और शिल्प को मुसलमान कृषक और कारीगरों के चले जाने से धक्का लगा परन्तु साथ ही पाकिस्तान से व्यापारी वर्ग के चले आने पर वहा का व्यापार ठप्प हो गया। भारत का व्यापार पहिले से अधिक चमक उठा और पंजाब से आये हुए मेहनती लोगों ने मुसलमान कारीगरों का स्थान कुशलता पूर्वक ले लिया। यह सत्य है कि उनमे अभी वह कुशलता नहीं आ पाई है परन्तु फिर भी कोई काम रुक रहा हो ऐसी परिस्थिति भी पैदा नहीं हुई है। पाकिस्तान मे बैंक और व्यापार के क्षेत्र मे तो एक दम दिवाला सा ही निकल गया। जिसके फलस्वरूप पाकिस्तान आर्थिक दृष्टि से गिरावट की ओर अग्रसर हुआ।

भारत और पाकिस्तान के विभाजन से दोनों देशों में रहने वाली जनता के आपसी मतभेद अवश्य बढ गए हैं। खिलाफत और काँग्रेस ने हिन्दू मुसलमानों मे आपसी प्रेम-भाव पैदा करने का जो निरन्तर अभ्यास किया था इसे गहरी ठेस लगी और आज भारत जो आदर्श सामने रख भी रहा है उसमे भारत की जनता की आंशिक सहानुभूति ही है। विभाजन के समय भारत और पाकिस्तान मे जो जन-विध्वंस हुआ वह युग-युग तक भुलाने वाली बात नहीं। यह जो कुछ भी हुआ वह सामाजिक पतन की घोर पराकाष्ठा थी। नन्हे नन्हे बच्चों और स्त्रियों पर जो अत्याचार हुए वह हिन्दू मुस्लिम संगठन के बीच मे दीवार बनकर खड़ी हो गई। दोनों समाजों के बीच एक गहरी खाई खुद गई और फिर पाकिस्तान की हिन्दु-निर्वासन नीति ने तो उसे और भी बलवती बना दिया।

राजनैतिक क्षेत्र में भी पाकिस्तान को मुंह की खानी पड़ी। पाकिस्तान अपनी विदेशी नीति में सफल नहीं हो सका है। भारत के साथ उसने जिस जिस मामले मे भी टाँग अड़ाई है मुंह की खानी

पड़ी है। काश्मीर का युद्ध, हैदराबाद की समस्या, जूनागढ़ और भूपाल के नवाब का पतन यह सब भारत की सफलता और पाकिस्तान की असफलता के परिणाम हैं। पाकिस्तान के बन जाने से मुसलमानों को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी है पहिले कुल बगाल, पजाब, सिध, नार्थ वैस्ट फ्रटियर, हैदराबाद और भारत की मुसलमान रियासतों पर मुसलमानों का पूर्ण प्रभुत्व रहता था परन्तु पाकिस्तान के बन जाने से आधा बगाल चला गया, आधा पजाब चला गया, हैदराबाद चला गया और भारत की सभी मुसलमान रियासतें स्वाहा हो गई। इस प्रकार पाकिस्तान ने बनकर हिन्दुओं का हित और मुसलमानों का अनिष्ट ही किया है। पाकिस्तान के सम्मुख अभी पाखतूनिस्तान की समस्या और जटिल रूप मे खड़ी है जिसका निबटारा उसे निकट भविष्य मे करना ही होगा अन्यथा वहा भी विद्रोह की ज्वाला दहकेगी और उसकी ज्वाला मे समस्त पाकिस्तान को भुनना होगा।

पाकिस्तान ब्रिटिश साम्राज्यवाद की उपज है और अमरीकी राजनीति का एक मोहरा है। अमरीका और इगलेड यह जानते थे कि भारत स्वतन्त्र होने के पश्चात् उनका शत्रु नही बनेगा परन्तु उनके हाथ मे नाचने वाली कठपुतली बन कर भी नही रहेगा। उसे वह शतरन्ज के मुहरे की भाँति जहा चाहे वहा नचा नही सकेंगे। इसलिए उन्हे अपने शत्रु रूस के खिलाफ अपनी शक्ति का सगठन करने के लिए भारत के उत्तर पश्चिम में एक ऐसे स्थान की आवश्यकता थी जहाँ पर कि वह अपने हवाई अड्डे बना सके। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए पाकिस्तान का उदय हुआ। पाकिस्तान का जन्म वास्तव मे मुसलमानों के नाम पर अग्रेजी और अमरीकी चालों की पूर्ति के लिए हुआ है। पाकिस्तान के सामने आज बहुत सी समस्यायें हैं और उनके हल करने पर ही उसके भविष्य का निर्णय हो सकता है। पाकिस्तान

के नामकरण से लेकर आज तक पाकिस्तान के नेता हिन्दुओं के विपरीत मुसलमान जनता को उकसा कर अपना काम निकालते रहे हैं। पाकिस्तान मे हिन्दु नहीं रहे इसलिए उनके विपरीत फुसलाने वाला यन्त्र भी उन नेताओं का फेल हो गया। आज पाकिस्तान के सम्मुख उनकी अपनी समस्याये हैं और वह हैं सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक। इन्हीं के हल करने पर उनका भविष्य आधारित है। यदि वह इन्हें सफलता पूर्वक हल कर सकेगा तो वह जीवित रहेगा अन्यथा मर जायेगा, समाप्त हो जायेगा। आज भारत के सम्मुख भी उसी प्रकार की समस्यायें हैं। भारत भी अपनी समस्याओं के हल करने मे जुटा हुआ है। बहुत दूर तक भारत सफलता के पथ पर है। भारत के नेताओं ने भारत को सुसगठित कर लिया है, सुव्यवस्थित कर दिया है और अन्न की समस्या को हल करने में वह इस समय अपनी समस्त शक्तियों को लगा रहा है। आशा है निकट भविष्य मे भारत इसमें सफल हो जायेगा।

विषय पर सक्षिप्त विचार—

१ भूमिका।

२ राजनीति और धर्म तथा पाकिस्तान के मूल की भावनायें।

३ भारत और पाकिस्तान का विभाजन, धार्मिक मतभेद, सामाजिक मतभेद।

४. राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियों पर विभाजन का प्रभाव।

५. उपसहार—दोनों का भविष्य।

कुछ राजनैतिक निबन्धों की रूप-रेखायें

मार्शल—योजना

१. मार्शल योजना (European Recovery Plan) की प्रस्तावना ५ जून सन् १९४७ को राज्य सचिव जार्ज मार्शल ने रक्खी।

थी । यह ससार की बहुत बडी आर्थिक योजना है ।

गत महायुद्ध मे योरोपीय देशों की आर्थिक स्थिति बिगड जाने पर इस योजना की आवश्यकता हुई, आर्थिक स्थिति बिगडे हुए देशों में सुधार तथा उन्हें अपने प्रभाव मे रखने के लिये अमरीका ने यह योजना बनाई थी ।

प्रारम्भ मे आर्थिक सहायता लेने वाले देशों की संख्या १६ थी । पैरिस में एक सम्मेलन हुआ जिसमें एक जाच कमेटी बनाई गई । अमरीका ने डा० एडविन सी० नूर्स के सभापतित्व मे एक आर्थिक विशेषज्ञों की एक कमेटी बनाई और उससे इस विषय पर परामर्श किया ।

एक समिति अमरीका के नागरिकों की बनाई गई और अमरीका के उधार देने की शक्ति की जाँच पडताल की गई । इस समय माँग ८०० करोड डालर की थी ।

१९४८ में यह योजना प्रारम्भ हुई और अनुमान लगाया कि इस योजना के पूर्ण होने में चार वर्ष लगेंगे ।

३० जून १९४८ को अमरीका कॉंग्रेस के सम्मुख राष्ट्रपति ट्रूमैन ने योजना को रखा । १७०० करोड डालर सवा चार वर्ष में देने की यह योजना थी जिसका रिपब्लिकन पार्टी ने विरोध किया और बहुमत से यह राशि आधी कर दी गई ।

इसके पश्चात् कॉंग्रेस और सीनेट के संयुक्त गृह में यह राशि पूरी की पूरी पास हो गई और इसकी पहली किश्त ५७५ करोड डालर नियत हुई ।

तब से यह योजना चल रही है और इसका योरोप ही नहीं विश्व की राजनीति पर बहुत गहरा प्रभाव है । आज जो देश अमरीका के साथ सहयोग नहीं दें उनकी यह सहायता समाप्त हो जायेगी और इसके समाप्त होने पर उनके सभी आर्थिक कार्य-क्रम समाप्त हो जायेगे । इससे उन्हें अमरीका के पीछे-पीछे चलना होता है ।

मुद्रा प्रसार और महगाई

१ युद्ध काल मे लोगो का सरकार पर से विश्वास उठा, सरकार ने अपनी आवश्यकता पूति के लिए मनमाने नोट छापे और फलस्वरूप मुद्रा प्रसार के कारण चीज़ों के मूल्य बढ़ने प्रारम्भ हो गये।

२ जनता मुद्रा प्रसार का जैसा जैसा अनुमान लगाती गई वैसे वैसे चीजो के मूल्य बढने लगे और वैसे वैसे ही रुपये का मूल्य गिरता गया।

३ लोगो का विश्वास था कि यह सरकार बहुत शीघ्र इस मुद्रा प्रसार को रोककर चीजों की कीमत को घटा देगी परन्तु ऐसा नहीं हुआ। मुद्रा प्रसार तो कम अवश्य दृष्टिगोचर होता है परन्तु मॅहगाई ज्यों की त्यों है और यह दशा पहले की अपेक्षा भी अधिक कठिन हो गई है।

४ मुद्रा प्रसार के क्षेत्र में यह दशा(Inflation) की है और महगाई क्षेत्र मे अनियन्त्रित दर व्यवस्था की। मूल्यों पर नियन्त्रण कभी कभी दर को ऊचा ले जाता है और बाजारो मे वस्तु का मिलना ही कठिन हो जाता है, जिसके फलस्वरूप काला बाज़ार चलता है और जनता को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भी काले बाजार की शरण में जाना होता है।

५. यह मुद्राप्रसार आकस्मिक नहीं था बल्कि थोडा अधिक संसार के सभी देशो मे हुआ था। युद्ध और युद्ध के पश्चात् निर्माण कार्य में सरकार अपना खर्चा बढ़ जाने पर मुद्राप्रसार की शरण लेती है।

६ १६१४ के महायुद्ध में जर्मनी में २ लाख मार्क की रोटी बिकी। गत महायुद्ध में मुद्राप्रसार का सबसे अधिक प्रभाव चीन में पडा। साठ साठ लाख डालर में एक जोडा जूते बिके।

७ गत महायुद्ध से पूर्व भारत में २ अरब पचास करोड़ रुपये की मुद्रा थी। युद्ध के अन्त में २४ अरब ४४ करोड़ रुपये की हो गई। युद्ध काल में भारत से अंगरेज़ों ने अपना ८ अरब रुपये का ऋण वसूल कर लिया और ७ अरब का अपने पर उधार चढ़ा लिया। यह सात अरब भी अब सरकार को व्यापारियों को नया मुद्राप्रसार करके ही देना पड़ा।

८. मुद्रा अवमूल्यन से वैतनिक कर्मचारी वेतन बढ़ाने की माँग करते हैं। किसानों ने अपने मूल्य बढ़ा दिये और हर वस्तु के दाम बढ़ गये। देश में इसके कारण अशांति है क्योंकि मंहगाई से कोई भी प्रसन्न नहीं रहता।

९ मुद्रा प्रसार के साथ साथ उत्पादन नहीं बढ़ा, यही अशाँति का मूल कारण है। देश का विभाजन, देश के हड़ताल कराने वाले नेता और उत्पादन की सभी बाधाएं आज देश के उन्नति-मार्ग में बाधक हैं।

१० अन्य वस्तुओं का मूल्य अन्न के मूल्य पर आधारित है। गतवर्ष १०८ करोड़ रुपये का अन्न बाहर से आया। इस वर्ष १४० करोड़ रुपये का का अन्न बाहर से आयेगा। यह पररिस्थति मुद्रा प्रसार और महगाई मे सहायक ही है।

११ आज की परिस्थिति मे सरकार की पूंजीवाद-विरोधी नीति उत्पदन मे बाधक है और उसके कारण महगाई तथा मुद्रा प्रसार को भी प्रश्रय मिल रहा है परन्तु ससार के राजनैतिक गति चक्र के सम्मुख उसे भुलाकर चला भी नहीं सकता है। आज उत्पादन बढाने से ही महगाई और मुद्रा प्रसार कम हो सकता है अन्य किसी साधन द्वार। नहीं।

स्वतंत्र भारत का संविधान

१. २६ जनवरी १९५० को भारत का नवीन संविधान लागू हुआ

जिसके अनुसार भारत धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र है और इस संविधान में सब लोगो के समान अधिकार हैं।

२. यह संविधान भारत के सब प्रांतों, रियासतों तथा कुर्ग, अंडेमान और नीकोबार द्वीप पर लागू होता है।

३. भारत की संसद को कानून बना कर किसी राज्य का क्षेत्रफल बढ़ाने अथवा घटाने का अधिकार है।

४ प्रत्येक व्यक्ति जिसका भारत मे जन्म हुआ है या उसके माता पिता भारत-निवासी हैं भारत का नागरिक है। बर्मा, मलाया और लंका के हिन्दुस्तानी जिन्होंने वहां नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं किए हुये हैं भारत के नागरिक हो सकते हैं। पाकिस्तान से आये हुये शरणार्थी भी भारत के नागरिक गिने जाएगे।

५. यह संविधान समता, धार्मिक स्वतन्त्रता, सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी स्वतन्त्रता और सम्पत्ति के अधिकार का हामी है। न्याय सब की रक्षा करेगा, कोई दास नहीं होगा, सरकारी नौकरियों में कोई भेद भाव नहीं होगा, बच्चो को खानों और कारखानों में नौकर नहीं रखा जाएगा।

६ संविधान की शासन प्रणाली मे एक राष्ट्र का प्रधान होगा और दूसरी राजकीय परिषद् (कौंसिल आफ स्टेट) इसमे २५० सदस्य होंगे। इनमें से १५ प्रधान नियुक्त करेगा और शेष निर्वाचित होंगे। तीसरा जनतागृह होगा जिसमें ५०० सदस्य होंगे जो सीधे मतदाता चुनेंगे।

७. २१ वर्ष का प्रत्येक नर नारी मत देने का अधिकारी होगा।

८ प्रधान का चुनाव राजकीय परिषद्, जनता गृह और प्रांतो की धारा सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा होगा। हमारे वर्तमान प्रधान डा० राजेन्द्र प्रसाद हैं। प्रधान की एक बार की

अवधि ५ वर्ष है। वही प्रधान दुबारा भी चुना जा सकता है परन्तु तियारा नहीं।

९. प्रधान को संकट कालीन अधिकार प्राप्त हैं। वह युद्ध अथवा आंतरिक अशांति में ६ महीने के लिए विशेष आज्ञा (Ordinance) का प्रयोग कर सकता है। वैधानिक शासन टूट जाने पर सब अधिकार प्रधान को प्राप्त हो जाते हैं।

१० शासन मन्त्रिमण्डल द्वारा होगा और मन्त्रिमण्डल का नेता प्रधान मन्त्री कहलाएगा। प्रधान मन्त्री का चुनाव राष्ट्र का प्रधान करता है और अन्य मन्त्रियों का चुनाव प्रधान मन्त्री की सहायता से होता है। हमारे वर्तमान प्रधान मंत्री प० जवाहर लाल नेहरु हैं। मन्त्रिमण्डल का उत्तरदायित्व संसद में सामूहिक होगा और मन्त्रिमण्डल उसी समय तक कार्य करेगा जब तक प्रधान की इच्छा होगी।

११ प्रधान कानून सम्बन्धी सलाह के लिए एटोर्नी जनरल और अर्थ सम्बन्धी सलाह के लिये आडीटर जनरल नियुक्त कर सकता है।

१२ उपप्रधान राजकीय परिषद् का प्रधान होगा और राजकीय परिषद् कभी भंग नहीं होगी बल्कि दो दो वर्ष बाद इसके एक तिहाई सदस्य स्वयं स्थान रिक्त कर देंगे।

१३ जनतागृह की अवधि पाँच वर्ष है और उसके पश्चात् फिर नया चुनाव होगा। बजट जनता गृह में ही पेश होगा राजकीय परिषद में नहीं।

१४ संघ का एक सर्वोच्च न्यायलय होगा जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश और सात न्यायाधीश होंगे। यह सीधे अभियोग न लेकर अपीलों पर विचार करेगा। न्यायाधीश की अवधि ६५ वर्ष आयु तक है।

१५ गवर्नर की अवधि ५ वर्ष होगी। यह दुबारा भी चुना जा सकता है परन्तु तिबारा नहीं। इसका चुनाव भी जनरल एलेक्शन के समय ही होगा। राज्य की धारासभा के भेजे हुये चार नामों में से प्रधान किसी भी एक को नियुक्त कर सकता है। राष्ट्र के प्रधान और मुख्य न्यायाधीश के वेतन ५५००) और गवर्नर तथा न्यायाधीशों के ४५००) रुपये मासिक होंगे।

१६ गवर्नर के अधिकार अपने राज्य में प्रधान से मिलते-जुलते ही होंगे। वह भी आवश्यकता पड़ने पर छै महीने के लिए विशेष आज्ञा (Ordinance) का प्रयोग कर सकता है।

१७ राज्य का शासन मन्त्रिमण्डल द्वारा होगा और प्रधान मन्त्री मुख्य मन्त्री कहलायेगा। यह मन्त्री गवर्नर द्वारा चुना जायेगा और अन्य सब मन्त्री मुख्य मन्त्री की सलाह से चुने जायेंगे।

१८ पिछड़ी हुई जातियों के हितों के सरक्षण के लिये बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रांत मे एक एक अतिरिक्त मन्त्री रखने का विधान है।

१९ प्रत्येक राज्य में एक व्यवस्थापिका सभा होगी जिसके सदस्यों का चुनाव मतदाताओं द्वारा होगा। इनके सदस्यों की संख्या ६० से ३०० तक है।

२० कहीं कहीं पर राज्यों में व्यवस्थापिका परिषद् का भी विधान है। इसकी संख्या व्यवस्थापिका सभा से चौथाई होगी। बजट यहा पर भी व्यवस्थापिका सभा मे ही रखा जायेगा।

२१ दिल्ली, अजमेर मारवाड, कुर्ग अ डेमान, निकोबार इत्यादि का शासन सीधे राष्ट्र के प्रधान अथवा उनके अधिकारियों द्वारा होगा। वहा पर चीफ कमिश्नर अथवा गवर्नर नियुक्त किये जायेंगे।

२२. अल्पसंख्यकों के संरक्षण की सिद्धांत रूप मे आवश्यकता नहीं समझी गई। परन्तु संविधान लागू होने के १० वर्ष तक सरकारी नौकरियो में उनका अधिकार उनकी जन गणना के अनुसार होगा।

२३. इस प्रकार इस संविधान के अनुसार मुसलमानो, हरिजनों और परिगणित जातियो के लिये नौकरियों मे स्थान पहिले से रिजर्व होंगे। बम्बई तथा मद्रास प्रांत में भारतीय ईसाईयों को भी यही विशेष सुविधा दी गई है।

२४ केन्द्र तथा राज्यों मे पृथक् पृथक् पब्लिक सर्विस कमीशन होगा यह नौकरियों पर आने वाले उम्मीदवारो की परीक्षा लेंगे।

२५. संविधान मे कोई परिवर्तन केवल उस समय हो सकता है जब केन्द्र के दोनो गृहो के दो तिहाई सदस्य और प्रधान सहमत हों।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की आवश्यकता

१. संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations Organisation) गत महायुद्ध की प्रतिक्रिया का वही रूप है जो League of Nations १९१४ वाले महायुद्ध की प्रतिक्रिया का रूप था संघर्ष के विनाश से बचने के लिये यह प्रयास है परन्तु मानव की स्वार्थ लिप्सा कहा तक इसे फलीभूत कर पायेगी यह प्रश्न विचारणीय है।

२ League of Nations की स्थापना इस दृढ निश्चय को लेकर हुई थी कि अब विश्व मे युद्ध न होगा परन्तु विश्व ने हिटलर को जन्म देकर उस आशा पर पानी फेर दिया। इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि इस प्रकार के प्रयास समय समय पर होते रहे हैं और कुछ समय के लिये मानव को उन प्रयासो ने संघर्ष से मुक्त भी रखा है परन्तु वह स्थाई नहीं बन सके। इसका

मूल कारण यही है कि मानव भी स्थाई नही है।

३. वर्तमान सयुक्त राष्ट्रसघ का विधान पत्र (Charter) सॉन फ्रासिसको मे जून १९४५ के पश्चात् ५० राष्ट्रों के प्रतिनिधियो ने प्रकाशित किया था। १० जनवरी १९४६ को इसकी प्रथम बैठक लन्दन में हुई जिसमे जनेवा में इसका प्रधान कार्यालय रखना निश्चित हुआ और यह भी पास हुआ कि इसमे तटस्थ अथवा शत्रु देशों को न मिलाया जायेगा।

४ सयुक्त राष्ट्र सघ का प्रधान ध्येय समस्त देशों मे शाति स्थापित करना तथा उनकी आर्थिक स्थिति पर नियत्रण रखना है। सघ के यह प्रधान उद्देश्य हैं(१) सब के मानवीय अधिकारों की सुरक्षा तथा उनके प्राप्त करने में सहयोग देना—जाति और रग के भेद भावों का समूल नाश करना (२) मानव का स्तर ऊचा करके उस की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं की देख भाल करना। (३) सकट पैदा करने वाली परिस्थितियों को सुलझाना और विभिन्न राष्ट्रो में मित्र भाव बनाये रखना (४) पराधीनता और निर्बल देशों का संरक्षण करना। इस प्रकार ससार की आर्थिक सामाजिक, सॉस्कृतिक, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा शाति का निरीक्षण तथा आपसी प्रेम भाव को बढ़ाना इस सघ का कार्यक्षेत्र है।

५. सघ की सुरक्षा परिषद् के १२ सदस्य हैं जिनकी पहिली बैठक १५ मार्च १९४६ को न्यूयार्क में हुई थी।

६. इस सघ के अन्तर्गत एक राष्ट्रीय न्यायालय है जो सघ के सदस्यों के विवादग्रस्त मामलों का निर्णय करता है। इसमें अन्तर्राष्ट्रीय न्यायाधीशों की संख्या १५ होती है।

७ आर्थिक सामाजिक और विज्ञान विभाग की देख भाल करने वाली सभा के १८ सदस्य हैं।

८. भारत के दृष्टिकोण से अन्तर्राष्ट्रीय सघ के सम्मुख अब तक दक्षिणी अफ्रीका और काश्मीर के महत्व पूर्ण प्रश्न आये हैं परन्तु दोनों को अभी तक सुलझाने मे वह असमर्थ रहा है।

९. इनके अतिरिक्त फिलिस्तीन, इन्डोनेशिया, बर्लिन की समस्या, चीन का प्रश्न भी आया और आज कोरिया का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है।

१० सघ की स्थापना बहुत महत्वपूर्ण उद्देश्यों को लेकर की गई है। लोक-हित और विश्वशांति की भावनायें इसके उद्देश्यों के प्रधान तत्व हैं।

११ आज ससार की शक्ति का सन्तुलन दो प्रधान शक्तियो के बीच हो रहा है। अतर्राष्ट्रीय सघ दो विचार धाराओं के लडने का अखाडा बनाया हुआ है। यह अखाडा बनाने की भावना सघ के लिये घातक है। यदि इस भावना का अन्त न हुआ तो सघ का भविष्य आशा जनक नहीं है।

अटलांटिक-संधि

१ इङ्गलैंड अमेरिका तथा रूस का गत युद्ध मे मेल जर्मनी, इटली तथा जापानी फासिस्ट के विरुद्ध सयुक्त मोर्चा बनाने के लिये हुआ था।

२ युद्ध समाप्त होने पर इनमें इतना खिंचाव हुआ कि योरोपियन देशो ने एङ्गलो अमरीकन ग्रुप के प्रभाव में आकर एटलांटिक तट पर बसने वाले नौ देशो ने आपस मे एक पैक्ट किया। यह पैक्ट स्पष्ट रूप से रूस के विरुद्ध था। और इसमें यह निर्णय हुआ कि यदि इन देशोंमें से किसी पर भी बाहर का आक्रमण हुआ तो उस आक्रमण का सयुक्त मोर्चे द्वारा सामना किया जायेगा।

३ इङ्गलैंड, अमरीका, फ्रास, हालैंड, कनैडा, बैलजियम, लक्सम्बर्ग, डैनमार्क और नार्वे ने इस एटलांटिक पैक्ट पर हस्ताक्षर किये और

आगामी युद्ध-भय के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाया।

४ इन सब देशों की जनसंख्या लगभग २५ करोड़ और क्षेत्रफल ७० लाख वर्ग मील। यह संधि बीस वर्ष के लिये हुई थी।

५ यह सन्धि संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा पत्र के आधीन अवश्य की गई है परन्तु इसका उद्देश्य रूस की शक्ति को रोकना और ऐङ्गलो-अमरीकन गुटबन्दी को कायम रखना है।

६ रूस ने नार्वे के साथ अनाक्रमण सन्धि करने और ऐङ्गलो-अमरीकन गुट में शामिल न होने के लिये कहा परन्तु नार्वे ने उसे न मान कर एटलांटिक पैक्ट पर हस्ताक्षर कर दिये।

७ नार्वे और डेनमार्क बाल्टिक सागर के द्वार पर दोनों ओर स्थित होने के कारण और उनके इस सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर देने के कारण रूस के लिये खतरा पैदा होगया।

८ इङ्गलैंड तथा अमरीका अवसर पड़ने पर इन देशों को युद्ध सामग्री तथा आर्थिक सहायता देंगे यह भी इस सन्धि द्वारा निश्चय हुआ था।

९. इस प्रकार इस सन्धि द्वारा रूस और ऐङ्गलो अमरीकन दो प्रत्यक्ष दल बन गये।

काश्मीर की समस्या

१. भारत का विभाजन होते ही हैदराबाद और काश्मीर के अतिरिक्त अन्य सब रियासतें भारत अथवा पाकिस्तान में मिल गईं। पाकिस्तान ने अवसर पाकर कबायलियों को काश्मीर में घुसा दिया। ऐसी परिस्थिति में काश्मीर के राजा और जनता ने भारत के प्रधान मन्त्री से काश्मीर को भारत में सम्मलित करने और आक्रमणकारियों के विरुद्ध सहायता माँगी।

२ भारत ने यह प्रार्थना स्वीकार करके काश्मीर को पतन से बचा लिया और भारत और पाकिस्तान के युद्ध को रोकने के लिये

शुरु जनवरी १९४८ में यह मामला संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मुख रख दिया।

३. आज तीन वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी संयुक्त राष्ट्रसंघ इस समस्या का समुचित हल नहीं निकाल सका है। सर ओवन-डिक्सन मध्यस्थ बन कर भी आये परन्तु समस्या ज्यो की त्यों बनी हुई है। कोई हल नहीं निकला।

४. इस समस्या के विषय में संयुक्त राष्ट्रसंघ की उदासीनता क्या है यह नहीं कहा जा सकता। जो संघ कोरिया में तुरन्त सेनायें भेज सकता है वह तीन वर्ष से बराबर इस महत्वपूर्ण मामले को खटाई में क्यों डालता जा रहा है।

५. इस समस्या को पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के मन्त्री आपस में ईमानदारी से सुलझा सकते हैं।

६. अन्त में यह कहना असत्य न होगा कि यदि बड़े राष्ट्रों ने इस समस्या को महत्व न दिया तो यह विस्फोट सिद्ध हो सकता है। काश्मीर की सीमा चीन, रूस, पाकिस्तान और अफगानिस्तान से मिली है, इसलिये भारत के लिये यह महत्व पूर्ण रियासत है जिसे भारत खो ही नहीं सकता। महत्व इसका पाकिस्तान के लिये भी कम नहीं है इसलिये यह समझते हुए भी कि पाकिस्तान सिद्धाँत रूप से गलती पर है काश्मीर के प्रलोभन को छोड़ नहीं पा रहा है।

७ काश्मीर की समस्या का शाँतिपूर्वक सुलझ जाना इस समय भारत और पाकिस्तान दोनों के लिये हितकर है अन्यथा यह झगड़ा बढ़ जाने पर विश्व शाँति के लिये भी ख़तरा पैदा हो सकता है।

हिन्दू कोड बिल

१. हिन्दू कानून (Hindu Law) में आज के युग की आवश्यकताओं के अनुसार क्या परिवर्तन या सुधार होना चाहिये इसके

लिये श्री राऊ के प्रतिनिधित्व में १५ सदस्यो की समिति बैठी और इस समिति ने देश भर की प्रमुख हिंदू संस्थाओं की विचार धाराओं के आधार पर जो रिपोर्ट तय्यार की उसका नाम हिन्दू कोड बिल है।

२ विवाह, तलाक, दत्तक-अधिकार, उत्तराधिकार, सम्पत्ति-वितरण, स्त्रीधन, सयुक्त परिवार इत्यादि हिन्दुओं की समस्याओं पर विस्तार के साथ इस बिल मे विचार किया गया है।

३ इस बिल का प्रगतिशील व्यक्तियों ने स्वागत तथा रूढ़िवादी प्राचीन विचारावलम्बियो ने विरोध किया है।

४ इस बिल के अनुसार एक पुरुष एक स्त्री रख सकता है। विधवा को उत्तराधिकार प्राप्त होंगे। दत्तक पुत्रों से सम्बन्ध रखने वाली अनेको विचारणीय धारायें बिल में हैं। यह इस बिल के प्रधान गुण हैं।

५, इस बिल का जिन दोषों के कारण विरोध हुआ है वह हैं (१) हिंदू सस्कृति तथा सभ्यता का इस बिल में समुचित ध्यान नहीं रखा गया (२) इस बिल के निर्माताओं के जीवन पर पश्चिमी सभ्यता की छाप होने के कारण भारतीयता का बिल मे अभाव है। (३) भारतीय सरकार को धर्म-निरपेक्ष होने के नाते केवल हिंदू धर्म के लिये कोई बिल नही बनाना चाहिये। इस सरकार को चाहिये की वह जो भी बिल पास करे वह भारत की सम्पूर्ण जनता पर लागू हों।

६ जिन कारणों पर पुरुष स्त्री को अथवा स्त्री पुरुष को तलाक दे सकते हैं वह हैं (१) विवाह के समय किसी एक पक्ष का नपुसक होना (२) किसी एक पक्ष का दुराचारी होना (३) किसी एक पक्ष का हिन्दू धर्म त्याग देना (४) किसी का पागल अथवा असाध्य रोग-ग्रस्त होना —यह सब होते हुए भी पुरुष को स्त्री को

तलाक देने का अधिकार देना बिल क हर दशा मे सदोषता है। ऐसी परिस्थिति म सर्वदा यही होगा कि पुरुष अपने दोषों को स्त्री पर लाद कर उसे तलाक देगा और उसके जीवन को नष्ट कर डालेगा।

७ स्त्री को पिता या पति से जो सम्पत्ति का अधिकार मिलेगा उससे जायदाद खंड-खड होकर हिन्दू जाति के निर्धन होने का कारण बनेगी। मुसलमानो मे निर्धनता होने का एक यह भी कारण है। इससे भाई और बहनों का पारस्परिक प्रेम समाप्त हो जायेगा। लड़कियो के सम्बन्ध लेते समय इस बात की खोज होने लगेगी कि उसके नाम पर कितनी सम्पत्ति है। यह हिन्दू समाज के लिये हानि कारक ही सिद्ध होगा।

८ बिल में कई सुधार होने की आवश्यकता है। बिना सुधार किये ज्यों का त्यों बिल को पास कर देने से यह हिन्दू समाज के लिये हानिकारक सिद्ध होगा। श्री पी० एस० देशमुख अपने विरोध मे कहते है, "भारतीय जीवन की वास्तविकता और प्रस्तावित सुधारो की व्यावहारिकता का विचार किये बिना ही हिन्दू भावनाओं को इस प्रकार ठेस पहुंचाना बुद्धिमानी नही है।"

फुटकर निबन्ध

क्रांति के कारण और शांति के उपाय

इच्छाओ की अपूर्ति आवश्यकता और प्रलोभन मे विश्व की शाति और अशाति का रहस्य छुपा हुआ है। आज के वैज्ञानिक युग ने मानव को आश्चर्य चकित करके उसकी आवश्यकताओं को बढा दिया है। उन्हीं आवश्यकताओ की वृद्धि और उनकी भरसक पूर्ति न होने मे आज के मानव की अशाति निहित है। यातायात के साधनों की वृद्धि और मृत्यु से लडने के लिये नवीनतम डाक्टरी औपधिया और अनेकों डाक्टरी उपायों के होने पर भी मानव को शाति नहीं, उद्विग्नता है, हर समय परेशानी है, चिता है, यह सब फिर क्यो ? अब हमे उन अशाति के कारणों को खोज निकालना है और उन पर विचार करना है कि जिनके कारण विश्व मे क्राति के कारण उपस्थित हो जाते हैं और उथल-पुथल का वातावरण बन जाता है।

असतुलन—मानव की मूल समस्याओं का जन्म असतुलन से होता है। यदि हम विश्व साहित्य पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि गत युगों मे भी जितने सघर्ष, जितने महायुद्ध और जितनी क्रांतिया हुई हैं उन सब के मूल में असतुलन-विषयी भावना निहित है। असतुलन मानव जीवन से सम्बन्ध रखने वाले सभी क्षेत्रों में हो सकता है और मानव जीवन के सभी क्षेत्रों के असंतुलन का विश्व शांति अथवा क्राति के मूल तत्वों पर प्रभाव पडता है। आइये पहिले आर्थिक असतुलन पर विचार करें। वैज्ञानिक मशीनों का आविष्कार

उन्नीसवीं शताब्दी मे हुआ। मैशीनें पहिले कोयले से चलीं और फिर विद्यु त द्वारा चलने वाली मशीनों की ओर विज्ञान की प्रगति हुई। इस मशीनों के युग ने हाथ की दस्तकारी और छोटे उत्पादन के प्रयोगों और साधनो को नमस्कार कर दिया। सभी उद्योग-धधे तीव्र गति मे चलने वाली मशीनों को सौंप दिये गये और मानव दिन प्रति-दिन शक्ति को केन्द्रित करने की ओर चल पडा। ऐसे युग मे कुछ व्यक्तियों ने मशीनों को अपनी पू जी के बल से अपने वश मे कर लिया और उत्पादन के स्वामी बन बैठे। यहा से पू जीपति वर्ग का उदय हुआ और समाज मे असतुलन आने लगा। इस वर्ग ने सर्व प्रथम ससार के व्यवसाय पर हाथ रखा, उसे अपने अधिकार मे किया, फिर विश्व की आर्थिक-समस्याओं पर अधिकार जमाया और फिर अन्त मे यह राजनीति के क्षेत्र मे उतर पडे। व्यापार के नाम पर साम्राज्य के साम्राज्य ही स्थापित होते चले गये। राष्ट्रीयता का नवीन दृष्टिकोण यह जनता के सामने लाये और अपने माल की खपत के लिये नये-नये बाजारों की खोज मे निकल पडे। अपनी आवश्यकता से अधिक माल तय्यार होने पर विदेशों पर अधिकार करने का प्रश्न उपस्थित हुआ और राजनीति मे जो देश दुर्बल थे वह इनके शिकार बनने प्रारम्भ हो गये। छोटे-मोटे देशो को सभ्य बनाने के दावो मे ही हडप कर लिया। भारत जैसे देश पराधीन हो गये। राजनैतिक दृष्टि से देशो को पगु बना कर उन्हे अपने माल की खपत के लिये बाज़ार बना लिया। दास-देशों के उद्योग-धधे ठप्प करके अपने उद्योग-धधों द्वारा तय्यार किये गये माल का उन क्षेत्रों मे प्रचार किया गया और हाथ से बनी वस्तुओ की अपेक्षा सस्ती चीजें देने के प्रलोभन मे जनता को फसा लिया। इस प्रकार मानव द्वारा मानव का शोषण होने लगा और साम्राज्यों की स्थापना इन्हीं व्यापारिक कारणों से होने लगी। छोटे राष्ट्र बडे राष्ट्रों के दास बने और संसार भर बाजारों

तथा उपनिवेशों के लिये प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गई जिसके कारण अशाति और क्राति के कारण आप से आप उत्पन्न होने लगे। उस युग में जो राष्ट्र बाजारो और उपनिवेशो के स्थापित करने मे पीछे रह गये वह कमजोर होगये और जिन्होने जितने अधिक क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया वह ससार में उतनी ही उन्नति कर गये। इसका फल हुआ निरतर युद्ध और क्रातियाँ। यह युद्ध और क्रातिया कई देशो मे हुई। एक देश मे हुई और विश्वभर में व्यापक हो गई। इस प्रकार मशीनो की वृद्धि ने जहाँ अधिक उत्पादन को प्रोत्साहन दिया वहा पराधीनता, युद्ध की दानवी मनोवृत्तियों, प्रतिस्पर्धा, पूजीवादिता की क्षुद्र राष्ट्रीयता को जन्म देकर मानव जीवन में अशाति का बीजारोपण कर दिया इस प्रकार मशीनों के आविष्कार ने औपनिवेशिक सघर्ष को जन्म दिया, पूजीवाद और मार्क्सवाद को जन्म दिया और दासत्व और पराधीनता की भावना को जन्म दिया। मानव और देशो से से स्वावलम्बन नष्ट हो गई। इसने विविध वर्गों के पारस्परिक सघर्ष को जन्म दिया जिससे मानव जीवन दिन प्रति दिन अशात होता जा रहा है।

आज धार्मिक अशाँति का युग नहीं रहा (कुछ पिछड़े हुए देशों में कभी कभी धार्मिक अशाँति की चिंगारी भी दहक उठती है परन्तु कम) एकतन्त्रवाद (Dictatorship) का भी समय निकल चुका है और आज युग आ गया है प्रजातन्त्र और कम्यूनिज्म की टक्कर का समय और परिस्थितियों बतलाएगी कि इनमे कौन शाँति की ओर और कौन अशाँति की ओर अग्रसर है इस विषय पर संघर्ष चल रहा है। यह वर्गों का सघर्ष मानव जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकताओं से सम्बन्ध रखता है इसलिये मानव किसी भी परिस्थिति में उसे भुला कर नहीं चल सकता। इस प्रकार हमने देखा कि यह वर्गीय असन्तुलन मानव जीवन में निहित अशाँति का आज प्रधान कारण है।

आज मानव अध्यात्मवाद से भौतिकवाद की ओर अग्रसर होता जा रहा है। आज की सभ्यता अर्थ-प्रधान बनती जा रही है। मानव जीवन की बाहरी आवश्यकतायें ही उसके लिये सब कुछ हैं। आत्मा परमात्मा के प्रश्नो पर विचार करने का उसके पास समय नही। मानव मे हृदय-पक्ष का अभाव और बुद्धि पक्ष का प्राबल्य होता जा रहा है आज 'हाय पेट हाय पेट' के नारे लगाने पर भी वह खाली का खाली दिखाई दे रहा है। मानवता नैतिक और आर्थिक सघर्ष के पैरो तले कुचली जा रही है। जीवन के साधनो की कमी और उनका बटवारा असन्तुलित है। मानव के प्रत्येक क्षेत्र मे छीना-झपटी का साम्राज्य हे, फिर भला शांति कहाँ? आज अविश्वास और धोखे की नौका में बैठ कर मानव संसार-सागर में अपनी नौका खे रहा है। मानव लक्ष्य-विहीन है, ध्येय-विहीन है, वह आँख मीचकर बस चलता चला जा रहा है। आज मानव-जीवन मे सत्य, तप, सात्विकता, दया, सन्तोष, और कोमलता के स्थान पर आते जा रहे हैं छल छिद्र, धोखा, असतोष कठोरता और स्वार्थ-लिप्सा। आत्मतत्व को भुलाकर आज मानव जिस पतन की ओर जा रहा है वह मानव जीवन मे शाँति का सचार करने वाला नही। इस वैज्ञानिक युग मे विश्व की शक्तियों का उद्-घाटन तो अवश्य हुआ परन्तु जीवन मे अश्रद्धा और अशांति ने जन्म ले लिया। अश्रद्धा और अशाँति क्राँति के मूलतत्व हैं और इनका बीजारोपण आज मानव समाज मे पूरे रूप से हो चुका हे।

भारत विज्ञान से प्रभावित अवश्य हुआ है परन्तु आज भी भारत मे रूढिवाद या पुराणवाद का निताँत लोप नहीं हो गया है। आज भी भारत मे प्राचीनता के पीछे आँख मींच कर चलने वालों की कमी नहीं है। समाज और धर्म के प्रतिबन्धो के सम्मुख अभीतक क्रियात्मकरूप में वैज्ञानिक सिद्धियाँ फलीभूत नहीं हो पाई हैं। मानव मानव समान है, वर्ग व्यवस्था कृत्रिम है। यह वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया परन्तु भारत मे समाज और धर्म के नाम पर वर्ग अभी तक ज्यो के त्यों

वर्तमान हैं। आज के वैज्ञानिक युग में धर्म के ठेकेदारों का महत्व कुछ कम अवश्य हो गया है परन्तु कठिन परिस्थितियों में ऊभकर वह भी बवण्डर पैदा कर डालते हैं। भारत विभाजन के समय भारत और पाकिस्तान में क्या कुछ नहीं हुआ धर्म के नाम पर ? आज के विज्ञान ने एक दूसरे की आवश्यताओं को एक दूसरे के हाथों में रखकर दोनों को एक स्थान पर लाने का प्रयत्न किया है। धर्म मानव की इस स्वाभाविक भावना के बीच में बाधक बनता है और समाज के क्षेत्र में उतर कर ऐसे प्रतिबन्ध उपस्थित कर देता है कि मानव की प्रगति रुक कर अशांतिमूलक बनने लगती है। आज के वैज्ञानिक युग में भी निरक्षरता का प्रभाव संसार पर पर्याप्त और उसी के कारण धर्म के नाम पर अन्धविश्वास के विरुद्ध भी बलवती भावना जनता में जन्म लेकर विश्व पर आच्छादित होने का स्वप्न देख रही है और उसे टक्कर लेनी होती है प्राचीन रूढ़िवाद से। इस टक्कर के फलस्वरूप भी अनेकों कारण उत्पन्न हो जाते हैं और देश विशेषों में कभी कभी उसकी चिनगारियाँ दिखाई देने लगती हैं। जीवन में आध्यात्मिक तत्वों का नितान्त लोप होने पर भी धर्म का पल्ला जकड़ कर पकड़ने की प्रणाली और असन्तोष और निर्बल अहंकार की भावना को प्रोत्साहन दिया है। यह भी मानव समाज के अहित की ही भावना है जिसमें शांति का अभाव है

इस प्रकार हमारे सम्मुख वर्तमान मानव अशान्ति के तीन प्रधान कारण आते हैं। सर्व प्रथम असन्तुलन जिसके अंतर्गत हम धार्मिक असन्तुलन, सामाजिक असन्तुलन और राजनैतिक असंतुलन तीनों को ही ले सकते हैं। तीनों ही विषमताओं के कारण समभाव न रहने से संघर्ष और अशांति का सूत्रपात होता है। जब एक भूखा मरता है और दूसरे को वह ऐश करते देखता है तो स्वाभाविक रूप से उसके हृदय में स्पर्द्धा का जन्म होता है और वह अशांति की ओर

अग्रसर हो जाता है । आज केवल भाग्य के नाम पर पडे पडे भूखे मरने का युग समाप्त हो चुका । यातायात के तीव्र प्रयोग के कारण ससार एक गृहस्थ सा बन गया है। एक ही गृहस्थ मे दो प्रकार के आदमी नहीं रह सकते । एक भूखा रहे और दूसरा दूध घी पीये, खाये यह नहीं चल सकता और जिस घर में यह दो भाव हो जाते हैं वहाँ अशाति उत्पन्न हो जाती है। वर्गव्यवस्था पर हम ऊपर विचार कर चुके हैं। मशीनों के युग में पूंजीपति वर्ग का जन्म हुआ है और इस वर्ग ने मजदूर वर्ग का शोषण किया है। आज का मजदर वर्ग जागरूक हो चुका है। वह सघर्ष के लिये पूर्ण रूप से उद्यत है और वह पूंजीपति के साथ किसी भी प्रकार सहयोग करने को उद्यत नहीं। वह जब भी पूंजीपति को कठिन परिस्थिति में देखता है उसी समय अपना हडताल का अस्त्र लेकर सघर्ष-क्षेत्र में कूद पडता है और आज के युग में तो उसका बोलबाला है। विश्व की प्रगति मजदूर के पक्ष मे है, पूंजीवाद के पक्ष में नहीं ।

आज के युग मे फिर से मानव-जीवन मे भौतिकवाद के प्रति घृणा और अध्यात्मवाद के प्रति आकर्षण होगा, इसके लक्षण अभी तो कुछ प्रतीत नहीं हो रहे । अध्यात्मवाद का भविष्य अन्धकारपूर्ण ही दिखाई देता है और इस कारणवश कभी तो मानव जीवन मे बिना आध्यात्मिक जागरुकता से शाँति का प्रादुर्भाव होगा यह बात कुछ विचित्र सी प्रतीत होती है। कामनाओं के भोग से कभी इच्छा की पूर्ति नहीं होती बल्कि यह नवीन से नवीन रूप मे सर्वदा प्रबलतर ही होती जाती है। एक बार मानव जब इच्छाओं की वृद्धि के चरम लक्ष्य पर पहुंचकर भी शाँति प्राप्त न कर सकेगा तो उसे टक्कर लगेगी, उसका स्वप्न भग होगा और सम्भवत. वह फिर भौतिकवाद की ओर से अध्यात्मवाद की ओर लौटे। उस समय मानव अशाति के स्थान पर शाँति का स्वप्न देख सकता है ।

आज रूढ़िवाद और विज्ञान को मिलकर चलने की आवश्यकता है। जब तक कुछ ऐसे विचारक पैदा नहीं होंगे जो दोनों मे समन्वय की भावना को लाकर मानव जाति के कल्याण के लिए एक ऐसा मार्ग निर्धारित न कर दें जिस धरातल पर कि प्रेम-पूर्वक दोनों विचार-धारी शाति का श्वाँस ले सकें उस समय तक विश्व मे अशाँति ही अशाँति है। शाति और अशाँति वास्तव मे मानव के अपने मन की स्थितिया हैं जो बाह्य कारणो से उदय होती हैं, प्रस्फुटित होती हैं, फैलती हैं और पुष्पित होती है। इसलिए आज के युग की शाँति और अशाति के मूल प्रश्न का भी हल मानव हृदय से ही अधिक सम्बन्ध रखता है वैज्ञनिक आविष्कारों से उतना नहीं। परम बम से सर्वनाश किया जा सकता है सर्वशाति नही। सर्व शाँति तभी होगी जब धामिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रो मे सन्तुलन होगा, जब धार्मिक सहिष्णुता पैदा होगी, जब प्राचीनता और नवीनता मे समन्वय होगा और मानव हठ को छोडकर मानव-शान्ति की ओर अग्रसर होगा।

विषय पर सॅक्षिप्त विचार—

१ भूमिका।

२. आर्थिक, धामिक और सामाजिक संतुलन।

३ प्राचीनता और नवीनका की मुठभेड।

४. मशीन-युग से वर्ग का जन्म और सघर्ष।

५. मानव-जीवन से अध्यात्मवाद का लोप और भौतिकवाद का उदय।

६. उपसंहार।

वैज्ञानिक संसार किधर को ?

जब मानव में विचार शक्ति का उदय हुआ तो उसे ससार में प्रतिदिन की घटित घटनाओं के प्रति कौतूहल उत्पन्न हुआ। आदि-मानव ने कौतूहलपूर्ण समस्याओं पर विचार करना प्रारम्भ किया और मानसिक विकास की पूर्ति प्रारम्भ मे उसने कल्पना से की। इस प्रकार कल्पना और बुद्धि ने पौराणिकवाद को जन्म दिया परन्तु मानव मे ज्यों २ बुद्धितत्व का विकास होता गया त्यो २ वह कल्पना का आश्रय छोड कठोर सत्य, अनुभव, तर्क और परीक्षण की कसौटी पर अपनी जिज्ञासा की समस्यायो को कसने लगा। इस प्रकार विज्ञान ने सत्य की खोज की और इस खोज मे अनेको वैज्ञानिकों ने अपने जीवन होम दिये। एक वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला मे उतनी और सम्भवत उससे भी अधिक दत्तचित्तता से कार्यमग्न होता है जितना एक सच्चा पुजारी अपने मन्दिर मे देव-मूर्ति के सम्मुख। वह अविरल प्रयत्न और परिश्रम करता है, भूख, प्यास और कष्ट सहन करता है और असफल होने पर भी धैर्य का परित्याग नहीं करता। 'पृथ्वी गोल है और सूर्य की प्रदक्षिणा करती है' यह कठोर सत्य मालूम करने में वैज्ञानिको को क्या क्या कष्ट सहन करने पडे उनका आज अनुमान करना भी कठिन है। प्राचीन रूढिवाद के धर्मान्ध-युगो मे सत्य की खोज करने वाले वैज्ञानिकों को धर्मद्रोही कहलाकर क्रूर से क्रूर दण्ड सहन करने पडे हैं। गेलीलियो को प्राण-दण्ड मिला यह ऐति-हासिक सत्य है। आज जो देश सभ्यता के ठेकेदार बने बैठे हैं, एक युग वह भी रहा है जब उन देशों मे भी वैज्ञानिकों पर कठोर अत्याचार हुए हैं।

विज्ञान से मानव का विकास हुआ और मानव ने विज्ञान का विकास किया। खोज और परीक्षणों के फलस्वरूप नवीनतम खोजों

और नवीनतम आविष्कारों में ससार का वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित हुआ। विज्ञान ने ससार को कार्य और कारण का परिचय कराया। समस्याओं के हल ने नवीन समस्याओं को जन्म दिया। फिर उनकी खोज हुई और इस प्रकार विज्ञान का क्षेत्र निरन्तर बढ़ता गया। मानव के ज्ञान भडार मे वृद्धि हुई और ससार प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ। वैज्ञानिक देश, काल, जाति, धर्म, समाज, रूढ़िवाद, हृदय पक्ष आदि के बन्धनो से मुक्त होकर बुद्धि तत्व के आधार पर अपने प्रयोगों और परीक्षणों को लेकर चले और आशातीत उन्नति की। विज्ञान दो दिशाओं में अग्रसर हुआ, एक प्राकृतिक खोज क्षेत्र में जैसे आकाश, पाताल, सूर्य, नक्षत्र, पृथ्वी, सृष्टि, शक्ति इत्यादि की खोज और दूसरे आविष्कारों की दिशाओ मे जिसमे बिजली, भाप और वायु की शक्तियों से मानव के जीवन को सुखी बनाने के साधनो को जुटाना। इस प्रकार हम इन दोनों धाराओं को ज्ञानात्मक और उपयोगात्मक दो धाराओं मे विभाजित कर सकते है। ज्ञानात्मक विज्ञान के मार्ग में कुछ उपयोगात्मक वस्तुए वैज्ञानिकों के हाथ लग गई और उनका आविष्कार करके वैज्ञानिकों ने ससार को क्या दिया इस पर आगे विचार करेंगे।

आज के विज्ञान ने ससार को एक यूनिट बना दिया है। जिस प्रकार सध्या को गाव की चौपाल पर बैठकर प्राचीनकाल मे गॉव की दिन भर की घटनाओं का ज्ञान हो जाता था उसी प्रकार आज रेडियो के सम्मुख बैठकर ससार भर का ज्ञान हो जाता है। आज हवाई जहाज की सुविधा द्वारा मानव ससार भर की सैर चन्द दिनों में कर सकता है। आज रेलों की सहायता से कोई भी सामान देश के एक कोने से दूसरे कोने मे भेजा जा सकता है। आज पानी के जहाजों में सामान भरकर दूर देशों को भेजा और वहाँ से मगाया जाता है। एक स्थान के अकाल की पूर्ति इस प्रकार दूसरे स्थान की उपज से हो जाती है। बेतार का तार, तार, और टेलोफून द्वारा एक स्थान की सूच-

नायें बहुत कम समय में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजी जा सकती हैं। रिकार्डों द्वारा विज्ञान ने मानव की आवाज को इस प्रकार सुरक्षित रख दिया है कि आज भी हम रेडियो पर तवे चढ जाने पर महात्मा गाँधी के भाषण सुन सकते हैं। इस प्रकार विज्ञान ने हमें रेल, मोटर, हवाई जहाज, पानी का जहाज इत्यादि अनेकों यातायात के ऐसे साधन दिये जिसके कारण संसार भर का मानव एक दूसरे के इतना निकट हो गया जितना प्राचीन युग मे कलकत्ता और पेशावर का रहने वाला भी नहीं था। इस प्रकार मानव विज्ञान का आधार पाकर एक दूसरे की कठिनाईयों और आवश्यकताओं के निकट पहुंचा और संसार के व्यापार ने, संसार की सभ्यता ने, संसार की राजनैतिक स्थिति ने संसार के उत्पादन कार्यों ने थोडे से काल में महान् प्रगति और उन्नति की।

वैज्ञानिक आविष्कारों के क्षेत्र पर विचार करते समय हमें इस बात पर ध्यान देना होगा कि वैज्ञानिकों की प्रगति केवल उत्पादन दृष्टिकोण से ही न होकर विनाशकारी दृष्टिकोण से भी हुई है। जहाँ वैज्ञानिकों ने रेल, तार और जहाजों का आविष्कार किया है वहां तोप बन्दूक, रिवालवर, राइफल, बौम्ब, विषैली गैस और एटम बोम के भी आविष्कार किये हैं। इन आविष्कारों ने एक युग में मानव को दानव बना दिया। एकतन्त्रवाद (फासिज्म) और साम्राज्यवाद को जन्म दिया, निरंकुशता ने जोर पकड़ा और एक बार नहीं बल्कि अनेकों बार विश्व शान्ति संकट में पड गई। इन आविष्कारों के कारण आज भी विश्वशान्ति सङ्कट में है। यह आविष्कार, दुराचार, निरंकुशता, दमन और दानवता की भावनाओं को दबाने के लिए हो सकते है और इनके प्रोत्साहन के लिए भी हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त ऊपर जो उत्पादन के आविष्कार हमने गिनाये हैं उन्होंने भी विश्व व्यापक युद्धों में समुचित सहायता दी है। इङ्गलैंड ने

एक बड़ा पानी का जहाजी बेड़ा बनाया, जर्मनी ने हवाई बेड़ा बनाया, अमरीका ने एटमबम ईजाद किया और इस प्रकार कभी किसी देश ने संसार पर छा जाना चाहा और कभी किसी ने। वैज्ञानिक आविष्कारों ने इन प्रवृत्तियों के प्रोत्साहन मे बराबर सहयोग दिया है।

विज्ञान ने मानव जीवन के सभी पहलुओं पर प्रभाव डाला है। राजनीति पर विज्ञान का प्रभाव है, समाज पर विज्ञान का प्रभाव है, धर्म पर विज्ञान का प्रभाव है और अन्त मे मानव के दैनिक जीवन पर विज्ञान का प्रभाव है। आज विज्ञान प्रकृति की शक्तियो पर विजय प्राप्त करने पर तुला हुआ है और उसके फलस्वरूप मानव प्रकृति के प्रति उदासीन होता जा रहा है। मानव अपने दैनिक जीवन में कृत्रिम चमत्कारा से इतना प्रभावित हो चुका है कि वह वास्तविकता से दूर होकर एक स्वप्निल ससार मे भ्रमण कर रहा है। मानव के जीवन से श्रद्धा, दया, धार्मिकता, और हृदय-पक्ष सर्वथा लोप होते जा रहे हैं। आज विज्ञान के चमत्कारों के मध्य मे फसा हुआ मानव प्रकृति के स्वतन्त्र वातावरण मे विचरण करने की इच्छा मात्र को भी खो बैठा है। एक सिनेमा प्रेमी को मुक्त बहने वाली सरिता के तट पर बैठ कर वह आनन्द नहीं आ सकता जो उसे कृत्रिम-कला के मध्य प्राप्त होता है। बाग वाटिका भ्रमण, वन पर्वत की अनेको दृश्यावलिया आज के वैज्ञानिक युग मे मानव को प्रभावित नहीं कर पातीं। वह चाहता है हवाई जहाज की सैर, रेलों के ऐयर कंडिशन डिब्बों मे बैठकर चलना और मोटरों में बैठ कर विद्युत द्वारा प्रकाशित शहरों की अट्टालिकाओं के बीच बनी हुई सुन्दर सड़कों पर घूमना। आज का मानव प्रकृति के प्रति उदासीन होता जारहा है। एक वैज्ञानिक प्रकृति के सौंदर्य का अपनी प्रयोगशाला मे लेजा कर विश्लेषण करता है, वह उसकी काट-छाँट करता है, तर्क करता है परन्तु हृदय पक्ष

का उसमे नितान्त अभाव रहता है । विज्ञान की इस प्रगति के आधार पर मानव जीवन सरसता की ओर न बढ़कर शुष्कता की ओर बढ़ रहा है, नीरसता की ओर बढ़ रहा है और कर्कशता की ओर बढ़ रहा है । मानव जीवन मे दया का लोप हो रहा है । भक्तिभाव मिट रहा है और आ रहा है कृत्रिम आकर्षण ।

इस प्रकार विज्ञान द्वारा ससार सघर्ष की ओर जारहा है, कृत्रिमता की ओर जा रहा है और नीरसता की ओर जा रहा है । मानव जीवन मे से मानवी भावना का लोप दिखलाई दे रहा है । आज का मानव मानव न रह कर एक यन्त्र बनता जा रहा है । ससार सहृदयता के साथ न चलकर एक यन्त्र की भाति चल रहा है ।

विषय पर सक्षिप्त विचार —

१ भूमिका ।
२ विज्ञान का क्रमिक विकास ।
३ ज्ञानात्मक और प्रयोगात्मक विज्ञान ।
४ ससार की प्रगति और सघर्ष ।
५ उपसहार ।

पश्चिम और पूर्व की सभ्यता

पश्चिम और पूर्व की सभ्यताओ से यहाँ हमारा तात्पर्य केवल भारत और योरुप से है । इन दोनो सभ्यताओं के मूल मे एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि भारत की सभ्यता जहा अध्यात्मवाद के आश्रित होकर चलती है वहाँ योरुपीय सभ्यता सम्पूर्ण रूप से भौतिकता वादी बन गई है । साराँश यह है कि भारत की सभ्यता में महत्वपूर्ण स्थान है आत्मा का, शरीर का नहीं और योरुपीय सभ्यता में शरीर और पेट पहिले आते हैं । जब से मानव जाति धर्मविमुख

होती जा रही है, उसकी ईश्वर पर से आस्था उठती जा रही है, उसके जीवन का हृदय-पक्ष निर्बल पड़ता जा रहा है, उस समय से उसके जीवन की त्याग-भावना, आत्मानन्द-भावना, पारस्परिक प्रेम-भावना यह सभी लोप होती जा रही हैं। जीवन मैशीन के कल पुर्जों की भांति चल रहा है एक कठोर जागरूकता के साथ। यह है योरुप का प्रभाव।

योरुप में कलो का आविष्कार हुआ और उन कलों ने मानव को भी एक कल मात्र ही बना दिया। मानव के जीवन को ऐसे जंजालों में जकड़ दिया कि उसकी स्वच्छन्दता, उसकी आगे बढ़ने की शक्ति, उसकी विचारने की शक्ति सीमित होकर रह गई। योरुप की सभ्यता ने मानव को दी हैं एक अमिट प्यास जो उसके हलक को हर समय सुखाये रहती है, दबाये रखती है। प्रारम्भ मे यह प्यास मानव ने अपनी दीवनगी मे पैदा की थी और आज यह प्यास बन बैठी है उसके जीवन का सर्वस्व। आज वह उसके बिना जीवित नहीं रह सकता। मानव के हृदय से सन्तोष की भावना को मिटाकर उसमे भर दी है नवीनतम आवश्यकतायें, ऐसी आवश्यकतायें कि जिनके प्राप्त करने मे वह जीवन भर जुट कर भी सम्भवत उन्हें प्राप्त न कर सके और वह आवश्यकतायें है वास्तव मे ऐसी कि यदि वह जीवन में न भी आयें तो जीवन की प्रगति मे कोई बाधा नहीं उपस्थित होती।

मानव और पशु का एक बहुत बड़ा अन्तर है त्याग। पशु मे त्याग की भावना नहीं होती और मानव का यह प्रधान गुण हैं। भारतीय सभ्यता में प्राचीन काल से त्याग को महत्त्व दिया गया है। राम राज्य का परित्याग कर करके बन जाते हैं और भरत राज्य मिलने पर भी भाई के लिये उसका परित्याग करते हैं। राम किष्किन्धा और लंका के राज्यों पर विजय प्राप्त करके भी उन्हे सुग्रीव और विभीषण को सौंप देते हैं। सत्यवादी हरिश्चन्द्र स्वप्न में भी दिये गये राज्य पर अपना अधिकार

खो बैठते हैं, राज्य विश्वामित्र को देकर चाण्डाल का दासत्व ग्रहण करते हैं, कर्तव्य पालन में अपनी पत्नीसे भी पुत्र के ऊपर पड़ा हुआ आधा कफन मागने में नहीं चूकते—पराकाष्टा है यह मानव जीवन के आत्मोत्सर्ग की। आज इसके ठीक विपरीत योरुपीय सभ्यता ने क्या सिखलाया है ? धन, स्त्री, और भूमि के लिये नित्य समाज में सिर चीरे जाते हैं। धन के लिये भाई भाई मे, स्त्री पुरुष मे, पिता पुत्र मे नित्य कटुतर विवाद और सघर्ष चलते हैं। पाश्चात्य सभ्यता ने त्याग की भावना को एक दम दूर रखकर प्रगति की ह। इसीलिये उसमें लेने की भावना है, देने की नहीं, पाने की भावना है, खोने की नहीं, कष्ट देने की भावना है, कष्ट सहने की नहीं, हड़प करने की आकांक्षा ह, दूसरे के माल की रक्षा करने की नहीं। मानव आज पतन की ओर जा रहा है। मानव की आवश्यकतायें दिन प्रति दिन बढ़ती ही जा रही हैं। अंग्रेजों ने एक महान साम्राज्य की स्थापना की थी, वह आज नहीं रहा। अमरीका अपनी शक्ति और पैसे के अभिमान मे फूला हुआ विश्व पर छा जाना चाहता है। रूस जहा अवसर मिलता हैं अपने हाथ पैर फेंकने मे नही चूकता। जापान, जर्मनी और इटली की जो दशा हुई वह ससार देख चुका। कितने महायुद्ध आज तक विश्व देख चुका और भविष्य भी युद्ध के बादलों से मुक्त हो ऐसा प्रतीत नही होता। यह सब क्यो ? इसका मूल कारण है मानव की बढती हुई आवश्यकतायें और उसके हृदय में पश्चिमीय सभ्यता की अशाति और संघर्ष का बीजारोपण।

मानव मानव मे सघर्ष पैदा किया, मिल मालिक और मजदूर मे संघर्ष पैदा किया, ज़मींदार और काश्तकार मे सघर्ष पैदा किया, छोटे बड़े व्यापारी मे संघर्ष पैदा किया और यह सघर्ष यहा तक बढ़ा कि स्त्री और पुरुषके बीचमे भी सघर्ष पैदा होगया। स्त्री और पुरुष दोनों पृथक पृथक अधिकार मागने लगे। बस गृहस्थ की नौका वा डावाडोल

हो उठी। समाज का ढाचा ही बदल गया। यही सघर्ष योरोप से चलकर भारत मे भी आया परन्तु यहाँ की सभ्यता के सम्मुख उसकी दालें न गल सकी। कुछ पढ़ी-लिखी स्त्रियो ने प्रयत्न भी किये परन्तु फल कोई विशेष न हो सका। पश्चिमी सभ्यता ने हमारे रूढिवादी आचार विचार को भी ठेस पहुंचाई। शराब एक फैशन मे सम्मिलित हो गई। पहिले लोग छुप कर शराब पीते थे अब खुले आम पीने लगे। शराब पीना मानव-जीवन का दोष न रह कर हाईक्लास सोसाइटी का एक एटीकेट बन गया।

हम एक शब्द मे ऊपर कह चुके कि पाश्चात्य सभ्यता ने मानव जीवन की बढती हुई आवश्यकताओ को प्रोत्साहन दिया, सघर्ष को जन्म दिया, कलह का बीजारोपण किया और अपहरणका आश्रय लिया इसके फलस्वरूप मानव जीवन एक सघर्ष का क्षेत्र बन गया। और मानव-आत्मा के पास ना तो चिंतन के लिये ही अवकाश रहा और ना दया भावना के लिये ही। उसकी अपनी समस्यायें ही दिन प्रतिदिन जटिल होती चली गई। मानव जीवन अपनी समस्याओ से सुलझने के स्थान पर और उलटा उनमें उलझने लगा। भारतीय सभ्यता में वर्णाश्रम धर्म की स्थापना केवल इसी लिये हुई थी कि मानव अपने अपने कार्य क्षेत्र मे मुक्त होकर कार्य कर सके। पश्चिमी सभ्यता का शिकार बनकर आज मानव प्रकृति से दूर-दूर भागता जा रहा है। वह प्रकृति से डरने लगा है। विश्व भर के जँगल कटवा कर समाप्त कर दिये गये। अनेकों पहाडों को काट-काट कर मैदान बना दिया। यदि आज के सघर्षशील मानव के वश मे हो तो वह समुद्र को सुखा डाले। मानव आज जिस दिशा मे सँघर्ष कर रहा है वह जीवन को शान्ति की ओर नहीं ले जाता। कामनाओं के भोगने से उनकी तृप्ति नहीं होती।

ज्ञान प्राप्ति के दो प्रधान साधन हैं, एक आत्म-चिंतन और दूसरा बाह्य-साधन। पश्चिमी सभ्यता ने बाह्य साधनों पर बल दिया है और भारतीय सभ्यता ने आत्म-चिंतन पर। आत्म-चिंतन की प्रयोगशाला इसकी आत्मा है इसका मन है। उसी में वह अपने प्रयोग करके प्रकृति के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करता है। एक वैज्ञानिक अपने जिस परीक्षण में वर्षों तक बाह्य-साधनों द्वारा असफल हो सकता है उस परीक्षण का रहस्य एक आत्म-चिंतक एक क्षण में निकाल देता है। पश्चिमी सभ्यता दौड़ी है कोरे रूढ़िवाद के पीछे, मानवता के मूल सिद्धांतों को भूल कर और यहीं इसका पतन है। जो सभ्यता संघर्ष सिखलाती है, हत्याओं को बढ़ाती है और मानव समाज में प्रेम की भावना को नहीं भरती वह मानव समाज के लिये कभी भी हितकारी सिद्ध नहीं हो सकती। यहाँ हम पूर्ण विश्वास के साथ कह सकते हैं कि जब मानव समाज पश्चिमी सभ्यता के घात-प्रतिघातों में थक आ जायेगा तब उसे भारतीय सभ्यता की ही क्रोड़ में विश्राम मिलेगा। मानव-जाति के अंतिम घावों पर भारतीय सभ्यता को ही मरहम लगाना होगा। भारतीय सभ्यता मानव को संघर्ष की ओर न ले जाकर ले जाती है शाँति की ओर, मंगलमय कामनाओं की ओर, स्वच्छ हृदयता की ओर, पवित्र भावनाओं की ओर मानव-जीवन के व्यापक दृष्टिकोणों की ओर। भारतीय सभ्यता संघर्ष प्रेरित नहीं करती। भारतीय सभ्यता में मानव संसार को अपनी आत्मा में देखता था न कि अपने को संसार के बीच एक क्षुद्र प्राणी बनाकर। उसका दृष्टिकोण व्यापक होता है, विशाल होता है और उसके अन्दर रहती है सबके हित में अपने हित की भावना। एक दिन वह सभ्यता सत्य थी, आज आदर्श मात्र सी प्रतीत होती है, क्योंकि मानव पाश्चात्य सभ्यता से प्रेरित होकर कलवाद और संघर्षवाद की ओर अपने केवल भौतिक आदर्शों को लिये 'पेट पेट', 'कपड़ा-कपड़ा', 'मजदूरी-

री', कह कर नेत्र बन्द किये दौड रहा है। एक दिन वह अवश्य येगा जब इस अँधे मानव को भौतिकवाद की कठोर टक्कर लगेगी, एक बार सर्वनाश सा प्रतीत होगा, एक विशाल क्रांति होगी और फिर मानव लौटेगा अपना भारी और विश्रांत हृदय लेकर और भारतीय सभ्यता की सुखदायिनी अँक मे शरण लेगा। वह होगा उन घावों पर मरहम लगाने का समय जो अब निकट ही है, अधिक दूर नहीं।

विषय पर सँक्षिप्त विचार—

१ भूमिका ।

२. पाश्चात्य सभ्यता तड़क-भड़क वाली है और भारतीय सभ्यता में जीवन का कठोर सत्य छुपा हुआ है ।

३ पाश्चात्य सभ्यता मानव को सँघर्ष की ओर ले जाती है और भारतीय सभ्यता शाँति की ओर ।

४ आज का मानव पाश्चात्य सभ्यता के पीछे आँखें मीच कर भाग रहा है ।

५ पाश्चात्य सभ्यता ने मानव से हृदय छीन कर उसे कल का पुजारी बना दिया है ।

६ पाश्चात्य सभ्यता के पीछे आंख मीच कर भागने वाले मानव को एक दिन गहरी टक्कर लगेगी और उस दिन उसके घावों पर भारतीय सभ्यता ही मरहम लगा सकेगी ।

७ मानव को एक दिन अपनी भूल का अनुभव होगा और वह भारतीय सभ्यता को अपनायेगा क्योंकि मानव के मन की शाँति का रहस्य भारतीय सभ्यता के ही पास है ।

भारत में सह-शिक्षा

बालक और बालिकाओं के एक साथ एक पाठशाला में बैठकर एक ही अध्यापक अथवा अध्यापिका द्वारा शिक्षा ग्रहण करने को सह

शिक्षा कहते हैं। अङ्गरेज़ी मे इसे को-एजूकेशन(Co Education)कहते हैं अर्थात सम्मिलित अथवा साथ-साथ शिक्षा । भारत में सह-शिक्षा का ना तो प्राचीन चलन ही था और न भारतीय सभ्यता मे कहीं पर इस प्रकार का विधान ही मिलता है। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि कुमारों और कन्याओं के विद्यालय पृथक-पृथक होने चाहियें और उनके बीच मे काफी फासला भी होना आवश्यक है। स्वामी दयानन्द जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश, में लिखा है कि ब्रह्मचर्य-काल मे लडके और लडकियों को आपस में बातचीत भी नहीं करनी चाहिये । इनका आपस मे मेल घी और अग्नि के समान है। अग्नि के पास पहुच कर कोई कारण नहीं है कि घी न पिघले। स्त्री का आकर्षण इतना अधिक होता है कि मानव मन उसके सम्मुख मोम की तरह पिघलने लगता है और अपने कर्तव्य से गिर जाता है। ब्रह्मचर्य-काल में यदि विद्यार्थी अपने कर्तव्य से गिर जाता है तो वह जीवन भर मूढ़ ही बना रहता है और इसके जीवन की प्रगति समाप्त हो जाती है। महात्मा सूरदास को नारी के सम्मुख पिघल कर अपनी आँखें फोड़नी पड़ी थी। मनु महाराज ने भी मनु-स्मृति मे लिखा है कि ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य-काल मे स्त्री के दर्शन नहीं करने चाहियें। शंकराचार्य ने भी इसका खंडन ही किया है। महात्मा कबीर ने तो नारी को 'विकार' और 'आग' कहकर पुकारा है। इन्होंने तो नारी की परछाई तक को घातक माना है। "नारी की छाँई परत अन्धा होत भुजँग । कबीर कहो नित हाल क्या जा नित नारी संग ।"

भारत में सह-शिक्षा का प्रादुर्भाव पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क से हुआ है। भारत में अङ्गरेज़ी शासन और शिक्षा प्रणाली पर अङ्गरेजी प्रभाव होने से सह-शिक्षा का भी यहा पर आना अनिवार्य हो गया। इसका प्रचार वर्तमान शिक्षा प्रणाली के अनुकूल है और बराबर बढ़ता,

ही आ रहा है। आज भारत के स्वाधीन होने पर भी सह-शिक्षा का प्रचार कुछ ५ हो रहा हो ऐसी बात नहीं है। सह-शिक्षा का कार्य-क्षेत्र बराबर विस्तार के साथ दृढता पूर्वक प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

अब विचार करने योग्य प्रश्न यह है कि अब यह भारत के लिये हितकर होगा या अहितकर। प्राचीन धार्मिक और सभ्यता के रूढ़िवाद में फँसकर इसके विरुद्ध आंदोलन किया जाये या इसको ज्यों का त्यों पचाकर अपनी भी सभ्यता का एक अङ्ग बना लिया जाये। अब यदि आँदोलन करने वाली बात पर हम बल देते हैं तो हमे यह विचार करना होगा कि क्या हमारे इस बल देने से वह आँदोलन आज के प्रगति वादी युग मे सफल हो सकेगा ? क्या हमारी बात मान कर बालक और बालिकायें तथा उनके संरक्षक हमारे आंदोलन का साथ देंगे ? और यदि नहीं तो फिर इस आँदोलन के करने से भी क्या लाभ होगा ? आँदोलन होगा बालक बालिकाओं अथवा उनके संरक्षकों के हित मे और वही हमारे आंदोलन के प्रति आकर्षित न हों, तो फिर आँदोलन करने से क्या लाभ ? इससे सिद्ध हुआ कि वर्तमान प्रगति के युग मे जब कि संसार के नर और नारी कंधे से कंधा मिलाकर अपने जीवन पर इतनी तेजी से अग्रसर हो चुके हैं उस समय कोई भी इस प्रकार का आँदोलन सफलता को प्राप्त नहीं होगा जो उनके पल्ले पकड़कर उन्हें एक दूसरे से पृथक रखने का प्रयत्न करें।

जहाँ तक सह-शिक्षा के विपरीत विचारावलि का सबन्ध है वहाँ तक भारतीय विद्वानों ने इसका खंडन नहीं किया है। कुछ पाश्चात्य सभ्यता के विद्वानों ने भी इसे गलत मानकर इसकी निंदा की है। इन्होंने तो स्त्री को 'बीमारी' कह कर पुकारा है और कहा है कि इसका प्रभाव न केवल विद्यालय के अन्य छात्रों पर ही पड़ेगा वरन् वहाँ के अध्यापक भी इससे मुक्त नहीं रह सकते और इस प्रकार विद्यालयों की प्रगति मे बाधा उपस्थित होगी।

जो कुछ भी सही, यह तो हुई आदर्शवाद की बातें । सभी चीजो के दो पक्ष होने अनिवार्य हैं । ससार मे कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसके गुण ही गुण हों और अवगुण हो ही नहीं, अथवा अवगुण ही अवगुण हों और गुण हों ही नहीं । इसलिये हम अब सहशिक्षा के गुण और दोषों पर विचार करेंगे । सहशिक्षा के समर्थक भी हैं और विपक्षी भी और दोनो ही अपने-अपने मतों को बलवान समझकर तर्क द्वारा उन्हें सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु वास्तव मे सत्य वह है जिसमें प्रगति हो और प्रगति उसमे होगी जिसमे कुछ आकर्षण हो । जीवन को नीरसता और शुष्कता की ओर ले जाने वाला आदर्श कड़वी कोनैन की भांति है । बाल्यकाल मे, जब कि मनुष्य का मन और उसकी ज्ञानेन्द्रियां परिपक्व अवस्था मे नहीं होतीं तो उन पर बुरी बातों का प्रभाव अच्छी बातो की अपेक्षा अधिक सुगमता से हो जाता है । सह-शिक्षा आकर्षण की वस्तु है और इसी लिये इस का प्रचार दिन प्रति-दिन बढता जा रहा है । इसका भविष्य अच्छा है अथवा बुरा यह विचारणीय प्रश्न है । क्या यह आकर्षण मिथ्या है, असत्य है और अस्वाभाविक है ? यदि नहीं तो फिर क्यो इसे प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिये ? क्यों प्राचीन रूढिवादो मे फसे रह कर हम उन्ही पुरानी प्रथाओं को अपनाये चले जायें जहाँ गुड्डों और गुड़ियो के विवाह नाई और ब्राह्मणों के सकेत पर हो जाते थे । क्यो न हम अपने बच्चो के भविष्यो को उनके हाथों में सौंप कर चतुर निरीक्षकों की भांति उनपर दृष्टि रखें और उन्हे स्वतन्त्रता दें सन्सार-सागर मे अपनी नौका खेने की ? ऐसा करने से हमारे बच्चे दुर्बल न बन कर उन्नत और बलवान बनेंगे, आत्म-विश्वासी बनेंगे और उनमें अपना पथ स्वय निर्धारित करने की सामर्थ्य आ जायेगी । बच्चो को अपनी इच्छा के बन्धन में बांध कर चलाना बच्चों के जीवन की प्रगति में बाधक है । वर्तमान प्रगति के युग मे उन्हे मुक्त करना होगा, स्वतन्त्रता देनी होगी और

इसी स्वतन्त्रता के मार्ग मे सहशिक्षा भी आ जाती है।

अप्राप्य वस्तु के प्रति आकर्षण और प्राप्य वस्तु के प्रति विरक्ति होना प्रकृति का नियम है। सहशिक्षा मे जो सबसे बड़ा दोष व्यभिचार फैलने का बतलाया जाता है वह तर्क की कसौटी पर आकर निर्मूल सा ही सिद्ध होता है। नित्य साथ रहने वाली वस्तु के प्रति झूठा आकर्षण तो स्वाभाविक रूप से ही समाप्त हो जाता है। व्यभिचार को भी प्रोत्साहन साथ साथ रहकर चलने से न होकर दूर दूर रह कर चलने से होता है। सहशिक्षा से साहचर्य की भावना का उदय होता है और इससे कभी कभी प्रेमांकुर भी उत्पन्न हो सकते हैं परन्तु उन्हे हम व्यभिचार नहीं कह सकते है। यह मानव तो जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तिया हैं जो जीवन मे किसी भी समय अँकुरित हो सकती हैं। यहा हमे यह मानना ही होगा कि साहचर्य से उत्पन्न हुआ प्रेमांकुर विवाह बन्धन मे अनबूझ पहेली की भाति बँधकर आये हुए गुप्त दान के प्रेमांकुर से कहीं अधिक सत्य है, बलवान है, और पुष्टि को प्राप्त होने की अपने म क्षमता रखता है। साहचर्य मे जिस प्रेम-भावना का उदय होता ह उसे ना तो हम जीवन को त्रुटि ही मान सकते हैं और ना व्यभिचार ही। यदि सहशिक्षा मे विकार उत्पन्न हो सकते हैं तो साथ साथ रहने वाल भाई-बहनों मे क्यों विकार उत्पन्न नहीं होंगे। विकार मे एक ओर का आकर्षण न रहकर दोनों ओर का होता है और दोनो ओर का होने पर भी यदि कोई भूल होती है तो उसके दोनों भागी होते हैं, उनक संरक्षक नहीं। हा ऐसी कठिन परिस्थितियों मे दोनों के चरित्रों और स्वभावों का सन्तुलन करना और उन्हें समझाने का भार संरक्षकों के ही सिर पर रहता है।

कुछ सहशिक्षा के पक्षपातियों का मत है कि सहशिक्षा से पारस्परिक स्पर्धा का जन्म होता है और इसके परिणामस्वरूप दोनों पक्ष उन्नति करते हैं। लड़कियाँ ललित कलाओं में प्रवीण होती हैं

और लड़के गणित इत्यादि विषयों में। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के सहायक सिद्ध हो सकते हैं। दोनों म एक दूसरे के देखा-देखी साफ और स्वच्छ रहने की भावनाओं का उदय होता है। एक दूसरे के स्वाभावों को समझने की क्षमता आती है। यह सभी बातें सह-शिक्षा से प्राप्त होती हैं। जो साधारणतया देखने मे यह बहुत सरल सी प्रतीत होती है परन्तु इसका बच्चों के चरित्रों पर जीवन-व्यापी प्रभाव पड़ता है। प्राचीन रीतियों मे फसे हुए व्यक्ति धर्म के नाम पर, समाज के नाम पर सस्कृति के नाम और अन्त मे व्यभिचार का भय दिखला कर सहशिक्षा का विरोध करते हैं। व्यभिचार स्त्रियों को बुर्कों मे बन्द करके चारदीवारी का ताला लगाने पर, भी यदि नहीं रुक सकता तो फिर उससे क्या लाभ ? मानव की प्रगतियों को रोकने का साधन बन्धन नही बन सकता। प्रतिबन्धों से व्यभिचार को प्रोत्साहन मिलता है, अविद्या की उन्नति होती है और मानव मूर्खता की ओर अग्रसर होता है। सहशिक्षा द्वारा पली हुई बालिका अपने जीवन के विषय मे स्वय विचार करने मे समर्थ होती है। वह अपना पथ स्वय निर्धारित कर सकती है। बालक और बालिकायें अपने मे स्वय प्रवाह रखने वाली सरितायें हैं। इनका मार्ग प्रदर्शन किया जा सकता है, इन्हें रोका नही जा सकता। रोकने की भावना मे ही व्यभिचार है। झूठा ब्रह्मचर्य का ढोंग बाधना मूर्खता है, अवनति है। आज के प्रगतिवादी युग मे स्त्री को मुक्त करके उसे अपना मार्ग स्वय निर्धारित करने के लिये छोड़ देना चाहिये। यदि इस समय ऐसा न किया गया तो वह स्वय मुक्त हो जायेगी और वह दशा देश जाति और समाज के लिये और भी भयकर होगी। इसलिये यदि आज समाज को धर्म को और देश को अपनापन बनाये रखना है तो वह हर प्रकार के प्रतिबन्धों को कम करे और मानव को उसके पथ पर मुक्त कर दे। बच्चे अपने बाल्य काल में अपने ऊपर हुए सरक्षकों द्वारा दुर्व्यवहारों को स्मरण रखते हैं

और अपने युवाकाल तथा सरक्षको के वृद्धकाल मे उन से बदला लेते है। यह बात कठोर सत्य है जो आज भारत के घर २ में देखने को मिलेगी। भारत की निन्यानवें प्रतिशत सास और बहुओं की लड़ाई का यही कारण है और जिसके कारण उनके घर नर्क बन जाते है। इसे रोकने का एकमात्र साधन सहशिक्षा, साहचर्य और कठोर प्रतिबन्धों को उन्मुक्त करना है। राष्ट्र, समाज और व्यक्ति के सदाचार को इस से ठेस लगेगी यह असत्य है, ढकोसले बाजी है। सहशिक्षा से आत्म-हत्यायें होती है, चरित्र दुर्बल हो जाते हैं, विद्या अध्ययन मे बाधा पड़ती है इत्यादि भावनायें गलत है, भ्रामक हैं और मानव की प्रगति मे रुकावट हैं। जाति के सपूतो की शिक्षा, स्वास्थ्य, चरित्र, ब्रह्मचर्य इत्यादि की दुहाई देकर व्यर्थ का आदर्शवाद छाटने वाला समय आज नहीं रहा। सहशिक्षा समय की माग है जो रुक नही सकती और उसे रोकने का अर्थ सन्सार को पीछे घसीटने के समान होगा, जो हो नहीं सकता, हो नहीं सकेगा।

विषय पर सक्षिप्त विचार—

१ सहशिक्षा किसे कहते हैं ?

२ सहशिक्षा पश्चिम को देन है।

३ सहशिक्षा पर भारत के प्राचीन विचारक।

४ सहशिक्षा के लाभ और हानियाँ।

५. उपसंहार।

ब्रिटेन, अमरीका तथा रूस की शासन प्रणाली

आज ससार की राजनीति मे ब्रिटेन, अमरीका और रूस का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। रूस और अमरीका राजनीति सचालन के दो प्रधान केन्द्र हैं। ब्रिटेन अमरीका के साथ है। इस निबन्ध मे हम इन तीनों देशों की शासन प्रणालियों पर विचार करेंगे।

ब्रिटेन— ब्रिटेन में वंश-परम्परा के आधीन राजा गद्दी पर बैठता अवश्य चला आ रहा है परन्तु उसके अधिकार बहुत सीमित होते हैं। ब्रिटेन का राजा प्रोटेस्टेन्ट ही हो सकता है, रोमन कथोलिक नहीं। राजा जो कुछ भी करता है वह पारलियामेंट की अनुमति से करता है और वह पार्लियामेंट की इच्छा को अस्वीकार भी नहीं कर सकता। मंत्रियों के परामर्श द्वारा राजा पार्लियामेंट को भंग कर सकता है और किसी भी प्रस्ताव को पार्लियामेंट के पास पुनर्विचार के लिये भेज सकता है। राजा के पास अपने कार्य संचालन के लिये हाउस आफ कामन्स—जनतागृह और हाउस आफ लार्ड्स—राजकीय-गृह होते हैं। जनता-गृह का नेता प्रधानमंत्री कहलाता है। प्रधान मंत्री अन्य मंत्रियों का चुनाव करता है और राजा फिर उन्हें स्वीकार कर लेता है। राजा को निजी व्यय के लिये एक लाख दस हजार पौंड वार्षिक मिलता है।

ब्रिटेन के जनता-गृह मे ६२५ सदस्य होते हैं और यह सभी मत-दाताओं के चुने हुए होते हैं। ब्रिटेन में हर २१ वर्षीय व्यक्ति को, जिसका मस्तिष्क ठीक है, मत देने का अधिकार होता है। वार्षिक बजट इसी गृह में स्वीकृत होता है। जनता-गृह के अधिकार हर क्षेत्र में बहुत व्यापक हैं और राजकीय-गृह के सीमित। राजकीय-गृह मे यदि कोई प्रस्ताव स्वीकृत ना भी हो तो वह दुबारा जनता-गृह मे स्वीकृत होने पर स्वीकृत समझा जायेगा। जनता-गृह के सदस्यों को ६०० पौं० वार्षिक वेतन मिलता है। प्रत्येक पाँचवें वर्ष इस गृह का चुनाव होता है। राजकीय-गृह मे ७४० सदस्य होते हैं। इन सदस्यों का चुनाव नहीं होता बल्कि वंश परम्परा से अधिकार प्राप्त होते हैं और कुछ सदस्य राजा द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। यह गृह भी आजकल राजा की ही भाँति सम्मान का ही सूचक रह गया है क्योंकि इसके अधिकार ना के ही बराबर हैं।

देश का शासन प्रबन्ध मन्त्रिमंडल द्वारा होता है और मन्त्रिमंडल

का चुनाव प्रधान मन्त्री करता है। प्रधान मन्त्री जनता-गृह की बहुमत वाली पार्टी का नेता होता है। राजा मन्त्रिमंडल की स्वीकृति देता है। इस मन्त्रि मडल मे तीन मन्त्री राजकीय-गृह से और शेष जनता गृह से लिये जाते है। पार्लियामेंट मे बहुमत न रहने पर मन्त्रि-मण्डल को त्यागपत्र देना होता है। प्रधान मन्त्री को वार्षिक वेतन १०,००० पौंड मिलता है। इङ्गलैंड का वर्तमान प्रधान मन्त्री मि० एटली है। यह शासन प्रणाली जनतन्त्रात्मक कहलाती है क्योंकि इसमे जनता के प्रतिनिधियो द्वारा किये जाने वाले शासन मे राजा हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

अमरीका—पहिले अमरीका ब्रिटेन का एक उपनिवेश था परन्तु आज वह ४६ स्वतन्त्र राज्यों का एक सघ है। यह राज्य अपने आन्तरिक कार्यों में स्वतन्त्र है। सयुक्त राष्ट्र अमरीका का एक प्रधान होता है और शासन का अधिकतर कार्य-भार प्रधान पर ही रहता है। यह चार वर्ष के लिये चुना जाता है और चार वर्ष पश्चात् फिर नया चुनाव होता है। यह प्रधान कम से कम १४ वर्ष से सयुक्त राष्ट्र का निवासी होना चाहिये और उसकी आयु भी ३५ वर्ष स कम नहीं होना चाहिये। प्रधान की मृत्यु अथवा उसके त्याग पत्र देने पर उप-प्रधान कार्य को सम्भालता है। ४६ राज्यों के प्रतिनिधि मिल कर प्रधान और उपप्रधान का चुनाव करते हैं। प्रधान का वार्षिक वेतन उसके जेब खर्च सहित एक लाख डालर मिलता है। उपप्रधान को १५ हजार डालर मिलता है और यह सीनेट का प्रधान होता है। प्रधान कांग्रेस के प्रस्ताव को पुनर्विचार के लिये भेज सकता है। प्रधान केवल सीनेट की सम्मति से विदेशों से सन्धि कर सकता है। राष्ट्र की सेना का अध्यक्ष भी प्रधान ही होता है। अमरीका के मन्त्रिमण्डल मे १७ मन्त्री होते हैं जिनकी नियुक्ति सीनेट की स्वीकृति से प्रधान ही करता है। इस मन्त्रिमण्डल के प्रत्येक मन्त्री का वार्षिक वेतन १५ हजार डालर

होता है। मि० ट्रुमैन सयुक्त राष्ट्र के वर्तमान प्रधान है।

सयुक्त राष्ट्र अमरीका में एक प्रतिनिधि-गृह होता है और दूसरा सीनेट। प्रतिनिधि-गृह के सदस्य दो वर्ष के लिये चुने जाते है। प्रतिनिधि कोर्ट यदि किसी पर अभियोग लगाता है तो वह अभियोग सीनेट मे सुना जाता है। इस शासन प्रणाली मे शासक वर्ग, सुप्रीमकोर्ट और कांग्रेस के अधिकार पृथक पृथक है। सीनेट मे प्रत्येक राज्य के दो प्रतिनिधि रहते है जो कि वहा की जनता चुनकर भेजती है। इनकी अवधि ६ वर्ष की होती है। सीनेट का सदस्य बनने वाले व्यक्ति के लिये यह आवश्यक है कि वह उस राज्य का नौ वर्ष से नागरिक रहा हो और उसकी आयु तीस वर्ष हो। सीनेट के हर सदस्य को १० हजार डालर प्रतिवर्ष वेतन मिलता है। इस प्रकार अमरीका का शासन प्रबन्ध चलता है।

सोवियत रूस—सोवियत रूस ११ स्वतन्त्र राज्यो मे विभाजित है। ११ स्वतन्त्र राज्यो का यह सङ्घ यूनियन आफ सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक (U. S S R) कहलाता है। इस सङ्घ के प्रत्येक राज्य को स्वतन्त्रता है कि वह जब चाहे सङ्घ से पृथक होकर अपनी स्वतन्त्रता स्थापित कर सकता है। रूस की वर्तमान शासन प्रणाली निम्नलिखित रूप मे चलती है —

१ सुप्रीम कौंसिल या प्रैजीडियम।

२ व्यवस्थापिका सभा।

(क) कौंसिल आफ यूनियन।

(ख) कौंसिल आफ नेश्नेलेटीज—प्रतिनिधि-गृह।

रूस के प्रतिनिधि-गृह मे सब राज्यो के चुने हुए सुप्रीम कौंसिलो के प्रतिनिधि आते हैं। कौंसिल आफ यूनियन के और कौंसिल आफ नेश्नेलेटीज—दोनो गृह मिलकर एक बडी कौंसिल का चुनाव करते

हैं। प्रेजीडियम के अधिकारों की कोई सीमा नही है। शासन मन्त्रि-मण्डल सम्भालता है परन्तु उसकी नियुक्ति इसी प्रेजीडियम द्वारा होती है। सुप्रीमकोर्ट की नियुक्ति भी इसी के द्वारा होती है। मन्त्रि मडल के निश्चयो पर विचार करना और युद्ध आदि विशेष महत्त्व-पूर्ण मामलो पर अन्तिम निर्णय प्रेजीडियम द्वारा ही होता है। यह मन्त्रि-मण्डल के प्रस्तावों को भी रद्द कर सकती है। इस सभा में प्रधान, उपप्रधान मन्त्री और इनके अतिरिक्त ३१ और सदस्य रहते हैं।

रूस में काम्यूनिस्ट शासन है। साम्यवादी सिद्धांत से अनु-प्राणित शासन व्यवस्था द्वारा आज रूस का राज्य कार्य-सचालन हो रहा है। रूस में साम्यवादी दल का सगठन उसी प्रकार है जिस प्रकार भारत मे कॉंग्रेस का। साम्यवादी पार्टी का सगठन रूस मे उसकी शाखाओं और उपशाखाओं द्वारा जाल की तरह देश भर में विछा हुआ है। सङ्घ की केन्द्रीय कायकारिणी में कुल पाच सदस्य हैं और यही पाचो राज्य की केन्द्रीय कार्यकारिणी को चलाते हैं। इसका प्रमुख नेता प्रधान मन्त्री कहलाता है और राष्ट्र की समस्त शक्ति उसी के हाथों मे रहती है। सरकारी मंत्रियों की नीति का निर्देशन यह साम्यवादी कार्यकारिणी करती है। इस प्रकार साम्यवादी दल का प्रधान मन्त्री ही रूस में अन्ततोगत्वा सबसे बड़ी शक्ति का केन्द्र हुआ। मि० स्टालिन आजकल वहा की साम्यवादी पार्टी के प्रधान मन्त्री हैं।

रूस आज ६० विभिन्न राष्ट्रों और जातीय समूहों का साम्यवादी सङ्घ है। मत देने के क्षेत्र मे पूंजीपति का श्रमिक पर किसी प्रकार का दबाव नहीं। जाति और रग का भेद-भाव रूस में नहीं मिलता। अमरीका मे बहुत से अंग्रेजी न जानने वाले नीग्रो मताधिकार से वंचित हैं परन्तु रूस मे इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं है। प्रत्येक १८ वर्ष के नर नारी को मताधिकार है और प्रत्येक २३ वर्ष का नर-

नारी सर्वोच्च सोवियत का प्रतिनिधि चुना जा सकता है। रूस के प्रत्येक प्रतिनिधि को लेनिन के आदर्शो पर चलने की प्रतिज्ञा लेनी होती है। साम्यवादी शासन प्रणाली के अन्तर्गत रूस ने गत वर्षों मे आशातीत उन्नति की है। इस समय ३ करोड ८० लाख छात्र १०० से अधिक भाषाओं मे निःशुल्क शिक्षा अध्ययन कर रहे है। इस प्रकार रूस की शासन व्यवस्था का ढाचा सुचारु रूप से चल रहा है। इस शासन व्यवस्था मे रूस उन्नति कर रहा है और यह शासन व्यवस्था अब चीन मे भी पहुंच गई है।

विषय पर संक्षिप्त विचार—

१. ब्रिटेन, ब्रिटेन का राजा, जनता-गृह और राजकीय-गृह।
२. अमरीका, प्रेजीडेन्ट, व्यवस्थापिका सभा (काँग्रेस) और सीनेट।
३. रूस, सुप्रीम कौंसिल या प्रैजीडियम, व्यवस्थापिका सभा और साम्यवादी दल का प्रधानमंत्री।

स्वास्थ्य और व्यायाम

मानव जीवन के दो प्रधान पक्ष हैं एक शरीर-पक्ष और दूसरा आत्म पक्ष। दोनों की ही स्वस्थता पर मानव जीवन की उन्नति अथवा अवनति आधारित है। स्वास्थ्य शब्द को आज कल केवल शारीरिक सुगठन और नीरोगिता का ही पर्यायवाची मान लिया गया है। परन्तु वास्तव मे मानव के स्वास्थ्य का सम्बन्ध उसके दोनों ही पक्षो से समान रूप से है। यह दोनो ही पक्ष मानव जीवन मे साथ साथ चलते है और एक का दूसरे पर बहुत व्यापक प्रभाव होता है। शरीर की अस्वस्थता से मस्तिष्क अस्वस्थ हो जाता है और मस्तिष्क की अस्वस्थता से शरीर अस्वस्थ हो जाता है। इसलिये जब स्वास्थ्य पर विचार करना है तो दोनों ही पक्षो पर विचार करना आवश्यक है। अंग्रेजी की एक प्रधान कहावत है कि Health is Wealth अर्थात्

स्वास्थ्य ही धन है। उर्दू की भी एक कहावत प्रसिद्ध है कि 'तन्दरुस्ती हजार नियामत है।' इन दोनों ही कहावतों का तात्पर्य यह है कि जीवन सचालन के लिये स्वास्थ्य का अच्छा होना प्रधान रूप से आवश्यक है। मानव को स्वास्थ्य रक्षा के लिये किन बातों का विशेष ध्यान करना चाहिये अब हम उन आवश्यकताओं पर विचार करेंगे। सर्व प्रथम हम शारीरिक स्वस्थता को लेते हैं। शारीरिक स्वस्थता के लिये आवश्यक है कि —

१ शरीर को पुष्ट करने वाला स्वच्छ भोजन होना चाहिये।
२ रहने के लिये स्वच्छ वायुमडल मे घर होना चाहिये जहा प्रकाश, धूप और हवा की कमी न हो।
३ शरीर की स्वच्छता के लिये स्वच्छ पानी, साफ कपडे और विशुद्ध वातावरण होना चाहिये।
४ शरीर पर उसकी शक्ति के अनुसार ही कार्यभार होना चाहिये।
५ शरीर को पुष्ट और स्वस्थ रखने के लिये व्यायाम नितांत आवश्यक है।

स्वास्थ्य सुधार मे सर्व प्रथम भोजन का स्थान है। भोजन कैसा होना चाहिये यह प्रश्न विचारणीय है। आज सन्सार मे भोजन के दो वर्ग हैं एक मास-प्रधान और दूसरा अमास-प्रधान। दोनों ही प्रकार के भोजनो मे शरीर स्वस्थ रह सकता है परन्तु दोनों ही प्रकार के भोजन करने वाले व्यक्तियों की प्रकृति मे आकाश पाताल का अन्तर हो जायेगा। मांस खाने वाला व्यक्ति तामसिक वृत्ति धारण करेगा और फल-अन्न खाने वाला सात्विक। आज विज्ञान ने भोजन की शक्तियों को भी ज्ञात कर लिया है। डाक्टरों ने यह भी निर्णय कर लिया है कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिये भोजन में क्या २ वस्तु कितनी २ मात्रा म होनी चाहिये ? भोजन के परिवर्तन से छोटे मोटे रोग भी स्वत ही दूर हो जाते हैं, उनके लिये डाक्टरों पर जाने की

आवश्यकता नहीं है। भोजन की सामग्री स्वच्छ होनी चाहिये, गली सड़ी नहीं, क्योंकि जैसा भोजन किया जायेगा उस से उसी प्रकार का रक्त बनेगा और उस रक्त से उसी प्रकार शरीर पुष्ट होगा। इस प्रकार स्वास्थ्य रक्षा के लिये स्वच्छ और बलिष्ट भोजन का होना नितान्त आवश्यक है।

स्वच्छ भोजन के साथ ही साथ मानव के रहन-सहन का प्रश्न सामने आता है। मानव के रहने के लिये ऐसा मकान होना आवश्यक है जहाँ पर विशुद्ध वायु आ सके। शहर की गन्दी गलियों में, गन्दी हवा में श्वास लेकर स्वस्थ व्यक्ति भी पानी में पड़े हुए पीले मेंढकों की तरह हो जाते हैं। जिस प्रकार पाल में दब कर हरे आम पीले पड़ जाते हैं इसी प्रकार शहर की अंधेरी गलियों में रहने वाले व्यक्तियों के शरीर सूर्य का कम प्रकाश पाकर पीले हो जाते हैं। शरीर की स्वस्थता का विशुद्ध वायु और सूर्य के प्रकाश से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। सूर्य की किरणों में वह शक्ति होती है कि वह मानव शरीर के साधारण रोगों को तो बिना औषधि के ही नष्ट कर देती हैं। विशुद्ध वायु में श्वास लेने से रक्त साफ होता है और रक्त साफ होने से फेफड़े तथा दिल अच्छी तरह काम कर सकते हैं। शुद्ध रक्त होने से शरीर बलवान होता है और स्वास्थ्य ठीक रहता है। मानव शरीर पर धूप लगने से शरीर की त्वचा के छिद्र खुल जाते हैं और इस प्रकार त्वचा पर बाहर से भी वायु तथा प्रकाश का अच्छा प्रभाव पड़ता है। इन छिद्रों द्वारा सूर्य की गर्मी पाकर शरीर का मैल बाहर निकलता है और शरीर स्वस्थ होता है। इस प्रकार विशुद्ध वायु मंडल में, सूर्य के प्रकाश में रहना मानव स्वास्थ्य के लिये किसी भी प्रकार अच्छे भोजन से कम नहीं है। रूखा-सूखा भोजन खाकर मनुष्य स्वस्थ और बलवान रह सकता है परन्तु गले सड़े वातावरण और अंधकार में रह कर वह अपने स्वास्थ्य को ठीक नहीं रख सकता। बिना भोजन मानव महीनों

जीवित रह सकता है परन्तु वायु के बिना तो एक क्षण भी जीवित रहना कठिन है।

स्वास्थ्य रक्षा के लिये तीसरी आवश्यकता है शुद्ध वस्त्र तथा शुद्ध पानी की। शुद्ध पानी शरीर को स्वस्थ्य रखने के लिये उतना ही आवश्यक है जितना स्वच्छ भोजन। पानी की मानव को भोजन से अधिक आवश्यकता है। स्वच्छ पानी से स्वास्थ सुधरता है। किसी किसी स्थान का तो पानी ही इतना विशेष होता है कि दूर दूर से यात्री वहां का पानी पीने और स्वस्थ्य होने के लिये आते हैं। गगा जल कभी नहीं सड़ता यह उसकी विशेषता है और उसे पीने मात्र से अनेकों रोग चले जाते हैं। इस प्रकार विशुद्ध पानी जीवन की रक्षा तथा स्वास्थ्य की रक्षा दोनो के लिये नितात आवश्यक है। पानी के अतिरिक्त वस्त्र भी मानव की प्रधान आवश्यकताओ मे से एक है। मानव जीवन की जितनी भी प्रधान प्रधान आवश्यकतायें हैं वह सभी उसके स्वास्थ्य की रक्षा के लिये आवश्यक हैं और इसी लिये उनका उसके जीवन मे प्रधान स्थान है। वस्त्र शरीर को हवा, गर्मी और सर्दी से बचाते हैं। प्रकृति की तीव्र शक्तियों से यह उसकी रक्षा करते हैं। गर्मियों मे मनुष्य नगा भी रह सकता है परन्तु शीतकाल मे तो वस्त्र उसके शरीर और उसके स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हो जाते हैं। इस प्रकार पानी और वस्त्र स्वास्थ्य-रक्षा के प्रधान तत्त्व हैं जिनकी आवश्यकता मानव को होती है। स्वच्छ वस्त्र पहिन कर मानव का मन प्रसन्न होता है और वह बाहर से पड़ने वाले मैल से बचता है और इस सब का प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर अच्छा पड़ता है।

यहा तक हमने मानव की आवश्यकताओं और उनके शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव पर विचार किया। अब मानव जीवन से सम्बन्ध रखने वाली एक प्रधान वस्तु है, और वह है मानव को अपने जीवन के सचालन के लिये श्रम करने की आवश्यकता। यह श्रम

थोड़ा बहुत हर व्यक्ति को करना होता है। यह श्रम शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही प्रकार का होता है और दोनों का ही मानव के स्वास्थ्य पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य-रक्षा के लिये यह आवश्यक है कि मानव जो कुछ भी श्रम करे वह उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियां के अनुकूल हो। उस श्रम को करने मे उस पर इतना दबाव न पड़े कि जिसका प्रभाव उसके शरीर पर या मस्तिष्क पर इतना पड़े कि उसका स्वास्थ्य मस्तिष्क की दिशा से अथवा शरीर की दिशा से बिगड़ने लगे। मस्तिष्क और शरीर की शक्तियो का सतुलन करके कार्य भार मानव को अपने ऊपर लेना चाहिये। यदि ऐसा न किया गया तो निश्चय ही मानव के स्वास्थ्य पर उसका गहरा प्रभाव पड़ेगा और वह अस्वस्थ्य होता चला जायेगा।

स्वस्थ रहने के लिये हम ऊपर शुद्ध भोजन, शुद्ध पानी, शुद्ध वायु मंडल, शुद्ध वस्त्र, शुद्ध गृह और शक्ति के अनुसार श्रम की आवश्यकताओ पर विचार कर चुके है। इनके अतिरिक्त भी कुछ आवश्यकतायें और हैं जिनके न रहने पर ऊपर की सब सुविधायें होते हुए भी स्वास्थ्य बिगड़ जाने की सम्भावना रहती है। वह आवश्यकतायें निम्नलिखित है —

१ व्यायाम।
२ आचार विचार तथा इन्द्रियो पर नियन्त्रण।
३ जीवन का कार्यक्रम ठीक रखना।

स्वास्थ्य रक्षा के लिये व्यायाम करना मानव के लिये नितांत आवश्यक है। व्यायाम करनेका अर्थ डड-बैठक कसरत करके पहलवान बनना ही नही होता। व्यायाम मनुष्य को अपने शरीर की अवस्था और स्वास्थ्य के अनुकूल करना चाहिये। शरीर के सब रग पट्ठों को खोलने के लिये इतना व्यायाम करना आवश्यक होता है कि जिस से वह खुल जायें और शरीर में स्फूर्ति आजाये। व्यायाम द्वारा ही शरीर

की सब इन्द्रियाँ अपनी शक्ति को बढाती और स्थाई रखती हैं। टहलना सब व्यायामों से अधिक लाभदायक होता है। वयस्क व्यक्ति के लिये तो टहलना बहुत ही आवश्यक है। कुछ हलका हलका दौडने से भी शरीर स्वस्थ्य रहता है और बदन का पसीना निकल जाता है पसीना आने पर वस्त्र बदलने चाहिये क्योकि भीगे हुए कपडे स्वास्थ्य के लिये हानिप्रद है। व्यायाम मानव शरीर को बलिष्ट तो बनाता ही है हृष्टपुष्टता के साथ ही मानव मे यह कठोरतम परिस्थितियो को सहन करने की शक्ति भी प्रदान करता है।

स्वास्थ्य-रक्षा के लिये आचार-विचार पर नियन्त्रण रखना नितांत आवश्यक है। जो मनुष्य अपने आचार-विचार ठीक नहीं रखता उसका स्वास्थ्य स्वय खराब होने लगता है। जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण नही रख सकता वह व्यक्ति कभी भी अपने स्वास्थ्य को ठीक नही रख सकता। कर्मेन्द्रियो पर नियन्त्रण रखने से ही मनुष्य का स्वास्थ्य ठीक रहता है। यदि जीभ के वशमे होकर मनुष्य खाये रबडी और उसकी पाचन शक्ति मूग की दाल को भी न पचा सकती हो तो निश्चय ही उसका स्वास्थ्य खराब हो जायेगा। मानव को स्वास्थ्य ठीक रखनेके लिये सभोग-इन्द्रियो पर नियन्त्रण रखना नितांत आवश्यक है क्यों कि यह मानव शरीर का वह स्खलन है कि जिसके द्वारा शरीर की शक्ति का बहुत वेग से ह्रास होता है। स्वास्थ्य-रक्षण के सभी साधन केवल इस एक कमी के सम्मुख व्यर्थ हो जाते हैं और इससे मानव शरीर तथा मस्तिष्क दोनों ही अस्वस्थ्य होने प्रारम्भ हो जाते है।

स्वास्थ्य-रक्षा के लिये अंतिम आवश्यकता है जीवन के कार्य-क्रम को व्यवस्थित रखने की। ठीक समय पर सोना, ठीक समय पर उठना, ठीक समय पर दातन करना, कुल्ला करना और नहाना, ठीक समय पर खाना, ठीक समय पर घूमना और व्यायाम करना और ठीक समय पर

पढना लिखना तथा विश्राम करना—यह भी स्वास्थ्य रक्षा के लिये आवश्यक है। अनियन्त्रित और अव्यवस्थित जीवन के कार्यक्रम से मानव का स्वास्थ्य गिरता चला जाता है और शरीर की मैशीन इस प्रकार बिगडनी प्रारम्भ हो जाती है कि फिर जीवन मे सभालने मे नही आती। स्वास्थ्य एक बार बिगड जाने पर फिर अच्छा होना कठिन हो जाता है इस लिये स्वास्थ्य की रक्षा पर मनुष्य को हर समय ध्यान देना चाहिये। स्वास्थ्य बिगड जाने पर ससार के सभी उपभोग मानव के लिये व्यर्थ हो जाते हैं। वह ससार के किसी भी आनद का उपयोग नही कर सकता। स्वास्थ्य खराब होने पर बहुत प्रिय वस्तु अप्रिय लगने लगती है, मानव की कार्य करने की शक्ति समाप्त हो जाती है, कार्य न करने के कारण उसकी आय के साधन समाप्त हो जाते हैं और वह उन कठिन परिस्थितियों मे पड जाता है कि जीवन भी उसके लिये भार-स्वरूप प्रतीत होने लगता है।

विषय पर सक्षिप्त विचार—

१ भूमिका।
२ स्वच्छ भोजन, स्वच्छ वायु, स्वच्छ वस्त्र, स्वच्छ पानी मानव स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हैं।
३ व्यायाम, आचार-विचार तथा इन्द्रियों पर नियन्त्रण तथा जीवन के कार्यक्रम पर नियन्त्रण रखना।
४ उपसहार।

आज का नागरिक

आज का नागरिक ही आज का शासक है यह रहस्य आज के नागरिक के विषय मे जानकारी पैदा करने से पूर्व जान लेना आवश्यक है। एकतन्त्र वाद या तानाशाहीकाल में नागरिक का कोई महत्त्व नहीं था। उस समय शासित व्यक्ति प्रजा कहलाते थे और आज वह कहलाते

हैं जनता। प्रजा और जनता मे बहुत अन्तर है। प्रजा शब्द मे दासत्व की भावना का आभास मिलता है जिसमें सुख की भावना का तो समावेश किया जा सकता है परन्तु अधिकार का नही। परन्तु जनता शब्द मे चाहे सुख न हो परन्तु अधिकार का होना आवश्यक है। आज के युग मे विश्व की प्रगति और सघर्ष सुख और शाँति की ओर उतना नहीं है जितना अधिकार और शक्ति की ओर। आज का नागरिक अपने मे सम्पूर्ण अधिकारो को निहित करके अपने को बलवान देखना चाहता है। वह गर्व से फूला नहीं समाता जब वह यह अनुभव करता है कि उसके देश का उच्चतम अधिकारी उसकी राय से बनता है।। वह अपनी राय के बलपर गर्व करता है और अपने को सशक्त समझता है।

जिन दिनों मे राजा को ईश्वर का अवतार माना जाता था और उसके शब्दो को वेदवाक्य, उन दिनों शासन की समस्त शक्तिया राजा मे ही निहित रहती थी। जनता भेड बकरियों की भाँति राजा द्वारा चालित की जाती थी और उसे राजा के व्यवहार पर मत प्रकट करने का अधिकार नहीं रहता था। यदि राजा अत्याचार करता था तो जनता को चत्रिक की गऊ के समान उसे सहन करना होता था, परन्तु धीरे धीरे जनता मे जागृति होनी प्रारम्भ हुई। इगलैंड मे राजा और प्रजा के बीच एक युग तक सघर्ष चलता रहा। राजा की सेना और प्रजा के बीच सघर्ष पर सघर्ष हुए। न जाने कितना रक्तपात हुआ? रूस में जार के विरुद्ध वहाँ की जनता ने एक क्राति की ज्वाला सुलगाई और जार के हाथों से शक्ति को हस्तगत करके रूस मे साम्यवाद का प्रचार किया। आज वहाँ पर कम्यूनिस्ट सरकार है। अमरीका में भी जनतन्त्रात्मक राज्य है और वहा भी राज्य का अधिकारी जनता का चुना हुआ होता है।

इस प्रकार आज हमने देखा कि नागरिक राष्ट्र की वह इकाई है कि जिस का महत्व भवन निर्माण मे आधार शिला से किसी भी प्रकार

कम नहीं होता। एक एक नागरिक मिलकर राष्ट्र बनता है और आज राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक और राष्ट्र का सब से बड़ा अधिकारी भी बन सकता है। आज का नागरिक बुद्धू न हो कर जागरूक है। वह राष्ट्र को समझता है, देश को समझता है, जाति को समझता है और अपने हितों को समझता है। प्रजातन्त्र सरकारें बराबर अपने नागरिक को समुन्नत विद्या युक्त और प्रगतिशील बनाने में कर्मठ है। शिक्षा के सुप्रबन्धों द्वारा नागरिक को योग्य बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। एक राष्ट्र का नागरिक जितना सुरक्षित होगा, जितना स्वस्थ्य होगा, जितना चतुर होगा, जितना देशभक्त और राष्ट्रभक्त होगा वह राष्ट्र भी उतना ही उन्नत और सुदृढ़ होगा।

आज का नागरिक अपने नगर के प्रबन्ध मे भाग लेता है, अपने प्रांत के प्रबन्ध मे भाग लेता है और अपने राष्ट्र के प्रबन्ध मे भाग लेता है। वह जितना भी योग्य होगा उसका निर्वाचित किया हुआ सदस्य भी उतना ही योग्य होगा। किसी भी सदस्य के निर्वाचन मे योग्यता ही केवल मापदण्ड होनी चाहिये। जो देश जागरूक हैं और एक लम्बी अवधि से अपने राष्ट्र को सभालते चले आ रहे है वहा पर यह बात मिलती है, परन्तु जो देश अभी पिछड़े हुए हैं वहां का नागरिक अभी तक इधर-उधर के प्रभावों से मुक्त नहीं हो पाया है। प्रारम्भ मे, इङ्गलैंड मे पाकेट बॉरोज, रौटन बारोज इत्यादि होते थे जिनके फलस्वरूप जनता को सदस्य चुनने मे कठिनाई होती थी और जनता का वास्तव में जो प्रतिनिधि होता था वह चुनने से रह जाता था। उस प्रणाली का वहाँ सुधार हुआ। अङ्गरेजी शासन काल में भारत के चुनावों में भी मतदाताओं पर भांति भांति के प्रभाव डाले जाते थे। रुपये पैसे वाले व्यक्ति रुपया देकर मत खरीद लेते थे, बडे बडे जमीदार अपने दबाव मे गरीब जनता से मत लेते थे और कहीं कहीं पर सरकारी अधिकारियों का दबाव भी काम

करता था। सरकार के पक्ष वाले सदस्यो के लिये सरकारी कर्मचारी अपना दबाव डालते थे और इस प्रकार जनता के हितैषी सच्चे सदस्यों को चुने जाने मे कठिनाइयों का सामना करना होता था। जनता के शुभचिंतक नेताओं ने इस कठिनाई का अनुभव किया और जनता को जागृत करने मे प्रयत्नशील हो गये। यह भावना न केवल भारत मे ही थी वरन् समस्त ससार में यह भावना किसी न किसी रूप में पनप रही थी। राजाशाही समाप्त होने पर एक समय वह आया जब डिक्टेटरों का उदय हुआ और उन्होंने रिवालवर छाती पर रख कर मत लिये और फिर एक बार इन मतो द्वारा राष्ट्र के प्रतिनिधि बन कर राष्ट्र की समस्त शक्तियो को हस्तगत कर लिया। इन डिक्टेटरों ने एक बार फिर जनता की शक्ति को नष्ट करके शक्ति को अपने ही करो मे केन्द्रित किया परन्तु ऐसा करने वाले ससार के सभी राष्ट्र नहीं थे। इसी समय कुछ राष्ट्रों मे प्रजातन्त्रवाद भी पनप रहा था और वहाँ की शासन-सत्ता मे, यह सत्य है कि इसी नीति को अपने उपनिवेशों मे प्रयोग कर रही थीं, परन्तु उनके अपने राष्ट्रों मे पूर्ण रूप से प्रजातन्त्रवाद व्याप्त हो चुका था और वहा का नागरिक जागरूक हो चुका था। इस प्रकार ससार दो क्षेत्रों मे बट गया था और इन दोनो पक्षों ने गत महायुद्ध में अपनी अपनी शक्ति की आपस में टक्कर ली। इस युद्ध में डिक्टेटरशिप का अन्त हो गया और उसके साथ ही साथ बल पूर्वक मत लेने की प्रणाली का भी अन्त हो गया।

प्रजातन्त्र के हामी राष्ट्रों ने डिक्टेटरशिप को तो समाप्त कर दिया परन्तु उनके सामने अब समस्या आई उनके अपने उपनिवेशो की। इन उपनिवेशों मे भी जनता जागृत होकर आदोलन कर रही थी। इन आदोलनों के नेता इस युद्ध काल मे युद्ध-काल का बहाना करके जेलो में ठूस दिये गये थे। युद्ध समाप्त होने पर उन्हे मुक्त करना पड़ा, इन उपनिवेशों मे फिर से जागृति की लहर दौड़ गई और वहाँ के

नागरिक अपने नागरिक-अधिकार पाने के लिये फिर उथल-पुथल मचाने लगे। इस समय इन प्रजातन्त्रात्मक शक्तियों को विश्व में अपनी शक्ति और मानमर्यादा बनाये रखने के लिये इन देशों को स्वतन्त्र करना पडा क्यों कि ऐसा न करने पर ससार भर उनका शत्रु हो जाता और रूस को ससार में काम्यूनिजम फैलाने में सहायता मिलती। रूस के मत-प्रसार से भयभीत होकर यह सब उपनिवेश मुक्त कर दिये गये। आज विश्व भर का नागरिक स्वतन्त्र है, मतदाता है और अपने अपने राष्ट्र का निर्माता है। कुछ छोटे मोटे देश आज भी ऐसे पडे हैं जिनमे इस स्वतन्त्रता का अभी तक अभाव बना हुआ है परन्तु वहाँ पर भी सघर्ष अभी तक बराबर चल रहा है और कोई कारण नहीं है कि निकट भविष्य में वहा पर भी जनतन्त्रात्मक सत्ता स्थापित न हो जाये। उदाहरण स्वरूप नैपाल की ही क्रॉंति को ले सकते हैं। वहाँ जनता ने विद्रोह के झडे गाड दिये हैं और उन्हे सफलता अवश्य मिलेगी। अमरीका मे कुछ अग्रेजी न जानने वाले नीग्रोज को मताधिकार नहीं हैं, उनमे जागरुकता आ जाने पर यह भी सभव नहीं हो सकेगा।

इस प्रकार हमने देखा कि आज विश्व का नागरिक स्वतन्त्र हो चुका है, शक्तिशाली हो चुका है, अपने भाग्य का निर्माता बन चुका है, अपने विषय मे सोचने समझने और कार्य करने का उसे अधिकार है, वह राष्ट्र का सरक्षक है, राष्ट्र का सम्मान है, बल है, धन है, वैभव है—सर्वस्व है। राष्ट्र उसी के कधों पर है और वही अपने राष्ट्र के भार का सँभालने वाला है। नागरिक जितना भी योग्य होगा उसका राष्ट्र उतना ही समुन्नत होगा।

विषय पर सक्षिप्त विचार—

१ नागरिक क्या है और उसका क्या महत्त्व है?

२ विश्व की किन-किन क्रांतियों में से होकर नागरिक वर्तमान स्थिति में आया है।

३ आज के नागरिक का राष्ट्र में क्या स्थान है ?
४ आज के नागरिक का स्वरूप
५ उपसहार ।

भारत का भविष्य

भारत एक लम्बे युग की पराधीनता के पश्चात् स्वतन्त्र हुआ है । इस स्वतन्त्रता-प्राप्ति में भारत को अनेको बलिदान करने पडे हैं, अनेको कष्ट सहन करने पडे हैं और अनेकों सघर्षों के बीच से होकर गुजरना पडा है। भारत-राष्ट्र अपने स्वतन्त्रता सग्राम मे कुछ आदर्श लेकर चला था और उन आदर्शों को वह आज भी भुला कर नहीं चल रहा । स्वतन्त्रता मिलने पर देश की वह दशा थी कि जिस प्रकार किसी दुकान से सब माल निकाल कर कोई परदेसी खाली दुकान और भूखे मरते हुए उस दुकान के मालिकों को छोड़ जाता है । युद्ध काल में अ ग्रेज भारत से १५ अरब रुपये का माल उठाकर ले गये जिसके फलस्वरूप देश माल से रिक्त हो गया और भारत की वर्तमान सरकार को मुद्रा-प्रसार करके अपना काम चलाना पडा। मुद्राप्रसार युद्ध काल मे पहिले भी काफी मात्रा में हो चुका था और फिर काम चलाने के लिये जो मुद्रा-प्रसार करना पडा इससे रुपये का अवमूलन और चीजों के दामों में वृद्धि हो गई। इस मंहगाई के फलस्वरूप देश मे काला बाजार हुआ, रिश्वतें बढीं, कट्रोल लगे और एक अशान्ति का वातावरण पैदा हो गया।

यह रही आर्थिक समस्या। आर्थिक समस्या के अतिरिक्त भारत की वर्तमान स्वतन्त्र सरकार के सम्मुख सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक समस्यायें भी हैं। भारत स्वतंत्र होने पर भारत का विभाजन हुआ और देश में एक साथ उच्छृङ्खलता फैल गई । हिन्दुओं का पाकिस्तान से आना और मुसलमानों का पाकिस्तान जाना एक

इतना बड़ा कार्य सरकार के सम्मुख आ गया कि देश भर मे एक अशांति की लहर दौड़ गई। देश की आर्थिक अवस्था पहिले ही बिगड़ी हुई थी और फिर उस पर यह नया दबाव पड़ा। यह समस्या केवल इधर उधर आने जाने तक ही सीमित नही रही वरन् इस अशांति मे वह मार-काट मची कि हिन्दुओं ने मुसलमानों को और मुसलमानों ने हिन्दुओं को गाजर-मूली की तरह काट काट कर फेंक दिया। पाकिस्तानी साम्प्रदायिक नीति के और उजड़ती हुई अंग्रेजी सत्ता के फल-स्वरूप यह जो कुछ भी हुआ भारत सरकार ने इसे शांति पूर्वक सहन किया और अन्त में अपने देश मे शांति स्थापित करने मे वह सफल हो गयी। भारत मे आने वाले शरणार्थियों को पर्याप्त सहायता दी गई और भारत की जनता ने भी जी खोल कर उस कार्य में सरकार का हाथ बटाया।

तीसरी विकट समस्या भारत के सम्मुख रियासतों की थी। अंग्रेजी सरकार ने जाते समय भारत का विभाजन तो किया ही, साथ ही साथ भारत की रियासतों को भी एकदम स्वतंत्र कर दिया और इस प्रकार भारत के सम्मुख एक नवीन समस्या खड़ी हो गई। रियासतों के निरंकुश राजाओं ने विचारा कि चलो अंग्रेजों से मुक्त होकर निरंकुश शासन करने का यह उन्हें अवसर मिल गया। परन्तु सरदार पटेल ने रियासतों की समस्या को जितने सुन्दर ढग से सुलझाया उसे देख कर विश्व चकित रह गया। सरदार पटेल ने थोड़े से ही समय मे सब रियासतों मे जनतन्त्रात्मक सस्थाओं को शक्तिशाली बनाकर शासन सत्तायें उन्हीं के हाथों मे सौंप दीं और रियासतों से निरंकुशता का सर्वदा के लिये अन्त हो गया। सब रियासतों से जूनागढ़, हैदराबाद और काश्मीर की समस्यायें तनिक विचित्र सी रहीं परन्तु उनका भी हल हमारी सरकार ने उत्तम ही निकाला। जूनागढ़ और हैदराबाद की समस्यायें समाप्त हो चुकीं, काश्मीर की समस्या लटक रही है।

आशा है निकट भविष्य मे वह भी समाप्त हो जायेगी। इस प्रकार रियासतों की दिशा से भारत-राष्ट्र कभी इतना सुदृढ नहीं हुआ जितना आज है।

इन तीन समस्याओ पर विचार करके अब हम भारत के भविष्य पर विचार करेंगे। जहाँ तक भारत की विदेशी नीति का सम्बन्ध है भारत ससार के सघर्ष से मुक्त रहना चाहता है। आज विश्व राज-नैतिक दृष्टिकोण से दो पक्षो में बँटा हुआ है, एक एङ्ग्लो अमरीकन पक्ष और दूसरा सोवियट रूस का पक्ष। भारत सरकार दोनों से ही मिलकर विश्व मे शाति रखना चाहती है। अभी तक वह अपनी उस नीति मे सफलता पूर्वक चल रहा है। भारत की यही नीति भारत को ससार में सम्मानपूर्ण स्थान पर स्थाई रखेगी। आज विश्व की समस्याओं मे भारत राष्ट्र का विशेष स्थान बन चुका है और पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी योग्यता से हर विदेशी निति मे भारत के नाम को बढ़ाया है।

भारत की अन्दरुनी समस्याओं में सब से विकट समस्या आर्थिक ही है। भारत-सरकार राष्ट्र की उत्पादन शक्तियों की उन्नति पर विशेष ध्यान दे रही है और निकट भविष्य मे ही आशा की जाती है कि भारत की उत्पादन शक्ति उसकी आवश्यकताओं से किसी प्रकार की कमी नहीं रहेगी बल्कि यह आवश्यकता पड़ने पर ससार के अन्य भागों को दे भी सकेगा। नये २ उद्योग-धन्धो की उन्नति की जा रही है। सरकार कृषि विभाग पर विशेष बल दे रही है। ज़मीदारी-उन्मूलन से कृषक अपनी भूमि पर विशेष ध्यान और मेहनत से काम करेगा और इस प्रकार देश में अधिक अन्न उत्पन्न होगा। देश के कल कारखानों की तरफ भी सरकार ध्यान दे रही है। बिजली बनाने के नये कारखाने बहुत बड़े पैमाने पर सरकार लगा रही है जिनके बन जाने पर यह ससार के सर्वोच्च देशों मे भी आगे

निकलने की अपने मे क्षमता रखेगा। देश मे जहाज बनाने और एंजिन बनाने के कारखाने सरकार ने चालू कराये है जिनमें कई जहाजों ने बनकर भारत के समुद्री बेड़े का शक्ति को बढाया है। इस प्रकार भारत उत्पादन और व्यापार दोनों ही दिशाओं मे समुचित उन्नति कर रहा है।

भारत के सामने सामाजिक और धार्मिक समस्यायें भी है। भारत की वर्तमान सरकार ने भारत के हर नागरिक को सामाजिक क्षेत्र मे समान अधिकार दिया है। छुआछूत की समस्याओं को सरकार ने अपने हाथो मे लेकर उनका अन्त कर दिया है। धर्म को राजनीति के क्षेत्र से निकाल कर बाहर कर दिया और यही कारण है कि भारत मे धर्म के नाम पर रक्तपात होने की सम्भावना भविष्य मे नहीं रह गई है। भारत मे रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने मतानुसार धर्म पालन का पूर्ण अधिकार है। वह जिस धर्म को जी चाहे पालन कर सकता है। भारत का भविष्य इस प्रकार सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र मे उज्जवल ही है। हिंदूकोडबिल के पास हो जाने से हिंदू समाज मे व्यापक अनेकों बुराइया समाप्त हो जायेंगी और मानव रूढिवाद से मुक्त होकर प्रगति की ओर अग्रसर होगा। मानव जीवन स धर्म के नाम पर पैदा होने वाला व्यर्थ का सघर्ष मिटजायेगा और व्यक्ति को अपने २ धर्म मे स्वतन्त्र रूप से आस्था रखने का अवकाश मिलेगा। वह मुक्त होकर परमेश्वर में अपनी आस्था बढ़ा अथवा घटा सकेगा क्योंकि इस दिशा में उसके ऊपर कोई किमी प्रकार का समाजिक, धार्मिक अथवा राजनैतिक अकुश नही रहेगा। यज्ञ हवन इत्यादि मे जिस की श्रद्धा होगी वह करेगा और जिस की नही होगी वह नहीं करेगा। कोई किसी को इन दिशाओं मे बाध्य करने वाला नहीं होगा। समाज मे मज़दूर और किसानों का स्तर पहिले की अपेक्षा ऊचा हो जायेगा। वर्ग समस्या

यदि मिटेगी भी नहीं तो शोषण की भावना का अवश्य अन्त हो जायेगा। निठल्ले व्यक्तियों का समाज में अनादर और मेहनती व्यक्तियों का आदर होगा। निठल्ले जीवन में दुखी रहेंगे और मेहनत करने वाले सुखी। आज निठल्ले आनन्द का उपभोग करते हैं और मेहनती भूखे मरते हैं, यह दशा बिलकुल बदल जायेगी।

भारत मे शिक्षा का प्रचार दिन प्रति दिन बढ़ रहा है और बढ़ता ही जायेगा। भारत का नागरिक शिक्षित होकर अपने राष्ट्र को समुन्नत बनायेगा और देश से जड़ता का प्रस्थान होगा। देश हर प्रकार की विद्या-कला में उन्नति करेगा और भारत के विद्यार्थी विदेशों से वहाँ की विशेषता सीख कर आयेंगे और उस विशेषता को भारत के लिये उपयोगी बनायेंगे। सरकार इस दिशा में बहुत प्रयत्नशील है। विद्या के प्रसार से भारत की प्राचीन संस्कृति का एक बार फिर से उदय होगा और भारत के विद्वान संसार को असघर्षोन्मुखता की ओर ले जायेंगे। हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा बन चुकी है। विश्व मे इस का आदर होगा और देश देशाँतरों के विद्यार्थी भारत के विश्व विद्यालयों में आकर हिन्दी के माध्यम द्वारा विद्या अध्ययन करेंगे। इस प्रकार भारत का गौरव देश देशातरों में फैलेगा और भारतीय विचार-धारा की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। भारत में अंगरेजी का वही स्थान रह जायेगा जो जर्मनी, फ्रांसीसी और रूसी इत्यादि भाषाओं का होगा।

इस प्रकार हमने देखा कि भारत उन्नति के पथ पर है और भविष्य में उन्नति की ही सम्भावना है। भारत राजनैतिक, आर्थिक, समाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक शिक्षा तथा कला इत्यादि की दिशा में उन्नति कर रहा है और करने की आशा है। भारतीय शासन सत्ता भारत राष्ट्र को एक उन्नत राष्ट्र बनाने के लिये प्रयत्न शील है। भारत का सुरक्षा विभाग भी उन्नति कर रहा है परन्तु राष्ट्र का भारस्वरूप बन कर नहीं। अंगरेज-कालीन व्यवस्था आज नहीं है। आज राष्ट्र

अपना है और इसका रहने वाला हर व्यक्ति राष्ट्र का सैनिक है। आज विद्यालयों में भी सैनिक शिक्षा पहिले की अपेक्षा बहुत अधिक मात्रा में प्रारम्भ हो चुकी है और इस प्रकार एक ऐसी सेना बनती जा रही है जो भारत की रक्षा के लिये सर्वदा प्रयत्नशील रहेगी। आज के युग का सैनिक केवल वेतन के प्रलोभन पर पलने वाला सैनिक नहीं है बल्कि वह भारत-राष्ट्र का सब से बड़ा सेवक है; जो समय पड़ने पर अपने प्राणों का बलिदान देने के लिये सर्वदा उद्यत रहता है। आज भारत की हर व्यवस्था में अपनापन है, राष्ट्रीयता है और इसी लिये उसमें शक्ति है, बल है, प्रगति है और इसलिये भारत का एक उज्ज्वल भविष्य है।

विषय पर संक्षिप्त विचार —

१ भारत विभाजन और देश की समस्यायें।
२ शरणार्थियों की समस्या और धार्मिक उपद्रव।
३ भारत की रियासतों की विकट समस्या।
४ भारत के सम्मुख आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक समस्या तथा उनका हल।
५ भारत के उद्योग धन्धों, कृषि, शिक्षा इत्यादि को सरकार का प्रोत्साहन।
६ भारत का भविष्य।

परिचयात्मक विषय

विश्व के प्रधान राष्ट्र

अमेरिका—अमेरिका आज संसार का सब से धनाढ्य देश माना जाता है। मार्शल-योजना द्वारा यह योरोप के अनेकों देशो को सहायता पहुँचा रहा है। यहाँ पर प्रजातन्त्र शासन है और देशकी प्रवृत्ति व्यापारिक है। देश की एक कॉंग्रेस है और उसका प्रधान ही राष्ट्र का प्रधानाधिकारी है। इस प्रदेश का अन्वेषण कोलम्बस नामक यात्री ने किया था और वाशिंगटन ने इसे इङ्गलैन्ड की पारलियामेन्ट द्वारा शासित होने से मुक्ति दिलवाई थी। लिंकन ने यहाँ की दासता के विपरीत विद्रोह करके इसे सुसगठित किया और रूजवेल्ट के समय मे यह देश ससार के प्रधान देशों में गिना गया। आज यह देश विज्ञान, व्यापार और सब प्रकार से ससार का सर्वोच्च देश है। रूस अमेरिका का प्रतिद्वन्दी है और इसकी महानता को नहीं मानता।

विदेशी नीति—गत महायुद्ध मे डिक्टेटरशिप के विरुद्ध अमेरिका युद्ध क्षेत्र मे उतरा और अन्त में उसको कुचलने में सम्पन्न हुआ। आज ससार की शक्ति दो क्षेत्रों में विभाजित है एक काम्यूनिज्म और दूसरी प्रजातन्त्रवादी। अमेरीका प्रजातन्त्रवादी शक्ति का सचालक है और इङ्गलैंन्ड तथा योरोप के अनेकों देश इसके साथ हैं।

इङ्गलैन्ड—सन् १९१४ के युद्ध मे इङ्गलैन्ड का स्थान ससार मे प्रथम था। उस युद्ध में यह विजयी रहा और इसकी शक्ति का प्रसार समस्त ससार मे हुआ। इस महायुद्ध के पश्चात ब्रिटिश साम्राज्य

समाप्त हो गया और भारत इत्यादि देश स्वतन्त्र होगये । भारत इत्यादि के साम्राज्य से निकल जाने पर इङ्गलैंड आज ससार की बडी शक्तियों में नहीं रह गया है । वह एक साधारण सी शक्ति है परन्तु फिर भी उसका गठबधन अमेरिका के साथ बहुत दृढ है और साथ ही भारत पाकिस्तान इत्यादि देशो के साथ भी उसके सम्बन्ध सुरक्षित हैं । इस लिये अभी ससार की राजनीति में उसका हाथ है । इङ्गलैन्ड में पारलियामेन्ट का प्रजातन्त्रशासन है जिसका एक प्रधान मन्त्री होता है और वही देश के शासन की बागडोरें संभालता है । राजा वहाँ है अवश्य, परन्तु नाम मात्र के लिये ।

विदेशी-नीति—गत महायुद्ध के पश्चात इङ्गलैन्ड की साम्राज्य-वादी नीति समाप्त हो गई । इस समय इङ्गलैन्ड की अपनी पृथक कोई वैदेशिक राजनीति नही है बल्कि इसकी वैदेशिक राजनीति का सचालन अमेरिका से होता है । आजकल ऐंगलो अमेरिकन पैक्ट है और इसके अनुसार रूस के विरुद्ध प्रचार तथा शक्ति-सगठन करना इनकी नीति का प्रधान अंग है । यह भारत विभाजन करके इङ्गलैन्ड पाकिस्तान और हिन्दोस्तान का मुखिया बना रहना चाहता था परन्तु भारत की ससार के झगडो से पृथक रहने की नीति ने इ गलैन्ड की इस मनोकामना को पनपने से रोक रखा है ।

जर्मनी—गत महायुद्ध मे पूर्व जर्मनी का ससार की राजनीति में विशेष स्थान था । १६१६ की वार्साई की सधि मे जर्मनी को बिलकुल कुचल दिया गया था । ऐसी हीन परिस्थिति में वहा पर हिटलर ने नाजी पार्टी को जन्म दिया और इस पार्टी ने सभी क्षेत्रों मे उन्नति की । इसी पार्टी के बल से इटली की भाँति जर्मनी में भी हिटलर ने डिक्टेटर बनकर सब शक्तियों को अपने हाथों में ले लिया । सब शक्तियों को हाथों मे लेकर हिटलर ने जर्मनी के विज्ञान और व्यापार की इतनी उन्नति की कि वह ससार के देशों मे फिर अग्रणीय गिना जाने लगा ।

जर्मनी की शक्ति बढ जाने पर हिटलर को इतना अभिमान हो गया कि वह विश्व को विजय करने के स्वप्न देखने लगा। परन्तु हिटलर का यह स्वप्न सत्य न हो सका और जर्मनीकी समस्त शक्तियों का गत महायुद्ध में सर्वनाश हो गया।

विदेशी-नीति—आज जर्मनी की कोई विशेष विदेशी नीति नहीं है क्यो कि गत महायुद्ध मे जर्मनी की शक्ति एकदम समाप्त हो चुकी थी। आज आधा जर्मनी रूसी प्रभाव मे है और आधा ऐंगलो अमरीकन। ससार को विदेशी नीति पर आज जर्मनी का कोई महत्व-पूर्ण प्रभाव नही है।

फ्रास—ससार की राजनीति मे फ्रॉस को सर्वप्रथम लाने का महत्व नेपालियन बोनापार्ट को है। रूसो और वाल्टेयर ने जनता में वहाँ व राजा लुई के विरुद्ध भावना का प्रचार किया और प्रजा को उत्तेजित करके लूई को मरवा दिया। लुई के मरने पर वहाँ प्रजातन्त्र शासन की स्थापना हुई और नेतृत्व नेपोलिय के हाथों में आया। नेपोलियन ने अपने देश मे जागृति की, देश का सम्मान योरुप मे बढाया और साम्राज्य-स्थापना की ओर पग बढाया। उस समय इङ्गलैन्ड भी फ्रास की शक्ति से थर्राने लगा। नेपोलियन मे भी विश्व-विजय की भावना पैदा हो गई और उसी के फलस्वरूप उसे अन्य राष्ट्रों से टक्कर पर टक्कर लेनी पडी। वाटरलू के युद्ध मे नेपोलियन की हार हुई और १२ वाँ लुई फिर से राज पद पर स्थापित हुआ। गत महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों ने फ्रॉस के अस्तित्व की रक्षा की। वहाँ इस समय इङ्गलैन्ड जैसा प्रजातन्त्र शासन चल रहा है।

विदेशी नीति—प्रारम्भ में इस देश की साम्राज्यवादी नीति थी। भारत में भी इसने अङ्गरेजों के साथ साथ अपने पैर जमाने का प्रयत्न किया था परन्तु वह सफल न हो सका था। इस समय यह राष्ट्र-सघ का मेम्बर है और ससार की स्वतन्त्रता और उन्नति की ओर ही इसका

ध्यान है। संसार की राजनीति मे आज इस देश का कोई महत्वपूर्ण स्थान नही है।

स्पेन—स्पेन योरोप के राष्ट्रो मे विशेष स्थान रखता है। इङ्गलैंड की रानी एलिज़बेथ से पूर्व स्पेन का जहाजीबेडा योरोप मे सबसे महत्व-पूर्ण समझा जाता था। एलीजबेथ के समय मे उसकी पराजय हुई और उसका महत्व समाप्त हो गया। गत महायुद्धों मे स्पेन मित्र राष्ट्रो के साथ रहा। यहाँ आज जनरल फ्रैंको राज्य करता है।

विदेशी-नीति—स्पेन की विदेशी नीति साम्राज्यवादी रही है। आज विश्व की राजनीति मे स्पेन का कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है।

स्काटलैन्ड—इङ्गलैन्ड और स्काटलैन्ड मे चिरकाल तक युद्ध होता रहा और अन्त मे जेम्स प्रथम के समय मे दोनो मिलकर एक हो गये। अङ्गरेजी सेना के गोरे स्काटलैन्ड के ही रहने वाले हैं।

विदेशी-नीति—आज स्काटलैन्ड की विदेशी नीति इङ्गलैन्ड के ही साथ है।

आयरलैन्ड—आयरलैन्ड चिरकाल तक अङ्गरेजों के आधीन रहा। आयरलैन्ड के कैथोलिक रहने वाले इङ्गलैन्ड के प्रोटैस्टैन्ट शासकों से शासित होकर नही रहना चाहते थे। इसी लिये सघर्ष चला और वहाँ के रहने वालो ने अपने जन्म सिद्ध अधिकारो के लिये युद्ध किया। अमरीका के स्वतत्रता प्राप्त करने पर आयरलैन्ड में और ज्वाला धधकी। पिट के मन्त्री काल में आयरलैन्ड को इङ्गलैन्ड में मिला कर कुछ अधिकार दिये गये परन्तु सघर्ष शांत न हो सका। अंत मे १६२२ तक इङ्गलैन्ड को आयरलैन्ड स्वतत्र करना पडा और उस समय से यह एक स्वतत्र राष्ट्र है।

विदेशी-नीति—आयरलैन्ड अपनी धार्मिक नीति मे इङ्गलैन्ड के विरुद्ध रहा है। जब तक इनका आपसी सघर्ष चलता रहा तब तक

आयरलैन्ड फाँस के साथ मिलकर इङ्गलैन्ड से बदला लेने का भी प्रयत्न करता रहा परन्तु जब से आयरलैन्ड स्वतन्त्र है तब से इङ्गलैंड और आयरलैंड मे सद्भावनायें चल रही है।

इटली—इटली में जब साम्यवाद का प्रचार हो रहा था तो यहा पर मुसोलनी की शक्ति का उदय हुआ। मुसोलनी ने यहाँ पर साम्य-वाद को कुचलकर इस देशको सम्पार की राजनीति मे विशेष महत्वपूर्ण स्थान पर पहुचाया। गत महायुद्ध में जर्मनी मे जो स्थान हिटलर का था वही इटली में मुसोलनी का था। विश्व की राजनीति मे जर्मनी के पतन क साथ इटली का भी पतन हो गया।

विदेशी नीति—जर्मनी की भाँति यह देश भी एवेसीनिया इत्यादि देशों पर अपना साम्राज्य फैलाना चाहता था। आज यह राष्ट्र-संघ का मेम्बर भी नही हे और गत महायुद्ध के पश्चात् इसका राजनैतिक महत्व समाप्त हो चुका है।

दक्षिणी अफ्रीका—अफ्रीका के प्रधान निवासी हब्शी हैं परन्तु यहाँ पर अन्य देशो के बहुत से आदमी जाकर बस गये हैं और वह अब वही के नागरिक हो गये हैं। अफ्रीका पहिले अंग्रेजों के आधीन था परन्तु १६०६ में इसे स्वतन्त्र कर दिया गया। आज वहां के विभिन्न उपनिवेशों का सयुक्त राष्ट्र है। यहा बोअर अपना स्वतन्त्र राज्य बनाये हुए हैं। भारत निवासी जो लोग वहाँ रहते हैं उनके साथ वहा के शासकों का बर्ताव अच्छा नही है। महात्मा गाधी ने भारतीयो के अधिकार और मान की रक्षा के लिये वहाँ जाकर दो बार सत्याग्रह किया था। भारत इस प्रश्न को राष्ट्र-सघ के समक्ष भी ले गया, और निर्णय भी भारत के पक्ष में हुआ, परन्तु आज तक भी लाभ कुछ न हो सका।

विदेशी नीति—दक्षिणी अफ्रीका की कोई विदेशी स्वतन्त्र नीति

नहीं है और ना ही ससार की वैदेशिक-नीति में उसका कोई महत्व-पूर्ण स्थान ही है। वहा पर जो काले गोरे की भावना आज तक वर्तमान है उसके कारण सभ्य जातियों मे उसका कोई विशेष स्थान नहीं है। यहा की परराष्ट्र नीति इङ्गलैंड द्वारा सचालित होती थी। परन्तु १६२६ से परराष्ट्र नीति में भी इसे स्वतन्त्रता मिल गई है।

आस्ट्रेलिया—लगभग १७७० मे कैप्टिन कुक ने इस देश का पता लगाया। यहा सोने की खानें हैं और आज कल गेहू के उपज का प्रधान क्षेत्र है। यह देश चिरकाल तक अंग्रेजो का उपनिवेश रहा और १८५० मे स्वतन्त्र हुआ। यहा पर इस समय प्रजातन्त्र राज्य है। यहा पर पृथक पृथक उपनिवेश स्वतन्त्र हैं परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय मामलो के लिये एक सयुक्त पारलियामेंट द्वारा शासित होते है।

विदेशी-नीति—ससार की विदेश-नीति मे इसका कोई महत्वपूर्ण स्थान नही है परन्तु व्यापारिक दृष्टिकोण से यह देश महत्वपूर्ण है। सोना, गेहू, ऊन इत्यादि का केन्द्र होने के कारण व्यापार मे इसका विशेष हाथ है। इसकी नीति दक्षिणी अफ्रीका से मिलती-जुलती है।

रूस—आज रूस किसी भी प्रकार अमरीका से कम नही है। रूस की शक्ति का प्रभाव इस समय ससार भर पर है और इसी कारण-वश अमरीका तथा इङ्गलैंड बारबार गुट बन्दी और पैक्ट बनाते फिरते हैं। मार्क्स के सिद्धान्तानुकूल रूस मे काम्यूनिस्ट धाराओ पर साम्यवादी शासन सचालित है। लैनिन ने साम्यवाद की स्थापना की और इसे बाल्शविज्म के अत्याचारो से बचाया। लैनिन के सिद्धांतों का प्रचार ट्राटस्की ने किया। फिर इसकी बागडोरें स्टालिन के हाथों में आ गई और गत महायुद्ध में जर्मनी के खिलाफ युद्ध में विजय प्राप्त करके रूस ने ससार की राजनीति मे प्रधान पद प्राप्त कर लिया। आज विश्व की राजनीति में अमेरिका और रूस दो प्रधान शक्तिया हैं।

विदेशी-नीति—रूस का सिद्धांत है कि वह ससार भर में काम्यूनिजम का प्रचार हर अच्छे और बुरे तरीके से करना चाहता है। रूस चाहता है कि ससार भर मे साम्यवाद का प्रचार करके स्टालिन को विश्व का नेता बनाया जाये। चीन में गृह युद्ध कराना रूस के प्रचार का ही कार्य था। फिर यह झगड़े इन्डोनीशिया, बर्मा और कोरिया में हुए। भारत मे भी काम्यूनिस्ट पार्टी कार्य कर रही है और उसे रूसी सरकार की ओर से सहायता मिलती है। संसार की राजनीति मे अमेरिका रूस का प्रधान प्रतिद्वन्दी है और दोनों का प्रत्यक्ष रूप से न सही अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिद्वन्द बड़े जोर से चल रहा है। कोरिया का युद्ध इन्हीं दोनों शक्तियों की प्रतिद्वन्द्विता का परिणाम है।

चीन—मार्शल च्याकाई शेक ने चीन को प्रजातत्र बनाकर विश्व की राजनीति मे स्थान दिलाया था। चीन के गृह-युद्ध मे शान्ति स्थापित करना च्याकाई शेक का ही काम था। जापान के साथ युद्ध मे भी और गत महायुद्ध मे भी चीन की राजनीति का सचालन मार्शल च्याकाई शेक ने ही मित्र राष्ट्रों के साथ मिलकर किया। इस समय चीन पर काम्यूनिस्ट सत्ता का प्रभुत्व है और मार्शल च्याकाई शेक का आज वहा कोई स्थान नही।

विदेशी नीति—चीन इस समय काम्यूनिस्ट विचारावलम्बी देश है और उसकी विदेशी नीति पर रूस का प्रत्यक्ष प्रभाव है। आज की राजनीति में चीन का महत्व बहुत बढ़ता जा रहा है और जब से चीनी सेनाओं ने कोरिया में घुसकर यू० एन० ओ० की सेनाओं को पीछे धकेल दिया है तब से तो चीन विश्व की राजनीति का केन्द्र बन गया है। आज का चीन विश्व की राजनीति में विशेष स्थान रखता है।

जापान—जापान गत युग में देश भक्ति, कलाकौशल, व्यापार और राजनैतिक सगठन का केन्द्र रहा है। मुसोलनी और हिटलर की तरह वहा पर भी तोजो का महान प्रभुत्व था। गत महायुद्ध में आटम बम

गिरा कर अमरीका ने यहा की शक्ति को छिन्न भिन्न किया। आज जापान एक प्रकार से अमरीका के ही आधीन सा है। यों कहने को वहाँ पर इस समय एक राजा का राज्य ह, प्रजातन्त्र शासन नही। गत महायुद्ध मे इसकी शक्ति का ह्रास होने के पश्चात् यह अभी तक अपने को नहीं संभाल पाया ह।

विदेशी नीति—आज विश्व की राजनीति मे इसका कोई स्थान नहीं गत महायुद्ध में जापान विश्व की महानतम शक्तियो मे गिना जाता था। आज यह सयुक्त राष्ट्र-सघ का मैम्बर भी नही है।

इन्डोनीशिया—इन्डोनीशिया एक युग की पराधीनता के पश्चात् अब स्वतन्त्र हुआ है। वहाँ पर इस समय प्रजातन्त्रात्मक राज्य है और वह देश मित्र राष्ट्रो के साथ विश्व की राजनीति मे सहयोग के साथ चल रहा है। इन्डोनीशिया में भी काम्यूनिज्म की विचारधारा वेगवती होना चाहती है। पिछले दिनों काम्यूनिस्टो द्वारा किये गये विद्रोह को सरकार ने दबा दिया और राष्ट्र मे शान्ति स्थापित कर दी।

विदेशी-नीति—इन्डोनीशिया विदेशी नीति मे भारत तथा अन्य मित्र राष्ट्रों के साथ सहयोग से चल रहा है। छोटा देश अवश्य है परन्तु इसका स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि यहां पर काम्यूनिस्ट विचारावलम्बी सरकार हो जाये तो पहले अमरीकनो को जापान इत्यादि स्थानो तक पहुचने मे कठिनाई उपस्थित हो सकती है और इस प्रकार ऐशिया के एक बडे भाग से उनका प्रभाव समाप्त हो सकता है। इस प्रकार इन्डोनीशिया की राजनैतिक परिस्थिति बहुत महत्त्वपूर्ण है।

बर्मा—बर्मा का प्राचीन नाम ब्रह्मवर्त है जो कि आदि युगों में भारत का ही एक भाग रहा है। यहाँ पर बुद्ध भगवान ने चीन, जापान की भांति बुद्ध धर्म का प्रचार किया। अङ्ग्रेजी शासन काल मे

यह अङ्गरेजो के आधीन रहा परन्तु गत महायुद्ध के पश्चात् भारत की ही भांति यह भी स्वतत्र हो गया । मि० थाकिन नू ने वर्मा को स्वतत्र कराके प्रजातत्र शासन स्थापित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया । स्वतत्र होते समय यहा पर भी उपद्रव हुआ परन्तु सरकार ने उसे अपने वश मे कर लिया। इस देश मे आज भी गडबड चल रही है और आथिक दशा भी कोई विशेष-सतोष जनक नही है ।

विदेशी नीति—वर्मा मित्र-राष्ट्रो के साथ रह कर अपनी नव-प्राप्त शक्ति का सचालन करना चाहता है । विश्व की राजनीति मे इसका विशेष स्थान नहीं है परन्तु जब से चीन साम्यवादी हो गया है और कोरिया में उनका आक्रमण हो गया है तब से वर्मा की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण हो गई है । अब वर्मा की राजनीति दिन प्रतिदिन बदल रही है और यहा के साम्यवादियों का चीनी साम्यवादियों के साथ सम्पर्क हो जाने पर भय का कारण पैदा होता जा रहा है । वर्मा की पालियामेट के प्रधान साम्यवादी विचारधारियो ने इस्तीफे देकर अपने को मुक्ति कर लिया है और कोरिया की परिस्थिति पर विशेष उत्सुकता के साथ दृष्टि गडा कर बैठ गये है। निकट भविष्य मे वर्मा मे कोई राजनैतिक सघर्ष उत्पन्न होगा ऐसा राजनीतिज्ञो का मत है ।

भारत वर्ष—१५ अगस्त् १९४७ को भारत अगरेजो की पराधीनता से मुक्त हुआ । भारत के भारत और पाकिस्तान में विभाजन होने और मुस्लिम लीग के साम्प्रदायिक ज्वाला को प्रज्वलित करने के फलस्वरूप भारत मे धामिक मार-काट हुई, शरणार्थियों की समस्या सामने आई परन्तु उन सब को भारत सरकार ने योग्यता पूर्वक वश मे कर लिया । अङ्गरेजी सरकार के जाने पर भारत सरकार ने भारत की रियासतों की तानाशाही को समाप्त करके जनतत्रात्मक सत्तायें वहाँ पर स्थपित कर दी है और इस प्रकार भारत राष्ट्र के सगठन को बहुत सुदृद कर दिया है । भारत राष्ट्र आज से पूर्व कभी इतना सुदृद

नहीं बन सका था। आज भारत में अपना शासन-विधान है और उस के अनुसार डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद भारत के प्रधान तथा प० जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रधान मंत्री हैं। सरकार शिल्प, विद्या, विज्ञान कृषि इत्यादि सभी दिशाओं में प्रयत्नशील है।

विदेशी नीति—आज भारत एशिया की राजनीति में विशेष महत्त्व रखता है। प० जवाहरलाल का स्थान आज विश्व की राजनीति में महत्त्वपूर्ण है। भारत मित्र-राष्ट्रों के साथ रहते हुए भी संसार के किसी भी देश के साथ संघर्ष में नहीं आना चाहता। इसकी अपनी स्वतंत्र नीति है जो हर प्रकार से भारत की उन्नति में सहायक है।

पाकिस्तान—पाकिस्तान की स्थापना मि० जिन्हा द्वारा हुई। यह मुसलमान-प्रधान राज्य है जिसकी स्थापना आज के युग में धार्मिक आदर्शों पर हुई है। पाकिस्तान के बनने से भारतवर्ष के हिंदू और मुसलमानों की बहुत बड़ी आर्थिक और जन-माल की हानि हुई है। भारत और पाकिस्तान अभी तक उस गलती को भर रहे हैं और दोनों देश अपनी स्थिति को नहीं संभाल पाये हैं। भारत में प्रजातन्त्र शासन है।

विदेश नीति—पाकिस्तान अपनी विदेश-नीति में कुटिलता को लेकर चल रहा है परन्तु वह उसमें सफल नहीं हो रहा। जूनागढ़, हैदराबाद और काश्मीर में उसकी कुटल-नीति असफल सिद्ध हो चुकी है। पाकिस्तान के सम्मुख इस समय पख्तूनिस्तान की बड़ी भारी समस्या है और उसके कारण अफगानिस्तान से उसके सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं। पठान भाईयों को जेल में ठूस से रखने के कारण भारत सरकार भी पाकिस्तान की नीति से प्रसन्न नहीं है, पाकिस्तान की विदेशी नीति कोई विशेष नहीं है और ना ही वह रूस अथवा ऐंग्लो अमरीकन किसी विशेष ग्रुप की ओर झुकी हुई है। वह इस क्षेत्र में भी कुटिलता से ही काम लेकर जिससे जितना अपना लाभ हो, आदर्श विहीन हो

कर उस नीति को अपना रहा है। बेपैंदी के लोटे के समान वह विदेशी नीति में चल रहा है।

अफगानिस्तान—अफगानिस्तान के रहने वाले पठान हैं और वहाँ का प्रबन्धक एक बादशाह है। अफगानिस्तान इस समय पख्तूनिस्तान का समर्थक है और इस मामले मे पाकिस्तान के साथ इसका बहुत बड़ा मतभेद चल रहा है। भारत से आज कल अफगानिस्तान का मैत्री-भाव है और हर प्रकार की सद्भावनाये दोनों देशो मे वर्तमान है।

टर्की—टर्की की शक्ति को सर्व-प्रथम कमाल पाशा ने सुसगठित और सुव्यवस्थित किया। टर्की के वैभव को विकसित किया। कमाल-पाशा से पूर्व यह देश योरोप का बीमार (Sick man) कहलाता था। विश्व की राजनीति में इसका कोई विशेष महत्वपूर्ण स्थान नही है। पहले महायुद्ध में यह जर्मनी के साथ था।

मिश्र—मिश्र पर पहिले टर्की का गवर्नर राज्य करता था। बाद में यहाँ का गवर्नर स्वतत्र हो गया और उसने मिश्र को स्वतत्र घोषित कर दिया। सन् १८८२ मे इस्माइल पाशा के समय में इस पर अगरेजों का अधिकार हो गया। एक बहुत बड़े सघर्ष के पश्चात सन् १९२२ में यह पूर्ण स्वतत्र हुआ। गत युद्ध मे इसने टर्की को सहायता दी जिसके कारण इसके राजा को गद्दी से उतार दिया गया था। फिलिस्तीन के युद्ध मे इसने यहूदियों के विरुद्ध अरबो को सहायता दी। बड़ा राष्ट्र न होने के कारण विश्व की शाति अथवा अशाति में यह कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखता।

हिंदी के कवि और लेखक

चंद वरदाई—(स० १२२५-१२४९) यह हिन्दी के प्रथम महा कवि माने जाते हैं। पृथ्वीराज रासौ इनका प्रधान ग्रंथ है। यह ग्रन्थ दिल्ली-नरेश पृथ्वीराज की प्रशसा मे लिखा गया है। ६९ समयों का यह ढाई हजार पृष्ठों का बृहद् ग्रन्थ है।

जगनिक—(स० १२३०) जगनिक ने देशज भाषा मे मोहवे के दो देश प्रसिद्ध वीर आल्हा और ऊदल का गुण गान किया है। यह ग्रंथ आल्हा के नाम से प्रसिद्ध है। मूलग्रन्थ का कहीं पर पता नहीं परन्तु भारत के गाव गांव मे यह काव्य आज भी बड़ी रोचकता के साथ गाया जाता है।

खुसरो—(स० १२४९) यह अपने समय मे फारसी के अच्छे कवि थे। इनकी कविता मे मस्खरापन पाया जाता है। इनका मृत्यु स० १३८१ है। दोहे, तुकबन्दियाँ और पहेलियाँ इनकी लिखी हुई मिलती हैं। इनकी कविता मे वर्तमान खड़ी बोली का प्राचीनतम रूप मिला है।

विद्यापति—(स० १४६०) यह मैथिल कोकिल कहलाते हैं और इनकी गीतात्मक रचनायें मैथिल मे ही हैं। बँगला वाले इन्हे अपना कवि मानने का काफी समय तक प्रयास करते रहे परन्तु यह हैं वास्तव में हिन्दी के कवि। इनकी कविता मे राधाकृष्ण का विहार विषय है, जयदेव की प्रणाली है। यह भक्त कवि नहीं थे वैष्णव कवि थे। हिन्दी मे सर्व प्रथम आपने गीतात्मक काव्य लिखा। विद्यापति राजा शिवसिंह के दर्बार मे रहते थे।

कबीर—(जन्म काल स० १४५६) कहते हैं विधवा के गर्भ से इन का जन्म हुआ है पालन पोषण एक जुलाहे ने किया। कबीर की वाणी

'निर्गुण' पथ को लेकर चली है। इनकी कविता में रहस्यवाद मिलता है और इनके पन्थ में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों मिलते हैं। आपने हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों का समन्वय अपनी वाणी मे किया है। बीजक इन का प्रधान ग्रन्थ है।

मलिक मोहम्मद जायसी--यह सूफी प्रेम तत्व के प्रतिपादक थे। पद्मावत इनका प्रधान ग्रन्थ है जिसमें हिन्दू आख्यायिकाओं द्वारा सूफी प्रेम की भावना को प्रचारित किया गया है। इनका समय सं० १५२० के लगभग है। पद्मावत हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों में, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों मे, रामचरित मानस के बाद दूसरा स्थान रखता है।

गोस्वामी तुलसीदास—तुलसीदास जी रामनन्दी भक्त-परम्परा के भक्त कवि थे जिन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा भारत के कोने २ में राम-नाम का प्रचार किया। आपने विशिष्टाद्वैतवाद का प्रचार किया और रामायण की रचना करके हिन्दी साहित्य मे भी सर्वोच्च पद प्राप्त किया। गोस्वामी जी का प्रादुर्भाव १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुआ। आपके लिखे हुए १२ ग्रंथ उपलब्ध हैं जिनमे पाच बड़े और सात छोटे हैं। रामचरित मानस आपका प्रधान ग्रन्थ है।

सूरदास जी— स० १५८० के लगभग वल्लभाचार्य के शिष्य हुए और लगभग यही उनका रचना काल भी है। आपने भक्ति के क्षेत्र में पुष्टि-मार्ग का प्रतिपादन किया और देश भर मे कृष्ण भक्ति की लहर को प्रवाहित किया। वात्सल्य और शृंगार का सुन्दर वर्णन आपकी कविता में मिलता है। सूर-सागर इनकी प्रधान रचना है जिसमें प्रबन्धात्मकता और मुक्तकात्मकता दोनों मिली है। यह ग्रन्थ हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है।

नन्ददास—अष्टछाप के कवियों में सूर के पश्चात् नन्ददास का नाम आता है। नन्ददास को 'जड़िया' कहते हैं अर्थात् जो प्रत्येक पद को नगीनों की भाँति जड़ २ कर बनाता था। भ्रमरगीत इनकी प्रधान रचना है। स० १६२५ इनका कविता काल माना जाता है। भ्रमर गीत के अतिरिक्त इन्होंने अन्य भी कई रचनाये लिखी है।

रसखान—यह दिल्ली के एक पठान सरदार थे और स० १६४० के उपरान्त इनका रचना काल माना जाता है। कृष्ण भक्ति पर इनके सुन्दर पद उपलब्ध हैं। ब्रज-भूमि का सच्चा प्रेम इनकी रचनाओं म मिलता है।

. गंग—यह अकबर के दरबारी भक्त थे और रहीम खान खाना इन्हे बहुत मानते थे। जाति के ब्रह्मभट्ट थे और वृत्ति के बहुत निर्भय थे। अपने समय के नर काव्य करने वालों मे यह सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे।

केशवदास—यह सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनका जन्म स० १६१२ मे हुआ और मृत्यु १६७४ में। ओरछा नरेश की सभा मे यह रहते थे। यह मम्मट इत्यादि आचार्यों की परम्परा के आचार्य कवि थे। राम-चन्द्रिका इनकी प्रधान रचना है। इनकी परम्परा हिन्दी के रीति-काल मे नहीं अपनाई गई। यह चमत्कार वादी कवि थे। कविप्रिया, रसिक प्रिया इत्यादि इन्होंने अन्य भी कई ग्रन्थ लिखे थे।

सेनापति—यह अनूप शहर के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म स० १६४६ के लगभग हुआ। इन्होंने प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है और ऋतुवर्णन आपसे सुन्दर हिन्दी में अन्य किसी कवि ने नहीं किया। इनकी कविता में अनुप्रास और यमक चमत्कार की प्रधानता है।

चिन्तामणि त्रिपाठी—यह विकवाँपुर (जि० कानपुर) के निवासी थे। इनका जन्म स० १६६६ के लगभग हुआ। आपने पाँच ग्रंथ लिखे थे। इनका नाम हिन्दी-साहित्य के इतिहास में अमर रहेगा क्योंकि जिस परम्परा को आपने साहित्य में अपनाया उसके आधार पर रीतिकाल के एक युग का निर्माण हुआ है।

भूषण—इनका जन्मकाल सम्वत् १६७० है। यह महाराज शिवा जी के दरबारी कवि थे और हिन्दुत्व का गुण गान करने वाले वीर रस के प्रधान कवि हैं। इनकी कविता मे एकाकी ओज मिलता है।

भिखारीदास—यह प्रतापगढ़ (अवध) के पास ट्योगा ग्राम के रहने वाले थे। आपके नौ ग्रंथ अब तक उपलब्ध हो सके हैं। काव्यांग निरूपण मे 'दास' जी का स्थान हिन्दी-साहित्य मे सर्व प्रथम है। आपकी कविता का मुख्य विषय शृङ्गार है। कविता मे साहित्यिक और परिमार्जित भाषा का आपने प्रयोग किया है।

मीरा—मीरा का जन्म कुडकी ग्राम में हुआ और मृत्यु द्वारिका में १५०३ ई० में हुई। इनका विवाह भोजराज से हुआ परन्तु विवाह के थोड़े ही दिन पश्चात् उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के पश्चात् कुटुम्ब वालों के सताये जाने पर यह द्वारिका जाकर कृष्ण भक्ति मे मग्न हो गई और वहीं इनका स्वर्गवास भी हो गया। आप की रचनायें कृष्ण-भक्ति से पूर्ण हैं।

विहारीलाल—समय स० (१६६०—१७२५) महाराजा जयसिंह की सभा के रत्न थे। सतसई इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कविता में श्लेष तथा पाण्डित्य है। इस सतसई की तीस से अधिक टीकाएँ छप चुकी हैं। इतनी अधिक टीकायें हिन्दी के किसी ग्रन्थ की नहीं हुई।

गिरधर कविराय—समय सं० (१७७०-१८४४) अवध के निवासी थे। इनकी स्त्री भी कविता करतीं थीं। इनकी कुण्डलियाँ बड़ी लोकप्रिय हैं, और सुन्दर भावनाओं से युक्त हैं।

पद्माकर—समय (सं० १८१०-१८९०) संस्कृत और प्राकृत के प्रकाण्ड पंडित थे। 'गंगा लहरी' और 'प्रबोध पचासा' इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। अपने समय के प्रसिद्ध कवियों में इनका प्रथम स्थान है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—(सं० १९०७-१९४२) प्रथम राष्ट्रीय कवि तथा नाटककार थे। नये युग का प्रारम्भ काल, तथा खड़ी बोली का उदय काल इन्हीं से हुआ। यह काशी निवासी थे।

नाथूराम शंकर—समय (सं० १९१६-१९८६) खड़ी बोली के उच्च कवि थे। आर्यसमाजी होने से कुप्रथा निवारक तथा राष्ट्र की उन्नति की ओर अग्रसर थे। समाज-सुधार की भावना कविता में रहने से सरसता का अभाव है।

श्रीधर पाठक—समय (सं० १९१६-१९८५) आप अंग्रेजी, संस्कृत और हिन्दी के विद्वान्, सरस, प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी और मौलिक कवि थे। भारतगीत, उजड़ग्राम, एकांतवासी योगी और श्रान्तपथिक आपकी सुन्दर कृतियाँ हैं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी—समय (सं० १९२०-१९९५) आप से द्विवेदी युग प्रारम्भ होता है। "सरस्वती" पत्रिका का संपादन आपने ही किया। आपकी जन्म-भूमि दौलतपुर (यू पी) है। आप ने अन्य भाषाओं के कई ग्रन्थों का अनुवाद करके हिन्दी भाषा की सेवा की। हिन्दी गद्य की वर्तमान रूप रेखा आपकी ही देन है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय—समय (सं० १९२२) हिन्दू विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर हैं। प्रियप्रवास, ठेठ हिन्दी का ठाठ, चोखे चौपदे,

चुभते चौपदे इत्यादि आप की कृतियाँ हैं। विद्वत् समाज मे आपका ऊचा स्थान है।

रामचन्द्र शुक्ल—समय (स० १६४१) आप ने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा और आज तक वही पूर्ण है। बुद्ध चरित आपका ब्रज भाषा का काव्य है। समालोचक और निबधकार के नाते आपका हिन्दी साहित्य मे प्रथम स्थान है।

मैथिली शरण गुप्त—समय (स० १६४३) आप खड़ी बोली के उत्तम कवि हैं। भारत भारती, साकेत,यशोधरा इत्यादि आप के प्रसिद्ध ग्रथ हैं। हिन्दी के वतमान कवियों मे आप का नाम प्रथम श्रेणी मे आता है।

जयशङ्कर प्रसाद—समय (स० १६४६-१६६४) आप आधुनिक काल के छायावाद और रहस्यवाद के सब से ऊचे कवि है। भाषा सस्कृत मिश्रित तत्सम शब्द वाली है। गद्य, पद्य तथा नाटक सब दिशाओं मे लिखा है। तितली आपका मौलिक उपन्यास है, कामायनी आदर्श काव्य है, तथा स्कन्दगुप्त आदि आपके सुन्दर नाटक हैं। आधुनिक नाटकों के आप जन्म दाता है और इस दिशा मे आप ने क्राति की है।

वियोगी हरि—(१६५३) इनका पहला नाम प० हरिप्रसाद द्विवेदी था। विरक्त होने के कारण १६७८ मे सन्यास ग्रहण कर लिया। गद्य और पद्य दोनों में ही आप की लेखनी चलती है। आप की २०-२५ पुस्तकें छप चुकी हैं। वीर सतसई अत्यन्त प्रसिद्ध है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—समय (स० १६५५) आधुनिक युग के प्रगतिवादी कवि हैं जिनकी कविता मे कबीर और रवीन्द्र का रहस्यवाद बहुत निखर रूप से प्रस्फुटित हुआ है। आज के हिन्दी कवियों में आप को हम आचार्य पद पर सुशोभित कर सकते हैं।

महादेवी वर्मा—समय (सं० १९६४) आप की कविता में रहस्य की पुट है। इनकी कविता परिमार्जित, सरस और प्रभावोत्पादक है। आप हिन्दी साहित्य मे आधुनिक गीतो की जन्मदात्री हैं।

बा० श्यामसुन्दर दास बी० ए०—आपने नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की और हिन्दी मे बहुत खोज पूर्ण कार्य किया है। हिन्दी के साहित्यिक पाठकों के लिये आपने सुन्दर ग्रन्थों की रचना की है।

मु० प्रेमचन्द—आप हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं। हिन्दी के उपन्यास और कहानी क्षेत्र मे आपने क्राति पैदा की और सर्वप्रथम चरित्र-प्रधान रचनायें साहित्य को दीं। आपके साहित्य को लेकर हिन्दी साहित्य किसी भी उन्नत से उन्नत साहित्य के साथ कधा भिड़ाकर खड़ा हो सकता है।

सुमित्रानन्दन पत—आपकी रचनाओं का प्रारम्भ स० १९२५ से होता है। यह हिन्दी के प्रमुख छायावादी कवि है। आपने सुन्दर व मुक्तक कवितायें लिखी हैं और भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। हिन्दी के आधुनिक युग के कवियो में आपका प्रधान स्थान है।

भारत राष्ट्र का मंत्रि मण्डल

१. श्री प० जवाहरलाल नेहरू—प्रधान मन्त्री, बाह्य समस्याओं के तथा कामन वेल्थ के अधिकारी मन्त्री।
२ श्री राजगोपालाचार्य—गृह-मन्त्री।
३ श्री मौलाना अबुल कलाम आजाद—शिक्षा-मन्त्री।
४. श्री सी० डी० देशमुख—अर्थ-मन्त्री।
५. श्री सरदार बलदेव सिंह—रक्षा-मन्त्री।
६. श्री जगजीवनराम—श्रम-मन्त्री।

७ श्री रफी अहमद किदवई—आवागमन (काम्यूनिकेशन) मन्त्री ।

८ श्री राजकुमारी अमृतकौर—स्वास्थ्य-मन्त्री (विलिंगटन क्रीसन्ट न्यू देहली)

९ श्री डा० अम्बेडकर—विधान-मन्त्री ।

१० श्री हरि कृष्ण महताब—उद्योग, व्यवसाय-मन्त्री ।

११ श्री एन० वी० गेडगिल—निर्माण-मन्त्री ।

१२ श्री प्रकाश—व्यापार मन्त्री ।

१३ श्री एन० गोपाल स्वामी आयङ्गर-रेलवे और अन्य यातायात तथा रियासत-विभाग मत्री ।

१४. श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी—अन्न तथा कृषि-मन्त्री ।

१५. श्री अजित प्रसाद जैन—राज्य मन्त्री, पीडित विभाग तथा पुर्नावास विभाग ।

१६. श्री के० सन्थानम—राज्य मन्त्री, रेल विभाग ।

१७ श्री आर० आर० दिवाकर—राज्य मन्त्री, सूचना विभाग तथा ब्राडकास्टिंग विभाग ।

१८. श्री सत्यनारायण सिन्हा—अतिरिक्त राज्य मत्री ।

१९. श्री खुरशेद लाल—वाहन सहायक राज्य मन्त्री ।

२०. श्री डा० वी० वी० केसकर—बाह्य स्थिति और कामनवैल्थ, सहायक राज्य मन्त्री ।

२१ श्री डा० राजेन्द्र प्रसाद—प्रधान भारतीय गण राज्य ।

भारतीय इतिहास की विभूतियां

चन्द्रगुप्त मौर्य—चन्द्रगुप्त मौर्य भारत का प्रथम सम्राट है जिसने चाणक्य के मन्त्रित्व में साम्राज्य की नींव रखकर भारत को सुदृढ़

बनाया। चन्द्रगुप्त के पास एक सुव्यवस्थित सेना थी। पाटलीपुत्र का शासन एक सभा करती थी जिसके ३० सदस्य थे। इस काल में भारत ने पर्याप्त उन्नति की।

अशोक—२७२ ई० पूर्व अशोक सिंहासनारूढ़ हुए। अशोक की नीति सिकन्दर इत्यादि की भांति दिग्विजय की नहीं थी। कलिंग युद्ध से उनके जीवन में परिवर्तन आ गया और इन्होंने बुद्ध-धर्म को अपना लिया। अशोक द्वारा बुद्ध धर्म का प्रचार दया, दान, सत्य और मृदुता के आधार पर देश देशांतरों में हुआ। अशोक के धर्म-स्तम्भ आज भी भारत की प्राचीनता की अमूल्य निधियाँ हैं। अशोक की मृत्यु २३० ई० पूर्व में हुई।

हर्षवर्धन—राज्यवर्धन की मृत्यु के पश्चात् हर्षवर्धन सिंहासनारूढ़ हुए। यह विद्या के बड़े प्रेमी थे। अनेकों विद्वान इनके दरबार में रहते थे। संस्कृत का प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट इन्हीं के दरबार में रहता था। हर्ष स्वयं बौद्ध धर्मावलम्बी थे परन्तु उनका व्यवहार अन्य धर्मों के साथ भी अच्छा था।

पृथ्वीराज चौहान—मुहम्मद गौरी के आक्रमण काल के समय दिल्ली का राज्य पृथ्वीराज के हाथों में था। पृथ्वीराज ने भारतीय गौरव की रक्षा में अपने प्राणों का बलिदान दिया। यह वीर थे परन्तु राजनीतिज्ञ नहीं। मुहम्मद गौरी को पकड़कर फिर उसे छोड़ देना भारत के लिये अन्धकारपूर्ण भविष्य को जाने वाला हुआ और भारत परतंत्र हो गया।

अलाउद्दीन—(१२९६—१३१५) अफगान साम्राज्य का यह सबसे बड़ा सुल्तान था। साम्राज्य विस्तार के लिये अलाउद्दीन ने असाधारण कार्य किया। अलाउद्दीन अपने साम्राज्य को दक्षिणी भारत तक ले गया। अलाउद्दीन का व्यवहार हिन्दुओं के साथ बहुत

कठोर था। चित्तौड़ विजय करने में अलाउद्दीन को बहुत शक्ति लगानी पड़ी परन्तु अन्त में देश को राख करके वह उसे विजय करने में सफल हुआ। हिन्दुओं के साथ इसका व्यवहार खराब था।

मुहम्मद तुगलक—सन् १३२५ में गयासउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् यह भारत का शाहंशाह हुआ। यह बहुत योग्य शासक था परन्तु इतिहास में यह पागल के नाम से प्रसिद्ध है। इनके दो कार्य तांबे का सिक्का चलाना और राजधानी बदलना पागलपन के कार्य समझे जाते हैं। राजधानी बदलने से प्रजा को बहुत कष्ट उठाना पड़ा और उसकी राजधानी का ही सर्वनाश हो गया।

अकबर—हुमायु की मृत्यु के पश्चात् अकबर भारत के राज्य सिंहासन पर बैठा। अकबर पहिला मुसलमान बादशाह था कि जिसने हिन्दुओं को अपनाने का प्रयत्न किया और यही कारण था कि यह सब से बड़ा साम्राज्य भी स्थापित करने में सफल हुआ। अकबर बिना पढ़ा लिखा होने पर भी काव्य-कला का प्रेमी था और इसके दरबार में नौ रत्न थे। अकबर ने दीनइलाही मत चला कर हिन्दू मुसलमानों को मिलाना चाहा परन्तु मुल्लों और पण्डितों ने अकबर को अपने प्रयास में सफल नहीं होने दिया। सर्वप्रथम अकबर ने हिन्दुओं के ऊपर लगे जजिया कर को माफ किया और इसी कारण हिन्दुओं ने भी अकबर को अपनाया। अकबर मुसलमान काल का सब से लोकप्रिय शासक हुआ है।

औरंगजेब—इस वंश का अकबर के पश्चात् दूसरा प्रसिद्ध बादशाह औरंगजेब है। औरंगजेब के समय में मुगल साम्राज्य का विध्वंस प्रारम्भ हो गया और इसकी हिन्दुओं के विरोध तथा अत्याचार वाली नीति ने शासन की नींव को और भी हिला दिया। भय के कारण कोई औरंगजेब का नाम भले ही लेले परन्तु प्रेम से नहीं ले सकता था। हिन्दुओं पर औरंगजेब ने अलाउद्दीन से भी अधिक अत्याचार किये।

लोक मान्य तिलक—लोकमान्य प० बाल गगाधर तिलक का जन्म २३ जुलाई सन् १८५६ ई० मे रत्नागिरि जिले मे हुआ। आप बचपन से ही होनहार थे। विद्यार्थी जीवन से भाषा और गणित दोनों पर आपकी योग्यता की छाप रही। संस्कृत और अङ्गरेजी दोनो भाषाओ के आप प्रकाण्ड पडित थे विद्यार्थी-जीवन समाप्त करते ही आप सक्रिय तौर पर देश के पुनरुत्थान मे लग गये। शिक्षा-क्षेत्र में पूना का फरगुसन कालेज आज भी आपकी याद है। अङ्गरेजी मे 'मरहठा' तथा मराठी में 'केसरी' पत्र दोनों को आपने ही जन्म दिया और दोनों पत्रो ने निर्भयता से देश की सेवा की। मराठों मे आज कल प्रचलित दो सामाजिक उत्सवों (गणेश पूजा, शिवाजी पूजा) के आप ही प्रवर्तक थे। सन् १८६५ मे आप बम्बई कौन्सिल के सदस्य भी चुने गये, सन् १६०१ में आप पर राजद्रोह का मुकदमा चला जिसमे आपको ६ वर्ष तक मांडले जेल मे रहना पडा स्वराज्य को आपने जन्मसिद्ध अधिकार कहा। २१ जु० सन् १६२० मे आपका स्वर्गवास हो गया।

सुभाषचन्द्र बोस—जन्म २३ जनवरी १८६७ को कटक मे हुआ १६२० मे आई० सी० एस० परीक्षा इंगलैंड से उत्तीर्ण की। महात्मा गाँधी के आन्दोलन को देख ये भी सरकारी नौकरी न कर सके। देश सेवा के लिये ही विवाह न कराया। १६२६ में राष्ट्रभाषा सम्मेलन मे स्वागताध्यक्ष बने। अनेक बार जेल गये। आप राष्ट्रपति भी चुने गये, परन्तु महात्मा जी की नीति में विरोध होने से त्यागपत्र दे दिया। भारत से बर्मा मे जाकर इण्डियन नेशनल आर्मी (आजाद हिन्द सेना) की स्थापना की, जिसका परिणाम अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति होने से अंग्रेजो को भारत छोडना पडा। हवाई दुर्घटना से इनकी मृत्यु हुई।

महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गाधी–जन्म २अक्तूबर सन् १८६६ ई० देश की स्वतन्त्रता का इतिहास और महात्मा गाधी के जीवन का इति

द्वास एक ही वस्तु है । राजनीति के अतिरिक समाज के प्रत्येक अगों के विषय मे भी महात्मा गाधी के अपने अनूठे ही विचार थे । बेसिक एजु-केशन शब्द का आविष्कार ही उन्होने किया। देश से छूत-छात को हटाने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा कर साम्प्रदायिक निर्णय मे परि-वर्त कराकर पूना पेक्ट स्थापित किया देश मे जातिगत कलह के विरुद्ध तो उन्होंने अपनी आहुति ही सन् १९४१ ई० ३० जनवरी को दी खादी ग्रामोद्योग की उन्नति के मूलमत्र को आयुपर्यंत स्वय क्रियान्वित किया और जनता को भी इसे पूरा करने के लिये प्रेरित किया। महात्मा गाधी की सीधी सादी बातो मे महान विप्लवकारी सदेश छुपे थे जिनके फलस्वरूप सन् १९४२ में करो या मरो के आदर्श पर चल कर भारत आजाद हो गया । इस नवजात आजादी की रक्षा का व्रत भी उनके अनुयायियों ने महात्मा गाधी के पद चिन्हो पर चलकर ही पूरा करने का इरादा किया हुआ है ।

सरदार पटेल—३१ अक्टूबर १८७५ के दिन करमसाद नादि-याद तालुका में इनका एक कृषक परिवार मे इनका जन्म हुआ । वका-लत तक शिक्षा पाकर बैरिस्ट्री पास की । १९१८ में खेरा के सत्याग्रह १९२२ के सत्याग्रह में आपने मुख्य भाग लिया । १९२३ मे नागपुर में इन पर अभियोग चला । १०२८ में बारदौली के आन्दोलन में सफ-लता प्राप्त की । १९३० मार्च मे पहली बार कारावास मे गये । मुक्त होने पर १९३१ में करांची काम्रेस के प्रधान बने । १९३५ से ४० तक पार्लिमैण्टरी सब कमेटी के प्रधान रहे । इस प्रकार स्वतन्त्रता सग्राम मे लडते लडते १९४७ की १५ अगस्त को भारत को स्वतन्त्र कराया । और उपप्रधान मन्त्री नियत हुए रियासतों को सगठित करने में, हैदरा-बाद आदि को नियन्त्रण मं लाने में जो कार्य पटेल ने किया, उतना किसी अन्य नेता ने नहीं किया । दिसम्बर सन् १९५० को प्रात काल ९-३७ पर आपका देहावसान हुआ ।